डतराज राजकिशोर मणिना

रचितं महाकाव्यम्

यवेन्द्र चरितम्

अनुवाद एवं सम्पादनः—

डॉ० दशरथ द्विवेदी

त्रिपाठिना पण्डितराज राजकिशोर मणिना

विरचितं महाकाव्यम्

राघवेन्द्र चरितम्

—: अनुवाद एवं सम्पादन :—

(डॉ०) दशरथ द्विवेदी

उपाचार्य, संस्कृत-विभाग

गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

—: प्रकाशक :—

संस्कृत सेवा संस्थान

सी-१८६/१५६, खुर्रमपुर

पोस्ट—गीताप्रेस, गोरखपुर

समर्पणम्

पितस्त्वदीये परमे पवित्रे
सर्वार्थदे भद्रकराब्जयुग्मे ।
काव्यं समुत्पाद्य सुतस्वरूपं
स्वानृण्यहेतोरहमर्पयामि ॥

श्रीभगवदर्पणमस्तु

—राजकिशोरः

भूमिका

विविध वैचित्र्यपरिपूर्ण निखिल ब्रह्माण्डविधायक प्रजापति की असीम सृष्टि से भी परे अपूर्व सृष्टि के विधाता ऐसे विरल ही कवि पाये जाते हैं जिनकी वाणी भगवद्गुणानुवादपूरित होने के साथ-साथ सहजकोमलकान्तपदावलीमण्डित बाँकपन से सरसतापादन करती हुई अपने आस-पड़ोस, प्रान्त तथा देश की संस्कृति, आचार, परम्परा और उच्च आदर्शों को अभिव्यक्ति दे पाती है। भगवती सरस्वती की कृपाकटाक्ष का विप्रुल्लव भी कदाचित्, कभी, जिस किसी को प्राप्त हो जाय मन्दधी भी वह सहज ही कवित्वपदवी प्राप्त कर जाता है फिर तो वह जो प्रतिभाभ्यासमण्डित, शास्त्रपरायण वैपश्चितीनिष्ठित हो उसकी वाक् उदात्तवस्तु, उदात्तरचना और उदात्तभावों की निर्झरिणी को क्यों न सहज प्रवाहित कर दे। आदिकवि प्राचेतस वाल्मीकि की सहज कविता, महर्षि व्यास की त्रैलोक्यव्यापिनी भारतीकथा और कविकुलगुरु कालिदास की मधुरसान्द्ररसमञ्जरीकल्प काव्यकला का अंश भी जिन्होंने छू लिया उनका कवित्व सार्थक हो गया, पर कवित्रयी का कुछ न कुछ एकत्र पाना हो तो वह सहज मिलेगा पण्डितराज श्री राजकिशोर मणि त्रिपाठी विरचित अभिनव महाकाव्य 'राघवेन्द्र-चरितम्' में, यही नहीं लौकिक से परे वैदिक कवित्व की रमणीयता भी यहाँ मिलेगी। इस महाकाव्य के जिस अंश को ही पढ़ना प्रारम्भ कीजिये उसी में खो जाना पड़ता है। ऐसा क्यों है ? का उत्तर तो सहृदय विज्ञ पाठक पढ़कर ही जान पायेंगे, समुद्र में उतरे बिना उसकी गंभीरता का ज्ञान नहीं हो पाता। ऐसा कुछ विशेष अवश्य है इस महाकाव्य में जो रचना के प्रतिसर्ग, प्रतिश्लोक में प्रतिपद अनुस्यूत है और अनायास ही कुछ कहने को बाध्य करता है।

'राघवेन्द्र चरितम्' में कुल सोलह सर्ग हैं, मानो उदात्तचरित भगवान् राम की उदात्त षोडशकलायें षोडशकलो वैपुरुषः। उस पुराण पुरुष की पूर्णता सोलहवीं कला से है और इस महाकाव्य की इतिकर्तव्यता, चरम उपलब्धि सोलहवें सर्ग में है। यहाँ सभी का अपना अनुभूत मिल जाता है, हृदय को विश्रान्ति मिलती है, सारी वेदनायें राम से एकाकार हो उठती हैं, सब कुछ रामरूप होकर महावीर में समाहित हो जाता है। कितना ही मञ्जुल संयोग है, प्राचेतस महर्षि बाल्मीकि के रामायण में २४००० श्लोक हैं तो रघवेन्द्र चरितम् में २४००, माता गायत्री के चौबीस अक्षरों के प्रतीक सुमन, आदिकवि का अनुकार।

काव्य की भाषा सहज, सरल, प्रवाहमयी, भावोत्पादक, सद्यःअर्थ-प्रसवित्री, मधुरप्रसादसमन्वित, कहीं बाल्मीकि, कहीं व्यास, तो कहीं कालिदास की अनुगामिनी; पर ऐसा भी नहीं कि सर्वत्र सभी का सहज प्रवेश हो जाय, वैदग्ध्य तो चाहिए ही इस महाकाव्य का भरपूर आनन्द लेने के लिये, विदग्ध कवि द्वारा प्रणीत जो है। वक्रोक्तिकार की दृष्टि से मध्यम मार्गानुसारी कविमणि की कविता में वैदर्भी के साथ-साथ बहल पाञ्चालीरीति का सहज समन्वय है। प्रचलित-प्रसिद्ध अनुप्रास, यमक, उपमा, अनन्वय, रूपक, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, समासोक्ति, श्लेष, अप्रस्तुत प्रशंसा, व्याजोक्ति, विनोक्ति, सहोक्ति, सन्देह, भ्रान्तिमान्, काव्यलिङ्ग, विरोध विशेषोक्ति, विभावना आदि विपुल अलङ्कारों से मण्डित राघवेन्द्र चरितम् महाकाव्य में करुण रस ही अङ्गी है। उदात्त-चरित राम की कथा का अङ्गी तो वीर रस ही होना चाहिए ? पर यहाँ करुण क्यों ? का उत्तर ध्वनिकार आनन्दवर्द्धन ने दे ही दिया है। शृङ्गार के उभयरूप, संयोग-विप्रलम्भ, होने पर भी यहाँ विप्रलम्भ करुण की प्रधानता है। हास्य, रौद्र, भयानक, बीभत्स आदि अङ्ग रस भी यथावृत्त परिपुष्ट हैं। काव्यकार ने भगवान् राम को जिस दशा में धराधाम का वियोग दिया है अभिधया वह काव्य को दुःखान्त बनाता है, पर भक्तार्तिनाशव्रत की पूर्णता की अभिव्यक्ति व्यञ्जनया सुखान्त में परिणत होती है। कथा में वस्त्वनुसारी छन्दों का, एक ही सर्ग में प्रसङ्गानुसार विविध छन्दों का, छन्दों की विभिन्न जातियों की उपजातियों का कितना तर्कसङ्गत और अभिनव प्रयोग किया है कवि ने, मुग्ध हो जाना पड़ता है महाकवि की विदग्धता और विविधता पर।
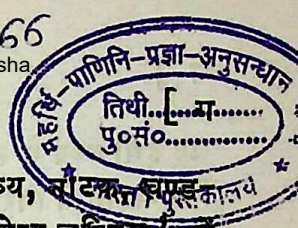
रामकथाश्रित अनेक प्रबन्ध-रामायण, महाकाव्य, नाटक, चम्पू-काव्य आदि के रहते इस अभिनव महाकाव्य, राघवेन्द्र चरितम् में क्या कुछ विशेष है ? का उत्तर ध्वनिकार के निम्न कथन और इसकी सार्थकता—

दृष्टपूर्वा अपि ह्यर्थाः काव्ये रसपरिग्रहात् ।
सर्वेनवा इवाभान्ति मधुमासइव द्रुमाः । (ध्व० ४।४)

यदि कहीं है तो वस्तुतः इसी महाकाव्य में। इसे और महाकाव्य के विशेष को जानने के लिए हम प्रतिसर्ग की कथा और उसमें कविद्वारा निबद्ध नवनवार्थोद्भाविनी अभिनव कल्पना तथा समुन्नत भारतीय संस्कृति और भारतीय दृष्टि को निभालें। महाकाव्य का प्रथम सर्ग सम्पूण काव्य की एक भूमिका मात्र है, पर इसमें देवतात्मा हिमालय, वहाँ की दिव्यच्छटा, पवित्र सरोवर, वहाँ से निःसृत लोकपावनी पुण्य-सलिला नदियाँ, सारवार्य प्रदेश की वस्तुनिष्ठ परिकल्पना, उसके प्रति कवि की असीम आसक्ति, क्या कुछ नहीं है यहाँ।

प्रारम्भ में परम्परा का पालन करते हुए कवि ने मङ्गलार्थ षड्देवों की वन्दना की है, प्रकारान्तर से वह षड्देवोपासना ही ग्राह्य है, इस तथ्य को इङ्गित करता है। पूज्य माता, पिता और चाचा को प्रणाम निवेदन कर, बाल्मीकि प्रभृति पूर्ववर्ती कवियों और काव्यकारों का सादर स्मरण और नमन करने के प्रसङ्ग में कवि भाषाकवि महात्मा तुलसीदास को भी प्रणाम निवेदन करना नहीं भूलता। सदसद्-जन वन्दन, सहजविनम्रता व्याज पूर्वक काव्य हेतु प्रदर्शन, फिर रघुनाथ के गुणों के कीर्तन के बिना कहीं जन्म ही न व्यर्थ हो जाय इसलिये महाकाव्य में अपनी प्रवृत्ति बताकर कवि हिमालय का वर्णन प्रारम्भ कर देता है। कालिदासप्रभावित होने पर भी बर्णनपद्धति और कल्पनायें कवि की अपनी हैं, सर्वथा नवीन। हिमालय की महिमा का बखान करते हुए कवि ने दिखाया है कि यहीं ब्रह्मपुत्र और सिन्धु नदी का उद्गम है। इसी के शुभ्रजल से गङ्गा अपने गुणों को प्रकट करने में समर्थ हुई है (१।२४)। यह पर्वतराज हिमालय केवल भगवती पार्वती का ही जनक नहीं है, पवित्र सरयू को उत्पन्न करने के कारण ही यह प्रणम्य बना (१।२५)। सरयू के प्रति कवि का कितना गहरा लगाव है

यह इसी तथ्य से स्पष्ट होता है कि उसकी उत्पत्ति, पर्वत प्रदेश में स्थिति फिर मैदान में गिरना —

मातुर्वियोगं न शशाक सोढुं सा निम्नगा तत्र पपात भूमौ । १।३६

उसकी गति, तटस्थ वनच्छटा, पर्वत से नीचे उद्ग्रीवस्थिति सिन्धुव्रजा पतिगमना की चपल चाल और फिर गोण्डा में आकर औद्धत्यशून्य हो जाना—

अनन्तमूर्तिः परमो महात्मा वाग्योगविद् योगविदां वरेण्यः ।
पत्तञ्जलिर्भूमिमलंकरिष्णुर्यत्रैव भक्त्यावनता बभूव ॥
(१।५०)

और फिर घाघरा का सङ्गम प्रभृति वृत्तान्तों को कवि ने उत्प्रेक्षादि अलङ्कारों से मण्डित कर लगभग सम्पूर्ण सर्ग ही इस नदी की महिमा में समर्पित किया है। घाघरा–सरयू के संवाद क्रम से ज्ञात होता है कि भगवान् नारायण शीघ्र ही धरती पर अवतरित होने वाले हैं, सूर्यवंश में ही वह आयेंगे और सूर्यपुत्र की दक्षिण दिशा को प्रयाण कर रही है पतिंवरा सरयू। मानस सरोवर से उत्पन्न होने के कारण सरयू, सरयू का नाम है, घाघरा उसकी दूती बनी है। घाघरा से ये बातें ज्ञात होती हैं और यह भी उसी से ज्ञात होता है कि भगवान् विष्णु कभी कैलास-नाथ शिव से मिलने हिमालय पधारे थे वहीं उन्होंने सरयू को बचपन में देखा था और उसे अपनी पत्नी बनाने का संकल्प कर लिया था। यह सारा वृत्तान्त नारायणी को ज्ञात है। मुक्ति क्षेत्र से नारायणी ने ही घाघरा को सरयू के पास भेजा है। यहाँ की कल्पनायें, काव्य सौन्दर्य की परख करना हो तो काव्य में प्रवृत्त होइये और देखिये कि इस महाकवि का सरयू, घाघरा, नारायणी के उद्गम स्थल, सरयू-घाघरा के संगम आगे की गङ्गा आदि नदियों के वृत्तान्त, समस्त को मिलाकर पवित्र सारवाय प्रदेश की संकल्पना कीं यथार्थ भूमिका तथा उसकी पवित्रता और महनीयता, के प्रति कितना अगाध प्रेम है। कथा आगे बढ़ती है घाघरा के मुख से भगवद् गुणानुवाद, उन्हीं से नामरूपात्मक विश्व की संरचना इत्यादिभावों की अभिव्यक्ति, उन्हीं की योगमाया का भविष्य में मिथिला में प्रकट होने का वृत्तान्त (१।१६८) स्वयं नारायण के भी निकट भविष्य में ही अयोध्या में अवतरित होने की बात, पवित्र
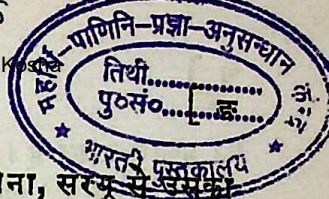
सप्तनगरियों का उल्लेख, अयोध्या का तपस्यारत होना, सरयू से उसका संवाद आदि वृत्तान्तों को कवि ने इस प्रकार संजोया है कि सभी अरूपी तथा जड पदार्थ रूपायित और सजीव हो उठे हैं। सरयू तो मानो कवि के मानस में एकदम समायी हुई है, अन्यथा वह महाकाव्य में उसकी उत्पत्ति का वर्णन नैकधा क्यों करता। देखो न अयोध्या समागम में पुनः सरयू अपना परिचय दे रही है। मेधातिथि विप्र की पुत्री अरुन्धती मानस में रहती है। हिमालय के शिखर पर वशिष्ठ से उसका विवाह हुआ। परिणय के अवभृथ स्नान में जो पवित्र जल बहा उसी से सात पवित्र नदियों ने जन्म पाया। वे हैं-कौशिकी, कावेरी, शिप्रा, गोमती, देविका, सरयू और इरावती (राप्ती)। हंसावतार के समीप हिमाद्रिकन्दरा में पतित जलबिन्दु से वह पैदा हुई (१।८५-८८)। पिता की आज्ञा से नारायण को पतिरूप में प्राप्त करने को वह चल पड़ी है। अयोध्या ने महान् नारायण की महत्ता प्रख्यापित कर उसके प्रति सरयू के सापत्नभाव को समाप्त किया। सरयू अयोध्या से आगे बढ़ चली है, पूरब की ओर और राप्ती का स्वागत करती है (१।१०६)। आगे अगति की गति गङ्गा मिलती है। निश्चय ही यह मेरी बड़ी सखी है, नारायण से जो स्वयं नीरपति हैं, मुझे मिलायेगी, मानो यह सोचकर सरयू गंगा में बिलीन हो जाती है और महानुभावा गङ्गा उन्हें आत्मसात् कर लेती हैं। प्रथम सर्ग की समाप्ति होती है। पवित्र सरयू अयोध्या, नारायणी, गङ्गा आदि के व्याज से कवि सारवार्य प्रदेश की पवित्रता और अपनी कवित्व शक्ति को अभिव्यक्ति देकर रामावतार की भूमिका तैयार कर देता है।

द्वितीय सर्ग का प्रारम्भ, पापभार से प्रपीडित धरा गोरूप धारण कर ब्रह्मा की शरण में उपस्थित हुई है, भार दूर करना है। अग्नि की सलाह पर दैत्यनिषूदन की स्तुति की जाती है। विष्णु प्रकट होते हैं। वेदमर्यादा की स्थापना करनी है। वह स्वयं व्यक्त करते हैं। पृथ्वी का भार दूर होना ही है, उन्हें आना ही है। अयोध्या को पतिरूप की मेरी प्राप्ति का वरदान है, सरयू को मेरी प्रतीक्षा है, अदिति और कश्यप को मैंने अपने को पुत्ररूप में प्रस्तुत करने का वचन दे रखा है, मेरे दोनों द्वारपाल जय-विजय जन्मान्तर में उद्धार की आकाङ्क्षा किये हुए हैं, देवर्षि नारद के शाप का भी मुझे पालन करना है। इस प्रकार कवि ने पृथ्वी के भारावतार के कथाप्रसङ्ग में भगवान् के अवतार के कारणों

पर प्रकाश डाला है। कवित्व पर यहाँ कालिदास तथा अन्य प्रबन्धों का प्रभाव द्रष्टव्य है। अयोध्या में महाराज दशरथ राज्य कर रहे हैं—

सनूपुरौरगैः रत्नैश्चन्द्रादित्यकुण्डला ।
बहुधस्तेन संभुक्ता सा रत्नाकरमेखला ॥ (२।३२)

सर्वथा प्रसन्न है अयोध्या (२।३३-४०)। विनोद के लिए राजा मृगया में जाता है। श्रवणकुमार का वृत्तान्त, अन्ध माता-पिता द्वारा राजा को शाप, राजा का निःसन्तान होना, रथारुढ होकर पत्नियों समेत वशिष्ठ गुरु के आश्रम में जाना, मार्ग में गोपादि जनों का वर्णन, आश्रम में पहुँचना आश्रम वृत्तान्त, सपत्नीक गुरुपत्नी का दर्शन, पुनः वसिष्ठ-अरुन्धती प्रसङ्ग में सरयू की उत्पत्ति का उल्लेख, पुत्राभाव-पुत्रमहिमा-पुत्र सुख का राजा द्वारा निवेदन, ऋष्यशृङ्ग को कन्यादान का प्रस्ताव और उनके द्वारा पुत्रेष्टि के विधान का गुरु द्वारा प्रस्ताव आदि द्वितीय सर्ग में निबद्ध है। इस पूरे वर्णन में कालिदास और वाल्मीकि का प्रभाव सुतरां द्रष्टव्य है, पर वस्तु को प्रस्तुत करने की कवि की कुछ अपनी ही विधि है जो काव्य में नूतनता का आधान करती है। एक-दो उदाहरण देखें— असुरबाधित धरणी की दुर्दशा वर्तमान को अभिव्यक्त करती है—

विलुप्तं वैदिकं कर्म कदाचारप्रवर्द्धनात् ।
तीर्थानि च विनष्टानि मर्यादाननुपालनात् ॥ (२।८)

मुनि वशिष्ठ का आश्रम कालिदास-वाल्मीकि-व्यास की वर्णना का स्मरण कराता है—

होमाभिवर्द्धिताग्नीयधूमव्यापितदिङ्मुखम् ।
वेदाभ्यासपवित्रान्तःकरणद्विजसेवितम् ॥
निर्वैरं नितरां शान्तं दुर्वृत्तपरिवर्जितम् ।
आश्रमादाश्रमे सिद्धिं मत्वा मेने स आश्रमम् ॥ २।६२-६३

इसी प्रकार वशिष्ठ-अरुन्धती का चित्र (६५-६८), ग्राम्य बहुओं का सहज स्वाभाविक रमणीय दृश्य (८७-८८), गुरु और राजा की वार्ता में विविध कथ्यों की स्वाभाविकता के साथ-साथ वर्तमान की बढ़ती आबादी और निर्वीर्य भारतीय सन्तानों के प्रति कवि की अभिव्यञ्जना सहज हृद्य तथा आवर्जक है—

*अल्पसत्त्वा विजायन्ते नितरामधिसंख्यका:
स्वभावाद्बहुसत्त्वास्तु भवन्त्येवाल्पसंख्यका: ॥ (२।१२)*

तृतीय सर्ग का प्रारम्भ, श्रृङ्गी ऋषि ने पुत्रेष्टियाग प्रारम्भ कर दिया है, अग्निदेव को हवि समर्पित की जा रही है। ऋग्वेद का अग्निसूक्त ही यहाँ साकार हो गया है अग्नेत्वमायाहि, रत्नधातमम्, कविक्रतो, पाहि पितेव पुत्रान् आदि प्रयोग, इससे भी आगे पौराणिक विधि समन्वित (२।४-११) यह अग्निस्तोत्र-काव्य में काव्य-का निबन्धन है। कवि की यह विशेषता समग्र प्रबन्ध में द्रष्टव्य है। कहीं स्तोत्रकाव्य तो कहीं दूतकाव्य तो कहीं नीतिकाव्य, इस प्रकार राघवेन्द्रचरितम् के गर्भ में अनेक काव्यविधा का भी पूर्ण विकास है। अग्निदेव प्रकट हुए हैं। क्या ही मनोरम दृश्य है—

*यथा चकोरैरभिपीयते शशी कुशेशयैर्वा परिदृश्यतेरवि: ।
निभाल्यते वा मुदिरो मयूरैस्तथैव वह्निः परिवीक्षितो जनै: ॥*

(२।१३)

अग्निदेव ने चरु प्रदान किया है, महारानियाँ उसके भक्षण से गर्भवती हुई हैं। लोक-मनोवृत्ति का स्वाभाविक चित्रण यहाँ दर्शनीय है। लोग क्या-क्या नहीं कह रहें हैं। कहीं चरु से गर्भ ठहरता है? अरे राजा ने तो नियोग कराया है-किं प्रस्तरे रोहति जातु दूर्वा"। किन्तु कवि असावधान नहीं है। उसे शास्त्र मर्यादा ज्ञात है। अपर जनों द्वारा लोगों की आशङ्काओं का निराकरण होता है (२१।१८।० । भारतीय संस्कृति और धर्म की सुरक्षा अनुपद दृश्य है। रानियों के पुंसवन संस्कार कराये गये हैं, गर्भावस्था का सुन्दर स्वाभाविक वर्णन, रानियाँ चुराकर माटी खाती हैं (४१), उन्हें वंशलोचन दिया जाता है। रानी कौशल्या को स्वप्न आया है, ब्राह्मणों ने उसका शुभफल बताया है (४८) ज्योतिष् के अनुसार सूर्य के मेषगत होने, कर्कलग्न में, उच्च पञ्चग्रह स्थिति में, चैत्रशुक्ल की नवमी, पुनर्वसुनक्षत्र में विभु नारायण (५०) प्रकट हुए हैं।

*सशंखचक्रं सकिरीटकुण्डलं चतुर्भुजं पद्मगदाविराजितम् ।
श्रीवत्सलक्षं वनमालयायुतं पीताम्बरं कुञ्चितमेघकालकम् ।
उद्दामकाञ्च्यंगदकंकणादिभिर्विरोचमानं प्रयुतार्कभासम् ॥*

अद्भुत शोभा है भगवान् की। माता कौशल्या भगवान् की स्तुति कर रही हैं, पुनः महाकाव्य के गर्भ में काव्य—

त्वमेव पूर्णः पुरुषोत्तमोऽच्युतः सनातनो विष्णुपदाभिसंस्तुतः।
अगोचरस्त्वं मनसेन्द्रियैर्वा सच्चित्तथानन्दमयः परात्मा॥

माता ने वात्सल्य भाव की कामना की है। क्या यहाँ कवि की अपनी अभीप्सा भी नहीं व्यञ्जित है? बड़ा ही मनोहारी चित्र है। नहीं मिलेगा किसी और काव्य में यह दृश्य। पुनः देवताओं द्वारा स्तुति-पूर्वक एक और गर्भित खण्डकाव्य। शिखरिणी का मृदु प्रयोग (६८-७६) भगवान् का वेद-पुराण-काव्य प्रतिपादित विविधरूप, अनादि-प्रलय-तत समुत्थ सृष्टि आदि का कितना सुन्दर वर्णन यहाँ कवि ने किया है, अवर्णनीय है। भगवान् ने शिशुरूप धारण कर लिया है। तृतीय सर्ग में वात्सल्य और भक्तिरस को देखा जा सकता है।

चतुर्थ सर्ग का प्रारम्भ, दूती ने महाराज दशरथ को श्रुतिसुखद संवाद सुनाया है, नवजात शिशु का लोकोत्तर सौन्दर्य खींचा है काव्यकार ने (४।८)। राजा ने उसे पारितोषिक दिया है—

आनपत्योद्धृतिं मत्वा ददौ हारं हृदिस्थितम्।

अन्य दो रानियों ने भी शिशुओं को जन्म दिया है। जातकर्म के हो जाने पर दशवें दिन नामकरण संस्कार किया जाता है। राम, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न मानो चारों श्रुतियाँ आज राजघर में चली आई हैं। इस समय राजा के लिये कुछ भी अदेय नहीं हुआ। कवि की लालसा समाप्त नहीं हुई है पुनः दिगम्बर, कुञ्चितकेशराशि बालक की सुषमा पर मुग्ध हो रहा है (१८-२२)। एक पुरन्ध्री माता कौशल्या से मनहर राम की सुषमा का बखान करती है, नया छन्द, नयी कल्पनायें (२५-२६)। माता को टोना लगने का डर हो जाता है—

तद्धेतोः कज्जलं माताकरोच्चन्द्रमुखे शिशोः। (४।३१)

माता ने चन्द्रमुख पर काजल लगाया है। माता कौशल्या परमानन्द पूरित बालक को गोद में लिये ऊपर-नीचे घुमाया करती हैं। राजा दशरथ निरन्तर बालकों में भूले रहते हैं, बाल सौन्दर्य और पितृसुख

का यहाँ सहज, आनन्दप्रद चित्र कवि ने उकेरा है (३२-४३)। अन्न-प्राशन संस्कार किया गया है। बालक आँगन में सरकने लगे हैं, फिर अंगुलियों के सहारे चलने लगते हैं। बालक चपल हो गया है। माताजी पिताजी से उसकी चपलता की शिकायत करती हैं—

अगारवस्तून्यपसारितानि स्वस्थानतोऽनेन भवत्प्रियेण। ४।५१

बार-बार शिकायत करने पर भी आप बच्चे पर ध्यान नहीं देते, आगे दुखदायी होगा। माताओं की स्वाभाविक बातें। अप्राप्य वस्तु के लिये बालक राम का बालहठ, चन्द्रमा की माँग, थाली के जल में माता ने चन्द्र दिखाया, बालक सन्तुष्ट। सर्वाभरण भूषित राम आँगन में भात खा रहें हैं, एक विचित्र कौआ आया है, हाथ में भात लेकर बालक बुलाता है, कौए, आओ-आओ और उसके पीछे-पीछे भागता है। काक (भुशुण्डि) का सौभाग्य देखकर देवता लोग उसकी प्रशंसा किये बिना नहीं रहते (६०-६३)। यों ही घूमते हुए राम ने एक विचित्र वानर को भी देखा। कभी दूर भागता है तो कभी बालक के पास चला आता है, सारा प्रयत्न व्यर्थ हो जाता है, धूप कड़ी हो गई पर वानर वश में नहीं आया। बालक रोने लगा है। बाल बिखर गये, काजलपुंछ गया, थकान से शिथिल बालक को देखा तो वानर (हनुमान्) स्वयं उनके वश में हो गया। सवेरे-सवेरे एक रमणी आयी और बालक को देखकर अपनी सखी से कहती है—

प्रातर्गता नृपगृहं सखि कार्यहेतो-
र्दृष्टं मयोदितमपूर्वमहः स्वरूपम्।
पूर्वे रविं ललनु पश्चिमदिग्विभागे
चन्द्रं नृपाङ्गणगतं च विचित्रनीलम्॥ (४।७६)

फिर वर्णन प्रसङ्ग में-'नीलं तमश्चलति' आदि के द्वारा नैयायिकों का तमखण्डन भी कितना सहज हो गया कवि को। बालक की अपूर्व सुषमा (७२-८६) पर महाकवि मुग्ध है, किसी और काव्य में इतना स्वाभाविक चित्रण अप्राप्य है। पुनः नगर बहुएँ आयी हैं बालक को अभिनव छन्दों में आशीर्वाद देती हैं (६०-६६)। विद्यारम्भ, चूडाकर्म कर्णवेध, यज्ञोपवीत, सभी संस्कार किये जाते हैं। विद्यारम्भ समस्त

विद्याओं की शिक्षा, समावर्तन संस्कार भी हो गया। रामभद्र अब सभा में भी बैठने लगे हैं, पुरवासियों के कार्य भी देखने लगे हैं—

पौरप्रवृत्तिं प्रतिजागरूको विनम्र आचाररतो दयालुः।
अजातशत्रुः स बभूव सर्वतो रूपेण शीलेन सुभाषितेन॥ (४।११०)

घटनायें तेजी से घट रहीं हैं और महाकाव्य निरन्तर उत्कर्ष की की ओर अग्रसर है। पञ्चम सर्ग में भगवान् राम मिथिला में पहुँच गये हैं। यहाँ अनेकों वर्णन सर्वथा नवीन और कविकल्पना मण्डित साथ ही सोद्देश्य भी हैं। राक्षस रावण का उत्पात बढ़ गया है। उससे नियुक्त राक्षस यज्ञविघ्न कर रहें हैं। ब्राह्मण स्वयं रक्षा करने में समर्थ हैं—

स्वधर्मलग्नाः श्रुतिमार्गगामिनो द्विजाः समर्था निजधर्मरक्षणे।

पर यह राजा का धर्म है यह मानकर विश्वामित्र महाराज दशरथ के यहाँ पधारे हैं। राक्षसों के बधार्थ राम-लक्ष्मण की याचना की है। राजा की मनोदशा, सूर्यवंश की गरिमा, विश्वामित्र का तपः पराक्रम, यहाँ सम्यक् व्यञ्जित है। बशिष्ठ के समझाने पर राजा दशरथ बच्चों को देने के लिये तैयार हुए हैं। राजा की गुरुभक्ति और विश्वामित्र द्वारा प्रशंसा—

गुरौ स्वभक्तिः करणेषु संयमो मयि स्वविश्वासततिः प्रदर्शिता।

दर्शनीय है। नव-नवार्थ दर्शन के प्रति समुत्सुक गुरुजनों को प्रणाम कर मुनि के साथ दोनों बालक चल पड़े हैं। यहाँ यात्रा प्रसङ्ग में महाकवि ने जो मार्ग, मार्गसुषमा, ग्राम्यदृश्य रेखाङ्कित किया है, वह सर्वथा पूर्वाञ्चल की स्वाभाविक संस्कृति है। सरयू को बाँयें कर यात्रा प्रारम्भ हुई है। शरत्काल आगया है। वापियों में सिंघाड़े की लतायें विराजमान् हैं, कहीं धान की फसल इक्ट्ठी की गयी है, तो कहीं मड़ाई हो रही है। फिर कहीं पुआल की ढेरी लगायी जा रही है। प्रपञ्चशून्य भोले ग्रामवासी, गोवृन्द, हलों से खेतों की जुताई, आदि का रमणीय दृश्य सर्वथा अभिनव प्रयोग है (५।४१-५०)।

आश्रम में पहुँचने का दृश्य। गुरु के जगने से पूर्व ही दोनों बालक शैय्या का परित्याग करते हैं और उनके शयन के बाद ही रात्रिशयन करते हैं। प्रसन्न मुनि ने उन्हें बला और अतिबला विद्या की शिक्षा दी

है जिससे भूख-प्यास नहीं लगती। राम को जृम्भकास्त्र प्रदान किया है। ताडका और सुबाहुवध तथा मारीच का सुदूर प्रक्षेपण। मिथिला नरेश विदेह, सीरध्वज का वृत्तान्त, अवर्षण के कारण उनका हल जोतना, सीता का धरती से प्राकट्य, स्वयम्बर का आयोजन, मुनि समेत राम-लक्ष्मण का प्रस्थान काव्य में पठनीय और स्पृहणीय विषय है। शोणतट पर आह्निक कृत्य करके आगे चलकर भगवान् ने अहल्योद्धार किया है। अहल्या का करुण निवेदन समस्त नारी जाति की व्यथा और पुरुष वर्ग की निष्कृपता का यथार्थ चित्रण है—

अवशा जनितैव वाऽबला जनितो वा विधिना खलः पुमान् ।

गङ्गातट पर पहुँच गये हैं। अभी-अभी शिला नारी बनी है। कैसे कोई नाविक अपनी नैया पर भगवान् को चढ़ाये। यहीं केवट ने राम के पवित्र पाँव धुले हैं। महाकवि की सावधानी यह घटना अन्यत्र वनवास के बाद है, पर यहाँ यहीं दिखाकर कवि ने घटना और कथा की सम्यक् संघटना की है।

कदाप्यसंमार्जितवां घ्रियुग्मकं समुत्सहे दातुमहं तरिं न ते ।
यदा प्रपेदेश्म मनुष्यतां तदा कथा तरेः केह तवांघ्रिसेवनात् ॥

छठां सर्ग। मिथिला में भगवान् का पदार्पण हो चुका है। मिथिला की चिन्ता, उत्प्रेक्षामुखेन द्रष्टव्य है—

अपूर्वचौरे मिथिलामुपागते हठान्मुनीनाञ्च मनांसि मुष्णति ।
न जातु रत्नं मम चोरयेदसौ भियानया सा मिथिला व्यकम्पत ॥

मिथिला का रत्न मिथिलेश नन्दिनी का चोर जो आ गया है। मिथिला की धरती धानों से झुक सी गयी है। पशु-पक्षी वृक्ष सभी राम के स्वागत में लगे हैं। राम की शोभा देखकर मृगियाँ ठगी सी रह गयीं हैं। वस्तुतः यहाँ मिथिला की सोत्प्रेक्ष चिन्तायें और सुषमा सर्वथा नवीन वृत्त काव्य में ही दर्शनीय है।

नगर में पुरोहित समेत राजा ने उनका स्वागत किया है, अग्नि-शाला में आवास दिया है। दूसरे दिन मुनि की आज्ञा से, राम नगर दर्शन को निकले हैं, साथ में लक्ष्मण भी चल रहें हैं। पुरवासी आबाल

वृद्ध नर-नारी उन्हें अपनी-अपनी रुचि के अनुसार देखते और पराक्रम तथा सुन्दरता की प्रशंसा करते हैं। जनकपुरी ने राम को मोह लिया है। कवि ने नगरी को पाठशाला, रङ्गशाला, वापी, वाटिका आदि रूप में संभावित किया है और राजा को सूत्रधार बनाया है। हंसियों जैसी रमणियों की खनक तथा सर्वत्र पार्वती की पूजा का प्रचलन है।

गिरिजागृह का दृश्य। पूजाभाजन लिये चलती फिरती लताओं जैसी सखियाँ और उनके मध्य एक सुकुमारी कन्या को देखकर राम की मनोदशा, फिर राम को देखकर सीता का द्रवित हृदय—

तस्मिन्क्षणे वीक्ष्य च राघवीयं सीतागतं हार्दमकृत्रिमं च ।
वृक्षा लताः स्नेहरसानुविद्धाः शृङ्गारचेष्टाकुलिता बभूवुः ॥

कवि की लेखिनी में सविस्तार आबद्ध है। धनुर्यज्ञ, राजाजनक की निराशा, लक्ष्मण का क्रोध, विश्वामित्र के आदेश से रामद्वारा धनुर्भङ्ग, परशुराम का आगमन, लक्ष्मण-परशुराम संवाद, राम की विनम्रता और परशुराम प्रदत्त धनुष का ज्यारोप, परशुराम की प्रसन्नता, रामद्वारा उनके मनोगतित्व का अपहार, राम के कण्ठ में जयमाला का अर्पण समस्त वृत्त को नवीन न होने पर भी अभिनव रीति में निबन्धित करने का प्रयास इस काव्य में देखा जा सकता है।

सप्तम सर्ग का प्रारम्भ, महाराज दशरथ के पास मिथिला से सन्देश आया है। गुरु वशिष्ठ की आज्ञा से कुलाचार विधि जानने के लिये राजा रनिवास में पधारते हैं। कुल देवताओं की पूजा होती है। अयोध्या सजायी गयी है। अहर्निश बाजे बज रहें हैं। गीत के बहाने शब्दब्रह्म की आराधना हो रही है। प्रातः, मध्याह्न, सायं गाये जाने वाले गान्धारादि स्वर, फिर पूर्वी-ताल, लय आदि के अहर्निश प्रयोग से अयोध्या रङ्गशाला बनी है। गीतों के श्रुतिभेद का काव्य में यहाँ अभिनव प्रयोग है (७।७-१७)। शिव की निरन्तर पूजा चल रही है। गुरु को आगे कर बारात मिथिला की ओर चल पड़ी है। हस्त्यश्वादि सेना के प्रयाण का सुन्दर काव्यानुसारी चित्र प्रकामान्तस्तोषकारी है (१९-२१)। मिथिला की सीमा पर पहुँचते ही समन्त्रिगण जनक द्वारा स्वागत होता है। दोनों समधी गले मिलते हैं, मानो दो नद परस्पर मिले हों। वस्तुतः इस सर्ग की उत्प्रेक्षायें एक से एक बढ़कर परस्पर स्पर्धित्व भाव व्यक्त करती है।

विश्वामित्र समेत प्रसन्न राम-लक्ष्मण को देखकर नरपति दशरथ प्रसन्न होते हैं। बारात का स्वागत-सत्कार होता है। मिथिला की परम्परा प्राप्त खातिरदारी यहाँ सहज ही देखी जाती है। दधि, चिउड़ा मत्स्य, लेह्य, चोष्य आदि नाना व्यञ्जनों के माध्यम यहाँ मिथिला की संस्कृति अभिव्यक्त हुई है (३७-४२)। मार्गशीर्ष शुक्ल पक्ष की पञ्चमी तिथि को चारों भाइयों का पाणिग्रहण सम्पन्न हुआ है। गौरी गणेश के पूजन से लेकर वशिष्ठ द्वारा अभिषेक तक की सारी वैवाहिक क्रियाओं का कवित्वमय शैली में वर्णन और पुनः वशिष्ठ के सन्दर्भ से सरयू की उत्पत्ति का उल्लेख। कोहबर में जाना, सखियों की ठिठोली, विदाई के पूर्व राजा जनक द्वारा पुत्रियों को शिक्षा, आदि कालिदास की पद्धति पर निबद्ध है। विदाई का करुण दृश्य, सभी लोगों द्वारा बहुओं को आशीर्वाद प्रदान, सीमा पर पहुँच कर जनक द्वारा सभी का विसर्जन नितरां दर्शनीय है।

काव्य में अभिनव प्रयोग-राजा अब लघुमार्ग से लौटना चाहते हैं। इसलिये सीधे नारायणी नदी पार करते हैं। यहाँ नारायणी की सुषमा, पवित्रजल के प्रति लोगों का आकर्षण और स्नान का अपरित्याग (८:-८६) कवि का नारायणी गत स्नेह व्यञ्जित करता है। मगध की सीमा प्राप्तकर कोसल की सीमा में प्रवेश कर गये हैं। मार्ग में मयूर, कपोत, हरिण तथा पुष्पित वनपङ्क्ति अलसी, मटर, उत्फुल्ल कमल, अशोक, बकुल, आम्र, कोकिल आदि प्राकृतिक चित्रण कवि ने अभिनव उत्प्रेक्षाओं और कल्पनाओं से मण्डित करके काव्य में संजोया है। अयोध्या में स्त्रियाँ भवनों के ऊपर खड़ी हैं। हड़बड़ी में कोई साड़ी बाँधे बिना हाथ से थामे, तो कोई एक ही आँख में काजल लगाये, तो कोई आधा महावर लगाये राम के दर्शनार्थ भवनों पर जा खड़ी होती हैं। पूर्वाञ्चल की संस्कृति, कुल देवताओं की पूजाकर दुलहिनें पालकी से उतारी जा रही हैं। अक्षतयुक्त बाँस को डोलची में पैर रखकर लक्ष्मी स्वरूपा वहुएँ घर में पाँव रखती हैं (१०२)। सीता-राम का निरन्तर वर्धमान स्नेह—

प्रियतमहृदि सीता स्नेहमुत्पादयन्ती।
समुदलसदभिख्यां मालिनी मालिनीव ॥ (७।१०५)

सीता-राम प्रसन्न हैं।

अष्टम सर्ग की कथा लम्बी पर काव्य-कौशल से परिपूर्ण है। कैकय नरेश के पुत्र युधाजित् के साथ भरत-शत्रुघ्न अपने ननिहाल चले जाते हैं। राजा को अपने वार्द्धक्य का बोध होता है, चतुर्थाश्रम की चिन्ता होती है। राम सर्वगुण सम्पन्न हैं, ज्येष्ठ हैं, उन्हें राज्य देने हेतु गुरु से मन्त्रणा करते है। गुरु ने प्रजा की सम्मति जानने का निर्देश किया है। अभिषेक की तैयारी होती है। वशिष्ठ राम को शिक्षा देकर अभिषेक के लिये सज्जित करते हैं। राम ने यह शुभ संवाद माता कौशल्या को सुनाया है। कुब्जा की दुष्टमति और कैकेयी दो प्रसिद्ध वरदान मांग लेती है। राम-सीता-लक्ष्मण वन की ओर प्रस्थान करते हैं। पुरवासी उनके पीछे लग जाते हैं। राम ने सुमन्त को लौटा दिया है। गुह से मिलन, गंगासंतरण, भरद्वाज मिलन, यमुना पार जाना, चित्रकूट, दशरथ का महाप्रयाण, भरत का ननिहाल से आगमन, उनका प्रलाप, माँ के प्रति आक्रोश, रामनिवर्तन हेतु वनगमन का विचार गुरु के आदेश से पितृक्रिया, सपरिकर वनगमन, गुहभेट, भरद्वाज का आतिथ्य राम-भरत की भेंट, कैकेयी द्वारा राम से अपने अपराध की क्षमायाचना राम-भरत संवाद, वशिष्ठ मुनि का निर्णय, भरत का सशर्त अयोध्या लौटना और नन्दिग्राम की सम्पूर्ण कथा को कवि ने यहाँ इस ढंग से निबन्धित किया है कि निश्चय ही हमें वाल्मीकि और कालिदास से इस महाकाव्य की कविता अधिक सारवती, रसवती, गुणवती और लावण्यवती प्रतीत होती है। राज्य-अभिषेक प्रदान के पूर्व राजादशरथ द्वारा वर्णित रामगुण रामायणानुसारी होने पर भी अधिक सारगर्भित है। (१८-२६)। राजतन्त्र में प्रजा को ही नीति निर्धारक होना चाहिए-

राज्यतन्त्रे परं राजन् नीतिनिर्धारिका प्रजाः

राम वन को चले हैं, उत्प्रेक्षा देखने योग्य है—

किमयं करुणः साक्षाद्दयाधर्मविमिश्रितः ।
शक्त्यास्त्रसंयुतो वीरो गच्छेद्वा मूर्तिमानिव ॥

सीता की स्थिति—

ईषद्दूरं गता श्रान्ता सीता जिज्ञासुरध्वनि ।
प्रथमं जनयामास रामवक्त्रेऽश्रुविप्रुषः ॥ (८।६६)

जानकी हरण, राजशेखर और तुलसीदास का प्रभाव होने पर भी यहाँ कुन्तक द्वारा उठाये गये दोषों का परिमार्जन है। ग्रामवासियों का राजा और राजनीति को धिक्कारना, निषाद का माहत्म्य, गुह की व्युत्पत्ति माता के प्रति भरत द्वारा किये गये कटुवाक् प्रयोग, राम-भरत संवाद आदि वृत्तान्त बड़े ही मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किये गये हैं। कवि की एक उक्ति देखिये—

प्रकृतेः प्रत्यये लुप्ते जाते दशरथात्यये।
परस्परममन्येतामुभौ प्रत्ययलक्षणम् ॥ (८।१४८)

वाच्य-व्यङ्ग्य की रमणीयता, व्याकरण सिद्धान्त का प्रतिपादन अपूर्व ही हो गया है। इस सर्ग की लम्बी कथा को सीमित शब्दों में कवि ने ऐसा संवारा है कि कहीं भी प्रवाह भङ्ग का भय नहीं है।

नवम सर्ग का प्रारम्भ, राम ने चित्रकूट त्याग दिया है। वन में आगे बढ़ चले हैं। सीता का रामानुगमन देखिये—

पादचिह्ने पुनः पत्युः क्षिपन्ती प्रान्तरे पदम्। ९।१०

अत्रि के आश्रम में पधारे हैं। अनसूया ने आशीर्वाद दिया। अम्लान-वस्त्राभरण और अङ्गराग सीता को उन्होंने भेंट किये हैं। ऋषियों की राक्षस-जन्य व्यथा को राम ने सुना है। दण्डकारण्य की ओर चल पड़े है। विराध का वध किया है। शरभङ्ग ऋषि से भेंट हुई है। रामदर्शन की ही वे प्रतीक्षा में थे। अपनी तपस्याओं का फल देकर वह सदेव सनातन लोक को जाते हैं। सुतीक्ष्ण मुनि के आश्रम का मार्ग बताकर अग्नि-प्रवेश करते हैं। मुनियों के दुःखों को सुनते हुए राम सुतीक्ष्ण के पास पहुँच गये हैं। सुतीक्ष्ण के मुख से राम की प्रशंसा—

क्व दुःखं वनवासस्य दुर्गवाससुखं च क्व।
यत्नः शिक्षयितुं तेऽस्ति, महतामेकरूपताम् ॥ ।३३

राम का स्वागत, मुनि की समाधि, राघव कर स्पर्श से प्रतिबोध। राम ने सायंकाल मुनि से अपनी भावी नीति के बारे में पूछा है। ध्यानस्थ मुनि ने सब कुछ दर्शन करके बताया है कि क्षत्रियों का परशुराम ने दक्षिणापथ से सफाया कर दिया था। यही कारण है कि राक्षस यहाँ

बढ़ गये हैं। महान् गुरु अगस्त्य प्रयासरत हैं कि धरती के इस भाग से धर्म का लोप न होने पाये। उन्होंने बातापी और इल्वल का अन्त किया है। और

मर्यादामनतिक्रम्यावति धर्मं सनातनम्।
अभ्युदयाय लोकेषु स वर्णाश्रमपद्धतिम्॥

वह सनातन धर्म की रक्षा में लगे हैं। आप भी जनस्थान में रहें और अपना अभीष्ट सम्पादन करें। दूसरे दिन प्रातः वहाँ से चलकर राम ने अग्निजिह्व मुनि का दर्शन किया है, उनसे अगस्त्याश्रम का रास्ता जाना है। चलते हुए रास्ते का प्राकृतिक चित्रण अपूर्व है, वैसे ही जैसे उपर्युक्त राजनीति विषयक वृत्तान्तों की कल्पना। भिल्लों-शबरों ने राम का स्वागत किया है। गाँव-गाँव से लोगों का आना। स्वभाव सुन्दर सहज ग्राम्य वनिताओं द्वारा वृत्तान्त जानने की उत्कण्ठा, सीता का भ्रूसङ्केत, अगस्त्याश्रम वर्णन, सबका सब वक्रोक्तिपूर्ण, मसृणच्छाय, नियत ही मनोहारी है। अगस्त्याश्रम के नानाविध तपस्वी अनायास रामायण की स्मृति कराते हैं। अगस्त्याश्रम में राम का स्वागत हुआ है। सन्ध्या वर्णन, सान्ध्यविधि के अनन्तर राम-मुनि का मिलन, वार्ता, वार्ताक्रम में दक्षिणापथ में अगस्त्य के रहने का कारण जानना, भारत भू की कल्पना और उत्तर-दक्षिण का विभाग, विन्ध्य का बढ़ना, अगस्त्य का दक्षिण में आना, ब्रह्मक्षत्र की उपयोगिता, विश्वामित्र-अगस्त्य का राक्षस विनाशार्थ प्रयास, राक्षसों के वधहेतु अगस्त्य द्वारा राम को दिव्यास्त्र प्रदान, पञ्चवटी में रहने का निर्देश और भावी राजनीति की मन्त्रणा आदि वृत्तान्तों को कवि ने अपनी सूझ-बूझ और नयी कल्पनाओं से मण्डित करके उपस्थापित किया है, निश्चय ही सराहनीय है।

दशम सर्ग अपेक्षाकृत लम्बा है, पर प्राकृतिक चित्रण, राजनीतिक गुत्थियों और नवनवार्थ प्रदायिनी कल्पनाओं से मण्डित और नितान्त मनोहारी है। यहाँ मैं मात्र कथा निर्देश और विशिष्ट स्थलों का सङ्केत करना चाहूंगा। पञ्चवटी का सुरम्य वर्णन अनायास ही भवभूति का स्मरण करा जाता है (१०।२-६)। जटायु से भेट होती है, परिचय होता है। पञ्चवटी निवास, लक्ष्मण द्वारा निर्मित पर्णकुटी में सुखी राम का दर्शन—

राज्यं नवा क्वाचन राजधानी सभा न सभ्या अधिपो न मानी।
ख्यातीकिनी नापि मुधाभिवाद स्तथापि सौख्याय बभूव देशः॥

पञ्चवटी निवास में चार मास का वर्षा वर्णन (२७-४६) फिर शरद् का शृङ्गार(४८-५६)। शरद् में ही कदाचित् अपराह्ण में जयन्त की घटना का कविने सुन्दर चित्रण किया है। राम सोचते हैं, बारहवर्ष वनवासके बीत गये हैं, अब कुछ करना चाहिए (७०), छाया सीता की कल्पना, वसन्तागम (७८-८०), शूर्पणखा आगमन, उसके हाव-भाव विकृत प्रणय निवेदन, राम लक्ष्मण की क्रीडा, शूर्पणखा की अवज्ञा, नाक-कानच्छेद, दण्डकाधिप खर से शूर्पणखा की गुहार (१०१-१०६) लक्ष्मण समेत सीता का गुफा में सम्प्रेषण, राक्षसों की चढ़ाई और राम द्वारा उनका संहार के अनन्तर शूर्पणखा का रावण के यहाँ जाना (११३-११८), कल्पित वृत्तान्त निवेदन, राजनीतिक असावधानी के प्रति जागरूक होने का उपदेश, सीता हरण की सलाह, शूर्पणखा के प्रति रावण के विचार सीता हरण का रावण का निश्चय और राजनीतिक विमर्श (१६६), रावण-मारीच मिलन, दोनों का परस्पर संभाषण, कवि द्वारा राजनीति विषयक नयी कल्पनाओं का सन्निबन्धन (१७६-१८४) फिर दोनों की दूर तक की वार्ता, मारीच का कपट मृग बनना, मृग की सुन्दर चेष्टायें, सीता विमोह, राम से प्रार्थना, लक्ष्मण द्वारा रोका जाना, राम का जाना और मृग द्वारा दूर तक खींच ले जाना, सारे वृत्तान्तों में कवि की कल्पनाओं का आस्वाद लिया जा सकता है।

अन्त में कपट मृग के कपट व्याहार को सुनकर सीता व्यथित होती हैं। लक्ष्मण को राम की रक्षार्थ भेजना चाहती हैं, राम के अनुभाव का वर्णन कर, लक्ष्मण रामाज्ञा का पालन ही श्रेयस्कर बतलाते हैं। सीता पुनः याचना करती हैं, लक्ष्मण पुनः निषेध करते हैं। अन्ततः सीता क्रुद्ध होती हैं और नारी सुलभ आक्रोश समन्वित आक्षेप कर बैठती हैं। विवश लक्ष्मण रेखा खींचकर बाहर आने को मनाकर चले जाते हैं। साधुवेश में रावण का आगमन, सीता का वृत्त लाँघकर बाहर आकर भिक्षा देना, रावण द्वारा उनका अपहरण, राम-लक्ष्मण-जटायु के नामों को लेकर सीता की आर्तपुकार, जटायु का आना, जटायु-रावण युद्ध, जटायु का पक्षच्छेद, जटायु द्वारा यानभङ्ग कर दिये

आने के कारण सीता को भुजाओं में लेकर रावण का आकाश मार्ग से प्रयाण, वृक्षों, लताओं, गुल्मों आदि से सीता का करुणाक्रन्द निवेदन भूषणादि का प्रक्षेप, अशोक वाटिका में पहुँचना, राम-लक्ष्मण की भेंट, लक्ष्मण के आने से राम की नाराजगी, लक्ष्मण का वृत्तान्त निवेदन, आश्रम लौटना, सीता का न मिलना, राम विलाप, (३२६-२७) पशु, पक्षी, लता, गुल्म सभी से सीता के विषय में विरही राम का पूँछना, एक मृग छौना का वस्त्र पकड़ कर उन्हें जटायु के पास ले जाने का स्वभाव वर्णन, जटायुदर्शन, संवाद, जटायु का प्राण त्याग, उसकी श्राद्ध क्रिया, राम का लक्ष्मण से प्रलाप, लक्ष्मण कृत सान्त्वना, इसी प्रकार विलपते और लक्ष्मण द्वारा सम्बोधित होते हुए राम दक्षिण की ओर प्रस्थान करते हैं। काव्य का यह सम्पूर्ण सर्ग अनेक स्वभाविक प्राकृतिक वर्णनों, राजनीति की चर्चाओं और राम के करुण विलाप के कारण परम रम्य है।

एकादश सर्ग की दो विशिष्ट कल्पनायें हैं। प्रथम तो यह है कि वर्षावास में विरही राम ने वायु के द्वारा सीता को सन्देश भेजा है प्रबन्ध में एक नया खण्ड काव्य 'वायुदूत' यहाँ राघवेन्द्र चरितम् की सबसे बड़ी विभूति है। इस सर्ग का दूसरा विशेष वृत्तान्त यह है कि सीतान्वेषण वृत्तान्त को लङ्का से लौटे हनुमान् मुख से कराया गया है जबकि अन्यत्र ऐसा देखने को नहीं मिलता। इन दो वृत्तों के अतिरिक्त आसर्ग कथानक की रमणीयता, हनुमत् मिलन और बालि सन्दर्भ में शास्त्रीय चर्चा तथा प्राकृतिक चित्रण दर्शनीय हैं। इस सर्ग के कथावृत्त का क्रम इस प्रकार है।

सीता वियोग में राम के लिये सब कुछ विपरीत हो गया है। कुसुमित कानन अग्नि का कार्य कर रहा है, मेघ, वर्षा, चन्द-चाँदनी कुछ भी अच्छा नहीं लगता, जागते हुए रातें बिता देते हैं, बिना भोजन पानी के सो जाते हैं। अत्यन्त सुन्दर और मनोवैज्ञानिक तथा कवित्व-पूर्ण चित्र खींचा है कवि ने राम का (११।१-११)। अयोमुखी निशाचरी लक्ष्मण का सहसा आलिङ्गन कर लेती है (१२), नाक, कान, स्तन, काट लिये जाते हैं। कबन्ध से भेंट, उसका उद्धार, स्थूलशिरा मुनि का शाप सीताहरण का वृत्तान्त कि रावण ने बिलखती सीता हरली है और अन्त

में हनुमान्-सुग्रीव की सहायता का निर्देश कर उसका अन्तर्हित होने का वृत्तान्त प्रसन्न एवं सपाट भाषा में वर्णित है। मतङ्गाश्रम की ओर बढ़ते राम शबरी के आश्रम में पहुँचते हैं, आश्रम की शोभा, शबरी द्वारा राम की पहचान और अर्चा, शबरी से मतङ्ग महिमा, नामरूप वर्णन तथा उसका वह्निप्रवेश का वृत्तान्त अन्य काव्यकारों से वृत्ततः समान होने पर भी वर्णन पद्धति की गरिमा की दृष्टि से प्रकृत काव्य में अधिक सारगर्भित है। पम्पा की ओर प्रस्थान, पम्पा की शोभा और उसे देखकर राम के शोक का पुनरुद्दीपन करुण विलाप- प्रलाप, लक्ष्मणकृत सान्त्वना चरों से सूचित सुग्रीव द्वारा प्रेषित ब्राह्मणरूप हनुमान् से भेंट, वार्तालाप हनुमान् का स्व स्वरूप धारण, सुग्रीव-बालिवृत्तान्त निवेदन, हनुमत्सह सुग्रीव पार्श्वगमन, अग्निसाक्ष्य मैत्री, दुन्दुभि-ताल भेदन, सीता भूषण प्रदान, सुग्रीव-बालि का गदायुद्ध, सुग्रीव का पलायन, पुनः प्रयाण, तारा द्वारा बालि का निरोध, बालि द्वारा उसके उपदेश की अवज्ञा, राम बाण से उसका बध, बालि द्वारा भारत की परम्पराओं और नीतियों के विरुद्ध राम द्वारा बध के लिये उपालम्भ (१३५) उसका प्रश्न, राम द्वारा समाधान, बालि का पश्चात्ताप (१४७-४८), बालि का महाप्रयाण, सुग्रीव का राज्याभिषेक, प्रस्रवण गिरि पर राम का वर्षावास का निश्चय समग्र वृत्त एक से दूसरे परस्पर इस प्रकार प्रथित और समावर्जक हैं कि कौन अधिक रमणीय है निर्णय कर पाना कठिन हो जाता है।

इसी सर्ग के श्लोक १६?-१८८ तक का वायुदूत कालिदास के मेघ-दूत की स्मृति दिलाता है। वर्षावास के अनन्तर, शरदागम, सुग्रीव प्रबोध, सीतान्वेषणार्थ बानरों का जाना और लौटना काव्य का विषय है। ध्यातव्य है कि बानरों के लौट आने पर अन्वेषण का वृत्तान्त यहाँ राम हनुमान् के मुख से सुनते हैं, यह भी कवि की अपनी कल्पना है। राघवेन्द्र चरितम् का प्रत्येक वृत्त मनोहारी है। इसलिये उनका परिगणन भी समीचीन है। सबसे बड़ी विशेषता काव्य की इसमें भी है कि प्रत्येक सर्गों में वृत्तानुसारी नानाच्छन्दों का प्रयोग है।

हनुमान् ने सीता की खोज के वृत्तान्त के प्रसङ्ग में स्वयंप्रभा वृत्तान्त, संपाति भेंट, समुद्रतट पर पहुँचना, समुद्र तरण, सुरसा-मैनाक वृत्तान्त, छायाग्राह लङ्किनी बध, का सुन्दर विवेचन किया है। लङ्का

कितनी योजना समन्वित वसी है इसका एक सुन्दर चित्र कवि ने खींचा है (२ ०-२३८)। लघुरूप में हनुमान् द्वारा लङ्का विचरण, भक्त विभीषण का गृह, उससे भेंट, वार्ता, विभीषण की दुर्दशा का चित्र, सीतासङ्केत, अशोक के नीचे सीता दर्शन (२५७) सीता की करुणादशा का वर्णन, रावण का आगमन, स्वीकार हेतु याचना, सीताकृत भर्त्सना अवधि देकर रावण का जाना, राक्षसियों द्वारा सीता-सन्त्रास, त्रिजटा की सान्त्वना, शून्य पाकर हनुमान् द्वारा रामवृत्त निवेदन, लोकभाषा का प्रयोग, सीता द्वारा अशोक से दुःखशमन की याचना, मुद्रिका दान, हनुमत्प्राकट्य, रामकथा निवेदन (२७५), सन्देश प्रदान (२८६), राम के आने, रावण वध का सन्देश, वानरों से रावण विनाश पर सीता की आशंका, हनुमान् का घोर रूप प्रदर्शन, राक्षसों का आना, राजनीति के अनुसार कुछ करने का हनुमान् का संकल्प (३ ७), रावण की शक्ति को जानने की उनकी जिज्ञासा, घूम-घूम कर लङ्का के दुर्ग-बल का निरीक्षण फिर पश्चिम उद्यान में उपद्रव (३२३), आरक्षियों के उद्यान में आने पर दक्षिण उद्यान में गमन, अक्षय कुमार का वध, मेघनाद द्वारा उनका बाँधा जाना, आदि प्रत्येक वृत्तान्तों में अभिनव कल्पनायें जुड़ी हैं।

राजसभा में रावण-हनुमान के प्रश्न-प्रतिप्रश्न प्रेक्षणीय हैं। हनुमान् रावण को सुग्रीव का सन्देश देते हैं। रावण सुग्रीव की गलतियों पर प्रहार करता है (३५६)। उसका आत्मविकत्थन, राम की निन्दा करना हनुमान् का सुग्रीव को प्रशंसा, रावण की भर्त्सना और हनुमान् को मारने के आदेश पर विभीषण का आगमन प्रसाद शैली में वर्णित है। दूत वध को नीति विरुद्ध बताये जाने पर पूँछ को जलाने का विचार हनुमान् द्वारा मनही मन रावण के बल-बुद्धि की प्रशंसा और उसमें ब्रह्म क्षत्र दोनों का एकत्र समागम देखकर आश्चर्य करना सारी कल्पनाओं में कवि का सहज व्यक्तित्व दर्शनीय है। लङ्कादहन, पुनः सीता के पास हनुमान् का आगमन, माता द्वारा चूडामणि अभिज्ञान का प्रदान, सीता सन्देश तथा दो मास की अवधि तक ही मिलने का सन्देश देना, हनुमान् का लौटना, भगवान् का चूडामणि लेना, सप्रेम हनुमान् को गले लगाना और सदा-सदा के लिये अपने को हनुमान् का ऋणी घोषित करना, कथा के साथ मञ्जुल एकादश सर्ग का अवसान होता है। पुनः कहना पड़ता है कि इस सर्ग के अनेकों स्थल इतने मार्मिक हैं कि वहाँ तक पूर्व कवियों की कोई गति ही नहीं रही है।

राघवेन्द्रचरितम् के द्वादश सर्ग की कथा, जिसमें राम द्वारा भगवती की आराधना का चित्रण है, देवीभागवत से प्रभावित होने पर भी कवि की मौलिक कल्पनाओं के कारण अतिनवीन तथा सद्योजात प्रतीत होती है। कितना बढ़िया चित्र है। दर्शकर्म समाप्त कर भगवान् राम शिला पर विराज रहें हैं। भगवान् भास्कर पश्चिमाशा में हैं। अकस्मात् एक तेजोपुञ्ज आकाश में दिखता है। क्रमशः विभावितकृति नारद की प्रत्यभिज्ञा हुई (१२।१-७)। माघ में नारद आकाश से उतरे हैं, पर दोनों के वर्णन में महान् अन्तर है। निश्चय ही प्रकृत काव्य का कवि यहाँ माघ से बाजी मार ले गया है। शिष्टाचार के अनन्तर पूछने पर मुनि ने अपने आगमन का कारण बताया है। भगवन् आप मेरे शाप को अङ्गीकार करके, जय-विजय अथवा भगवती पार्वती के कारण यह दुःसह वियोग भोग रहे हैं, मुझसे सहा नहीं जाता। आप विलुप्त मनु-व्यवस्था की स्थापना में लगे हैं, सारे वृत्तान्त मुझे ज्ञात हैं। पर, आपको विजय की प्राप्ति हेतु कुछ विशेष करना होगा। परमेश्वरी की इच्छा से ही देव-दानव सभी की सृष्टि और संहार होता है। वही सीता है। तुम्हारे रूप में वही कुम्भकर्ण-रावण का विनाश चाहती है। आप उसी की पूजा करें। कल से नवरात्र प्रारम्भ हो रहा है (३८-४१) महाष्टमी की निशा पूजा करो, एक-एक नाम पर सहस्र पुष्प चढ़ाओ। नारद के निदेश में राम ने भुवनेश्वरी की सविधि पूजा प्रारम्भ की है। एक सहस्र पुष्प कमल के अर्पित किये जाने हैं। अन्त में एक पुष्प कम पड़ जाता है। राम को स्मरण है, बचपन में मातायें उन्हें राजीव नेत्र कहती थीं, तो उनके नयन ही कमल हैं। फिर क्या था, राम ज्यों ही खड्ग से अपना नेत्र अर्पण करना चाहते हैं, सामने साक्षात् दुर्गा खड़ी दिखती हैं (४७)। माँ की वाणी-तुम्हारी परीक्षा के लिये मैंने ही एक पुष्प चुरा लिये, प्रसन्न हूँ वर मांगो। साक्षात् भुवनेश्वरी को देखकर राम अवाक् हैं। माँ, तू तो मेरे भाव जानती है। प्रसन्न माँ ने आशीर्वाद दिया है—

उन्मूल्य शत्रुं विजयस्व युद्धे पुनः पवित्रामधिगम्य सीताम्।
पुरीमयोध्यामनुजेन साकं गत्वा चिरं राज्यसुखं लभस्व॥

प्रसन्न राम प्रणाम करते हैं कि विजया देवी अन्तर्हित हो जाती हैं। राम ने मुनि नारद को प्रणाम कर उन्हें विसर्जित किया और सेनापति

सुग्रीव को सैन्यप्रयाण का आदेश दिया है। सर्ग छोटा है, पर भगवती की महिमा को कवित्व के उत्कर्ष से इतना मण्डित किया गया है कि पौराणिक वृत्तों से सर्वथा नवीन और मौलिकता का आभास कराता है।

त्रयोदश सर्ग लङ्काभियान से सम्बन्धित है। समस्त प्रकरण रामायण से है, परन्तु कवि ने उन्हें इस प्रकार कल्पना मण्डित किया है कि कहीं भी यह आभास नहीं होता कि यह पुरावृत्त है। काव्य में परस्पर की वार्ता, घटनायें और राजनीति विषयक चर्चायें आपस में वैसी ही जुटी लगती हैं जैसे नक्षत्रमाला की लड़ी। सुग्रीव के सेनापतित्व में विजयादशमी को राम ने ससैन्य प्रस्थान किया है। यहाँ सैन्यविभाग की परिकल्पना सर्वथा नवीन प्रतीत होती है। राम ने सुग्रीव से आशंका व्यक्त की है कि शत्रु की शस्त्रसज्ज और प्रशिक्षित सेना से यह निरायुध अप्रशिक्षित सेना कैसे लोहा लेगी? सुग्रीव ने सविस्तार बताया है कि उत्साह ही विजय का साधन है अन्य उपकरण मात्र वह हमारे साथ है (१६)। हनुमान् के कन्धे पर समारूढ़ दोनों भाई चले जा रहें हैं। यहाँ कवि को अवसर मिला है, भारत के दक्षिणाञ्चल के भूभागों, वनों, पर्वतों, नदियों आदि की प्राकृतिक सुषमा का वर्णन करने का। भारत के दक्षिण प्रदेश की लाल धरती, नारियल के कुञ्ज, आम्रवण, धानों की कटाई और बोवाई का दृश्य दर्शनीय है। नल-नील को आगे भेजा जा चुका है। यहाँ भी कवि सेना के नियमों का ध्यान रखा है। सह्याद्रि पर पहुँच गये हैं, अब एक बार फिर स्वभाव वर्णन का अवसर-तमिल प्रदेश की सुन्दर नारियों, वहाँ की धरा, मलय स्पर्श और सायंकाल समुद्रतट पर पहुँचने का मनोरम वर्णन है। समुद्र तट पर राम की मन्त्रणा चल रही है तो लङ्का में रावण अपनी मन्त्रि-परिषद् में विचाररत है। प्रहस्त प्रभृति विरोध करने की सलाह देते हैं पर विभीषण उनका विरोध करता है (५४-६५)। कुम्भकर्ण रावण के कृत्यों की भर्त्सना करता है (६८-७२)। महापार्श्व का विचार है कि सीता को बलात् समर्पित करा दिया जाय। विभीषण पुनः (७८-७६) अनीति का विरोध करता है। मेघनाद न केवल विभीषण का विरोध करता है, उसे दुर्वचनों से भी पीडित करता है (८१-८७)। विभीषण सविस्तार उसके बचपने का विरोध कर, लङ्का के विपरीत समय की आशङ्का व्यक्त कर सन्धि में ही भलाई की बात देखता है। रावण क्रुद्ध

होकर विभीषण को कुल नाशक बताते हुए यानासन द्वैधीभाव आदि का विवेचन कर युद्ध का समर्थन करता है (६७-१२१)। विभीषण हिरण्याक्ष प्रभृति का उदाहरण देते हुए सीता लौटाने और लङ्का को सुरक्षित बचा लेने का ही आग्रह करता है। रावण के पुनः बन्धुविरोधी कहकर भर्त्सित करने और लङ्का छोड़ देने के आदेश पर विभीषण अपने चार सचिवों समेत यह कह कर चल देता है कि तुम्हारा भला नहीं होगा, तुम प्रज्ञापराध कर रहे हो (१२२-२८)।

विभीषण राम की शरण में चल पड़ा है, वितर्कों से भरा है कि राम उन्हें अपनायेंगे या नहीं ? वानरों ने विभीषण के आने की सूचना दी है, सचिवों ने निग्रह ही श्रेयस्कर माना। भगवान् हनुमान् से जानना चाहते हैं। हनुमान् ने नीति की सविस्तार चर्चा कर विभीषण द्वारा लङ्का में किये गये सहयोग का उदाहरण देते हुए विभीषण को अङ्गीकार करने की सलाह दी है (१४२-:६१)। भगवान् ने पैरों पर गिरे विभीषण को उठाकर गले लगाया है, अर्घासन पर बिठाया है, लङ्का का राज्य दे दिया है और समुद्र पार जाने की विधि उससे पूछी है। विभीषणने सयुक्ति विचारकर शिव की आराधना कर समुद्र से मार्गया-चना का प्रस्ताव किया। तीन दिनों की याचना और अन्त में क्रुद्ध राम के धनुरारोप पर समुद्र का सोपहार आगमन, सेतु बनाने का निवेदन वर्णन के अनन्तर भगवान् द्वारा शिवलिङ्ग की स्थापना अर्चा और सात श्लोकों (१७८-१८४) में उनकी प्रार्थना का सुन्दर निरूपण किया गया है। सेना लङ्का में पहुँच गयी है। इस प्रकार नानाच्छन्दों, भावों, राजनीतिक मन्त्रणाओं, आरोप-प्रत्यारोप, विरोध-मर्षण, प्राकृतिक दृश्यों से भरा यह सर्ग कवि की सालङ्कार, रसावह कल्पनाओं से सहज हृद्य और नवकल्प लगता है।

चौदहवाँ सर्ग युद्ध और राक्षस संहार का है। इस सर्ग की एक-मात्र मौलिकता है वैद्य सुषेण का वानर सेना में होना न कि लङ्का से लाया जाना जैसा कि अन्य स्रोतों में मिलता है। यह तथ्य उचित भी है क्योंकि प्रत्येक वाहिनी का एक मेडिकल कोर तो होता ही है। इस प्रकार यहाँ कवि की सूझ-बूझ की प्रशंसा करनी पड़ेगी। इस सर्ग की

दूसरी विशेषता है विस्तृत युद्ध प्रकरण को संक्षेप में लेना और अपनी मजी हुई भाषा से इतना प्रभावित कर देना कि प्रत्येक उक्तियाँ अन्तस्तत्त्वगर्भित प्रकरणानुकूल रससमर्पक बनी हैं।

लङ्का चारों ओर से घेर ली गयी है। राम सुवेल पर्वत से लङ्का की भौगोलिक स्थिति का निरीक्षण कर रहे हैं, रावण अपने स्कन्धावार का। दोनों घटनायें कविकल्पना की ही उपज है। रावण के चमकते हुए मुकुट को विभीषण की पहचान पर राम ने अपने बाणों से धराशायी करके राक्षसों के मन में भयसञ्चार किया है। राम ने सोचा है—

क्वचिद्युद्धं वरं नोक्तं साम्ना सिद्ध्येत् क्रिया यदि।
तदर्थं सन्धिसन्देशः प्रेषणीयो मयाऽधुना॥१२।

और अङ्गद के दूत रूप में जाने का तर्क, जाकर रावण की संसद में में पटूक्तिभारभरितराजनीतिविषयकनिगूढ वार्ता में कवि की सहज प्रतिभा की झलक मिलती है।

दोनों ओर से सेनायें आमने-सामने हैं। मायावी रावण, माया से उत्पादित रक्तस्रवित राम के सिर को लेकर जानकी के समक्ष उपस्थित हुआ है और आत्मसमर्पण की बात करता है, पर इसी बीच प्रहस्त का सन्देश पाकर वह चला जाता है। त्रिजटा ने भीत सीता को ढाढस बंधाया है। घोर युद्ध प्रारम्भ हो गया है। मेघनाद ने शर-प्रहार से वानरी सेना को व्यथित कर राम-लक्ष्मण दोनों भाइयों को नागपाश में बाँध दिया है। हनुमान् ने गरुड को लाकर बन्धन से उन्हें मुक्ति दिलाई है। धूम्राक्ष, अकम्पन, वज्रदंष्ट्र, प्रहस्त, कुम्भकर्ण, नरान्तक, महोदर, देवान्तक, त्रिशिरा, महापार्श्व, अतिकाय, प्रजङ्घ कम्पक, शोणिताक्ष, यूपाक्ष, कुम्भ, निकुम्भ, मकराक्ष प्रभृति प्रधान राक्षस सेना नायकों के वध के बाद पुनः मेघनाद ने युद्ध का भार संभाला है। लक्ष्मण के साथ भयानक युद्ध होता है और शक्ति से उनको मूर्छित कर देता है। राम की सेना में वर्तमान वैद्य सुषेण परीक्षा कर सञ्जीवनी औषधि लाने का निर्देश करते हैं और हनुमान् समय पर लेकर उपस्थित हो जाते हैं। जान-बूझकर यहाँ कवि ने भरत-हनुमान् के भेंट के वृत्तान्त

को अनदेखा कर दिया है। इधर निकुम्भिला की पूजा में व्यग्र मेघनाद को वानरों ने प्रपीडित कर दिया है। पुनः उसका लक्ष्मण से घोर युद्ध और निधन प्रेक्ष्य है (११०)। मन्दोदरी विलाप, रावण की भर्त्सना और विरूपाक्ष वध प्रकरण प्रेक्षणीय है (१११-१२३)।

राम-रावण युद्ध प्रारम्भ है। रावण ने विभीषण पर शक्ति चलाई, राम ने स्वयं झेल लिया है और बाणों से मारकर रावण को रथ में मूर्छित कर दिया, सारथी उसे लङ्का ले गया। अगस्त्य मुनि ने आकर आदित्य विषयक गुह्यविद्या का उपदेश किया और प्रातःकाल राम ने भगवान् सूर्य की पूजा की। इन्द्र ने समातलि अपना रथ भेजा है। इधर राम चिन्तित हैं, चौदहवाँ वर्ष समाप्ति की ओर है। रात-दिन घोर युद्ध चल रहा है (१४०)। दोनों पक्षों में भयङ्कर शस्त्रास्त्रों के प्रयोग और उनका निवारण हो रहा है। अन्त में मातलि की सलाह पर भगवान् राम ने अगस्त्य प्रदत्त ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया और रावण का तेज राम में समा गया (१४३)। विभीषण और मन्दोदरी के विलाप प्रेक्षणीय हैं।

विभीषण का राज्याभिषेक होता है। मन्दोदरी द्वारा विभूषित सीता लायी जाती है। सीता की अग्नि परीक्षा और अग्निदेव द्वारा स्वयं प्रकट होकर सीता का समर्पण होता है। सेतु भङ्ग करके राम, लक्ष्मण सीता तथा सभी के साथ अयोध्या की ओर प्रयाण करते हैं—

सीतालक्ष्मणवानरादिसहितोऽयोध्यां प्रतस्थे प्रभुः ॥

पन्द्रहवें सर्ग में भगवान् राम अयोध्या लौटे हैं, अभिषेक हुआ है। राम राज्य, सीता निर्वासन, अश्वमेध यज्ञ, सीता का वाल्मीकि आश्रम से आना और फिर धरती में समा जाना आदि नाना वृत्तान्त निबन्धित हैं। लङ्का से लौटते राम द्वारा किये गये प्राकृतिक वर्णनों पर कालिदास का प्रभाव सुतरां परिलक्षित होता है। वैदेही के परित्याग पर कौशल्या का आत्मपरिदेवन नितरां मौलिक और व्यथित कर देने वाला है। सीता का सन्देश, लव-कुश का अभिक्षेप कवि की काव्यनिपुणता का का परिचायक है।

शब्देन्धन परिचालित पुष्पक से राम अयोध्या की ओर चल पड़े हैं। समुद्र को देखकर मुस्कराये हैं और रामेश्वर को प्रणाम निवेदन किया है। भारत मूर्ति शङ्कर के पैरों पर पड़ी कृष्णा नदी (८) की उत्प्रेक्षा

अतिनवीन और हृदयहारिणी है। इसी प्रकार भगवान् ने कावेरी, गोदावरी, पञ्चवटी, चित्रकूट को प्रणाम करके महर्षि अत्रि को प्रणाम (८) निवेदन कर प्रयाग में अवतरण किया है। त्रिवेणी में स्नान कर पितरों का (९) तर्पण किया और भरत के पास हनुमान् से सन्देश भेजवाया है। नगरी सजायी गयी है। राम का आगमन, परस्पर मिलन अयोध्या में आनन्द की लहर देखने योग्य है। सभी भाइयों ने मुनिवेष को छोड़ा, भाइयों समेत नगर प्रवेश, होता है। रामचन्द्रजी मन्थरा समेत सभी को प्रणाम (२० करते हैं। राज्याभिषेक हुआ है, वशिष्ठ पुरोहित पद पर आसीन किये गये हैं, हनुमान् को छोड़कर सभी सहायक ससत्कार विदा किये गये हैं। सभी ऋषि-मुनिगण प्रस्थान कर गये हैं।

प्रसिद्ध रामराज्य का वैभव बिखरा हुआ है। मातायें वन को प्रस्थान कर गयी हैं। रामराज्य में सभी स्वकर्म निरत हैं, रोगशोक-विवर्जित प्रसन्न हैं, साहित्य-सङ्गीत-कला की अभिवृद्धि हुई है। सीता दोहद व्याज से लोकापवाद भीरु राम ने सीता को लक्ष्मण के साथ वन में भेज दिया है। राम लक्ष्मण को प्रदत्त सीता का सन्देश परम मर्मवेधी है। कालिदास का अनुकरण होने पर भी कई अर्थों में मौलिक भी है (४५-४७)। वन में कौशल्या ने इस वृत्तान्त को सुना और उनका सकरुण विलाप कम मनोहारी नहीं है, साथ ही मौलिक भी है, मनोवैज्ञानिक तथा हृदय को पिघला देने वाला है (६०-६७)। आगे की कथा सीता विलाप, वाल्मीकि आगमन. आश्रम में लव-कुश का जन्म, उनकी शिक्षा सहज ढंग से कही गयी है। इधर दुःखी राम अपना जीवन त्याग देना चाहते हैं, पर विवश हैं। ब्राह्मणपुत्र की अकालमृत्यु, शम्बूकवध का दारुण कृत्य करते दुःखी राम का चित्र देखने योग्य है।

लवणासुर वध हेतु शत्रुघ्न का प्रयाण, राजसूय यज्ञ में अश्व का विमोचन, राजसभा में लवकुश का आगमन, रामकथा सुनाना, सीता परित्याग पर्यन्त कथा के उपरान्त एकाएक उन्हीं बालकों द्वारा यज्ञीयाश्व का अवरोध, राम का वहाँ जाना, बच्चों की धृष्टता, राम द्वारा जृम्भकास्त्र प्रयोग और बालकों द्वारा भी उसी का प्रयोग देखकर राम का चकित होना फिर वाल्मीकि का आगमन, बच्चों का निवारण, बच्चों

का राम पर उनके दुष्कृत्यों का आरोप आदि वृत्तान्त कितने सहज और प्रसन्न पदों में इस महाकाव्य में प्रस्तुत किये गये हैं, निश्चय ही विस्मयकारी है। अश्वमेध के अवभृथ स्नान पर वाल्मीकि सीता को लेकर स्वयं उपस्थित हैं और कहते हैं—

तपः प्रभावाधिगता मनीषा जानाति गङ्गाजलतोऽपि शुद्धाम् ।
वह्नौ विशुद्धामधिलंकमेनां कः शंकते रामपरीक्षिताञ्च ॥

सीता अपनी पवित्रता के लिये धरती माता को पुकारती हैं और कहती हैं कि यदि मैंने कभी भी राम से विहीन अन्य का चिन्तन तक नहीं किया है, तो माँ मुझे अपनी गोद में ले लो। धरती फटती है, सिंहासन समेत माता धरती आती हैं, सीता को अङ्क में लेकर समा जाती हैं। कितना हृदय विदारक रूप प्रस्तुत किया है कवि ने (११३-११८)।

कृतान्त की राम से एकान्त वार्ता हो रही है। दुर्वासा का आगमन होता है। प्रतिषिद्ध भी लक्ष्मण का प्रवेश और शर्त के अनुसार उन्हें धरती त्याग का आदेश मिलता है। लक्ष्मण का धरापरित्याग, राम की व्यथा प्रेक्षणीय है। कथा प्रसिद्ध होने पर भी मर्मस्पर्शी है—

किं प्राणदण्डेन स दण्डनीयः प्राणैः प्रियो यश्च सदा मतो मे ।
निजासवः पूर्वममुष्य दण्डात् त्याज्या मयैवं स विनिश्चिचाय ॥

षोडश सर्ग, जैसा कि पहले भी मैंने कहा है, इस महाकाव्य का प्राण है. सभी के अपने-अपने जीवन का आदर्श है, अपने आप में एक रामायण है। प्रत्येक प्राणी मनोविज्ञान के धरातल पर समानरूप से अपने अन्तिम क्षणों में अपने जीवन के समस्त कृत्यों का मूल्यङ्कन करता है, मैंने क्या-पाया ? क्या खोया ? राजा राम इससे अछूते कैसे रहते ? और फिर यह महाकवि भी तो आज उसी सन्त्रास में जी रहा है। इस सर्ग का छन्द, छन्दानुसारी पादसंरचना, पदानुसारी भावाभिव्यक्ति एक-एक अपने में अपूर्व और सहृदय हृदय का हार है। आइये हम राम की कृतियों का उन्हीं के शब्दों में लेखा-जोखा निहारें।

अपनी बुद्धि के अनुसार राज्य का सञ्चालन करते हुए राम ने अन्त में सोचना प्रारम्भ किया कि मैंने जीवन में क्या खोया और क्या पाया ? फिर तो बचपन से लेकर अन्त तक गवेषणा की है। अहा ! बचपन भी कितना सुहाना था, जहाँ न कोई दुःख, शोक चिन्ता केवल माँ की गोद ही सब कुछ, पर खेलते ही खेलते बीत गया। मेरी त्रुटियों पर भी माँ क्रुद्ध नहीं होती थी, हमारे हठ को वह कभी टालती नहीं थीं, अब वे बचपन के दिन कहाँ ? कवि की अपनी अनुभूति यहाँ प्रेक्ष्य है। इसी प्रकार राम ने बचपन के खेल, गुरुगृह में शिक्षा, पिता का सुख उनकी दक्षता, अपने विवाह, दशरथ का दिव्य राजसुख, पत्नियों के प्रति उनकी जागरूकता, केकयराज की गलत शर्त पर माता कैकेयी से उनका परिणय, कैकेयी का वरयाचन, राजा की द्विविधा, राजत्याग, लोगों के अपवाद कथन और उस पर राम की व्यथा और यह कि राज्य राज्यसुख, राजात्व अनेक परिणय का परिणाम, राजनीतिकी इतिकर्तव्यता, पितृस्नेह सब कुछ राम ने बचपन में भोग लिया चौथे आश्रम की योग्यता यौवन में ही प्राप्त कर ली। समय की विवशता देखकर राम ने कुछ भी सोचना ही बन्द कर दिय।

जंगल की ओर चले। सीता और लक्ष्मण से मैंने चलने को नहीं कहा वे साथ गये और अपने कर्मों का फल पाये। सोने का मृग होता कहाँ है, पर सीता मुग्ध हुई, मैंने भी मान लिया, सीता हरी गयी हठ के कारण रोकी नहीं जा सकी। मेरे भाई कितने सहृदय और सुकृती हैं कहना कठिन है। न लक्ष्मण से वन जाने को कहा न भरत से राजत्याग का, पर दोनों ने क्या कुछ नहीं किया, ससार जानता है। उर्मिला भी सीता के समान वन जा सकती थी, पर बड़े भाई की सेवा में कोई बाधा न हो इसलिये उसने लक्ष्मण का साथ नहीं लिया, उसका त्याग महान् है ? कोई जान सकता है ? छोटे भी गुह, पशु-पक्षी वृक्ष-गुल्म लताओं से लेकर जटायु, सुग्रीव, जाम्बवान्, अङ्गद सभी ने समबुद्धि मेरी सहायता की। राज्य छोड़ा, वन मे ऋषियों, मुनियों ने मुझे जो कुछ भी दिया क्या किसी राजा को सुलभ है ? अत्रि अनसूया और महर्षि अगस्त्य ने मेरा कितना उपकार किया ? दुर्भाग्य, झञ्झावात शूर्पणखा का आगमन, उसी में विरोध का बीज वपन, खरादि का वध सीताहरण, बालिवध का कुकृत्य, ब्राह्मण-प्रज्ञावान् रावण का वध,

लक्ष्मण की मूर्छा पर प्राप्त मर्मान्तक पीडा, कितना अनुशय झेला है राम ने।

राम के सारे कृत्यों में एक ही उपलब्धि रही हनुमान् की प्राप्ति जिसका ऋण वह उतार पाने में असमर्थ हैं। राम सोचते हैं। लङ्का से लौटकर राज्य पाया, पर वाह रे लोक, सब कुछ प्रजा को अर्पित कर दिया किन्तु विडम्बना, उसी लोक ने राम को क्षमा नहीं किया। सीता को निर्वासित किया। लोग कहते हैं राम ने ठीक नहीं किया, पर कभी किसी ने आकर यह बात मुझसे कही, मेरे दुःखों को समझा। शम्बूक बेचारे का बध करना पड़ा। लोग कुछ भी कहें मैंने यदि उत्कर्ष नहीं तो राज्य का अपकर्ष भी नहीं किया हैं। राजा राम के शासन में प्रजा ही प्रमाण है। अन्त में अपनी प्रजा का कारण सीता को छोड़ देने पर जनता ही मेरी सन्तान है। रावण को मारकर क्या पाप-पुण्य पाया यह भी नहीं जानता? पर किया। अब विष्णु की प्रसन्नता के लिये अश्वमेध यज्ञ किया और वाह रे कृतान्त, सीता मिली भी, पर नहीं मिली। सब कुछ तो लुट गया, लक्ष्मण भी नहीं रहा। राज्य तो पुत्रों को दे दिया है। इस धराधाम पर रहना ठीक नहीं। हनुमान् को नियुक्तकर भगवान् ने हनुमान् में ही अपने को विलीन कर लिया है। भक्त भगवान में विलीन होता है, परकिवि ने भगवान् को ही भक्त में विलीन करा दिया है। यह है कवित्व पं राज श्रीराजकिशोर मणि त्रिपाठी का। इस सर्ग का प्रत्येक श्लोक परस्परस्पर्द्धित्व गुण से युक्त है, सभी पठनीय, मननीय और ध्वनि गर्भित हैं।

त्यागोद्देशस्य नूनं कथित इह बुधैः प्राणदण्डेन तुल्य-
स्तस्मात्त्याजनत्या रघुवर चरणौ लक्ष्मणो जन्मभूमिम्।
एवंकृत्वा वियुक्तं दशरथतनयं भार्यया भ्रातृतश्च
सिद्धं चक्रे प्रभुत्वं स्थितिरपि पुनः स्वीयमस्मद्विधेषु॥

समग्र राघवेन्द्रचरितम् के आलोडन के अनन्तर निर्भ्रान्त रूप से यह कहा जा सकता है कि महाकाव्य के लक्षणों से परिपूर्ण यह एक उत्तम कोटि का महाकाव्य है। प्रख्यात चरित पर महाकाव्य लिखना, वह भी राम चरित को लेकर, एक कसौटी ही है कवि परीक्षा की।

परम सन्तोष है कि पंराज श्रीराजकिशोर मणि त्रिपाठी की प्रगल्भ लेखिनी और उनकी वैपश्चिती ने न केवल यहाँ रामचरित को चरमोत्कर्ष पर ही पहुँचाया है प्रत्युत भारतीय संस्कृति के उच्चादर्शों को भी अक्षुण्ण रखा है। प्रकृत महाकाव्य पूर्वाञ्चल और मिथिला के साथ-साथ समग्र भारत की संस्कृति को प्रतिबिम्बित करता है। प्रख्यात कथाओं को भी कवि ने इतनी निपुणता से अपनी कल्पनाओं की विच्छित्ति और कोमल पद सन्दर्भों से ऐसा जोड़ा है कि आनन्दवर्द्धन की यह सदुक्ति यहीं सार्थक प्रतीत होती है—

न सादः कर्तव्यः कविभिरनवद्ये स्वविषये।

ध्यान देने योग्य है कि कवि ने इस महाकाव्य में कई पूर्वमान्यतायें भी तोड़ी हैं। एक ही सर्ग में नानाच्छन्द, नानाजातियों की उपजाति काव्य में गर्भकाव्य, ऐसे निदर्शन हैं जो अन्य कवियों में सुलभ नहीं हैं। कथानक के अनुसार छन्दों का इतना मञ्जुल विनियोग तो अन्यत्र दुर्लभ है।

मानव पद्धति, वेद मर्यादा और भारतीयता के प्रति कवि सजग है। इसीलिये जो कोई भी सन्दर्भ हो, सर्वत्र इसका परिपालन देखा जाता है। सारवार्य प्रदेश, भारत यहाँ की पुण्यसलिला नदियाँ, पवित्र पर्वत-वन-सरोवर, भारतीय संस्कार, स्वागत तथा उसकी विधियाँ, आँचलिक भौगोलिक सुन्दरता-खान-पान-गीत-संगीत-आचार-परम्परा सभी का सम्यक् निर्वाह आकाव्य परिलक्षित होता है।

रामचरित करुण रस का दूसरा रूप ही है, राघवेन्द्र चरितम्, इसका अपवाद कैसे हो सकता है, अन्य रसों के अतिरिक्त यहाँ भक्ति और वात्सल्य रस की भी निर्झरिणी प्रवाहित है। वीर रस में परम्परा प्राप्त ओजव्यञ्जक वर्णों की कमी का कारण है कवि का सपाट वर्णन जो कभी वाल्मीकि तथा कभी व्यास का अनुसरण करता प्रतीत होता है। शृङ्गार में विप्रलम्भ को व्यञ्जित करने में कवि स्वभावतः अधिक समर्थ हुआ है। संयोग कम मनोहारी नहीं है।

राघवेन्द्र चरितम् में प्रकृति स्वयं मानवी होकर प्रकट होती है, तभी तो मिथिला राम के आगमन में कम्पित होती है, भयत्रस्त होती

है, स्वागत करती है और अपनी पुत्री का समर्पण करती है। वनपथ, वन, तन्निष्ठ, लता-तरु-पुष्प-पशु-पक्षी-जैसे प्राकृतिक चित्रों में कभी-कभी प्रकृत काव्य का कवि तो अपने पूर्ववर्ती सभी कवियों को पर्याप्त पीछे छोड़ देता है। परस्पर के कथनोपकथनों में संयत-सीमित-भावगर्भित पदों का प्रयोग हुआ है। नीतिविषयक वार्तायें जहाँ भी हुई है, सब में एक शास्त्रीय निष्ठा निहित है, यहाँ तक कि नगरों के वर्णनों में भी वास्तुशास्त्र या स्पष्ट कहें तो अधुनातन नगरचित्र चित्रित हुए हैं। प्रबन्ध का प्रत्येक पात्र, प्रत्येक वृत्त अपने में सशक्त और प्रबन्ध की लावण्याभिवृद्धि हेतु समर्पित है।

भवभूति की शिखरिणी की बड़ी चर्चा होती है। प्रकृत प्रबन्ध में प्रयुक्त शिखरिणी को पढ़कर हमें भवभूति को भी विस्मृत करना पड़ता है। षोडश सर्ग राम का, कवि का, पाठक का किसका क्या कुछ नहीं है।

महाकाव्य की छपाई में अनेक बाधायें आयीं, पर पण्डितराज ने उन्हें राघवेन्द्र की कृपा से पारकर ऐसा सुरुचिकर काव्य संस्कृत जगत् को दिया है इसके लिये हम हृदय से उनके यशस्वी और दीर्घायु होने की कामना करते हैं।

अनेकों बार प्रूफ देखने पर भी, निरन्तर के संशोधनों पर भी, प्रकाशनगत अनेक त्रुटियाँ श्लोकों और अनुवाद दोनों में रह गयीं जो परिमार्जित नहीं हो पायी। इसके लिये सम्पादक सहृदय विज्ञ जनों से क्षमा याचना पूर्वक निवेदन करता है कि उसे संशोधित कर ही ग्रहण करें।

'राघवेन्द्र चरितम्' को छापने का गुरुतर दायित्व संस्थान प्रेस के श्रीसुधि रंजन शर्मा जी ने बड़ी तत्परता से निभाया है उनके लिये कवि तथा संपादक दोनों हृदय से धन्यवाद प्रदान करते हैं। अन्त में—

दोषांस्त्यक्त्वा गुणाश्रित्यं मुदा गृह्णन्ति साधवः।
हंसो हि क्षीरमादत्ते तन्मिश्रा वर्जयत्यपः॥

चैत्रशुक्ल, रामनवमी
वि सं. २०४९

दशरथ द्विवेदी
अनुवादक एवं सम्पादक

विषय-सूची

समुद्रपार जाने की चिन्ता, सुग्रीव द्वारा नल-नील की कला का बखान, सह्याद्रि पर पहुँचना, समुद्रतट पर राम की सेना का विश्राम, इधर राम को उधर रावण की सचिवों से मन्त्रणा प्रहस्त, दुर्मुख, वज्रदंष्ट्र तथा निकुम्भ द्वारा युद्ध का समर्थन विभीषण द्वारा विरोध, कुम्भकर्ण की सलाह, सीता को बलात् स्वीकार कराने का महापार्श्व आग्रह, विभीषण का पुनः सन्धि का प्रस्ताव, मेघनाद द्वारा विरोध तथा दुर्वचनाक्षेप, विभीषण का पुनः राम को सीता प्रदान का आग्रह, रावण द्वारा विभीषण के तर्क का खण्डन, विभीषण की पुनः प्रार्थना, रावण द्वारा तिरस्कार, लङ्का परित्याग का आदेश, विभीषण का चार सचिवों समेत रामपक्ष में गमन, विभीषण का स्वागत, विभीषण को शरण प्रदान, लङ्का का राज्य प्रदान, समुद्र पार जाने के लिये समुद्र से मार्ग याचना, राम के क्रोध पर समुद्र का सोपहार आगमन, सेतु निर्माण का प्रस्ताव प्रातःकाल रामेश्वर की स्थापना-पूजन, स्तुति, नल-नील द्वारा सेतु निर्माण, राम का ससैन्य लङ्का में प्रवेश।

चतुर्दश सर्ग ३७१—३९६

रावण द्वारा प्रेषित चार का आगमन बन्धन तथा मोक्ष, प्रासाद पर रावण द्वारा रामसेना का निरीक्षण तथा राम द्वारा सुबेल पर से लङ्का की भौगोलिक स्थिति का निरीक्षण, राम के बाणों से रावण के किरीट का गिराया जाना, अङ्गद को दूत रूप में भेजना, अङ्गद-रावण संवाद, सीता प्रदान तथा सन्धि की अङ्गद द्वारा प्रेरणा, राम द्वारा लङ्कावरोध, रावण द्वारा माया उत्पन्नकर सीता सन्त्रास, त्रिजटा कृत सान्त्वना, वानर-राक्षसों का भयङ्कर युद्ध, मेघनाद द्वारा नागपाश से दोनों भाइयों का बन्धन, गरुड़ से नागपाश मोक्ष, धूम्राक्ष कुम्भकर्ण आदि प्रधान राक्षस सेनापतियों का वध, मेघनाद का पुनः आगमन, माया सीता का उसके द्वारा वध, मायापहार, मेघनाद द्वारा लक्ष्मण पर शक्ति प्रहार, लक्ष्मण की मूर्छा, वानरवैद्य भिषक् सुषेण का सञ्जीवनी लाने का आदेश, हनुमान् का द्रोणाचल समेत औषधि लाना, उपचार

तथा लक्ष्मण का प्रबोध, पुनर्युद्ध, मेघनाद वध, मन्दोदरी विलाप, रावण का युद्ध में जाना, भयङ्कर युद्ध, विभीषण पर शक्ति प्रहार राम द्वारा झेलना, दूसरे दिन पुनः युद्धारम्भ अगस्त्यागमन, राम को गुह्य आदित्य विद्या प्रदान, रामकृत सूर्यपूजा, रात-दिन का भयानक युद्ध, वनवास अवधि का अवसानप्राय, मातलिका रथ समेत आगमन, राम-रावण युद्ध, ब्रह्मास्त्र प्रहार से राम द्वारा रावणवध, विभीषण मन्दोदरी विलाप, विभीषण का राज्याभिषेक, सीतासमागम अग्नि परीक्षा, सेतु भङ्ग, सीता-लक्ष्मण-मित्रों समेत राम का अयोध्या को प्रस्थान।

पुष्पकयान से रामादि का प्रस्थान, समुद्र दर्शन, रामेश्वर प्रणाम, कृष्णा, कावेरी, गोदावरी, पञ्चवटी को राम द्वारा प्रणाम निवेदन, चित्रकूट अत्रि को मन से प्रणाम, प्रयाग संगम में यान से उतरकर स्नान पितृतर्पण, हनुमान् को भरत के पास भेजना, राम का अयोध्या में आगमन, राम-भरत मिलाप, अयोध्या में मङ्गल, मित्रों, माताओं, गुरुओं से भेंट, राम का राज्याभिषेक, हनुमान् को छोड़कर अन्य मित्रों की विदाई, रामराज्य वर्णन, सीतापवाद, सीता का परित्याग सीता का उपालम्भ, माता कौशल्या की व्यथा, महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में सीता द्वारा दो बालकों का जन्म देना रामविरह, शम्बूक वध, लवणासुर वध, अश्वमेध यज्ञ का प्रारम्भ, कुश-लव द्वारा राजसभा में रामकथा गायन, उन्हीं के द्वारा यज्ञीयाश्वावरोध, राम का गमन, राम द्वारा जृम्भकास्त्र प्रयोग, प्रत्युत्तर में कुश द्वारा उसी अस्त्र का प्रयोग, महर्षि वाल्मीकि का आगमन, युद्ध का अवसान, अवभृथस्नान में महर्षि द्वारा सीता के निष्कलङ्क होने की घोषणा, सीता की धरती से याचना, धरती का फटना, सिंहासन समेत धरती माता का आगमन, सीता को लेकर समा जाना, कृतान्त ब्राह्मण से एकान्त वार्ता, दुर्वासा का आगमन, वार्ता में लक्ष्मण का अनधिकृत प्रवेश, राम द्वारा उन्हें देशत्याग का आदेश, लक्ष्मण द्वारा देश त्याग का वृत्तान्त।

षोडश सर्ग ४२३–४४४

अन्तिम समय में राम द्वारा अपने सम्पूर्ण जीवन का लेखा-जोखा, बाल्यकाल का सुख, माता-पिता का प्यार, जानकी विवाह, महाराज दशरथ की दक्षता, युवराज पद प्रदान की तैयारी वनगमन, वन की समस्त त्रासदी की चिन्ता, भाइयों का त्याग, लक्ष्मण की अनुगामिता, उर्मिला का उत्सर्ग, भरत की बड़ाई, गुहकृत उपकार, जंगली पशु-पक्षियों तक का प्रेम, तपस्वियों का अनन्य प्रेम, अगस्त्य की कृपा, शूर्पणखा विरोध बीज वपन, वीर बालि और विद्वान् ब्राह्मण रावण का वध, युद्ध में लक्ष्मण की मूर्च्छा का भारी दुःख, विश्वामित्र प्रभृति का अनुग्रह, राज्यप्राप्ति, राजतन्त्रवशीभूत प्राणी की परवशता, प्रिय पत्नी का भी परित्याग, शम्बूक वध, प्रिय भाई लक्ष्मण का परित्याग, लोक में कौन सुखी रह सकता है ? राज्य को पुत्रों में प्रदान कर हनुमान् में ही राम का समाहित होना।

श्रीः

राघवेन्द्रचरितम्

प्रथमः सर्गः

विभाकरं गणेशञ्च गौरीं मृत्युञ्जयं तथा
नारायणं हनूमन्तं श्रेयसे प्रणमाम्यहम् ॥ १ ॥
मातरमम्बिकां देवीं पितरं श्यामसुन्दरम्
नरसिंहं पितृव्यं स्वं प्रणमामि सदा मुदा ॥ २ ॥
तपस्विनं महाभागं वाल्मीकिं मुनिपुङ्गवम्
रामायणकथाकारं वन्दे स्वाभीष्टसिद्धये ॥ ३ ॥
बहुशो राघवेन्द्रस्य यशो येनोपवर्णितम्
तं वन्दे परया भक्त्या कृष्णद्वैपायनं मुनिम् ॥ ४ ॥
प्रतिमयाऽभिषेकेण रामाङ्घ्र्येन पूजितः
वन्दे तं कविताहासं भासं रूपककारिणम् ॥ ५ ॥
रघुवंशप्रसूनेन राघवं योऽभ्यपूजयत्
कविताकामिनीलासं कालिदासं नमाम्यहम् ॥ ६ ॥
कविताविष्णुपदे यस्य भवभूतिसमं यशः
व्याप्तमद्यापि तं वन्दे भवभूतिं दयान्वितम् ॥ ७ ॥

कल्याण के लिए सूर्य, गणेश, गौरी, शंकर, नारायण तथा हनुमान् को मैं प्रणाम करता हूँ ॥ १ ॥ माँ अम्बिकादेवी, पिता श्यामसुन्दर तथा अपने पितृव्य नरसिंह को मैं प्रसन्नतापूर्वक सदा प्रणाम करता हूँ ॥२॥ अपने अभीष्ट की सिद्धि के लिए तपस्वी महाभाग मुनिश्रेष्ठ रामायण कथा कहने वाले वाल्मीकि की मैं वन्दना करता हूँ ॥ ३ ॥ जिन्होंने अनेकशः राघवेन्द्र के यश का वर्णन किया है उन कृष्णद्वैपायन मुनि की, अतिभक्तिपूर्वक मैं वन्दना करता हूँ ॥ ४॥ प्रतिमा और अभिषेक (नामक नाटक) के द्वारा जिन्होंने राम के चरणों की पूजा की है उन कविता के हासरूप रूपक निर्माता भास की मैं वन्दना करता हूँ ॥ ५ ॥ रघुवंश (रूप` पुष्प के द्वारा जिन्होंने राघव की पूजा की है उन कालिदास को जो कविताकामिनी के लास रूप हैं, मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ६ ॥ कविता (रूप) आकाश में भव-शङ्कर की भूति के समान जिनका यश आज भी व्याप्त है, उन करुणापूर्ण भवभूति की मैं वन्दना करता हूँ ॥ ७ ॥

कवीनां निकषग्रावा राजशेखरसंज्ञकः
बालरामायणं यो नः प्रादात्तस्मै नमो नमः ॥ ८ ॥
क्षेमेन्द्राय नमस्तस्मै यो रामायणमञ्जरीम्
चित्वा रामकथाद्रुभ्यो नो मुदे समुपानयत् ॥ ९ ॥
हनुमन्नाटकव्याजात् सम्यग्येनोपदर्शितम्
रूपं रामप्रियं श्लाघ्यं वन्दे दामोदरं कविम् ॥ १० ॥
अनर्घराघवव्याजान्मुरारिं योऽभ्यपूजयत्
मुरारिं काव्यवित्प्रेष्ठं सादरं प्रणमाम्यहम् ॥ ११ ॥
प्रसन्नराघवं पुष्पमर्पयन् रामपादयोः
योऽभूत् सहृदयश्लाघ्यो जयदेवं नमामि तम् ॥ १२ ॥
निगमागमबोधानां मूर्तिं श्रीरामजीवनम्
नमामि तुलसीदासं भाषाकविमकल्मषम् ॥ १३ ॥
अनाराध्यैः खलैः साकं बुधान्वन्दे गुणान्वितान्
विज्ञापयामि तान् हेतुं नामृष्यः स्यामहं यथा ॥ १४ ॥

जो कवियों की कसौटी हैं, जिनका नाम राजशेखर है तथा जिन्होंने हम लोगों के लिए बालरामायण दिया है उन्हें बार-बार नमस्कार है ॥८॥ उन क्षेमेन्द्र के लिए भी नमस्कार है जिन्होंने रामकथा (रूप) वृक्षों से चुनकर रामकथामञ्जरी को हम लोगों की प्रसन्नता के लिए उद्धृत किया ॥९॥ जिन्होंने हनुमन्नाटक के बहाने प्रशंसनीय रामप्रिय नाटक को भलीभाँति दिखाया उन कवि दामोदर की मैं वन्दना करता हूँ ॥१०॥ जिन्होंने अनर्घराघव के ब्याज से मुरारि की पूजा की है उन काव्यज्ञप्रिय मुरारि को मैं सादर प्रणाम करता हूँ ॥११॥ राम के चरणों में प्रसन्न राघव (नामक) पुष्प अर्पित करते हुए जो सहृदयों में श्लाघ्य हो गये उन जयदेव को मैं नमस्कार करता हूँ ॥१२॥ जो निगम और आगम के ज्ञान की मूर्ति हैं तथा श्रीराम ही जिनके जीवन हैं उन निष्कलुष भाषाकवि तुलसीदास को मैं प्रणाम करता हूँ ॥१३॥ जिनको प्रसन्न करना दुष्कर है उन खलों के साथ गुणयुक्त बुधजनों को मैं प्रणाम करता हूँ और उन्हें (इस काव्य के लिखने का) हेतु भी बता रहा हूँ जिससे मैं अमर्ष का पात्र न बन सकूँ ॥१४॥

क्व काव्यं प्रतिभाभ्यासावेक्षणादुपजायते
क्वाहं मन्दधियां श्रेष्ठो यियासुः कविपद्धतिम् ॥ १५ ॥

न जीवनं तस्य भवेत्कृतार्थं न येन गीता रघुनाथकीर्तिः
निरर्थकं जन्म ममापि न स्यादतः प्रवृत्तो न कवित्वदर्पात् । १६ ।

सहस्रशः सन्तु महाकवीनां वक्रोक्तिकाव्यानि रसान्वितानि
न तानि तोषाय भवन्ति तादृग् यथा स्वपद्यं प्रददाति तोषम् ।१७।

यदस्तु यद्वात्र विचिन्तयेयुर्मनीषिणो रीतिरसाध्वनीनाः
परं तदीयं हि मनोऽत्र रंस्यते हृद्यं सदा रामरसेन युक्तम् ॥१८॥

अस्त्युत्तरस्यां दिशि भारतस्य हिमालयः पर्वतपङ्क्तिपावनः
स्वतः पवित्रोऽपि पुनाति नित्यं वपुः स्वमुग्रस्य पदोदविन्दुभिः ।१९।

योगीन्द्रवद् यो नियतं शरीरात्स्वयं समुत्पाद्य सुधाम्बुविन्दून्
प्राश्नन् विधूयात्मरुजं समन्तात् शिवेन तादात्म्यमुपैत्यहर्निशम्।२०

प्रतिभा अभ्यास तथा अवेक्षण से उत्पन्न होने वाला काव्य कहाँ और कहाँ मैं, जो मन्दबुद्धि जनों में श्रेष्ठ हूँ तथा कविमार्ग पर चलने की इच्छा रखता हूँ ।।१५।। उनका जीवन सफल नहीं है जिनके द्वारा रघुनाथ की कीर्ति का गान नहीं होता है । मेरा भी जीवन व्यर्थ न हो जाय इसलिए इसमें प्रवृत्त हो रहा हूँ. कविता के अभिमान से नहीं ।।१६।। महाकवियों के रसयुक्त हजारों वक्रोक्ति सम्पन्न काव्य हों पर वे उस प्रकार से तोषप्रद नहीं होते हैं जैसा कि अपना पद्य तोष देता है ।।१७ जो भी हो अथवा यहाँ रीति और रस मार्ग के पथिक जो भी सोचें पर उनका मन इस काव्य में आनन्द पायेगा क्योंकि रामरस से युक्त सदा हृद्य होता है ।।१८।। भारत की उत्तर दिशा में पर्वतों की पङ्क्ति में पवित्र हिमालय है जो स्वयं पवित्र होते हुए भी अपने को शङ्कर के चरणजल विन्दुओं से सदा पवित्र करता रहता है ।।१९।। जो निश्चित रूप से योगीन्द्रों की भाँति अपने शरीर से अमृतजलविन्दुओं को उत्पन्न करके, उनका पान करके, आत्मरोगों को हटाकर भलीभाँति सदा शिव से तादात्म्य प्राप्त करता रहता है ।।२०।।

यं प्रत्यहंतिग्मरुचिः प्रभाते हैमं किरीटं समुपस्करोति
भुवोऽन्तरिक्षं प्रविविक्षुमेनं भूभृत्पतिं भावयतीव मान्यम् ।२१।
सिद्धौषधीनां प्रसवः समासां सिद्धाङ्गनानाञ्च विलासभूमिः
शोभामपूर्वां निदधाति काञ्चित् संध्यार्कभास्वत्किरणानुरञ्जितः ।
लोकस्थितेः पर्वतपक्षशातने कृतेऽपि पूर्वं नमुचिद्विषा यः
बिभर्ति भव्यं निधिमात्मदेहे प्रभुर्नकश्चिद् हि गुणान् विहन्तुम् ।
यो ब्रह्मपुत्रस्य महानदस्य सिन्धुद्वितीयस्य विकासभूमिः
आसाद्य यन्मानसमम्बु शुभ्रं गङ्गा गुणान्स्वान् प्रकटीकरोति ।२४।
शम्भोर्द्वितीयां जगदद्वितीयां शिवां समुत्पाद्य न केवलं यः
बभूव मान्यो महनीयमूर्तिः प्रणम्य आस्ते प्रभवः सरय्वाः ।२५।
नश्यन्ति पापानि तदीयदेशे विश्रान्तयेऽस्मिन् मुनयो वसन्ति
स्वीयस्थितिं प्रत्यनुचिन्तितानि पापान्यतो बिभ्यति तत्र गन्तुम् ।

जिसको प्रतिदिन सूर्य प्रभातकालमें स्वर्णकिरीट पहनाता है। मानों पृथ्वी से आकाश की ओर प्रवेश करने की इच्छा वाले इस भूभृत्पति को मान्य मानता है।२१। जो सभी सिद्ध औषधियोंका उत्पत्तिस्थान है और सिद्धाङ्गनाओंकी क्रीडाभूमि है जो सायङ्कालिक सूर्यके प्रकाशमान किरणोंसे रंगा जाकर किसी अपूर्व शोभा को धारण करता है ॥२२॥ पुरा काल में लोक कल्याण के लिए इन्द्र के द्वारा पर्वतों के पक्षच्छेदन करने पर भी जो अपने में भव्य निधि को धारण करता है। क्योंकि कोई किसी के गुण को नष्ट करने में समर्थ नहीं होता है ॥२३॥ जो सिन्धु सहित महानद ब्रह्मपुत्र के विकास का स्थल है। जिसके शुभ्र मानस जल को पाकर ही गङ्गा अपने गुणों को प्रकट करती है ॥२४॥ जो न केवल संसार में अप्रतिम शिवभार्या शिवा को ही उत्पन्न करके महनीयमूर्ति तथा मान्य बना है, अपितु वह सरयू का उत्पादक है अतः प्रणम्य है ॥२५॥ उसके क्षेत्र में पाप नष्ट हो जाते हैं। वहाँ मुनि लोग शान्ति के लिए निवास करते हैं। अपनी स्थिति के प्रति चिन्तित पाप, इसीलिए, वहाँ जाने में डरते हैं ॥२६॥

दीनार्तिदारिद्र्यनिवारणादौ गङ्गेव या खिन्नमना न दृष्टा
पितुर्यशोऽलं परिवर्द्धयन्ती सरिद्वराऽस्मिन् सरयूः प्रकाशते ।२७।
कन्यास्वरूपा गिरिसद्मनीयं शोभामपूर्वामभिवर्द्धयन्ती
सा जातमात्रैव मुदे पुराऽऽसीत् साकं पितृभ्यां गिरिवंशजानाम्।२८
तां प्राप्य पुत्रीं गिरिराड् हिमालयः शिवामिवाशोभननाशयित्रीम्
पुपोष सम्यक् सुतनिर्विशेषं तद्बालचेष्टाभिनिविष्टचित्तः ।२९।
मृदु क्वणन्ती स्खलितं वचःसा गत्वा स्खलन्ती च पदानि कानिचित्
पित्रोर्मुदं तत्र ततान सरयूः पृषन्ति नैराणि मुखात् किरन्ती ।३०।
क्वचित्प्रभाभासुरमद्रिखण्डं सलिलमम्बूनि परिक्षिपन्ती
निपातयन्ती सरलद्रुमान् क्वचित् क्वचिद् वपुः स्वं परिगोपयन्ती ।
विचूर्णयन्ती दृषदग्रभागान् दरीषु नित्यश्चसमुद् भ्रमन्ती
अधित्यकायामिह धातुमय्यां दिनानि सैवं क्षणवन्निनाय ।३२।

दीनों के दुःख एवं दारिद्र्य के निवारण में गङ्गा के समान ही जो कभी खिन्न नहीं देखी गई है वह नदीश्रेष्ठ सरयू, अपने पिता के यश को भलीभाँति बढ़ाती हुई यहाँ ही उत्पन्न हुई है ।२७। पर्वत के घर में अपूर्व शोभा को बढ़ाती हुई कन्यारूप यह-सरयू उत्पन्न होते ही प्राचीन काल में अपने माँ-बाप के साथ सम्पूर्ण गिरिवंशजों के आनन्द के लिए हो गई थी ॥२८॥ पर्वतराज हिमालय अशोभन नाश करने वाली शिवा के समान इस पुत्री को पाकर, उसके बालचेष्टाओं से आकृष्टमन वाला होकर उसे पुत्र के समान ही भलीभाँति पालन किया ॥२९॥ अस्पष्ट पर मीठे वचन की ध्वनि निकालती हुई, कुछ पग चल कर लड़खड़ाती हुई तथा अपने मुख से जलविन्दुओं को निकालती हुई वह सरयू अपने पिता और माता के आनन्द को बढ़ाने लगी। कहीं तो अपनी प्रभा से चमकते हुये पर्वत - खण्डों पर लीला के साथ जल छिड़कती हुई, कहीं छोटे - छोटे वृक्षों को गिराती हुई तथा कहीं अपने शरीर को छिपाती हुई, पत्थरों के अग्रभाग को तोड़ती हुई, प्रसन्नतापूर्वक पर्वतकन्दराओं में घूमती हुई, यहाँ पर्वत के धातुयुक्त ऊपरी भाग में उस सरयू ने अपने दिनों को क्षण के समान बिताया ॥३०-३२॥

हिमालयोत्सङ्गसमात्तबाल्या कालं सखीभिः ससुखं व्यतीत्य
बभूव मातुर्विषयं शुचेः सा यथाक्रमं यौबनमादधाना ।३३।
प्रतीक्षमाणाऽवसरं कदाचिन् निशीथकालेऽचलराजपत्नी
निवेदयामास शुचं स्वकीयां व्यग्राय पत्येऽवनिरक्षकाय ।३४।
उवाच मेनां परिरभ्य वक्षसा पतिर्गिरीणां प्रभवो नदीनाम्
प्रस्थापय त्वं सरयूं पतिवरां कौमार्यकाले जनको हि रक्षकः ।३५।
एतद्गृहं नैव शरण्यमस्ति निदेशमेनं स्वपितुर्निशम्य
मातुर्वियोगं न शशाक सोढुं सा निम्नगा तत्र पपात भूमौ ३६।
संलब्धसंज्ञा चरणौ ववन्दे पित्रोः हृदा सा परिषस्वजे सखीः
निसर्गसिद्धस्य धवस्य योषितां दिदृक्षया याम्यदिशं प्रतस्थे ।३७।
तां गन्तुकामां प्रसमीक्ष्य वायुर्ववौ सुखं निःस्वनमात्तगन्धिः
आमेखलं सञ्चरता घनेन छाया कृता सानुगतां निरीक्ष्य ।३८।

हिमालयकी गोद में अपने बचपन को बिताने वाली वह (सरयू) अपने सखियोंके साथ सुखपूर्वक काल यापन करके क्रमशः यौवन प्राप्तकर अपने माँ के शोक का विषय बन गई ॥३३॥ अवसर की प्रतीक्षा करती हुई पर्वतराज की पत्नी-मेना-ने किसी समय अर्द्धरात्रि में पृथ्वी के रक्षक अपने व्यस्त पति से अपनी चिन्ता को बताया ॥३४॥ नदियों के जनक तथा पर्वतों के स्वामी-हिमालय-ने मेना को हृदय से लगाकर कहा कि पति का वरण करने वाली सरयू को (अपने यहाँ से) प्रस्थापित करो। क्योंकि पिता केवल कुमारावस्था में ही रक्षक होता है ॥३५॥ यह घर अब मेरा शरणस्थल नहीं है, पिता के इस आदेश को सुनकर वह निम्नगा-नदी-माता के वियोग को सहन करने में समर्थ नहीं हुई और भूमि पर गिर पड़ी ॥३६॥ होश आने पर उसने पिता माता के चरणों का वन्दन किया, हृदय से अपनी सखियों का आलिङ्गन किया तथा स्त्रियों के स्वभावसिद्ध-नित्य-पति को देखने की इच्छा से दक्षिण दिशा को प्रस्थान कर दिया ॥३७॥ जाने की इच्छा रखने वाली उस (सरयू) को देखकर गन्धयुक्त वायु सुखपूर्वक बहने लगा तथा उसे पर्वत ऊपर स्थित देखकर उन मेघों ने उसके ऊपर छाया कर दिया जो पर्वत की मेखला पर सञ्चरण कर रहे थे ॥३८॥

यान्तीं वरीतुं स्वपतिं समुत्कां स्रोतस्विनीं वेपथुमादधानाम्
अत्राकिरन्बाललताः वयस्याः सुमानि चित्राणि च सौमनस्यात् ।
सा गण्डशैलानपि रोदयन्ती स्नेहात्स्वकं प्रस्रवणं मिलन्ती
वारिप्रवाहान् सुहृदो नमन्ती कृच्छ्रं ययौ पादगिरिं भ्रमन्ती ।४०।
क्वचिच्चलन्ती मुहुरुत्पतन्ती यान्ती द्रुतं तत्र निरुद्धवेगा
कूटात्प्रपातं कटकं तथा स्नुं क्रमादसौ संरभसाज्जगाम ।४१।
द्वित्रान्क्षणानत्र विरम्य तावद् गन्तव्यमातिथ्यमदो गृहीत्वा
निवेदितं नैव वचो गृहीतं पथ्यागतानां पतिकामया तया ।४२।
आत्मावपातैरपि रोद्धुकामाः शेकुर्यियासां तरवो नहन्तुम्
नहीप्सितार्थस्थिरनिश्चयानां श्रद्धाप्यभीष्टास्ति विलम्बकारिणी ।
पर्णाशनं पक्वफलाशनं वा तया यदृच्छोपगतं गृहीतम्
प्राक्लक्ष्यसिद्धेर्दृढनिश्चयो हि मध्येभवं सौख्यमपेक्षते न ।४४।

अपने पति को वरण करने के लिए जाती हुई समुत्सुक उस सकम्प स्रोतस्विनी - सरयू-के ऊपर उसकी सखियाँ छोटी लताओं ने प्रेमवश विचित्र पुष्पों को फेंका ॥३९॥ वह चट्टानों को भी रुलाती हुई, प्रेम से अपने जल स्थानों से मिलती हुई तथा अपने मित्र झरनों को नमस्कार करती हुई एवं अधः स्थित पर्वतों के पास घूमती हुई कठिनता से चल पड़ी ॥४०॥ कहीं चलती हुई, फिर गिरती हुई, शीघ्रता से जाती हुई भी कहीं ठहरती हुई पर्वत के शिखरों से गिरने योग्य स्थान, पर्वत मध्य भाग तथा समतल भाग पर तेजी से चल पड़ी ॥४१॥ पति की कामना वाली उस-सरयू-ने मार्ग में आये हुओं के "यहाँ दो तीन क्षण विश्राम कर इस आतिथ्य को ग्रहण करके जावो" इस निवेदन वचन को नहीं स्वीकार किया ॥४२॥ अपने को गिरा कर भी उसको रोकने की इच्छा वाले वृक्ष भी उसके जाने की इच्छा को रोकने में समर्थ नहीं हुये। अभीष्ट वस्तु के लिए जिन्होंने निश्चय स्थिर कर लिया है उन्हें दूसरों की विलम्ब करने वाली श्रद्धा भी नहीं भाती है ।४३। उसने कहीं पर स्वयम् आ जाने वाले पत्तोंका भोजन तथा कहींपर पके फलोंका भोजन किया। क्योंकि दृढ़निश्चय व्यक्ति लक्ष्य सिद्धि से पहले बीच में आने वाले सुखों की अपेक्षा नहीं करते हैं ।४४।

कार्योन्मुखी सा सरयूर्वरेण्या मेघोन्मुखीं क्ष्मां परितो विलोक्य
स्वयंविशीर्णाऽपि जलानि तस्यै प्रादान्निजं धर्ममवेक्ष्य कौलम् ।४५।
उपत्यकां प्राप्य तरङ्गिणी सा मातुर्वियोगेण बभूव कातरा
ग्रीवां स्वकीयामवनम्य तिर्यक् सोच्छ्वासमद्रेर्विषयं ददर्श ।४६।
संरुध्य भावान् सहजोत्थितान् सा पूर्वानुभूतेः प्रसवान् कथञ्चित्
कार्यस्य वैशिष्टयमनुस्मरन्ती कान्तार्थिनी साश्रुमुखी चचाल ।४७।
भवेत् स नड्वानथवा कुमुद्वान् किं वोषरो वा लघुशर्करावान्
स्थलीस्थलावानखिली खिली वा देशो न कश्चित्तदलंघ्य आसीत्।
नीरन्ध्रनीलां वनराजपंक्त्या कुशेशयापृक्तसरोऽवभासाम्
गोनर्दभूमिं समवाप्य तूर्णमौद्धत्यमात्मानुगतं मुमोच ।४९।
अनन्तमूर्तिः परमो महात्मा वाग्योगविद् योगविदां वरेण्यः
पतञ्जलिर्भूमिमलङ्करिष्णुर्ध्यात्वैव भक्त्याऽवनता बभूव ।५०।

अपने कार्य में लगी हुई वह प्रशंसनीय सरयू पृथ्वी को मेघों की ओर उन्मुख देख कर यद्यपि वह स्वयं कष्ट में थी तो भी अपने कुलधर्म का विचार कर उसे जल प्रदान किया ॥४५॥ (इस प्रकार) वह तरङ्गिणी पर्वत के नीचे की भूमि पर आकर माँ के वियोग से कातर हो उठी। उसने अपनी गर्दन को थोड़ा तिरछा घुमा कर पर्वत के राज्य को ऊँची सांस लेकर देखा ॥४६॥ पूर्वानुभूति से उत्पन्न स्वभावतः उठे हुये भावों को किसी प्रकार रोककर कार्य की विशिष्टता को ध्यान में रखती हुई, रोती हुई वह प्रियाभिलाषिणी चल पड़ी ॥४७॥ फिर तो चाहे नड वाले या कुमुद वाले देश हों, ऊषर या हल्के पथरीले देश हों, कृत्रिम या अकृत्रिम भूमि हो या जोती हुई अथवा बिना जोती हुई भूमि हो कोई भी देश उसके लिए अलंघ्य नहीं रह गया ॥४८॥ श्रेष्ठ वनों की पङ्क्ति से सम्पूर्णनील एवं कमलयुक्त सरसकी शोभा वाले गोनर्द देश की भूमि को पाकर उस सरयू ने अपनी चञ्चलता का परित्याग कर दिया ॥४९॥ 'आगे चलकर इस (गोनर्द) भूमि को भगवान् शेष के अवतार, परममहात्मा वाग्योग के ज्ञाता, योगियों में श्रेष्ठ पतञ्जलि अलंकृत करेंगे' ऐसा सोच कर वह-सरयू-भक्ति से नम्र हो गई ॥५०॥

विसृष्टचाञ्चल्यगतानुभावा श्रद्धातिरेकादलसं दधाना
सा घर्घरां स्वाभिमुखं व्रजन्तीं सखीमिव स्वामपरां ददर्श ।५१।

चलत्तरङ्गाश्रुपृषद्भिरन्विते संभेदलिप्सावशगे भगिन्यौ
उत्कण्ठया बाहुतटे प्रसार्य्य परस्परं द्वे मिथुनीबभूवतुः ।५२।

वेगे निरुद्धे क्रमशस्तदानीं मिथः समाभाषणतत्परे ते
अनामयप्रश्नमुखेन तत्र सोद्देश्यकल्यां सरयूरुवाच ।५३।

बाल्ये श्रुतं सन्मुनिभिर्मया वचः कल्याणकामाय दिवौकसां सः
अलङ्करिष्यन्भुवि सौरवंशं नारायणः शीघ्रमवातरिष्यति ।५४।

यमोऽस्ति सूर्यप्रभवो महात्मा तस्यैव काष्ठाऽस्ति मदीयलक्ष्यम्
संभाव्यते तत्र पतिर्मदीयो यतोऽन्वये पद्मपतेः स भावी ।५५।

पृष्टा सती स्वागमनप्रयोजनं सा घर्घरा तत्र शनैरुवाच
पतिंवरेऽस्मिन् शुभकर्मणि त्वं मामेव सन्देशहरामवेहि ।५६।

चञ्चलता के परित्याग से उत्पन्न स्वभाव वाली, श्रद्धा की अधीरता से मन्थर उस-सरयू-ने अपनी ओर आती हुई घर्घरा को अपनी दूसरी सखी के समान देखा ।।'५१।। फिर चञ्च तरङ्ग रूपी अश्रुबिन्दुओं से युक्त तथा मिलने की इच्छा की वशीभूत वे दोनों बहिनें उत्कण्ठा से अपने तट रूपी बाहुओं को फैलाकर आपस में एक हो गईं ।।५२।। क्रमशः उनके वेग के कम हो जाने पर वे दोनों परस्पर में वार्तालाप में रम गईं। वहाँ सरयू ने कुशल प्रश्न के पश्चात् उद्देश्यपूर्ण वचन कहा।।५३।। बचपन में मैंने श्रेष्ठ मुनियों से सुना था कि देवताओं की कल्याण की इच्छा से नारायण सूर्यवंश को अलंकृत करते हुये शीघ्र ही अवतार लेंगे ।।५४।। महात्मा यम सूर्य से उत्पन्न हुये हैं। उनकी दिशा ही मेरा (गन्तव्य) लक्ष्य है। उसी दिशा में मेरे पति की सम्भावना है, क्योंकि सूर्य के वंश में ही वे उत्पन्न होने वाले हैं ।।५५।। अपने आगमन का हेतु पूछे जाने पर उस घर्घरा ने वहाँ पर धीरे से कहा कि हे पति खोजने वाली-सरयू-अपने इस शुभकर्म मुझे सन्देशवाहिका समझो ।५६।।

प्रजापतेर्यन्मनसा विनिर्म्मितं पुरा सरो मानसमुच्यते बुधैः
तज्जा यतस्त्वं सरयूपदेन संकीर्त्यते गोत्रजनैरिदानीम् ।५७।
कैलाशनाथस्य निवासभूमिं गतः कदाचिद् भगवान्जनार्दनः
तत्रैव दृष्टा त्वमनेन बाले लोकस्थितेर्केवलकारणेन ।५८।
संकल्पसृष्टेश्च नियामकेषु भवन्ति नो कारणकार्यभावाः ।
जायास्वरूपेण शुभे वृता त्वं नारायणी वेत्ति समस्तवृत्तम् ।५९।
शिलास्वरूपेण चतुर्भुजेन समं निवासं दधती सखी मे
श्री मुक्तिनाथात्तव शर्महेतोरप्रेषयन्मां तदुपान्तगामिनीम् ।६०।
वित्ताद्धृदा सावहितेन तत्त्वं मा भून्मनस्कारविकारलेशः
विमर्शसंकल्पविचारणाभिर्विनिश्चयं तत्त्वधियो ब्रजन्ति ।६१।
विश्वं विवर्तात्मकमस्ति विष्णोः स एव नित्यः परमार्थरूपः
श्रव्यश्च दृश्यं यदिहास्ति किञ्चित् तद् योगनिद्राकृतमित्यवेहि ।।

प्राचीन कालमें प्रजापतिके मनसे बनाये गये जिस सरोवरको पण्डितजन मानससर कहते हैं उससे तुम उत्पन्न हुई हो अतः इस समय अपने लोगों से तुमसरयू पद से पुकारी जाती हो ।५७। हे बाले! किसी समय भगवान् जनार्दन कैलाशनाथ-शङ्कर के निवास स्थान पर गये थे। वहाँ ही लोक की स्थिति के एक मात्र कारण उन (जनार्दन) के द्वारा तुम देखी गई थी ।।५८।। सङ्कल्प से उत्पन्न होने वाली इस सृष्टि के नियामकों में कार्य कारण भाव नहीं चलता है। हे शुभे! (उन नारायणके द्वारा) तुम जाया भाव से चुन ली गयो थी। इस सम्पूण घटना को नारायणी जानती है। ५९।। शिलारूप चतुर्भुज-विष्णु-के साथ रहने वाली मेरी सखी-नारायणी-ने मुक्तिनाथ क्षेत्र से तुम्हारे कल्याण के लिए मुझे भेजा है, जबकि मैं उनके पास गई थी ।।६०।। अतः सावधान मन से तत्त्व की बात समझो। मन के अन्यत्र रहने पर उत्पन्न विकार का लेश तुझमें नहीं होना चाहिये। तत्त्वज्ञ लोग विमर्श, संकल्प और विचारणा के द्वारा ही निश्चय की उपलब्धि करते हैं ।।६१।। यह सम्पूर्ण संसार विष्णु का विवर्तरूप है। परमार्थ रूप से वे ही नित्य है। यहाँ जो कुछ भी सुनने या देखने योग्य है वह सब योग निद्रा के द्वारा किया गया है, ऐसा समझो ।।६२।।

दुरत्यया भागवतीयमृद्धिः ज्ञातुं न शक्या तदनुग्रहं विना
सृष्टौ स्थितौ वा प्रलये पुनर्वा सैवाऽस्ति मूलं निरपेक्षरूपम् ।६३।

यदा पुराणः पुरुषो विरक्तो नारंस्त सर्गस्थितिमाकलय्य
तस्मिन्क्षणे तच्चितिरेव जातैषा नामरूपात्मकविश्वरूपा ।६४।

देवा मनुष्या असुराश्च सिद्धा जले स्थले खे च वसन्ति येऽपि
त एव सर्वे नटवन्निबद्धाः प्रादुर्बभूवुर्ननु विश्वमञ्चे ।६५।

हासं रतिं क्रोधभये घृणां वा ऽऽश्चर्यं समुत्साहमथापि शोकम्
निर्वेदमन्ते परिदर्शयन्तः सर्वे चितिं तां परिचित्रयन्ति ।६६।

अहं भवेयन्नु भवेस्त्वमेव सर्वे हि जीवा निजकर्मबद्धाः
तां योगनिद्रां परिषेवमाणा विष्णुः स्वयं तां परिषेवते च ।६७।

दिदेविषाबुद्धिवशादिदानीं लोकात्स्थितिं स्वां च निगूहमाना
सा वैष्णवी श्रीमिथिलाप्रदेशं स्वजन्मना शीघ्रमलङ्करिष्यति ।।

भगवान् सम्बन्धी यह उत्कृष्ट सम्पत्ति बड़ी प्रबल है, उसके अनुग्रहके बिना उसकोजानना कठिन है। बिना किसी दूसरेकी अपेक्षा रखे वह ही सभी अवस्था में सबका मूल है, चाहे सृष्टि हो स्थिति हो अथवा प्रलय हो।६३। जिस समय विरक्त पुराण पुरुष सृष्टि की स्थिति का आकलन करके उदासीन हो उठा, उस क्षण ही उसकी चेतना ही इस नामरूपात्मक विश्व के रूप में परिवर्तित हो गई ।।६४।। देवता मनुष्य राक्षस तथा सिद्ध, किंवा, जल स्थल और आकाश में रहने वाले जो भी हैं, वे सब नट के समान बंधे हुए इस विश्वरङ्गमञ्च पर उत्पन्न हो गये ।।६५।। हास, रति, क्रोध, भय, घृणा, आश्चर्य, उत्साह, शोक और अन्तमें शम को दिखाते हुये वे सभी उस चेतना का ही स्वरूप उपस्थित करते हैं ।।६६।। मैं होऊँ या तुम हो, अपने कर्म में बंधे सभी जीव उस योगनिद्रा की ही सेवा कर रहे हैं और विष्णु स्वयं ही उसकी सेवा करते हैं ।।६७।। इस समय क्रीडाबुद्धि के कारण और संसार से अपनी वास्तविकता को छिपाती हुई वैष्णवी देवी शीघ्र ही अपने जन्म श्रीमिथिला प्रदेश को अलंकृत करेगी ।।६८।।

शक्तिं स्वकीयामनुवर्तमानो यज्ञस्वरूपं परिवीक्षमाणः
आगन्तुकामः परमर्द्धिमान्सः स्वभूरयोध्याञ्च पवित्रयिष्यति ।६९।

तद्गच्छ कल्याणि सघर्घरा त्वं नैषा द्वितीया तवरूपमेषा
आत्मानुरूपं स्वपतिं लभस्व द्रक्ष्यामि वां जह्नुसुतामुखेन ।७०।

निवेद्य सन्देशममुं रहस्यं तूष्णीं गते सा स्वसखीजने ताम्
शिश्लेष विस्मृत्य स्वदेहभावं समांशकेनार्धमुपैति पूर्णताम् ।३१।

विमृश्य लक्ष्माप्रतिकूलमात्मनः स्वकीयलक्ष्यं प्रति बद्धभावा
अनातुरा सारवसंयुता नदी पदं शनैस्तत्र पथि न्यधत्त ।७२।

गतेऽविदूरेऽध्वनि साऽध्वनीना नासाग्रवृत्तिं कमलासनस्थाम्
अपश्यदेकां तपसा ज्वलन्तीं सीमन्तिनीं लक्षितराजभावाम् ।७३।

निरस्तमन्युप्रतिधानुतापा सापत्रपावाधितचित्तवृत्तिः
अकारणाविष्कृतलालसाका सप्रश्रयं वाचमुवाच सूनृताम् ।७४।

अपनी शक्तिका अनुवर्तन करते हुए तथा यज्ञके स्वरूपको देखते हुये परमर्द्धि मन की इच्छा रखने वाले स्वभू अयोध्या को पवित्र करेंगे ।६६। इसलिए हे कल्याणी ! घर्घराके साथ जावो । यह दूसरी नहीं है, तुम्हारा ही रूप है । अपने अनुरूप पति का लाभ करो । (एकीभूत) तुम दोनों को जाह्नवी के सहारे मैं देखूंगी ॥७०॥ इस रहस्यपूर्ण सन्देश को निवेदित करके अपनी सखी के चुप हो जाने पर उस सरयू ने अपने देहभाव को भूल कर उस-घर्घरा-को (अपने में) मिला लिया । बराबरी के भाग से मिलकर आधा पूर्ण हो जाता है ॥७१॥ अपने अनुकूल चिह्नों को जानकर अपने लक्ष्य की ओर दृढ़ निश्चय वाली आश्वस्त तथा कलध्वनि युक्त उस नदी (अथवा अपने से चिपकी उस नदी) ने अपने मार्ग पर धीरे धीरे पैर रखा ॥७२॥ थोड़ी दूर पर मार्ग में उस पथिक नदी ने एक सीमन्तिनी-स्त्री-को देखा जो पद्मासन से बैठी थी, जिसकी दृष्टि नासिका के अग्रभाग पर टिकी थी, जो तपस्या के कारण प्रकाशमान थी तथा जिसमें राजभाव टपक रहा था ॥७३॥ शोक क्रोध ओर पश्चाताप रहित, लज्जायुक्त चित्तवृत्तिवाली अकारण ही जिसमें लालसा का उदय हो गया था उस (सरयू) ने प्रेमपूर्वक सत्य एवं प्रिय वाणी कहा ॥७४॥

कात्वं शुभे स्थानमिदं किमाख्यं वासः कथं किञ्च निमित्तमत्र
तद् ब्रूहि सर्वं यदि विप्रियं न त्वदीक्षणोद्रिक्तमनोरथां माम् ।७५।
असन्यमाना तपसेऽन्तरायं तपस्विनी प्राप्तनवीनमित्रा
अवाहयत्सा सरसप्रसादां व्याहारधारामपरां नदीव ।७६।
अज्ञातशीलं न वेदत्कदाचिद् वाचं रहस्यामिति नीतिशास्त्रम्
तथापि ते भाषितरूपभावाः श्रोतुं च वक्तुं व्यवसाययन्ति माम् ।
मान्या अयोध्या मथुरा च काशी द्वारावती चोज्जयिनीह काञ्ची
मायेति पुर्यः खलु भारतेऽस्मिन् स्वर्गापवर्गास्पदहेतुभूताः ।७८।
यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात्
तत्प्रातिभं ज्ञानसवूष्टं यस्याः प्राथम्यमासु व्यवधानहीनम् ।७९।
यां सूर्यवंशप्रभवा महीपा दिगन्तविश्राणितकीर्तिमालाः
धानीमयोध्यामधिशासतीड्यां त्वं विद्धि तस्या अधिदेवतां माम् ।।

शुभे ! तुम कौन हो, इस स्थान का नाम क्या है, यहाँ क्यों वास करती हो, वास का निमित्त क्या है यह सभी यदि तुम्हें अप्रिय न हो तो मुझे बताओ। तुझे देखने से मेरा मनोरथ उछल रहा है ॥७५॥ नवीन मित्र प्राप्त करने वाली उस तपस्विनी ने इसे अपनी तपस्या में विघ्न न मानती हुई सरस एवं प्रसादयुक्त वाग्धारा बहाना प्रारम्भ कर दिया मानों वह भी कोई दूसरी नदी हो ॥७६॥ नीतिशास्त्र का सिद्धान्त है कि जिसका कुल एवं आचरण ज्ञात न हो उससे रहस्य की बात कभी न कहे पर तुम्हारे वचन रूप एवं भाव मुझे कहने एवं सुनने के लिए प्रेरित कर रहे हैं ॥७७॥ इस भारतवर्ष में अयोध्या मथुरा काशी द्वारिका उज्जयिनी काञ्ची और माया (हरिद्वार) ये सात पुरियाँ स्वर्ग एवं मोक्ष का गृहरूप मानी गई हैं ॥७८-७९॥ पहले प्रजापति को यज्ञ के द्वारा परम पवित्र सहज प्रातिभ ज्ञान की उत्पत्ति हुई उसमें जिसकी प्रथमता निर्बाध रीति से बताई है। दिगन्त में अपनी कीर्तिमाला का विस्तार करने वाले सूर्यवंश में उत्पन्न महीप जिस स्तुत्य अयोध्या राजधानी का शासन करते हैं उस (अयोध्या) की अधिदेवता मुझे समझो ॥८०॥

आजन्मशुद्धेषु तपःसुहृत्सु मूर्द्धाभिषिक्तेषु रसेश्वरेषु
सुखं वसन्ती नितरां प्रियेषु नाप्नोमि तुष्टिं प्रभुवर्यकामा ।८१।
एतादृशं स्वामिनमात्मबुद्ध्या काङ्क्षामि यः स्यादसमो जगत्याम्
यन्नामयोगादमृता भवेयं प्राप्तुं तमालि व्रतमाचरामि ।८२।
निवेदितं सम्प्रति वृत्तमेतत् यत्कारणादत्र तपश्चरामि
कुतूहलं मेऽपि निवृत्तिमेतु ज्ञात्वा त्वदीयागमनप्रयोजनम् ।८३।
तपस्विनीवाचमसौ पयस्विनी निशम्य बुद्ध्वा निखिलं रहस्यम्
नारायणं चेतसि चिन्तयन्ती नत्वा पुरीं वाचमिमां बभाषे ।८४।
मेधातिथेर्विप्रवरस्य पुत्री याऽरुन्धती मानसमध्युवास
तस्या वशिष्ठेन विवाहकृत्यं शृङ्गे सुसम्पन्नमभूद्धिमाद्रेः ।८५।
संस्कारजन्यावभृथे तदानीं सदम्बुजातं समुदीरितं यत्
बीजं तदेवास्ति च सप्तनद्याः सानौ सरस्यामधिकन्दरं तत् ।८६।

जन्म से लेकर अन्त तक शुद्ध रहने वाले, शुद्धाचरण को ही मित्र मानने वाले पूर्वाभिषिक्त अत्यन्त प्रिय पृथ्वीपतियों के बीच अत्यन्त सुखपूर्वक रहती हुई भी अतिश्रेष्ठ स्वामी की कामना रखने वाली मैं तुष्टि नहीं प्राप्त करती हूँ ।।८१।। अपनी बुद्धि से मैं ऐसे स्वामी की आकांक्षा करती हूँ जिसकी बराबरी का कोई दूसरा इस संसार में न हो तथा जिसके नाम से जुड़ जाने पर मैं अविस्मरणीय हो जाऊँ । सखी ! उसको पाने के लिए ही मैं व्रत कर रही हूँ ।८२।। जिस कारण मैं यहाँ तप कर रही हूँ वह बात मैंने तुमसे बता दी । अब मेरे कुतूहल को भी तुम्हारे आगमन का प्रयोजन जानकर शान्त हो जाना चाहिए ।।८३।। पयस्विनी-सरयू-ने तपस्विनी-अयोध्या-की बातें सुनकर और सम्पूर्ण रहस्य को जानकर अपने मन में नारायण का स्मरण करती हुई अयोध्या से कहा ।।८४।। विप्रवर मेधातिथि की पुत्री अरुन्धती जो मानससर में रहतीं थी, उसका विवाह वशिष्ठ के साथ हिमालय की शिखर पर सम्पन्न हुआ था ।।८५।। उस समय उनके संस्कार प्रयुक्त अवभृथ (स्नान) के समयमें जल की जो बूँदें पर्वतशिखर, सरोवर तथा कन्दरा में गिरीं वे ही सात नदियों (की उत्पत्ति) का बीज बन गईं ।।८६।।

सन्तीह शिप्रा ननु कौशिकीति कापूर्ववेरी शुभगोमती च
वै देविकेयं सरयूरिरावती सप्ताऽपि नद्यो हरिपादरक्ताः ।८७।

हंसावतारस्य च सन्निधौ यद् हिमाद्रिदर्यां पतितं करेतः
तस्यैव निष्कृष्टतमं स्वरूपं त्वन्नेत्रगेयं सरयूपदाख्या ।८८।

पितुर्निदेशात्स्वजनान् विमुच्य स्वजन्मसाफल्यमवाप्तयेऽहम्
अन्वेष्टुमायामि पतिं स्वकीयं नारायणं यस्तमसः परस्तात् ।।

ततोऽधिदेवी सरयूवचांसि प्रणाशयितॄणि बहून्यघांसि
संसाररोगार्थरसायनानि श्रुत्वा पुनर्वाचमुदाजहार ।९०।

कल्पे पुराऽहं न लघूपभुज्य राजन्यवीरानतुषं यथावत्
ममाभिलाषो नितरां प्रवृद्धो हविःप्रदानादिव कृष्णवर्त्मा ।९१।

साऽहं तपः सूर्यनिविष्टदृष्टिर्व्रतैकमग्नाऽकरवं तदानीम्
संतोष्य नारायणमापिपम्मे मनोऽनुकूलं स्ववरं तमेव ।९२।

शिप्रा, कौशिकी, कावेरी, गोमती, देविका, सरयू तथा इरावती ये सात नदियाँ हरिचरण की अनुरागिणी भी हैं ।।८७।। हंसावतार के पास हिमालय की कन्दरा में जो जल की बूंद गिरी उसकी ही अन्तिम परिणति 'सरयू' नाम वाली तुम्हारी आँखों के समक्ष उपस्थित है ।।८८।। पिता के आदेश से अपने जनों को छोड़ कर अपने जीवन की सफलता के लिए अपने पति नारायण को खोजने के लिए आ रही हूँ, जो तमस् से बहुत परे हैं ।।८९।। इसके बाद उस अधिदेवी-अयोध्या-ने सरयू की उन बातों को सुनकर, जो अनेक पापों का नाश करने वाली थीं तथा भवरोग के लिए रसायन स्वरूप थी, पुनः कहना प्रारम्भ किया ।।९०।। पुराकल्प में अनेक राजन्य वीरों का बहुशः उपयोग करके जब मैं भलीभाँति संतुष्ट नहीं हुई तो हवि पाकर अग्नि के समान मेरा भी अभिलाष बढ़ने ही लगा ।।९१।। फिर तो सूर्य की ओर दृष्टि करके व्रत में एकदम मग्न होती हुई मैंने तप किया तथा नारायण को संतुष्ट कर अपने अनुकूल उन्हीं को वर पा लिया ।।९२-९३।।

सोढुं न शक्तेप्सितविप्रयोगं दन्दह्यमाना मदनाग्निनाऽहम्
प्रियाप्तिकालं परिबोद्धुकामा यदा विरञ्चिं समतोषयश्च ।६३।
तदाऽस्मि प्रोक्ता विधिना व्रतान्ते व्रतावधिस्ते सरयूसमागमः
दैवादिदानीं परिपूर्णकामा पश्यामि यत्त्वामिह सानुकूलाम् ।६४
त्वमागता श्रीपुरुषोत्तमोऽपि ध्रुवं भुवं शीघ्रमलङ्करिष्यति
चन्द्रागमात्पूर्वमनन्तकक्षां व्याप्नोति चन्द्रस्य सुधैव नित्यम् ।६५।
नारायणीवाचिकतो निगूढं गन्तव्यमासाद्य भृशं प्रसन्ना
सापत्न्यचिन्ताग्रसिता तदैव सती विमूढा न ययौ न तस्थौ ।।
तदेङ्गितज्ञा नगरी सहासं प्रोवाच हृद्यां सरयूं सकम्पाम्
बिभीहि माऽऽलि त्वमिदं विचिन्त्य सुधा विषं स्याद् गरलं सुधा
क्वचित् ।६७।
स्वधर्मसंलग्नमनस्विनां तु सर्वेष्टपूर्त्यै लगतां पतीनाम्
अन्तःपुरे तत्र महाप्रभूणां सापत्न्यभावो न भवेत्कदाचित् । ६८

लेकिन जब मैं इष्ट के वियोग को सहन करने में असमर्थ हो गई और कामाग्नि से अतिशय जल उठी तो प्रियप्राप्ति के समय को जानने की इच्छा वाली मैं ब्रह्मा को जब संतुष्ट किया तो व्रत के अन्त में ब्रह्मा के द्वारा मुझे बताया गया कि मेरे व्रत की अवधि सरयू से भेंट होना है । भाग्यवश आज मैं परिपूर्ण काम हो गई जो तुमको अनुकूल देख रही हूँ ।।६४।। तुम आ गई । अब श्रीपुरुषोत्तम भी शीघ्र ही इस पृथ्वी को अलङ्कृत करेंगे । चन्द्र के आगमन से पूर्व चन्द्र की ज्योत्स्ना निश्चित रूप से आकाश में आ जाती है ।।६५।। नारायणी के सन्देश से अपने निगूढ गन्तव्य स्थान को जानकर अत्यन्त प्रसन्न हुई सरयू उस समय अयोध्या की बात सुनने पर- सौत की चिन्ता से ग्रसित होकर न आगे बढ़ पाई और न रुक ही सकी ।।६६।। उस समय भावों को पहचानने वाली नगरी ने हासपूर्वक प्रिय सरयू से, जो काँप रही थी, कहा-'सखि! इसे सोच कर डरो मत । क्योंकि कभी अमृत विष हो जाता है और विष अमृत हो जाता है ।।६७।। अपने धर्म में तत्पर मनस्वियों, सबके इष्टपूर्ति में संलग्न स्वामियों, महाप्रभुओं के अन्तःपुर में कभी भी सापत्न्यभाव होता ही नहीं है ।।६८।।

स्वधर्मलग्ना बहुशो रमण्यः पुमांसमेकं परितोषयन्ति
सुसंहिताः किं न विशेषणानां विशेष्यमेकं प्रतिपादयन्ति ।९९।
विभाकरो नित्यमसौ विहायसा गच्छेन्न किं द्वादशराशिपार्श्वे
किं वा समस्ता उडवो नभःस्थाः हिमांशुमेव स्वपतिं न मन्वते ।।
न चारुता या न धवाय रोचते धवो न यो नो सहधर्मिणीमतः
सीमन्तिनी सापि कलङ्कयोग्या या चारुतायै यतते न पत्युः ।१०१
अपांपतिस्ते विहितः पतिर्यो ददाति वासं हरये पृदाकौ
अलौकिकीदृष्टिवशाद्धि नार्यो विष्णुं स्वकीयं पतिमामनन्ति ।।
अलं विषादेन कृतं ह्रिया वा न वा प्रतीपञ्च विकल्पनीयम्
अभौतिके द्रव्यविशेषरूपे स्वत्वं समेषां परिचिन्तनीयम् । १०३
प्रत्यक्परात्मा परिपूर्णकामो भवेत्कदाचिन्न विखण्डनीयः
अयं ममाऽयं त इतीवबुद्ध्या विभाजितः स्वार्थमभिप्रपन्नैः । १०४

अपने धर्मों में संलग्न अनेक स्त्रियाँ एक ही पुरुष की सेवा करती हैं। (तुम ही बताओ कि) विशेषणों की पङ्क्तियाँ क्या एक विशेष्य को नहीं बताती हैं ।।९९।। आकाश में घूमता हुआ सूर्य क्या बारह राशियों के पास नहीं जाता है ? अथवा आकाश में रहने वाले सभी नक्षत्र सर्वथा चन्द्रमा को अपना पति नहीं मानती हैं ? ।।१००।। वह अच्छाई अच्छाई नहीं है जो पति को अच्छी न लगे। वह पति भी पति नहीं है, यदि वह अपनी भार्या का अभिमत नहीं है। वह स्त्री भी कलङ्क के योग्य है, जो अपने पति के लाभ के लिए प्रयत्न नहीं करती है ।।१०१।। जो हरि को सर्प के ऊपर निवास प्रदान करता है वह जलनिधि ही तुम्हारा विहित पति है। क्योंकि नारियाँ तो अलौकिक दृष्टिवश विष्णु को अपना पति मानती हैं ।।१०२।। विषाद मत करो। लज्जा की कोई आवश्यकता नहीं है। और न तो इसे दूसरे ढंग से सोचो। वे द्रव्य जो अभौतिक हैं उनमें सभी का भाग सोचना चाहिए ।।१०३।। परिपूर्णकाम प्रत्यक् परात्मा कभी भी विभक्त नहीं हो सकता है। यह तो स्वार्थ में फँसे लोग 'यह मेरा है' 'यह तुम्हारा है' के द्वारा विभक्त कर रहे हैं ।।१०४।।

यथा स ते सोऽस्ति ममापि तद्वत् तथा परेषां स जडाजडानाम्
अणोरणीयान्महतो महीयान् सहैव सर्वैरनुभावनीयः । १०५

श्रमान्तसिद्धामतुलां प्रसन्नतां पुरीमुखस्थां परिदृश्य सरयूः
ससाधुवादं चरणौ विधृत्य पूर्वां स्वगन्तव्यदिशं जगाम ।१०६।

ततः स्ववामे परिधूतपापा पयस्विनीं स्वाभिमुखं स्रवन्तीम्
दूरान्नमन्तीं कलुषं हरन्तीं ददर्श दीनं वचनं वदन्तीम् ।१०७।

भ्रात्रा त्रिकूटेन विबुद्धवृत्ता स्त्रोद्धारकामा तव सेवयैव
त्वां सेवितुं सूक्ष्मपथेन देवीं पितुर्गृहाद्शीघ्रमुपागताऽस्मि ।१०८।

योगप्रचाराय शिवैकमूर्तिर्गोरक्षनाथो भवितेह भूमौ
तद्भाविपुर्या अचिरावति त्वं समागता देवि शुभं भवेत्ते ।१०९।

अनन्तरं दूरतरं प्रयाते देवर्षिसिद्धैः प्रणतैः प्रणम्याम् ।
स्रोतस्विनीं लक्षितगाङ्गभावां वीक्ष्यैवमेव स्वमनस्यकार्षीत् ।११०

जैसे वह तुम्हारा है वैसे ही मेरा भी है और इसी प्रकार सभी चर अचर का है। अणु से भी अणु तथा महान् से भी महान् वह सबके द्वारा अनुभव करने योग्य है ॥१०५॥ सरयू ने श्रम के द्वारा प्राप्त अतुल प्रसन्नता को पुरी के मुखपर देखकर उसे धन्यवाद कहती हुई उसके चरणों का स्पर्श करके अपनी गन्तव्य दिशा पूर्व की ओर चल पड़ी ।१०६। इसके बाद निष्पाप (उस सरयू ने) अपने बायें ओर से अपनी ओर आती हुई एक नदी को देखा, जो दूर से ही नमस्कार कर रही थी, कालुष्य का विनाश कर रही थी तथा दीन वाणी बोल रही थी ॥१०७॥ (दूसरी नदी ने कहा) त्रिकूट भाई से सारी बातें जानकर तुम्हारी सेवा के द्वारा अपने उद्धार की कामना से पिता के घर से शीघ्र ही सूक्ष्म पथ के द्वारा तुम देवी की सेवा के लिए मैं आई हूँ ॥१०८॥ (इसे सुनकर सरयू ने कहा) योग के प्रचार के लिए शिव की मूर्ति गोरक्षनाथ इस भूमि पर उत्पन्न होंगे। उनकी होने वाली नगरी से होकर आ रही हो (अतः) हे देवि अचिरावति ! तुम्हारा कल्याण हो ॥१०९॥ इसके बाद कुछ दूर जाने पर (उस सरयू ने) विनत देव ऋषि और सिद्धों के द्वारा प्रणाम की जाती हुई, जिससे उसका गङ्गाभाव प्रकट हो रहा था ऐसी एक नदी को देखकर अपने मन में सोचा ॥११०॥

येषां न कुत्रापि गतिस्तदीयां गतिं प्रतीयं दृढनिश्चयाऽऽर्या ।
नारायणं नीरपतिं वयस्या मया सहेमौ ननु मेलयिष्यति ।१११

विष्णोरियं सच्चरणाद् विनिःसृता पुनर्भवित्री त्वहमङ्कशायिनी ।
सेवेत सा माञ्च वियोगतप्तामितीव हेतोः प्रविवेश गङ्गाम् ।।

ज्ञात्वैवं मनसि गतां कथां सरय्वा उद्धर्तुं कृतनियमा च भीष्मसूःसा
आयान्तीं धृतनियमां धवानुरक्तां दृष्ट्वा सादरमल-
मात्मसाच्चकार । ११३

श्रीश्यामान्वितसुन्दरोऽस्ति जनको माता च यस्याम्बिका,
यः श्रीराजकिशोर आप्तचरितः शाण्डिल्यवंशोद्भवः ।
तस्यास्मिन् गिरिजागिरीशकृपया लब्धस्वरूपे महा-
काव्ये चारुणि राघवेन्द्रचरिते सर्गोऽयमादिर्गतः ।११४।

जिनकी कहीं भी गति नहीं होने वाली है उनकी भी गति के प्रति दृढ़ निश्चय रखने वाली यह आर्या, जो मेरी सखी के समान है, निश्चय ही मुझसे नारायण तथा नीरपति दोनों को मिला देगी ॥१११॥ यह नदी विष्णु के शुभ चरणों से निकली है और मैं तो उनके गोद में बैठने वाली हूँ। इसलिए हो सकता है कि मुझ वियोगतप्ता की यह सेवा भी करे, ऐसा मानकर ही मानों वह-सरयू-गङ्गा में प्रवृष्ट हो गई ॥११२॥ सरयू के मन में होने वाली इस प्रकार की कथा को जानकर सबका उद्धार करने में दीक्षित उस भीष्मजननी गङ्गा ने अपने पति में अनुरक्त नियम धारण करने वाली आती हुई सरयू को सादर अपने में मिला लिया ।११३। जिसके पिता श्रीश्यामसुन्दर तथा जिनकी माता अम्बिका देवी हैं तथा जो (स्वयम्) शाण्डिल्य वंश में उत्पन्न आप्तचरित राजकिशोर (नामक) हैं, उनके गिरिजा गिरीश की कृपा से प्राप्तस्वरूप इस चारु राघवेन्द्र चरित नामक महाकाव्य में प्रथम सर्ग समाप्त हुआ ॥११४॥

द्वितीयः सर्गः

अपाकर्तुं चिरं भारं मेदिनी बहुधर्षिता
माहेयीरूपमाश्रित्य विधातुः शरणं गता ।१।
वीक्ष्य सर्वंसहां तत्र नैचिकीरूपधारिणीम्
अनुमाय धरादुःखं विश्वसृड्व्यचलत्तदा ।२।
विश्वम्भरे दशेयं का कथं कस्मात् कदा वद
मा शोचीरिदानीं त्वं सदानन्दाग्रतः स्थिता ।३।
यत्नधारितधैर्यायाः क्षमाया अश्रुपङ्क्तयः
विधिवाक्यविलं प्राप्य बहिरगमन्निरर्गलम् ।४।
बहोः कालात्समाश्वास्य विधिं नत्वा समासतः
प्रारभत स्वकं वृत्तं वक्तुं विगतसाध्वसा ।५।
पुराऽयोध्यास्वरूपेण पतिं प्राप्तुमधोक्षजम्
कृतं यद् दुष्करं तात त्वं जानासि तपः स्वयम् ।६।

पीड़ित पृथ्वी अपने चिरकालिक भार को हटाने के लिए गौ का रूप बनाकर विधाता के शरण में गई ॥ ॥ सब कुछ सहने वाली को गौ रूप धारण किये हुये देखकर पृथ्वी के दुःख का अनुमान करके विश्व को बनाने वाले विचलित हो उठे ॥२॥ (उन्होंने पूछा) विश्व का पोषण करने वाली ! तुम्हारी यह क्या दशा है, कैसे है तथा कब से है । शोक मत करो । इस समय तुम सदानन्द के समक्ष हो ॥३॥ प्रयत्न से धैर्य धारण करने वाली उस क्षमा के आँसू ब्रह्मा के वाक्य से बने छिद्र को पाकर बे रोक - टोक बाहर निकलने लगे ॥४॥ बहुत समय के बाद आश्वस्त होकर एवं ब्रह्मा को उचित ढंग से नमस्कार करके (पृथ्वी) निर्भय होकर अपनी कहानी कहना प्रारम्भ किया ॥५॥ तात ! प्राचीन काल में अयोध्या का रूप धारण करके विष्णु को अपना पति बनाने के लिए जिस दुष्कर तप को किया था इसे आप जानते ही हैं ॥६॥

कथा दूरं गता ब्रह्मन् रसराजस्य मोददा
इदानीममितप्ताऽहं दुर्वृत्तैः राक्षसाधमैः ।७।
विलुप्तं वैदिकं कर्म कदाचारप्रवर्द्धनात्
तीर्थानि च विनष्टानि मर्यादाननुपालनात् ।८।
सन्तु गागोऽथवा विप्राः किं वा सद्धर्मचारिणः
अभिलषन्ति न स्थातुं क्षणमेकं ममोपरि ।९।
प्रत्यहं नियमैर्नूत्नैरज्ञानपरिवृंहितैः
रक्तरूपकरादानैः प्रजा नीरक्ततां गताः ।१०।
निर्मलाश्च सुहासिन्यः शिथिले भानुजे करे
ब्रूहि जीवन्ति पद्मिन्यः किं हिमकरपीडिताः ।११।
यदि त्वत्कारणात्पूर्वं मया प्राप्तं निजं वपुः
तदा मे रक्षणे नूनं कुरु यत्नं पितामह ।१२।
धात्रीतापात्भृशं तप्तो विधाता सह दैवतैः
कृशानुरेतसो वाक्याद्दैत्यारिं समुपास्तुवन् ।१३।

ब्रह्मन् ! आनन्द देने वाली रसराज की कथा तो दूर चली गई। इस समय तो मैं दुराचारी नीच राक्षसों के द्वारा सताई जा रही हूँ ॥७॥ कदाचार के बढ़ने के कारण वैदिक कार्य लुप्त हो गये हैं तथा मर्यादा का पालन न होने से तीर्थ भी विनष्ट हो गये हैं ॥८॥ गायें हो या ब्राह्मण हों अथवा सद्धर्म का आचरण करने वाले हों सभी मेरे ऊपर एक क्षण भी ठहरना नहीं चाहते हैं ॥९॥ प्रतिदिन अज्ञान के द्वारा बनाये गये नये नियमों से तथा रक्तरूप करों के लेने से प्रजा बिना रक्त के हो गई है ॥१०॥ आप बतायें, निर्मल सुहासिनी कमलिनियाँ सूर्य के किरणों के शिथिल होने पर हिमकर से पीड़ित होकर जी सकती हैं ॥११॥ यदि आपके कारण पुराकाल में मैंने अपना स्वरूप प्राप्त किया तो हे पितामह ! मेरी रक्षा का प्रयत्न करें ॥१२॥ धात्री-पृथ्वी-के ताप से तप्त विधाता ने देवों के साथ शङ्कर के परामर्श से विष्णु की स्तुति की ॥१३॥

आविर्भूय तदा विष्णुः शङ्खचक्रगदाधरः
पीताम्बरो घनश्यामः प्रोवाच जगतां पतिः ।१४।
शामयध्वं सुराः सर्वे धरादुःखेन दुःखिताः
उदेति सविता नित्यं क्षणदागमनान्तरम् ।१५।
व्यवस्था शिथिला कामं जाता वेदाऽविरोधिनी
प्रकृष्टा इव दृश्यन्ते साम्प्रतं क्षणदाचराः ।१६।
अयमुत्पादितो लोकश्चित्रः सदसन्मिश्रितः
असदभ्युन्नतेः काल उपनाशं वितिष्ठते ।१७।
पुरा प्राप्तवराऽयोध्या मत्समं स्वपतिं प्रियम्
इदानीमपि कृच्छं सा तपश्चरति दुश्चरम् ।१८।
पूर्वं ब्रह्मसुतोद्वाहे ब्रह्मणः सरसश्च्युता
बहोः कालात्स्रवन्ती सा सरयूर्मां प्रतीक्षते ।१९।
पूर्वं माञ्च सुतीयन्तौ ख्यातावदितिकश्यपौ
भाविनौ नृपरूपेण स्वतपःफलकाङ्क्षिणौ ।२०।

उस समय शङ्ख चक्र गदा धारण करने वाले, पीताम्बर, घन के समान श्याम रंग वाले, जगत्स्वामी विष्णु आविर्भूत होकर कहने लगे ॥१४॥ पृथ्वी के दुःख से दुःखित सभी देव ! आप लोग शान्त हों। रात्रि बीतने पर ही सूर्य का उदय होता है ॥१५॥ मानता हूँ कि आजकल वेदानुकूल व्यवस्था शिथिल हो गई है तथा रात्रिचर उन्नत जैसे दिखाई दे रहे हैं ॥१६॥ यह लोक ऐसा बनाया ही गया है कि इसमें सत् और असत् दोनों मिला है। असत् की उन्नति का यह काल अब नाश के किनारे है ॥१७॥ प्राचीन काल में जो अयोध्या मेरे समान प्रिय पति पाने का वरदान प्राप्त कर चुकी है आज भी वह दुश्चर कठिन तप कर रही है ॥१८॥ पहले ब्रह्मसुता-अरुन्धती-के विवाह में ब्रह्मसर से निकली सरयू बहुत दिनों से बहती हुई मेरी प्रतीक्षा कर रही है ॥१९॥ मुझे ही सुत बनाने की इच्छावाले पूर्वकाल में ख्यात अदिति और कश्यप, जो आगे नृप होने वाले हैं, अपनी तपस्या के फल की आकाङ्क्षा लगाये बैठे हैं ॥२०॥

द्वास्थावेव मदीयौ द्वौ निजोद्धाराभिकाङ्क्षया
परिवृत्य प्रतीक्षेते व्यवस्थां लौकिकीं शुभाम् ।२१।
अहमप्यस्मि देवर्षेः शापाज्जिगमिषुर्भुवम्
तोषाय सुधियां नित्यं मद्विषयाभिलाषिणाम् ।२२।
आगमिष्याम्यहं शीघ्रमपनेतुं धरारुजम्
भविष्यत्यचिरादेव शक्तिर्मेऽपि धरासुता ।२३।
आदित्यताविकासाय दूरीकर्तुं च दैत्यताम्
भोगाय मानुषस्यापि यूयं भवत वानराः ।२४।
युष्माकं भवतात्शर्म दिष्टिर्वो मर्म रक्षतु
जनाः कुर्वन्तु स्वं कर्म धर्मो नित्यं प्रवर्तताम् ।२५।
एवमुक्त्वा वचो याते हरावन्तर्हिते सुराः
सुप्रसन्नाः परावृत्य नियोगं स्वमचिन्तयन् ।२६।
इच्छावती क्रमात्तत्र नृपैरिक्ष्वाकुवंशजैः
सुष्ठु तैः रममाणा साऽयोध्याऽयोध्याऽभवत्तदा ।२७।

मेरे ही दो द्वारपाल अपने उद्धार की आकाङ्क्षा से लोकसिद्ध शुद्ध व्यवस्था को उलट पलट कर मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं ॥२१॥ मैं भी देवर्षि-नारद-के शाप से मेरे विषय में चिन्तन करने वाले बुधजनों के तुष्टि के लिए पृथ्वी पर जाने की इच्छा रख रहा हूँ ॥२२॥ (अतः) मैं पृथ्वी की व्याधि को दूर करने के लिए शीघ्र ही (पृथ्वी पर) आऊँगा और मेरी शक्ति भी शीघ्र हो पृथ्वी की पुत्री बनेगी ॥२३॥ देवत्व के विकास के लिए और दैत्यत्व को दूर करने के लिए तथा मनुष्यत्व के भोग के लिए तुम लोग भी बानर बनो ॥२४॥ तुम लोगों का कल्याण हो। दैव तुम्हारे मर्म की रक्षा करे। सभी जन स्वविहित कर्मों को करें तथा धर्म नित्यरूप से स्थापित हो ॥२५॥ ऐसी बात कह कर हरि के अन्तर्हित हो जाने पर सुप्रसन्न देव लोग भी अपने कर्त्तव्य के विषय में सोचने लगे। २६॥ (हरि की) इच्छावाली अयोध्या भी क्रमशः इक्ष्वाकु वंशीय राजाओं के साथ भलीभाँति रमण करती हुई उस समय वस्तुतः अयोध्या-दूसरे से न जीते जाने योग्य-हो गई ॥२७॥

कृतराज्यपरित्यागे सा मान्येऽजे रघोः सुते
तदात्मजं रणोत्कृष्टं मेने दशरथं पतिम् ।२८।
अयोध्या सुचरित्राऽऽसीदनीर्ष्याऽनभिसारिका
प्रणताशेषसामन्तं पतिं प्राप्य सुसङ्गतम् ।२९।
करदीकृतभूपालो वरदीकृतदैवतः
अयोध्याधिपतिर्जातो विश्वाधिपतिसंज्ञकः ।३०।
वलेर्लब्धोपहारेण स्वानाकरथवर्त्मना
सत्रा दशरथेनोर्वी गुर्वीं निर्वृतिमन्वभूत् ।३१।
सनूपुरौरगैः रत्नैश्चन्द्रादित्यकुण्डला
बहुशस्तेन संभुक्ता सा रत्नाकरमेखला ।३२।
दशदिक्षु रथेनास्य गमनान्नैव केवलम्
दशबुद्धिबलेभ्योऽपि राजा दशरथः स्मृतः।३३।
दशेन्द्रियहयानाशु मनोरश्मिनियन्त्रितान्
नाऽश्लाघ्यः प्रकृतौ नित्यं स कुर्वन्साधुवाहिनः। ३४।

रघु के पुत्र माननीय अज के राज्यपरित्याग कर देने पर वह-अयोध्या-उनके आत्मज दशरथ को अपना पति मान लिया जो रण में अत्यन्त उत्कृष्ट थे ।।२८।। वह अयोध्या भी अशेष राजाओं से पूजित एवं सुसङ्गत पति को पाकर सुन्दर चरित्रवाली, दूसरे से ईर्ष्या न करने वाली हो गई ।।२९।। सभी राजाओं को कर देने वाला बनाकर अयोध्याधिपति-दशरथ-विश्व के अधिपति बन गये ।।३०।। बलि से भी उपहार पाने वाले तथा स्वर्ग तक जिनके रथ का मार्ग था उस दशरथ के साथ पृथ्वी ने परम शान्ति का अनुभव किया ।।३१।। उस दशरथ के द्वारा वह पृथ्वी भलीभाँति उपभुक्त हुई जो नागमणियों से पाजेब वाली थी, जिसके कुण्डल चन्द्रमा तथा आदित्य थे और जिसकी करधन समुद्र था ।।३२।। केवल दश दिशाओं में इनके रथ के गमन से नहीं, अपितु बुद्धि के दस बलों के कारण भी इन्हें दशरथ कहा जाता है ।।३३।। मन की लगाम से नियन्त्रित इन्द्रिय रूपी दस घोड़ों को शीघ्र कार्य योग्य बनाते हुए प्रजा में क्या वे नित्य प्रशंसनीय नहीं थे ? अर्थात् थे ।।३४।।

नावृष्टिरतिवृष्टिर्वा नाखवः शलभाः शुकाः
प्रत्यासन्ना नृपा नासन् तस्मिन् राज्यं प्रशासति ।३५।

समयानुसारिणी वृष्टिः कृष्टिहृष्टिप्रदायिनी
गृष्टितुष्टिकरी जाता सस्यानामभिवर्द्धनात् ।३६।

षड्गुणान्चिन्तयन्नित्यं त्रिशक्तिपरिसंयुतः
त्रिवर्गे जागरूकोऽयं नोपजाप्यः सदाऽभवत् ।३७।

अभिक्षुकेऽस्य राज्ये तु दानं दन्तिकपोलयोः
दण्डः साम विभेदश्च यतौ वेदे तदङ्गके ।३८।

समर्थनाववादैश्च भजमानानि वर्द्धयन्
उपधाचिन्तनं तेन निश्चितं शब्दवेतृषु ।३९।

सद्वितीयोऽद्वितीयोऽयं प्रजायै विहितव्ययः
प्रकृतेः रञ्जनाद्राजा द्वितीयाचन्द्रवद् बभौ ।४०।

उनके राज्य शासन करते रहने पर अवृष्टि, अतिवृष्टि, चूहे, टिड्डे तथा तोते नहीं थे इनकी आपत्ति नहीं थी) । और न कोई राजा चढ़ाई ही करता था । वृष्टि समय के अनुसार होती थी । कृषि प्रसन्नता देने वाली थी तथा धान्यों के वर्द्धन से गायों को तुष्ट करने वाली थी ।३५। नित्य ही ६ गुणों का चिन्तन करते हुये तीन शक्तियों से युक्त तथा त्रिवर्ग के प्रति जागरूक यह कभी उपजाप्य नहीं हुए ।।३७।। इनके भिक्षुविरहित राज्य में दान का दर्शन केवल हाथियों के कपोल पर था । दण्ड और साम का भेद केवल यति, वेद तथा वेदाङ्गों में था ।।३८।। समर्थन और अववाद से प्रजा को बढ़ाते हुये इन्होंने उपधा का चिन्तन वैयाकरणों में छोड़ रखा था ।।३९।। द्वितीया के साथ रहते हुए भी अद्वितीय यह-दशरथ-जो प्रजा के लिए व्यय करते थे, प्रकृति के रञ्जन के कारण राजा थे और द्वितीया के चन्द्र के समान सुशोभित हुये ।।४०।।

राज्यभारपरिश्रान्तो विनुनोदयिषावशात्
एकदासोन्महाराजो मृगयाकर्मणि स्थितः ।४१।
भास्करेऽस्ताचलं याते नीडमायात्सु पक्षिषु
प्रशान्ते मर्मरारावे शुश्राव बुडबध्वनिम् ।४२।
जलार्थिगजं बुद्ध्वा पत्रिणा शब्दबेधिना
प्राणान्जहार बालस्य कस्यचित् पितृसेविनः ।४३।
निशम्य चोत्कृतं तस्य नदोकच्छमुपस्थितः
ददर्श श्रवणं दीनं कैशोरे वयसि स्थितम् ।४४।
पुलिने कृतसंस्थानं विलुठन्तं मुहुर्मुहुः
हा मातः हा पितः शब्दैः कुर्वन्तं करुणध्वनिम् ४५।
नृपेण शोकतप्तेन द्रष्टुं सेहे न तन्मुखम्
वायुना नीयमानेन मेघेनेन्दुमुखं यथा ।४६।
स्वाघानि चिन्तयन्राजा विवर्णश्चाश्रुपूरितः
शुश्राव पार्श्वतश्चास्य विलापं हृद्विदारकम् ४७।

एक समय राज्यभार से थके महाराज मन बहलाने की इच्छा से शिकार में प्रवृत्त थे ॥४१॥ सूर्य के अस्ताचल जाने पर पक्षियों के घोसला में लौट आने पर पत्तों की खड़खड़ाहट के बन्द होने पर उन्होंने बुडब-बुडब जैसी ध्वनि सुनी ॥४२॥ जल पीने के लिए आये हुये हाथी को जानकर उन्होंने शब्दबेधी बाण से किसी पितृपरायण बालक के प्राणों का हरण कर लिया ॥४३॥ उसके चीत्कार को सुनकर सरयू के कक्ष में उपस्थित राजा-ने किशोरावस्था में वर्तमान दीन श्रवण को देखा जो भीगे बालू पर स्थित था, बार-बार लोट रहा था तथा हे मातः हे पितः कहकर करुणध्वनि उत्पन्न कर रहा था ॥४४-४५॥ वायु के द्वारा ले जाते हुये मेघ के द्वारा जैसे चन्द्रमा का मुख नहीं देखा जाता है उसी प्रकार शोकतप्त राजा के द्वारा उसका मुख नहीं देखा गया ॥४६॥ अपने पापों का चिन्तन करते हुये विवर्ण तथा अश्रुपूरित राजा ने पास में उसका हृदयविदारक विलाप सुना ॥४७॥

असाम्प्रतमिदानीं मे जातो बध्योऽस्मि साम्प्रतम्
न जाने हेतुना केनाऽकार्यं केनाऽप्यनुष्ठितम् ।४८।

गतपुष्पलतायाश्च मातुरन्त्यं सुमं हरन्
सोऽकरोन्मातरन्नूनमश्रीकामपुनर्भवाम् ।४९।

स्वभावान्मृदुमेनं मां जात्या वैश्यमकर्कशम्
हत्वा कश्चिन्न राजन्या हस्तौ पङ्कीकरिष्यति ५०।

अवश्यं रक्षसा बध्योऽधुना जातो निशामुखे
विशुद्धः सम्प्रदायेन क शूरो मां हनिष्यति ।५१।

अदृष्ट्वा मां क्षणादूर्ध्वं पितरौ किं करिष्यतः
हं हो विधे कृतेरेवं न पूज्यो जगतीतले ।५२।

वदन्नेवं वचो दीनं व्रणेन परिचोदितः
मुमूर्षुर्विलुठन् तत्राऽऽद्राक्षीदेकं धनुर्धरम् ।५३।

इस समय मैं बध के योग्य हो गया हूँ, यह बड़ा अनुचित हुआ। पता नहीं किस हेतु से किसी के द्वारा यह अयोग्य कार्य किया गया है ॥४८॥ मनुष्य लता रूप माँ के अन्तिम सुमन का अपहरण करके उसने निश्चय ही माँ को फिर न आने वाली कान्ति से विहीन कर दिया ॥४९॥ स्वभाव से मृदु जाति से वैश्य तथा अकर्कश मुझको मारकर कोई राजा अपने हाथ को कलुषित नहीं करेगा ॥५०॥ अवश्य ही रात्रि के प्रारम्भ में इस समय किसी राक्षस के द्वारा मैं मारा गया हूँ। सम्प्रदायशुद्ध कोई शूर मुझे क्यों मारेगा ॥५१॥ एक क्षण के बाद मुझे न देखकर मेरी माँ और पिता क्या करेंगे। हे ब्रह्मन्! इस प्रकार के कार्यों के कारण ही तुम संसार में पूजित नहीं होते हो ॥५२॥ घाव से पीड़ित, मरने के निकट स्थित, लोटता हुआ तथा इस प्रकार का दीन वचन बोलता हुआ वह वहाँ एक धनुर्धर व्यक्ति को देखा ॥५३॥

परिणामवशाद् ज्ञात्वा निहन्तारमुपस्थितम्
हस्ताभ्यां व्रणमाच्छादय कृच्छ्रेण व्याजहार सः ५४।

कृतं मया किं यदनेन यातनां वद प्रभो मामनुभावयेथाः
निपातयन्मां निरयेऽथवा किं प्रयोजनं सिद्धमतः करिष्यसि ।५५।

कस्त्वं गुरुः कोऽस्ति च येन शिक्षितो निरस्त्रघाते हि कृतप्रयत्नः
अवोचिपीडामनुभाव्यमानो लाभेन वा केन युतो भविष्यति ।५६।

यद्यस्ति हन्तुं परकीयलक्ष्यं लक्ष्यीकृतं शस्त्रभृता त्वयैवम्
ऊर्जस्वलेनात्र न किं विहन्यते प्रवृत्तिमात्रं कुपथङ्गमानाम् ।५७।

सोद्देश्यमेषा सरयूर्वहत्यतो भवाब्धितस्तारयितुं स्रवन्तीं
प्रयत्नमस्या वितथं न कुर्वन् कथं ममोद्देश्यविघातकस्त्वम् ।५८।

चक्षुर्विहिनौ पितरौ मदीयौ कर्तुं पवित्रौ गतकल्मषौ तौ
तीर्थाम्बुसेवाविधिनाऽभ्यमित्य दैवादहं ते सरयूमुपागतः ।५९।

परिणामवश अपने मारने वाले को उपस्थित जानकर दोनों हाथों से घाव को ढँककर कठिनाई से बोला ।।५४।। हे प्रभो ! मैंने ऐसा क्या किया जो इस प्रकार की यातना का अनुभव करा रहे हो। अथवा मुझे इस प्रकार की दुर्गति में डालकर अपना कौन सा प्रयोजन सिद्ध करोगे ।।५५।। तुम कौन हो और तुम्हारे गुरु कौन हैं, जिनसे तुम शिक्षित हुये हो अथवा इस नारकीय पीड़ा का अनुभव कराते हुये तुम किस लाभ से युक्त हो जावोगे ।।५६।। शस्त्रधारी तुम यदि इसी प्रकार दूसरे के अभीष्ट को नष्ट करना ही अपना लक्ष्य बना रखा है तो तुम जैसे अति बलवान् के द्वारा कुपथगामी सभी लोगों की प्रवृत्ति का हनन क्यों नहीं किया जाता है ?५७।। यह सरयू उद्देश्यविशेष से बह रही है। भवसागर से पार होने के लिए यहाँ निकली हु है। इसके प्रयत्न को व्यर्थ न बना कर मेरे उद्देश्य के विघातक तुम कैसे हो गये ?५८।। अपने पराक्रम से शत्रु का सामना करने वाले ! आँखों से हीन अपने माँ-बाप को तीर्थजल सेवन के द्वारा निष्पाप तथा पवित्र करने के लिए संयोगवश तुम्हारे सरयू के पास आ गया ।।५९।।

विहङ्गिकाशिक्यगतौ सदेशे संस्थाप्य पुत्रागमनोत्सुकौ तौ
द्वयोः पिपासामपहर्तुकामः आयानुदन्नन्तव बध्यभूतः ।६०।

त्वत्क्षिप्तपत्रिप्रतिघातनेन गच्छन्कृतान्तायतनं क्षणेन
शृणोमि किं वा किमु वा ब्रवीमि त्रिविक्रमो मे शरणं सदाऽस्तु।

यदस्तु योवाऽसि ममैव भाग्यं येनाभ्यवस्कन्दित एष जातः
विधेहि पित्रोर्मम सुव्यवस्थां वैरस्य निर्यातनमात्रमस्तु ।६२।

नवं प्राप्तुं स्वदेहं सः सहसा कार्णचक्षुषः
निर्मोकं परितत्याज स्वं चाक्षुःश्रवसो यथा ।६३।

श्रोतरि निष्ठुरे जाते कृतं व्यर्थाभिभाषया
इतीव हेतोर्वालस्य प्राणा जग्मुः स्वमालयम् ।६४।

अदृष्टकारणाज्जाते घटनाव्युत्क्रमे नवे
सार्वभौमोऽवसन्नः सन्शोकभूमिं तदा गतः ।६५।

बँहगी के सीके पर रखे गये और प्रत्यागमन के प्रति उत्सुक उन दोनों को निकट में स्थापित करके उनकी प्यास बुझाने की इच्छा वाला मैं जल की इच्छा से आया गया तुम्हारे द्वारा बध का पात्र बन गया ॥६०॥ तुम्हारे द्वारा छोड़े गये बाण के घात से क्षण में ही यमराज के घर जाता हुआ मैं अब क्या सुनूँ और क्या कहूँ। मेरे शरण अब त्रिविक्रम (भगवान्) ही हों ।६१।। जो भी हो, तुम जो भी हो। यह मेरा भाग्य ही है, जिससे मैं मारा गया। तुम मेरी माता और पिता के लिए सुन्दर व्यवस्था करना। अब बैर की समाप्ति हो जानी चाहिये ।।६२।। कान से देखने वाले का यह पुत्र सद्यः अपना नया देह पाने के लिए आँख से सुनने वाले के पुत्र के समान केंचुल उतार दिया ।।६३।। 'श्रोता के निष्ठुर होने पर व्यर्थ के भाषण से क्या लाभ' मानो इसी कारण से उस लड़का के प्राण अपने गृह चले गये ।।६४।। अदृष्ट के कारण इस नये विपरीत घटना क्रम के हो जाने पर सार्वभौम (राजा) अवसन्न होकर शोकाकुल हो गये ।।६५।।

ततो नत्वा हरेर्मायां स घटनापटीयसीम्
शोकसंविग्नहृद् राजा ययौ तापसदम्पती ।६६।

दृष्ट्वा समुत्सुकौ वृद्धौ पुत्रावर्तनकाङ्क्षिणौ
रसज्ञा तालुलग्नाऽभूद् राज्ञः पापाभिशंसने ।६७।

कथञ्चिद् दृढतां स्वस्मिन्नानीय स रसेश्वरः
अरुन्तुदां शनैर्वाचं ससर्ज करकामिव ।६८।

प्रणमामि महात्मानौ पानीयं समुपस्थितम्
अद्यारभ्य सुतस्थाने विद्यातं मां धनुर्धरम् ।६९।

निशम्य रुषतीं घोरां दारुणां क्लेशदां गिरम्
वाणीवज्राहतौ वृद्धौ मूर्च्छयेवाभिरक्षितौ ।७०।

कथञ्चिद् धृतसंज्ञौ तौ नृपदत्ताम्बुसेचनात्
हा पुत्रेति मुहुः शब्दैः पूरयामासतुर्दिशम् ।७१।

इसके बाद शोक से विदीर्ण हृदय वाले वे राजा घटना में पटु हरि की माया को नमस्कार कर तपस्वी दम्पति के पास गये ॥६६॥ पुत्र के लौटने की इच्छा वाले उत्सुक उन वृद्ध दम्पति को देखकर पापकथन में राजा की जीभ सूख गई ॥६७॥ (फिर) किसी प्रकार अपने में दृढ़ता लाकर उस रसेश्वर (राजा) ने ओले के समान पीड़ा पहुँचाने वाली वाणी को कहा ॥६८॥ (हे) दोनों पुण्यात्मा ! (मैं) नमस्कार करता हूँ । जल उपस्थित है । आज से पुत्र के स्थान पर मुझ धनुर्धर को दोनों जानें ॥६९॥ (इस) अकल्याणी घोर दारुण और क्लेश देने वाली वाणी को सुनकर वाणीरूप वज्र से आहत वे दोनों वृद्ध मूर्च्छा के कारण बचाये गये ॥७०॥ राजा के द्वारा दिये गये जल के छीटों से किसी प्रकार होश में आये हुए वे दोनों 'हा ! पुत्र !' इन शब्दों से दिशाओं को पूर्ण कर दिया ॥७१॥

परिदेवनमध्ये तु कालं वीक्ष्य कथञ्चन
रहोगतञ्च वृत्तान्तं कथयामास पार्थिवः ।७२।

स्वानभिज्ञं तदानीं तु बहुशो विनिवेदिते
सेवासमुत्सुके राज्ञि शोकं तत्यजतुर्न तौ ।७३।

पुत्रशोकात्तवप्राणा गच्छन्तु निजमन्दिरम्
शुश्राव तत्कृत शापं राजा दशरथस्तदा ।७४।

शापप्रतिध्वनिं श्रुत्वा मत्वाऽऽत्मानौ च शापितौ
सद्यस्ताभ्यामपि प्राणा मुक्ता विग्रहबन्धनात् ।७५।

एवं सम्पूर्णतां याते घटनामण्डले नवे
दिष्टिधर्षितभूपेन कारितञ्चौर्ध्वदैहिकम् ।७६।

चापात्प्राप्तस्य शापस्य तापादुद्विग्नमानसः
अपनेतुं स्वपापं तु पुण्यवापेऽभवद्दृढः ।७७।

इस विलाप के बीच में किसी प्रकार अवसर देखकर राजा ने एकान्त में घटी कथा को कह डाला ।।७२।। उस समय अपनी अनभिज्ञता को बहुत कहने पर भी तथा सेवा के लिये राजा के उत्सुक रहने पर भी उन दोनों ने शोक का परित्याग नहीं किया ।।७३।। उस समय राजा दशरथ ने 'पुत्रशोक से तुम्हारे प्राण अपने स्थान पर चले जाँय' इस शाप को, जो उन दोनों के द्वारा दिया गया था, सुना ।।७४।। शाप की प्रतिध्वनि को सुनकर उन दोनों ने अपने को शापित मान कर तुरंत ही शरीरबन्धन से अपने प्राणों को मुक्त कर दिया ।।७५।। इस प्रकार नये घटनाक्रम के सम्पूर्ण हो जाने पर भाग्य से रगड़े गये राजा के द्वारा (उन दोनों का) और्ध्वदैहिक (कर्म) करा दिया गया ।।७६।। चाप अर्थात् धनुष के कारण प्राप्त शाप के ताप से उद्विग्न मन वाले राजा ने अपने पाप को हटाने के लिये पुण्य के वाप अथ तू बोने में दृढ हो गये ।।७७।।

भुक्त्वा बहुविधान् भोगान् देवैरपि सुदुर्लभान्
अचिचिन्तन्महाभागः कदाचिद् भागिनं परि ।७८।

विधिनापहृतं सौख्यं प्रत्यावर्तयितुं यथा
विधिपुत्राश्रमं गन्तुं चिन्तयामास पार्थिवः ।७६।

एकस्यन्दनमारूढो जगाम कृतनिश्चयः
त्रिशक्तिभिरिवाधीशो राज्ञीभिस्तिसृभिः सह ८०।

ग्रामपर्यन्तगो राजा सद्वितीयो मुदं ययौ
अतीत्य पश्चिमामाशाममान्ते चन्द्रमा इव ।८१।

हिमाहृतं यथा पद्मं मधौ विकसितं भवेत्
अधिग्रामं तथा क्लान्तः आसीसदवनीपतिः ।८२।

क्षेत्राणि सस्यपूर्णानि वृक्षांश्च फलसंयुतान्
अदेवमातृकां भूमिं मेने स भाविसूचकान् ।८३।

राजा ने देवों के द्वारा सुदुर्लभ बहुत प्रकार के भोगों को भोग कर एक समय अपने उत्तराधिकारी के बारे में सोचा ।।७८।। ब्रह्मा के द्वारा छीने गये सुख को लौटाने के लिए राजाने ब्रह्मा के पुत्र के आश्रम को जाने के विषय में सोचा ।।७६।। निश्चय करके राजा त्रिशक्ति के समान तीन रानियों के साथ एक रथ पर चढ़ कर वहाँ गये ।।८०।। अमावस्या को बिताकर पश्चिम आशा को लङ्घित करके जिस प्रकार चन्द्र (द्वितीया के साथ आनन्द प्राप्त करता है) उसी प्रकार अपनी द्वितीया अर्थात् भार्या के साथ ग्राम तक पहुँचने पर प्रसन्न हो गये ।।८१।। हिम से आहत कमल जिस प्रकार वसन्त में विकसित होता है उसी प्रकार क्लान्त राजा (दशरथ) ग्रामों में पहुँच कर प्रसन्न हो उठे ।।८२।। वहाँ उन्होंने फसल से पूर्ण खेत, फल से युक्त वृक्षों तथा नहर आदि से विकसित भूमि को (देखकर इन्हें) भविष्य का सूचक माना ।।८३।।

वर्द्धमानं शिखावन्तं हविर्भिर्ग्रामयज्वनाम्
यात्रासक्तमना राजा प्रणन्तुं व्यस्मरन्नहि ।८४।

अक्ष्णो वामेतरस्यैव स्फुरणादाशया युतः
आशीर्वचांसि विप्राणां गृह्णन् स ससुखं ययौ ।८५।

गोपवृन्दैः समानीता राजदर्शनकाङ्क्षिभिः
तस्याभूवंस्तु तोषाय दधिदुग्धघृतादयः ।८६।

विस्फारितनेत्राणि मनाग्विपुटितानि च
मुखानि मुग्धबालानां तस्य तोषमजीजनन् ।८७।

वाप्याः परावृता ग्राम्या बधूट्योम्बुघटान्विताः
आवर्जयन् मनस्तस्य लज्जाधःकृतलोचनाः ।८८।

श्रावं श्रावं सुधागीतं शोभनं ग्रामयोषिताम्
दर्शं दर्शं च दृश्यानि ग्राम्याणि मुदमाप सः ।८९।

ग्राम पुरोहितों की हवि से बढ़ते हुये ज्वाला वाले (अग्नि) को प्रणाम करना राजा नहीं भूले, यद्यपि वह यात्रा में अनुलग्न थे ॥८४॥ दक्षिण नेत्र के फड़कने से आशायुक्त वे (राजा) विप्रों के आशीर्वाद को स्वीकार करते हुये सुख पूर्वक आगे बढ़ने लगे ॥८५॥ राजा के दर्शन की आकांक्षा रखने वाले गोपों के समूह के द्वारा लाये गये दधि दुग्ध घृत आदि उनकी संतुष्टि के लिये हो गये ॥८६॥ भोलीभाली स्त्रियों के मुख, जो कुछ खुले थे तथा जिनके नेत्र फैले थे उन (राजा) के अन्दर तृप्ति का अनुभव कराये ॥८७। जलपूर्ण कलशों को लेकर बावली से लौटती हुई ग्रामीण बहुयें, जिन्होंने लज्जा से अपनी आंखें झुका लिया था, उन (राजा) के मन को आकृष्ट कर लिया ॥८८॥ ग्राम के स्त्रियों के शोभन तथा अमृत के समान गीतों को सुन सुन कर तथा ग्राम के दृश्यों को देख देखकर वे प्रसन्न हो उठे ॥८९॥

अथाश्रममनुप्राप गुरुदर्शनलालसः
हर्षचिन्ताभिभूतः स निर्वेद इव शान्तगः ।६०।

कृतवैरपरित्यागश्वापदमन्डलान्वितम्
मुनिजायाप्रदत्तान्नापीवरं मृगपुत्रकम् ।६१।

होमाभिवर्द्धिताग्नीयधूमव्यापितदिङ्मुखम्
वेदाभ्यासपवित्रान्तःकरणद्विजसेवितम् ।६२।

निर्वैरं नितरां शान्तं दुर्वृत्तपरिवर्जितम्
आश्रमादाश्रमे सिद्धि मत्वा मेने स आश्रमम् ।६३।

वाहविश्रान्तये सूतमाज्ञाप्य प्राणिरक्षकः
ता अवारोहयत्पत्नी रथादवततार च ।६४।

इसके बाद गुरु के दर्शन को लालसा वाले वे (राजा) आश्रम पर पहुँच गये। (उस समय) वे हर्ष और चिन्ता से इस प्रकार अभिभूत थे मानों शान्त (रस) के पीछे चलने वाला निर्वेद हों ॥६०॥ उन्होंने आश्रम को श्रा अर्थात् पूर्ण श्रम से सिद्धि देने वाला माना। (वह आश्रम) परस्पर में वैर त्यागकर रहने वाले जानवरों से युक्त था, मुनियों की पत्नियों के द्वारा दिये गये अन्नों से पुष्ट मृग के छौनों से युक्त था, हवन से निकले अग्निधूमों से उसकी सभी दिशायें व्याप्त थीं, उसमें वेदाभ्यास से पवित्र अन्तःकरण वाले ब्राह्मण निवास करते थे तथा (वह आश्रम) वैर विहीन, अत्यन्त शान्त तथा दुष्टाचरणों से रहित था ॥६१-६३॥ उन प्राणिरक्षक (राजा) ने अश्वों को रोकने के लिये सारथि को आज्ञा देकर रथ से स्वयम् उतर कर पत्नियों को भी उतारा ॥६४॥

व्यापिपादयिषाशून्यं विचिकित्साबहिष्कृतम्
मिथ्यादृष्टिं विधुन्वानं महासत्त्वं तपोधनम् ।९५।

आदर्शमिव विप्राणां लक्ष्यं च शेमुषीमताम्
प्रमाणं ब्रह्मवेतृणामुपायं जगतीरुजाम् ।९६।

प्राङ्मुखस्थं हविःपाणिमुपविष्टं कुशासने
जुह्वतं वीतिहोत्रे च साक्षादग्निमिवापरम् ।९७।

अरुन्धत्या समं दीप्तं सश्रद्धविधिवत्स्थितम्
ददर्श स्वगुरुं राजा वशिष्ठं परमेष्ठिजम् ।९८।

अथातो दर्शिताचारः कृत्वा मुकुलितौ करौ
तस्थौ प्रतीक्षमाणः स यावत्कृत्यं प्रवर्तितम् ।९९।

पादान् जग्राह दम्पत्योः सभार्यो भूपतिस्तदा
श्रेयस्कामा भवन्त्येव गुरुपादाभिसेविनः ।१००।

किसी से द्रोह करने की इच्छा से रहित, संशय विरहित, मिथ्या दृष्टि को दूर करने वाले, महासत्त्व, तपोधन, विप्रों के लिये आदर्शभूत, बुद्धिमानों के लक्ष्य, ब्रह्मवेत्ताओं के लिये प्रमाणभूत, सांसारिक दोषों के लिये उपायस्वरूप, पूर्वमुख बैठे हुये हाथ में हवि लिये हुये कुसासन-आसीन, अग्नि में हवन करते हुये, साक्षाद् दूसरे अग्नि के समान, दीप्त, अरुन्धती के साथ श्रद्धापूर्वक विधि की भाँति, ब्रह्मा के पुत्र और और अपने गुरु वशिष्ठ को राजा ने देखा ।।९५-९८।। इसके बाद हाथों को जोड़े हुये तथा आचार को प्रदर्शित करने वाले वह (राजा) प्रतीक्षा करते हुये तब तक बैठे रहे, जब तक कि (गुरु) का कृत्य चलता रहा ।।९९।। अनन्तर भार्याओं के साथ भूपति ने गुरुदम्पति के पैरों का स्पर्श किया। कल्याण चाहने वाले (व्यक्ति) गुरु के चरणों की सेवा करने वाले होते ही हैं ।।१००।।

अवभृथोदविन्दुभ्यो ययोरुद्वाहकर्मणि
निर्गता सरयूः पुण्या स्यातां पूज्यौ कथं न तौ ।१०१।

आतिथ्यानन्तरं पृष्टः गुरुणा प्रियदर्शनः
वृत्तं निवेदयामास सभार्यागमहेतुकम् ।१०२।

तवाशीर्वचसा नित्यं सौख्यं राज्याङ्गसप्तके
त्वयि जाग्रति कः शक्त ईक्षितुं मां मनागपि ।१०३।

आदित्याः सन्तु दैतेयाः कामं यक्षा भवन्तुते
नोत्सहन्ते पदं धत्तुं त्वयि जातेऽभिरक्षके ।१०४।

तथापि भगवन्नस्मि खिन्नचित्तः सरुग्भृशम्
शंस्थानं पुत्रशब्दाख्यं लभे जायात्रयेऽपि न ।१०५।

पुन्नाम नरकात् त्राणं यस्माद्धेतोः करोत्ययम्
व्यवहारं विदां श्रेष्ठैः पुत्रशब्देन कथ्यते ।१०६।

जिनके विवाह के कर्म में अवभृथ के जलविन्दुओं से पवित्र सरयू (नदी) का आविर्भाव हुआ, वे (वशिष्ठ दम्पति) क्यों न पूज्य हों।।१०१।। आतिथ्य के अनन्तर गुरु से पूछे गये प्रियदर्शन (राजा) ने मर्यादाओं के साथ अपने आने के वृत्तान्त को निवेदित किया।।१०२।। आपके आशीर्वाद से सात अङ्गों वाले राज्य में नित्य सुख है। आपके देखते हुये कौन है जो मेरी ओर थोड़ा भी आंख उठा सके।।१०३।। देवता हों या दैत्य हों, भले ही यक्ष ही क्यों न हों पर आपके अभिरक्षक रहने पर (मेरी ओर) पैर उठाने का साहस नहीं करते हैं।।१०४।। फिर भी हे भगवन्! खिन्नचित हूँ तथा भलीभाँति रुग्ण भी हूँ। (इसका हेतु है कि) तीनों स्त्रियों में भी कल्याणद पुत्र शब्द वाले को नहीं पाया हूँ।।१०५।। यतः पुं नाम नरक से जिसके कारण त्राण मिलता है, इसी से व्यवहार वेत्ताओं में श्रेष्ठों के द्वारा वह पुत्र शब्द से कहा जाता है।।१०६।।

कथयन्पितरं पीत मातरं मेऽक्षरं सदा
ईषद् वदन् हसन्नीषन् न मामेकोऽपि नन्दयेत् ।१०७।

यदङ्गरजसा लिप्तो राजसं सुखमश्नुते
यादृक् तादृङ् न राजाऽपि केसरच्छविलाञ्छितः ।१०८।

यावदस्ति महत्सौख्यं विश्वस्मिन्परिकीर्तितम्
सर्वं चानुभवन्नात्र तृप्तिलेशमुपैम्यहम् ।१०९।

मया दत्तं जलं ब्रह्मन् श्रद्धया परया सदा
पितरो नाभिगृह्णन्ति पिण्डविच्छेददर्शिनः ।११०।

भूयांसोऽप्यस्मिन् विषय उपायाः परिनिष्ठिताः
शास्त्रकृद्भिश्च वर्ण्यन्ते रोचन्ते मे न ते क्वचित् ।१११।

नाहं योगी न सन्यासी गार्हस्थ्यं प्रतिपालयन्
राज्यं प्रजामयोध्याञ्च दृष्ट्वा दूये दिवानिशम् ।११२।

पिता को 'पीत' तथा माता को 'मे' अक्षरों से पुकारता हुआ कुछ कुछ हँसता कुछ कुछ कहता हुआ ऐसा एक भी मुझे आनन्दित नहीं करता है ॥१०७॥ (सामान्य पुरुष भी) जिसके शरीर की धूलि से लिप्त होकर जैसा राजस सुख का अनुभव करते हैं, वैसा कोई राजा भी केसर की शोभा से युक्त होने पर भी नहीं प्राप्त कर पाता है ॥१०८॥ इस संसार में जितने भी उत्तम सुख गिनाये गये हैं, उन सब का अनुभव करता हुआ भी मैं तृप्ति का लेश भी नहीं प्राप्त कर पाता हूँ ॥१०९॥ हे ब्रह्मन् ! अत्यन्त श्रद्धा से सदा ही मेरे द्वारा दिया गया जल मेरे पितर ग्रहण नहीं करते हैं (क्योंकि) वे देखते हैं अब पिण्ड का विच्छेद होने वाला है ॥११०॥ इस विषय में जितने भी अनुशीलित उपायों का वर्णन शास्त्रकारों ने किया है, वे मुझे अच्छे नहीं लगते हैं ॥१११॥ मैं न तो योगी हूँ और न तो सन्यासी हूँ। गृहस्थ धर्म का पालन करता हुआ मैं राज्य, प्रजा और अयोध्या को देखकर दिन रात दुःखी हूँ ॥११२॥

पुरा ते कृपया नाथ वंशरोधेन दुःखितः
प्राप्नोत् स नितरामिष्टं सुतं मे प्रपितामहः ।११३।

अद्याहं त्वामनुप्राप्तो गुरुमीश्वररूपिणम्
यथायोग्यविधानेन त्राहि मां शरणागतम् ।११४।

श्रुत्वा दीनवचो राज्ञो वशिष्ठः सर्वविन्मुनिः
उवाच मधुरां वाचं सान्त्वयन् गतकल्मषाम् ।११५।

द्रष्टृदर्शनदृश्येषु य एकः प्रतिपद्यते
स एवात्मगतेर्हेतोर्बहुधा प्रविभज्यते ।११६।

जीवास्तस्यांशभूतास्तु तन्मायावशगा यतः
स्वरूपास्मरणादेव सन्ति देहाभिमानिनः ।११७।

व्योम्नि स्थले जले वाऽपि नानारूपाभिधारिणः
दृश्यन्ते चानुमीयन्ते रज्ज्वेव प्रतिबन्धिताः ।११८।

हे नाथ ! प्राचीन काल में मेरे प्रपितामह जो वंशावरोध से दुःखी थे वह निश्चित रूप से इष्ट सुत को प्राप्त किये थे ।।११३।। आज मैं आप जैसे ईश्वररूपी गुरु को प्राप्त हुआ हूँ । उचित विधान से मुझ शरणागत की रक्षा करें ।।११४।। राजा के दीन वचन को सुनकर सर्वज्ञ मुनि वशिष्ठ ने सान्त्वना देते हुये निष्कलुष मधुर वाणी को कहा ।।११५।। द्रष्टा दर्शन, तथा दृश्य रूप में जो एक ही होता है वह अपनी इच्छा से बहुत प्रकार से अपना विभाग कर लेता है ।।११६।। जीव उसके अंशभूत हैं और चूंकि उसकी माया के वश में हैं अतः अपने स्वरूप की विस्मृति से देह को ही आत्मा मानने वाले हो जाते हैं ।।११७।। आकाश स्थल अथवा जल में अनेक रूपों में रहने वाले रस्सी से बँधे के समान देखे जाते हैं तथा अनुमान के विषय बनते हैं ।।११८।।

संस्कारवशगा जीवा अस्वतन्त्राः स्वकर्मसु
जायन्ते च म्रियन्ते च विश्वचक्रे पुनः पुनः ।११९।

योजयन्तः परान्स्वार्थे नित्यं स्वार्थाभिलाषिणः
अदृष्टवशगा जीवा वर्तन्ते कामकारतः ।१२०।

तन्नियोजयितुं सम्यग् राजा देवांशसम्भवः
महती देवता ह्येषा नररूपेण तिष्ठति ।१२१।

योऽभिपूज्यो जनैः सर्वैर्नियन्ता प्रतिदण्डदः
प्रसूतिस्तस्य तद्वच्च नूनं भवति दुर्लभा ।१२२।

अल्पसत्त्वा विजायन्ते नितरामधिसंख्यकाः
स्वभावाद् बहुसत्त्वास्तु भवन्त्येवाल्पसंख्यकाः ।१२३।

पूर्वं त्वत्कृतेनैव प्रतिबन्धेन साम्प्रतम्
प्रसूतिदर्शनाद् राजन् विप्रलब्धोऽसि निश्चितम् ।१२४।

संस्कार के वश में पड़े हुये ये जीव, जो अपने कामों में परतन्त्र हैं, इस विश्वचक्र में बार बार उत्पन्न होते हैं तथा मृत्यु को प्राप्त होते हैं ॥११९॥ दूसरों को स्वार्थ में फँसाते हुये नित्य स्वार्थ की इच्छा रखने वाले ये जीव भाग्य के वश में पड़कर इच्छानुसार जीवन बिताते हैं ॥१२०॥ इन (स्वच्छन्द) जीवों को भलीभाँति नियोजित करने के लिये देवों के अंश से राजा उत्पन्न होता है। यह बहुत बड़ी देवता है, जो नर रूप से रहता है ॥१२१॥ जो सभी प्राणियों से पूज्य होता है, जो सबका नियन्त्रक एवं दण्ड का विधान करने वाला है, उसी की तरह उसकी सन्तति भी निश्चित रूप से दुर्लभ होती है ॥१२२॥ अल्प वीर्य वाले भलीभाँति अधिक संख्या में उत्पन्न होते हैं। बहुवीर्य वाले स्वभावतः अल्पसंख्यक होते हैं ॥१२३॥ अपने द्वारा ही पुराकाल में किये गये प्रतिबन्ध से इस समय निश्चित रूप से सन्तति दर्शन से विमुक्त हो गये हो ॥१२४॥

उत्पिपादयिषा जाता पुराजन्मनि ते नृप
कस्याश्चित्सन्ततेरेवं या भवेत्स्वोपमा स्वयम् ।१२५।

इदानीं तु त्वया कर्म कृतं किञ्चिद् रहोगतम्
द्वयोः सम्मेलनाज्जाता क्लेशदा निरपत्यता ।१२६।

इहजन्मजपापस्य शान्तये विधिपूर्वकम्
ऋष्यश्रृङ्गाय तूर्णं त्वं प्रजार्थं देहि कन्यकाम् ।१२७।

अपूर्वोऽयमृषिः राजन् पुत्रेष्टिं कारयिष्यति
तेऽन्यजन्मकृताऽऽकाङ्क्षां शीघ्रं स पूरयिष्यति ।१२८।

इति विदितरहस्यः पुण्यभाक् चक्रवर्ती
प्रतिविहितसपर्यः पादयोर्मन्त्रकर्तुः
अभिलषितमवाप्तुं पुण्यकं संविधाय
स्वगुरुमतसरण्या तोषयामास वह्निम् ।१२९।

श्रीश्यामान्वितसुन्दरोऽस्ति जनको माता च यस्याम्बिका
यः श्रीराजकिशोर आप्तचरितः शाण्डिल्यवंशोद्भवः
तस्य श्रीकविकालिदासरचनानुप्राणितेऽस्मिन्महा
काव्ये चारुणि राघवेन्द्रचरिते सर्गो द्वितीयो गतः ।१३०।

हे नृप ! पूर्व जन्म में किसी ऐसी सन्तति को उत्पन्न करने की इच्छा तुझमें उत्पन्न हुई थी, जो स्वयम् अपना उपमान हो ॥१२५॥ इस समय में भी तुमने एकान्तगत कुछ ऐसा ही कर्म किया है। इन दोनों के सम्मेलन से ही क्लेश देने वाली सन्तानहीनता (तुझमें उत्पन्न हो गई है ॥१२६॥ इस जन्म के पाप की शान्ति के लिए तुम ऋष्यश्रृङ्ग को विधि पूर्वक कन्या का दान, सन्तति के लिये शीघ्र दो ॥१२७॥ हे राजन् ! यह अपूर्व ऋषि है, यह पुत्रेष्टि करायेगा। वह शीघ्र ही तुम्हारे प्रथम जन्म में किये गये अभिलाषा को भी शीघ्र पूर्ण करायेगा ॥१२८॥ इस प्रकार रहस्य को समझ लेने वाले, पुण्यकर्ता चक्रवर्ती (दशरथ) ने मन्त्रकर्ता (वशिष्ठ)के चरणोंकी विधिवत् पूजन करके अपने गुरुकी सम्मति के सहारे अग्नि को तुष्ट किया ।१२९। श्रीश्यामसुन्दर जिनके पिता हैं तथा जिनकी माता अम्बिकादेवी हैं, जो आप्तचरित शाण्डिल्यवंशोत्पन्न श्रीराजकिशोर (नामक) हैं, उनके इस, कविकालिदास की रचना से प्रभावित चारु राघवेन्द्रचरित (नामक) महाकाव्य में द्वितीयसर्ग समाप्त हो गया ।१३०।

तृतीयः सर्गः

विधीयमानेऽथ सवे प्रजार्थं महर्षिश्शृङ्गः श्रुतपारदृश्वा
ददौ त्रिभार्यं सफलं विधातुं वषट्कृतं प्रीतिकरं त्रिमूर्ध्ने ।१।

शिखामुखेनानुमितानुकूल्यो यज्ञस्य देवो द्युसदां पुरोहितः
प्रीत्या प्रजज्वाल मखे तदानीं दीप्तिः कृशानोः प्रियतां हि वक्ति ।

ज्ञात्वा प्रयजैरभिवर्द्धमानं हविर्भुजं पुत्रमखे पुरोगाः
जगुस्तदा बाह्वृचमन्त्रजातानुषर्बुधप्रीतिकरान्प्रसिद्धान् ।३।

अग्ने त्वमायाहि गृहाण हव्यं यजामहे त्वां सकलैरपीड्यम्
प्रत्नैश्च नूत्नैरभिशंसितस्त्वं वन्दामहेऽनो ननु रत्नधातमम् ।४।

कविक्रतो कीर्तियुतोऽसि होता त्वं दाशुषे भद्र ददासि भद्रम्
देदीप्यमानाध्वररक्षकाग्ने दिवानिशं पाहि पितेव पुत्रान् ।५।

सन्तान के लिये यज्ञ किये जाने पर शास्त्र पारङ्गत महर्षि शृङ्ग ने, त्रिभार्य दशरथ को सफल बनाने के लिये सुखकर, (अग्नयेवषट् इस प्रकार) वषट् युक्त हवि, अग्नि को प्रदान की ॥१॥ ज्वालामुख से परिज्ञात अनुकूल भाव वाले, यज्ञ के देव, देवों के अग्रेसर, अग्निदेव उस समय यज्ञ में प्रसन्नता पूर्वक प्रज्वलित हो उठे, अग्नि की दीप्ति उसकी प्रियता को व्यक्त करती है ॥२॥ पुत्रयज्ञ में अग्नि को प्रयाज के द्वारा अभिवर्धमान जानकर उस समय पुरोहितों ने अग्नि के लिये प्रसिद्ध बाह्वृच मन्त्रों का गान किया ।।३॥ हे अग्नि आओ, समस्त जनों से पूजनीय तुम्हारा हम भजन करते हैं, हव्य स्वीकार करो। तुम प्राचीन-नवीन सभी (ऋषियों) से प्रगीत हो इसलिये, अतिशय रत्न (यश-सुख) को धारण करने वाले तुमको हम प्रणाम करते हैं ।४॥ हे कविक्रतु, तुम कीर्तियुक्त, होता हो, हे भद्र यज्ञकर्ता - प्रदाता, को मङ्गल प्रदान करते हो, हे देदीप्यमान यज्ञ के रक्षक अग्नि, पुत्र को पिता के समान सदा हमारी रक्षा करो ॥५॥

कृपोटयोने दहनाशुशुक्षणे हिरण्यरेतः श्वसनस्य मित्र
विरोदतां त्वं ज्वलनोसि नित्यं सिद्धःसुहृन्मोचयितुं विपत्तेः।६।
अपास्य पापं यजतां जनानां प्रभुस्त्वमेवासि फलानि दातुम्
ऋते शुचेः शोधयितुं क्षमेत कः स्वर्णं नरं वाऽघयुतं विवर्णम् ।।
स्थितः शरीरेषु च देहधारिणां किं वा धरागर्भमभिप्रपन्नः
वसन्द्युलोकेऽपि सदा त्वमेव सर्वत्रसर्गस्थितिधारकोऽसि ।८।
न भ्राजते धामनिधो रजन्यां शशी निशायां न सदा प्रकाशते
सदास्थितो यासि न नोऽपहाय वह्ने त्वमेकान्तसुहृन्मतोऽसि ।।
ज्योतिर्मयं ब्रह्म परात्परं यत् कालाग्निरूपः परमश्च विष्णुः
सर्वं त्वमेवासि तनूनपादिह ज्ञानोपचर्यासुलभैकमित्रम् ।१०।
स्वतोग्मदोप्त्यैव हिनस्तु पापं रुणद्धि भाग्यं तव दाशुषो यत्
एतद्धविस्ते ननु हव्यवाहन स्वाहास्तु नप्त्रे च सहस्वतेऽपि ।।

हे कृपीट (ईंधन-काष्ठ-वन योनि, दहन, आशुशुक्षणि, हिरण्यरेता, वायुमित्र अग्नि, तुम सतत ज्वलनशील हो, इस यज्ञ में विराजो, तुम शोभन दुःखी हृदय वाले को विपत्ति से मुक्त कराने में सिद्ध हो ॥६॥ यज्ञ करने वाले लोगों के पाप को हटाकर फल देने में तुम्हीं समर्थ हो। शुचि (अग्नि) के अतिरिक्त भला और कौन स्वर्ण, अथवा अघयुक्त, विवर्ण नर को शुद्ध करने में समर्थ हो सकता है ॥७॥ शरीरधारियों के शरीर में स्थित हो, अथवा धरती के गर्भ में भी तुम वर्तमान हो और द्युलोक में भी तुम सदा रहते हो, इस प्रकार सर्वत्र सृष्टिसत्ता के तुम्हीं धारक हो ॥८॥ सूर्य रात्रि में प्रकाशित नहीं होता, और चन्द्रमा भी रात्रि में सदा प्रकाशित नहीं होता किन्तु हे अग्नि तुम सदा वर्तमान रहते हो, हमें छोड़कर (कभी नहीं जाते, अतएव तुम हमारे एकान्त मित्र हो ॥९॥ ज्योतिर्मय जो परात्पर ब्रह्म है, जो कालाग्नि रूप परम विष्णु है, हे तनूनपात् हे ज्ञानोपचर्या से प्राप्त एकान्तमित्र अग्नि, तुम्हीं सब कुछ हो ॥१०॥ तुम्हारे हविप्रदाता यजमान के भाग्य को जो अवरुद्ध कर रहा है उस पाप को तुम अपने तीक्ष्ण दीप्ति से नष्ट कर दो। हे हव्यवाहन, नप्तृ, सहस्वत् तुम्हारे लिये यह हवि (स्वाहा) है ॥११॥

ततः स वह्निश्चरुपाणिराराद् व्यपोहितुं भाग्यरुजो नृपस्य
आविर्बभूव क्रतुकुण्डसिन्धौ सुरागदङ्कार इवामृताग्रः ।१२।
यथा चकोरैरभिपीयते शशी कुशेशयैर्वा परिदृश्यते रविः
निभाल्यते वा मुदिरो मयूरैस्तथैव वह्निः परिवीक्षितो जनैः ।।
अनन्तरं जातकुतूहलस्य यशः प्रकाशस्य पुरो नृपस्य
श्रुतप्रकाशं मुनिवर्यमेवं स स्वप्रकाशो हुतभुग्जगाद ।१४।
ऋषे त्वदाशंसनमात्रबद्धः समागतः पूरयितुं मनोरथम्
विजायतां दाशरथिर्यथैत्रं भोक्तु चरुं पश्य मयोपनीतम् १५।
एतावदुक्त्वा विरते शुचौ स नित्यं हृदा यष्टृशुभानुशंसी
निदेशयामास मुनिर्महीश्वरं चरुं ग्रहीतुं हुतभुक्सकाशात् ।१६।
अनन्तरं प्राक्तनपुण्यजातं नीत्वा चरुं जन्मतमोऽपहन्तुम्
वीक्ष्यागतं मित्रमिवानलं तं क्ष्माराडुपस्थापयितुं व्युदस्थात् ।।

इसके बाद तुरन्त राजा के दुर्भाग्य रोग को समाप्त करने के लिये हाथ में चरु लिये हुए वह भगवान् अग्नि यज्ञकुण्ड समुद्र से हाथ में अमृत लिये हुए देवों के भिषक् धन्वन्तरि के समान प्रकट हुए ।।१२।। जिस प्रकार चकोरों से चन्द्रमा पिया जाता है, अथवा कमलों से सूर्य देखा जाता है या मयूरों से मेघ देखा जाता है वैसे ही लोगों से अग्निदेव देखे गये ।।१३।। तत्पश्चात् आश्चर्यचकित, यशःप्रकाश राजा के सामने स्वयं प्रकाश वह अग्नि श्रुतप्रकाश (शास्त्र जिन्हें प्रकाशित हैं या जो शास्त्रों से प्रकाशित है या शास्त्रों के प्रकाश) उन मुनिश्रेष्ठ से इस प्रकार बोले ।।१४।। ऋषिवर ! आपके आशंसन मात्र से बँधा हुआ मैं इच्छापूर्ति के लिये आया हूँ। जैसे दशरथ-पुत्र पैदा हों उसके लिये मेरे द्वारा लाये गये भोग्य इस चरु को देखो ।।१५।। इतना मात्र कहकर अग्नि के चुप हो जाने पर, सदैव हृदय से यज्ञकर्ता के शुभ चाहने वाले उन मुनिने अग्नि के पास से उस चरु को लेने के लिये राजा को आदेश किया ।१६। इसके बाद (जन्मके अन्धकारको नष्ट करनेके लिये) पूर्वजन्म के उत्पन्न पुण्य स्वरूप उस चरु को लेकर मित्र के समान आये हुए उन अग्नि को देखकर राजा उपस्थापित करने के लिये उठ खड़े हुए ।१७।

अशेषसौभाग्यफलस्वरूपं पुत्रीयते भूपतये चरुं ददत्
शोभामुपास्थापयदग्निदेवः पुण्यो व पुण्याय ददाति पुण्यम् ।१८।
सम्प्राप्य तं पूर्वभवं स्वपुण्यं पुत्रप्रदं चारुचरुं तदानीम्
विभज्य सोऽदात् तिसृभ्यः प्रियाभ्यस्त्रिवर्गभक्तिः पुरुषार्थसिद्ध्यै ।
अवाप्तसाराः कृषिभूमयो यथा भवन्ति बीजग्रहणानुकूलाः
तथा महिष्यो नृपतेस्तदानीमद्धा बभूवुश्चरुसेवनादमूः ।२०।
आपन्नसत्त्वा नृपतेर्महिष्यो वार्ता अमूः कर्णपरम्परातः
निशम्य हर्षाज्जगदुः प्रजाजना मरुस्थलं शाद्वलमस्ति जातम् ।।
लोका न मृष्यन्ति कदापि योग्यान् पापानि वक्तुं च भवन्ति व्यग्राः
जगुस्तदेवं बहवो बहूनि भवन्ति भिन्ना हि विचारमार्गाः ।२२।
श्रुत्वा च कश्चिन्नरदेववृत्त तदुन्नतेर्भग्नमनोरथः सन्
विस्तारयामास च किंवदन्तीर्हृष्यन्ति पापा हि विलेप्य पङ्कम् ।।

पुत्र की इच्छा रखने वाले राजा को समग्र सौभाग्य के फलस्वरूप चरु को प्रदान करते हुए अग्निदेव ने वह शोभा उपस्थित की जैसे पुण्य ही पुण्य के लिये पुण्य को प्रदान कर रहा हो ।।१८।। पूर्वजन्मजनित अपने पुण्यस्वरूप, पुत्रप्रद उस सुन्दर चरु को प्राप्त कर राजा ने उस समय विभक्त कर उसे अपनी तीनों रानियों को दिया । त्रिवर्ग की भक्ति सदा पुरुषार्थसिद्धि के लिये होती है ।।१९।। उर्वरक (खाद) प्राप्तकर जैसे खेती की जमीनें बीज ग्रहण के उपयुक्त हो जाती हैं उसी प्रकार उस समय राजा की रानियाँ चरु सेवन से पुलकित हो गयीं ।।२०।। राजा की पत्नियाँ गर्भवती हो गयी हैं, इस समाचार को कर्णपरम्परा से सुन कर प्रजाजनों ने हर्ष से कहा कि मरुस्थल में दूब पैदा हुई है ।।२१।। योग्यजनों को लोग कभी सहन नहीं करते किन्तु पाप कहने के लिये व्यग्र रहते हैं । इस प्रकार उस समय लोगों ने अनेक प्रकार की बातें की क्योंकि विचारपथ भिन्न होते ही हैं ।।२२।। राजा के इस समाचार को सुनकर उनके अभ्युदय से भग्नाश किसीने किंवदन्ती (प्रवाद) फैलाया । पापीजन कीचड़ उछालकर ही प्रसन्न होते हैं ।।२३।।

नूनं नियोगान्महता नृपेण कृताः स्वभार्या अपि गर्भवत्यः
लोकानयं दूषयितुं प्रवृत्तो महाजनो येन गतः स पन्थाः ।२४।
किं प्रस्तरे रोहति जातु दूर्वा जहाति मूर्वा किमु वा स्वभावम्
सृष्टिर्विधातुश्च भवेदपूर्वाश्चरोः स्त्रियः स्युर्यदि गर्भवत्यः ।२५।
श्रुत्वा तदीयानि वचांसि कश्चिन् निनिन्द तं पापजनं नितान्तम्
भजत्सु बाहुल्यमसज्जनेषु विधिः स्वयं रक्षति पुण्यवन्तम् ।२६।
कथं न जिह्वा पतिता त्वदास्यात् कथं न जातं नयने विशक्ते
अनागसि त्वं विपरीतमङ्क्से यतः स्वतन्त्रः कथने विलोकने ॥
भोगेषु लिप्तो ननु क्षुद्रकोटो जानाति सर्वान्स्वगुणानुरूपम्
प्रभुर्नकश्चिद्वचसो विजृम्भणे ब्रूयादुलूको यदि नो दिवान्धान् ।२८
जाते विशुद्धे वपुषि प्रकामं मन्त्रौषधादौ निहितात्प्रभावात्
व्यपेतभाग्या दधतीह गर्भं किमत्र चित्रं न चरुर्नियोगः ।२९।

इस महान् राजा ने नियोग से ही अपनी पत्नियों को गर्भवती कराया है इस प्रकार यह राजा सभी को दूषित करने के लिये प्रवृत्त हो गया है। जिससे बड़े लोग जाँय वही रास्ता है (उसी पर अन्य लोग भी चलने लगते हैं ॥२४॥ क्या पत्थर पर कभी दूब उगती है ? अथवा मूर्वा अपना स्वभाव छोड़ देती है ? यदि चरु (हवि) से स्त्रियाँ गर्भवती होने लगें तो विधाता की सृष्टि ही अपूर्ण होने लगे ॥२५॥ उसकी बातों को सुनकर किसी ने उस पापी व्यक्ति की प्रभूत निन्दा की। दुष्टों की बहुलता हो जाने पर दैव स्वयं पुण्यवान् की रक्षा करता है ।२६। तुम्हारे मुख से जीभ क्यों न गिर गयी ? अथवा तुम्हारे नेत्र क्यों न अशक्त (अन्धे) हो गये। क्योंकि कहने और देखने में स्वतन्त्र हो इसलिये निष्कलङ्क राजा के विपरीत इस प्रकार का चित्रण कर रहे हो ॥२७॥ भोगों में लिप्त तुच्छ कीट अपने ही गुणों के समान सभी को समझता है यदि उल्लू भी हमें दिवान्ध कहे तो वाग्विजृम्भण में कौन समर्थ हो सकता है ? ॥२८॥ मन्त्र-औषध आदि में निहित प्रभाव से शरीर के अत्यन्त विशुद्ध हो जाने पर यदि अभागिनी गर्भ धारण करती है तो इसमें आश्चर्य क्या ? चरु नियोग नहीं है ॥२९॥

या योनिजा सृष्टिरसाविदानीमयोनिजाऽऽसीन्नितरां पुरैषा
कुतर्कलुप्ताक्षिरुचोत्र वेधा अग्रस्थितं दर्शयितुं समर्थः ।३०।

लोकोत्तरं प्राप्तुमपीहसे यशः श्रमश्च लोकोत्तर एव वाञ्छितः
देवप्रसादादुपलब्धसूनुर्बिभर्ति दैवीं श्रियमात्मदेहे ।३१।

नरो नृपोऽयं प्रकृतिस्त्रियां चेद् बुद्धिप्रकाशात् त्रिगुणान्वितायाम्
वाञ्छन्सुतान्नूनमनन्तरूपान् प्रवर्तते नश्च हिताय साम्प्रतम् ।३२

समागतं यत्परिवर्तनं सखे न पश्यसि त्वं प्रकृतौ नवीनम्
धराम्बराधोभुवनैश्च साकं दिशः प्रसन्नाः सरयूः प्रसन्ना ।३३।

श्वानेषु बुक्कत्सु करी स्वमार्गं व्यपेतचिन्तश्च समुद् प्रयाति
लोकोक्तिमेनामनुसृत्य राजा नहि स्वधर्मे शिथिलीबभूव ।३४।

दत्तावधानो ननु दोहदेऽसौ धरापतिर्निर्वृतिमन्ववाप
यथा कृतावश्यककार्यजातः प्राप्नोति मोदं कृषकः फलेच्छुः ।३५।

इस समय जो योनिज सृष्टि है पहले यह नितरां अयोनिज थी। कुतर्क से जिसके आँखों के ज्योति समाप्त हो गयी है ब्रह्मा भी उन्हें सामने स्थित भी पदार्थ को दिखाने में असमर्थ हैं ॥३०॥ यदि अलौकिक यश प्राप्त करना चाहते हो तो अलौकिक प्रयास भी अपेक्षित है। देव कृपा से प्राप्त सन्तान अपनी शरीर में दैवी श्री धारण करता है ॥३१॥ यदि यह पुरुष राजा बुद्धि के प्रकाश से त्रिगुणान्विता प्रकृतिस्वरूप स्त्री में, अनन्तरूप पुत्रों को चाहता हुआ प्रवृत्त हो रहा है तो हम लोगों के कल्याण के लिये ॥३२॥ मित्र, प्रकृति में जो नवीनता आयी है, उसे नहीं देखते। धरती, आकाश, पाताल और भुवनों समेत दिशायें और सरयू सभी प्रसन्न हैं ॥३३॥ कुत्तों के भूँकते रहने पर भी हाथी, निश्चिन्त, प्रसन्न होकर अपने रास्ते पर चलता रहता है। राजा भी इस लोकोक्ति का अनुसरण करके अपने धर्म से विरत नहीं हुआ ॥३४॥ जैसे फलेच्छु किसान आवश्यक कार्यसमूह का सम्पादन कर आनन्द प्राप्त करता है उसी प्रकार राजा दोहद के प्रति सावधान रहकर परम आनन्दित हुए ॥३५॥

कुलोचितानां पुनरात्मजानामवाप्तये साधुसमुत्सुकेन
शास्त्रोदिताः पुंसवनादिकाश्च क्रियाः समस्ता विहिता नृपेण ।।
सस्यागमात्प्रागिव वप्रसम्पच् चन्द्रोदयात्प्र क्च निशीथिनीव
कामप्यभिख्यामपरां दधत्यो मनांसि राज्ञस्चकृषू रमण्यः ३७।
तदेव रूपं वचनं तदेव क्रियापि सासीन्नरदेवयोषिताम्
जातानि सर्वाणि तथापि राज्ञे किञ्चित्तदासेचनकं नवीनम् ।३८
पूर्वं हताशः परमाप्तलक्ष्यो दशां निजां वेत्ति यथा तथा सः
मोदप्रदौरस्यसुखानभिज्ञः स्वीयां दशामाकलयाञ्चकार ।३९।
कुलोचिताचारविधावभिज्ञाः प्रत्युत्थितावेव निरस्तधैर्याः
अदुर्मुदं नाकसुखातिशायिनीं राज्ञे स्फुरद्गर्भभरालसास्ताः ।४०
भर्त्रे निवेद्यैव नु भुञ्जते याः खादन्ति ता एव मृदं रहस्ये
प्रायोऽबला उन्नतिमार्गगाश्चेद् दृढं स्वसिद्धान्तमपि त्यजन्ति ।।

वंशानुरूप पुत्रों की प्राप्ति करने के लिये सम्यक् समुत्सुक राजा ने शास्त्र प्रतिपादित पुंसवन आदि सारे कर्म किये ।।३६।। फसल आने के पूर्व जैसे खेती की शोभा तथा चन्द्रोदय के पूर्व जैसे रात कुछ अपूर्व शोभा धारण कर लेती है वैसे ही राजा की स्त्रियों ने अपूर्व शोभा धारण कर राजा के मन को आनन्दित कर दिया ।।३७।। राजा की पत्नियों का रूप वही था, वाणी वही थी, क्रियायें भी वही थीं, फिर भी उस समय वे सभी नवीन और अपूर्व तृप्तिदायक हुई ।।३८।। आनन्दप्रद सन्तान सुख से अनभिज्ञ राजा ने अपनी दशा को वैसा ही समझा जैसा कि पहले हताश फिर लक्ष्यप्राप्त व्यक्ति अपनी अवस्था को समझता है ।।३९।। वंशोचित आचार परम्परा की जानकार भी स्फुरित हो रहे गर्भ भार से अलस (किसी के आने पर) प्रत्युत्थान में भी असमर्थ उन पत्नियों ने राजा को स्वर्ग सुख से भी अधिक आनन्द प्रदान किया ।।४०।। जो पति को निवेदित करने के बाद ही भोजन करती थीं वे ही अब एकान्त में मिट्टी खाती थीं स्त्रियाँ यदि उन्नति मार्ग गामी हो जाती हैं तो प्रायः अपने दृढ सिद्धान्त को भी छोड़ देती हैं ।।४१।।

अभीष्टमास्वाद्य ददत्यभीष्टान् स्त्रियः सगर्भा इति लोकवादात्
स प्राप्तये वंशविलोचनानां ददौ प्रियाभ्यो ननु वंशलोचनम् ।।

मत्वाऽपि राजा सदृशं स्वभार्या अपूपुजत्ताः स्वधिया विभिन्नम्
स्वभावयोग्या अनुपाल्यपालने नैकं विधिं क्वापि समाश्रयन्ति ।४३

आहूय राजानमथैकदाऽऽसां ज्येष्ठा प्रिया कोशलजा प्रभाते
निवेदयामास मुदे स्वभर्तुः स्वप्नं निशान्ते परिलक्षितं यत् ।४४

कश्चित् समागत्य विप्रः सभार्यो नोत्वा घटं वारिणा पूर्यमाणम्
आशीर्वचोभिः समतोषयन्मां यदा तदैवाऽस्मि जनैर्विबुद्धा ।४५

ज्ञातुं फलं स्वप्नगतं महीशो मौहूर्त्तिकान्सादरमभ्यपूजयत्
प्राचुस्तदा तेऽपि धनादितुष्टा राज्ञे फलं स्वप्नगतं विधानतः ।४६

निशान्तदृष्टो नृप स्वप्न एषः नानन्तरं कोशलजाऽपि सुप्ता
आशीर्वदद्भ्यां द्विजदम्पतोभ्यां साकं सनीरः कलशोऽपि दृष्टः ।।

गर्भवती नारियाँ अभीष्ट पदार्थों का भोग कर अभीष्ट सन्तानें देती हैं इस लोकवाद के अनुसार राजा ने अभीष्ट वंशजों को पाने के लिये उन पत्नियों को वंशलोचन खाने को दिया ।।४२।। अपनी पत्नियों को राजा ने समान मानकर भी अपने विवेक से उनकी भिन्न-भिन्न प्रकार से पूजा की। स्वभावतः योग्य व्यक्ति अनुपाल्य के पालन में कहीं भी एक विधि का आश्रय नहीं लेते ।।४३।। इन रानियों बड़ी पत्नी कौशल्या ने एक बार प्रातःकाल राजा को बुलाकर बड़े आनन्द से राजा को वह स्वप्न सुनाया जिसे निशावसान में देखा था ।।४४।। सपत्नीक कोई ब्राह्मण आकर जल से भरे जा रहे घड़े को लेअर मुझे ज्यों ही आशीर्वचनों से संतुष्ट किया तभी लोगों से जगा दी गयी ।।४५।। राजा ने स्वप्नगत फल को जानने के लिये ज्योतिषियों को (बुलाकर उनकी) सादर पूजा की तब धनादि से प्रसन्न वे स्वप्नगत फल को सविधान राजा को बताया ।।४६।। राजन् यह स्वप्न रात्रि के अवसान में देखा गया है और इसके बाद कौशल्या सोई भी नहीं, साथ ही आशीर्वाद प्रदान कर रहे द्विजदम्पति के साथ सजल घट भी देखा गया है ।।४७।।

अखण्डसौभाग्ययुतं शिशुं ते भार्या प्रसोष्यत्यचिरं नृपेन्द्र
बालोऽप्यसौ शास्त्रवचोऽनुसारं शिवात्मकः स्यादुत विष्णुरूपः ।।
ततः परं शोभनकाल आगते दिशासु सौम्यत्वमुपागतासु
कुर्वन्जगन्मोदयुतं स्वभावतः शास्ता स गोब्राह्मणरक्षणातुरः ।४९
उच्चस्थपञ्चग्रहशोभिकाले मेषं गते पूषणि कर्कलग्ने
तिथौ नवम्यां मधुशुक्लपक्षे पुनर्वसौ भे विभुराविरासीत् ।५०।
पर्वेन्दुबिम्बाननमम्बुजेक्षणं नीलोत्पलश्याममलङ्कृतं त्विषा
सशङ्खचक्रं सकिरीटकुण्डलं चतुर्भुजं पद्मगदाविराजितम् ।५१।
श्रीवत्सलक्षं वनमालयायुतं पीताम्बरं कुञ्चितमेचकालकम्
उद्दामकाञ्च्यङ्गदकङ्कणादिभिर्विरोचमानं प्रयुतार्कभासम् ।५२
श्रीकौस्तुभीयां श्रियमुद्वहन्तं कारुण्यपूर्णं स्मितचन्द्रिकायुतम्
तं वीक्ष्य बालं परमाद्भुतं तया कौशल्यया साश्रु सकम्पमूचे ।५३

राजन् आपकी पत्नी शीघ्र ही अखण्ड सौभाग्य समन्वित पुत्र पैदा करेगी। और शास्त्र के कथनानुसार वह बालक भी शिव या विष्णुरूप ही होगा ।।४८।। इसके बाद सुन्दर समय आने पर दिशाओं के सौम्य हो जाने पर, संसार को स्वभावतः हर्षयुक्त करते हुए, गो - ब्राह्मण की रक्षा को आतुर वह नियामक उच्चस्थ पञ्च ग्रहों से शोभन समय में सूर्य के मेष राशि पर चले जाने पर (चैत्र मास में), कर्क लग्न में, चैत्र शुक्ल पक्ष, नवमी तिथि, पुनर्वसु नक्षत्र में व्यापक परमात्मा प्रकट हुए ।।४९ ५०।। पूर्ण चन्द्रबिम्ब सरीखे मुख, कमल नयन, नीलकमल से श्याम कान्ति से अलङ्कृत, शङ्ख-चक्र समन्वित, किरीट-कुण्डल युक्त, चारभुजा, पद्म और गदा से शोभायमान श्रीवत्सलक्ष, वनमाला से शोभायमान, पीताम्बर धारी, घुंघराले काले बाल, दमकती रसना, अङ्गद और कङ्कण आदि आभूषणों से दीप्तिमान्, सूर्यसमान तेजस्वी कौस्तुभमणि की शोभा को धारण किये हुए, कारुण्यपूर्ण, मन्दमुसकान की जोन्हाई से युक्त, अत्यन्त अद्भुत उस बालक को देखकर उस कौशल्या ने काँपते हुए सजल नेत्रों से कहा- ।।५१-५३।।

अहो विभो किं कथयामि नाथ प्रसादमेनं समवाप्य तावकम्
कस्मात्त्वया कुत्र जनोऽयमुह्यते विचिन्तयन्ती विवशाऽस्मि साम्प्रतम्
त्वं क्वासि वन्ध्यापदभाग्जनः क्व संयोग एषोऽत्र न वर्णनीयः
निरादृतः वैभवसौख्यवद्धिः किं भिक्षुकश्चिन्तयते नृपत्वम् ।५५
कृतं त्वया यच्च ममप्रसङ्गे तत्संस्मरन्त्या मम वाग् विजृम्भिता
वराटिकान्वेषणलग्नपुंसश्चिन्तामणिं प्राप्य वचो भवेद् यथा ।५६
क्वाहं लघुस्त्वं महतो महान्क्व जातोऽसि गर्भान्मम चापि वन्ध्यात्
दीनार्तिनाशप्रणयिन् त्वमेव जानासि वृत्तं सकलं स्वकीयम् ।५७
प्राप्तुं पदं यत्तु ममाभिलाषो न पूर्ण आसीत्स च पूरितस्त्वया
नूनं त्वमेवासि गतिर्जनानामतस्त्वयाऽम्बापदभागिनी कृता ।५८
त्वमेव पूर्णः पुरुषोत्तमोऽच्युतः सनातनो विष्णुपदाभिसंस्तुतः
अगोचरस्त्वं मनसेन्द्रियैर्वा सच्चित्तथानन्दमयः परात्मा ।५९।

हे विभो ! हे नाथ ! तुम्हारी इस कृपा को प्राप्तकर मैं क्या कहूँ ? तुम्हारे द्वारा कैसे और कहाँ यह व्यक्ति पहुँचा दिया गया यह सोचती हुई इस समय मैं एकदम विवश हूँ ।।५४।। कहाँ तुम और कहाँ बाँझपदगामी यह व्यक्ति, यह संयोग अवर्णनीय है । धनवानों से अपमानित भिखारी क्या राजपद की चिन्ता कर सकता है ? ।।५५।। मेरे विषय में तुमने जो किया है उसे स्मरण करती हुई मेरी वाणी का विजृम्भण वैसे ही हो गया जैसे कौड़ी खोजने में लगे हुए व्यक्ति को चिन्तामणि प्राप्त हो जाने पर होता है ।।५६।। कहाँ तुच्छ मैं और कहाँ महान् से भी महान् आप, और फिर मेरी बाँझ कोख से पैदा हुए हो । हे दीनार्तिनाशप्रणयी, अपने सारे चरित्र को तुम्हीं जानते हो ।।५७।। जो पद पाने की मेरी इच्छा थी, वह पूरी नहीं हुई थी तुमने उसे भी पूरा कर दिया । निश्चय ही लोगों की गति तुम्हीं हो, इसीलिये तो मुझे भी मातापद की भागिनी बनाया है ।।५८।। तुम्हीं पूर्ण पुरुषोत्तम, अच्युत, सनातन, विष्णुनाम से जाने जाते हो, तुम मन अथवा इन्द्रियों से अगोचर हो, सत्-चित्-आनन्दमय परब्रह्म तुम्हीं हो ।।५९।।

त्वमेव विश्वं सृजसीह रक्षसि स्वयं परं हन्सि युगान्तकाले
तथाप्यकर्त्तेव विभावयन्स्वं निर्लिप्ततां त्वं प्रकटीकरोषि ।६०।
व्याप्तोऽपि सर्वत्र न लक्ष्यसे त्वं त्वय्येव विश्वं सकलं प्रतिष्ठितम्
गर्भे निवासो मम यत्कृतस्त्वया तद्भक्तवश्यादथवा स्वभावात् ।।
परं प्रभो नास्ति रुचिर्मदीया रूपे तवास्मिन् विबुधैः प्रणम्ये
न यामिनी चन्द्रमुखाभिलाषिणी प्रकाशपुञ्जं समपेक्षते रविम् ।।
अपत्यसौख्याय चिरं पिपासिता स्वलङ्कृता मातृपदेन या त्वया
पुरःस्थितेयं तव भाग्यशालिनी विशुद्धवात्सल्यमपेक्षते सा ।६३
अपत्यभावस्त्वयि मे सदा स्याद् भक्तिर्भवेन्मे तव पादपङ्कजे
भावद्वयं येन सहैव राजतां कुरुष्व यत्नं तदवाप्तये प्रभो ।६४।
अस्पष्टवाग्भिः स्फुरितं मुखं ते समीक्ष्य शुभ्रस्मितचन्द्रिकायुतम्
निभाल्य चायुः सफलं करिष्ये निजाजिरे रिङ्गणमद्भुतं तव ।६५

तुम्हीं संसार की रचना करते हो, रक्षा करते हो और युगान्त काल में इसका संहार भी करते हो फिर भी अपने को अकर्ता सा दिखाते हुए तुम अपनी निर्लिप्तता को प्रकट करते हो ।६०। सर्वत्र व्याप्त हो फिर भी तुम दिखते नहीं, सारा विश्व तुम्हीं में प्रतिष्ठित है। तुमने जो मेरे गर्भ में निवास किया है वह तो भक्तों की अधीनता अथवा अपने स्वभाव से किया है ।।६१।। फिर भी हे प्रभु, देवप्रणम्य आपके इस रूप में मेरी रुचि नहीं है। चन्द्रमुख की आकाङ्क्षी (पुत्रमुख की अभिलाषिणी) रात्रि (मैं) प्रकाशपुञ्ज सूर्य (आपके इस रूप) की अपेक्षा नहीं करती ।।६२।। बहुत दिनों से सन्तानसुख की प्यासी जिसे तुमने माता शब्द से सुशोभित किया है तुम्हारे समक्ष उपस्थित भाग्यशालिनी वह तुम्हारे विशुद्ध वात्सल्य की चाह रखती है ।।६३।। हे प्रभु ! तुम्हारे प्रति मेरा सदैव अपत्यभाव तथा तुम्हारे चरणकमल में मेरी भक्ति इस प्रकार ये दोनों भाव एक साथ जैसे ही विराजें, उसकी प्राप्ति के लिये आप प्रयत्न करें ।।६४।। अव्यक्त वचनों से फड़कते तुम्हारे, धवल मन्द मुस्कान की चाँदनी से युक्त मुख और अपने आँगन में तुम्हारी थिरकन को देखकर मैं अपनी आयु सफल करूँगी ।।६५।।

तत्त्वं प्रभो स्वीकुरु बालभावं भक्तानुकम्पिन् न विलम्बमेहि
अपेक्ष्यमाणेषु पुरःस्थितेषु क्व चित्तवृत्तिर्भजते तदन्यत् ।६६।

भवेत्तथेत्युक्तवतिप्रभौ सा राज्ञी मुखं पश्यति जातकस्य
यावत्तदैतां गगनोत्थितां गिरं शुश्राव गीर्वाणगणैरुदीरिताम् ।६७

नमस्तुभ्यं विष्णो सकलविपदां नाशक विभो
कृपां काञ्चिन्नित्यां करुणवर बिभ्रन्निजहृदि
निशम्यापन्नानां गलितवचसां दीनवचनं
समुद्धर्तुं तूर्णं वृषधर धरामागत इह ।६८।

त्रिलोक्या उत्पत्तिस्थितिशमनहेतो प्रभुवर
त्वमेको न स्याश्चेन्निजनियमरक्षासु निरतः
कदाचिन्नोदन्तः प्रचलतु भवे त्वद्विषयकः
शरण्यो लोकानां नियमनपटुः विष्णुरतुलः ।६९।

इसलिये हे भक्तानुकम्पी प्रभु, विलम्ब न करें, बालभाव को ग्रहण करें, सम्मुखस्थ अपेक्षित वस्तुओं के प्रति चित्तवृत्ति कहाँ उससे भिन्न होती है ॥६६॥ 'वैसा ही हो' इस प्रकार भगवान् के कहते ही उन रानी कौशल्या ने सद्योजात बालक का मुख देखा देखा ही था कि तबतक देवों से गायी जा रही, आकाश से उत्पन्न यह वाणी उन्होंने सुनी ।६७। समस्त आपत्तियों के विनाशक, हे विभु, भगवान् विष्णु, तुम्हें नमस्कार है, हे करुणश्रेष्ठ, अपने हृदय में कोई अपूर्व नित्य करुणा धारण करते हुए, दुःखी मूकजनों की आर्त्तवाणी सुनकर, शीघ्र ही उद्धार करने के लिये, हे धर्मरक्षक, तुम इस धरती पर आये हो ॥६८॥ त्रिलोकी की उत्पत्ति, स्थिति और विनाश के कारण, हे प्रभुवर, यदि एक तुम अपने नियमों की रक्षा में निरत न रहो तो कदाचित् इस संसार में तुम्हारे विषय में यह कथा ही न हो कि नियमन पटु विष्णु लोगों के अप्रतिम शरण्य हैं (लोकों के शरण्य, नियमन पटु, विष्णु अप्रमेय हैं) ॥६९॥

अपारे विश्वाब्धौ तरणविधिसेतो मधुरिपो
निविष्टान्त:विश्वव्रततिपरिवृद्धे परिवृढ
विधृत्यालंहृष्ट द्विजचरणचिन्हाङ्कितमुरो
नमस्तुभ्यं देव व्यपनयतु दुःखं जगतिजम् ।७०।

तपःस्वाध्यायाभ्यां सफलयितुमेव स्वजननं
कृतो यैः सिद्धान्तो विषमसमये चाप्यविकलः
पवित्रात्मानो ये सुरगणगवीपालनपरा
अलं तेषां तुष्ट्यै सुरवर भवेत्तेऽवतरणम् ।७१।

गृहीत्वा यत्किञ्चित्प्रतिददति दुग्धं निरुपमं
निरौपम्या सृष्टिस्तव सुरभयो याः सुविदिताः
चतुःपारावारामवनिमवितुं जन्म धृतवन्
त्वया तासां रक्षा ननु पिशितभक्षाच्च भविता ।७२।

अपार भवसागर को पार करने के सेतु, हे मधुरिपु, हे अन्तर्निविष्ट, हे विश्वसन्तान (लता) की वृद्धि में समर्थ, हे नाना रूपों में सृष्टि के धारण से अति प्रसन्न, विप्रचरणाचिन्ह से अङ्कित वक्ष होकर भी अति प्रसन्न देव ! तुम्हें नमस्कार है, संसारजनित दुःखों को दूर करें ।।७०।। विषम समय में भी अव्यथित रूप में जिन्होंने तप और स्वाध्याय से अपने जन्म को सफल करने का सिद्धान्त बना लिया है, पवित्रात्मा जो देववाणी के पालन में निरत हैं, हे सुरश्रेष्ठ, तुम्हारा यह अवतार उनकी अति सन्तुष्टि के लिये हो ।।७१।। तुम्हारी जो सुविदित सुरभियाँ गायें (वाग्धेनुवृन्द) जो कुछ भी लेकर अति अनुपम दूध देती हैं, तुम्हारी वह सृष्टि निरुपम है, चारसमुद्र वाली धरती की रक्षा के लिये तुमने जन्म ग्रहण किया है, निश्चय ही उन धेनुओं (और धरती) की राक्षसों से रक्षा तुम्हारे द्वारा होगी ।।७२।।

यदा नासीत्किञ्चिन्नभसि सलिलाद्भिन्नमपरं
त्वमप्यासीः सुप्तः स्वविनिहितशक्त्याश्च वशगः
तदा नाभ्यब्जेजं द्रुहिणमिह लोकस्थितिवशा-
दरक्षस्त्वं हत्वा वनगतमधुं कैटभयुतम् ।७३।

यदा पुच्छाघातोच्छलितजलविन्दूनिह दधन्
न खं धर्त्तुं शक्तं कथमपि निजानन्तपदवीम्
तदा दृष्टं जातं जलनिधिगतं ते झषवपुः
ददद् वेदान् स्रष्ट्रे निखिलनियमानां शुभनिधीन् ।७४।

यदा सृष्टिः सृष्टिर्ननु भवतु सृष्टिश्च सततं
सदासीच्चर्चेयं क्वचिदपि न नाशः श्रुतिगतः
तदा हन्तुं दैत्यं जनकविरुदासक्तमनसं
व्यवस्थां कर्त्तुं त्वं नृहरिवपुषाऽऽसीत्प्रकटितः ।७५।

जब आकाश में जल से भिन्न कोई और वस्तु नहीं थी, अपनी ही निहित शक्ति के वशवर्ती तुम भी सोये हुए थे तब संसारकी सुरक्षाके हेतु अपनी ही नाभि से पैदा कमलयोनि ब्रह्मा की तुमने कैटभ समेत जलस्थ मधुको मारकर रक्षा की थी ।७३।। जब पुच्छाघात से छलकते जलविन्दुओं को धारण करने वाला आकाश अपनी अनन्त पदवीको किसी भी प्रकार से धारण करनेमें समर्थ नहीं हो सका तब समस्त नियमों के सुन्दर खजाने वेदोंको ब्रह्माको देते हुए समुद्रगत तुम्हारा मीनरूप अवतार देखा गया।७४। जब सृष्टि हो, सृष्टि, सतत सृष्टि हो, इस प्रकारकी चर्चा थी और कहीं भी नाश सुनाई नहीं पड़ता था तब संसारके स्वयं पिता (मैं ही हूँ) की पदवी को धारण करने की बुद्धि वाले दैत्य (हिरण्य कश्यप) को मारने और मर्यादा बनाये रखने के लिये तुम नृसिंह रूप में प्रकट हुए थे ।।७५।।

अनिन्द्यं तन्निन्द्यं भवति विपरीतं यदि विधे-
र्न निन्द्यं तन्निन्द्यं भवति यदि लोकस्थितिकृते
इमं सत्सिद्धान्तं प्रकटयितुमस्मान्प्रति पुरा
स्वयं खर्वो भूत्वा प्रभुवर बलेः सद्मनि गतः ।७६।

इदानीमामूलं पुनरपि विहन्तुं तव विधिं
दशग्रीवो भ्रात्रा सह जगति जातो बहुबलः
उभौ हत्वा नूनं फलयितुमिह श्रेयसतरुं
त्वमायातो विष्णो दशरथगृहं मर्त्यवपुषा ।७७।

निहन्तः पापानाममलचरितानां शरणद
जगत्या एतस्या विपदि सततं रक्षणपर
तदेव त्वं कुर्या अपि भवतु तृप्तिः सुमनसां
सदैवासक्तानां तव चरणचर्याव्यवहृतौ ।७८।

शुभकर्म भी यदि व्यवस्था के प्रतिकूल हो तो वह निन्दित माना जाता है और वही निन्दित कर्म यदि लोक मर्यादा के लिये हो तो निन्दनीय नहीं माना जाता, हे प्रभुवर ! इस शुभ सिद्धान्त को हम लोगों के प्रति प्रकट करने के लिये स्वयं आप पहले वामन बनकर बलि के भवन में गये थे ॥७६॥ इस समय तुम्हारी व्यवस्था को पुनः आमूल नष्ट करने के लिये इस संसार में भाई समेत अतिशक्तिशाली दशमुख पैदा हो गया है। उन दोनों को मारकर यहाँ श्रेयस्वृक्ष को फलित करने के लिये, हे विष्णु, तुम मानवशरीर से दशरथ के घर में अवतरित हुए हो ॥७७॥ हे पापियों के संहर्ता तथा विमलचरितजनों के शरणदाता, इस जगती की विपत्ति से रक्षा करने में सदा निरत भगवन्, तुम्हें वही करना है जिससे तुम्हारे चरण सेवा के कर्म में सदैव आसक्तमन वाले सुभक्ता-जनों की तृप्ति हो ॥७८॥

वयं जाता हीना ननु सततभोगैकनिपुणा
अशक्ता रक्षायामपि सुकृतरूपस्य वपुषः
अतो भूयोभूयस्तव चरणसेवैकमनसो
नमोवाकं ब्रूमः शमिततपनायाऽभ्रवपुषे ।७९।

यावद् रहस्यानि गृहे प्रसूतेर्जातान्यसंवेद्यतमानि तत्र
नाज्ञासिषुः केचिदिमानि तावद् विष्णोर्हि मायावशगास्तदानीम् ।

तत्रस्थिताभ्यः परिचारिकाभ्यः शिशुर्गतोऽभून्नयनातिथित्वम्
यदा धरित्र्यां प्ररुदन् स्थितोऽसौ मातुर्विषादापहृतौ विलम्बवान् ।

क्षात्रमाननमम्बुदोपममागतं स्ववियद्गृहे
वीक्ष्य भूपतिभामिनी परितापपुञ्जसमापने
अर्चितुं नवबालकं नु विनीय तत्परतां गता
हर्षनिर्गतमश्रुपूरमनिन्द्यमाननभाजने ।८२।

निरन्तर भोगमात्र में निपुण हम क्षीण हो गये हैं, अपने सुकृतरूप अपने शरीर की रक्षा में असमर्थ हैं, इसलिये तुम्हारे चरण की सेवा में दत्तचित्त हम ग्रीष्म को शान्त करने वाले नवजलधर सदृश श्यामशरीर तुम्हें बार-बार नमोवचन-नमस्कार-कर रहे हैं ॥७९॥ अतिशय असंवेद्य ये सारे रहस्य जबतक प्रसूतिघर में होते रहे, उस समय विष्णु की माया के अधीन हुए कोई भी जन तबतक इन्हें नहीं जान पाया ।८०। माता के दुःख के अपनयन में विलम्बवान् वह रोते हुए जब धरती पर पड़ गये तो वहाँ स्थित परिचारिकाओं ने बालक को देखा ॥८१॥ राजरानी कौशल्या ने संतापों को परिसमाप्त करने वाले अपने आकाशगृह में मेघोपम आये क्षात्रमुख (क्षत्रिय कुमार) को देखकर आनन्द निर्गत अश्रुप्रवाह को सुन्दर मुखपात्रमें रखकर उस नूतन बालककी अर्चा करने को तत्पर हो गयी ॥८२॥ ।

श्रीश्यामान्वितसुन्दरोऽस्ति जनको माता च यस्याम्बिका
यः श्रीराजकिशोर आप्तचरितः शाण्डिल्यवंशोद्भवः
तस्यास्मिन् फणिभाषिताब्धिमननात् सञ्जातशक्तेर्महा-
काव्ये चारुणि राघवेन्द्रचरिते सर्गस्तृतीयो गतः ।८३।

जिनके पिता श्रीश्यामसुन्दर और माता अम्बिका हैं, शाण्डिल्यगोत्रोत्पन्न आप्तचरित जो राजकिशोर मणि हैं महर्षि पतञ्जलि प्रणीत महाभाष्य के मनन से समुत्पन्न महाशक्तिवाले उनके सुन्दर इस राघवेन्द्रचरित महाकाव्य में तृतीय सर्ग पूर्ण हुआ।

चतुर्थः सर्गः

अन्तःपुराद् बहिः राजा कामिनीसम्पदुन्मुखः
आसन्नप्रसवोदन्ते यदासोच्चिन्तया युतः ।१।

कृतेऽपि नितरां शुद्धे प्रबन्धे सर्वतोमुखे
अनिष्टदर्शनाशङ्कि चित्तमुद्विजतेऽपि नुः ।२।

वृत्तं प्रतीक्षमाणेऽस्मिन् भर्तरि व्यग्रमानसे
निदाघे मेघमालेव काचिद् दूती वचोऽब्रवीत् ।३।

भवता किमिदं श्रुतं वचो नृप गेहे भवतो मनोपहृत्
वपुषा मृदुलो मनोहरन् शिशुरेकोऽभिनवः समागतः ।४।

जननीविधृतं सुशोभितं नवबालं नवमम्बुदोपमम्
परितोऽपि निरीक्ष्य साम्प्रतं परितृप्तिं नहि याति मे मनः ।५।

जब प्रसव समाचार आसन्न था, अन्तःपुर से बाहर, स्त्री सम्पति (सन्तान) के प्रति उन्मुख राजा चिन्ता समाकुल हो रहे थे ।।१।। सब प्रकार से अत्यन्त शुद्ध व्यवस्था किये जाने पर भी अनिष्टदर्शन की आशङ्का करने वाला मनुष्य का मन उद्विग्न तो होता ही है ।।२।। व्यग्र-चित्त राजा के समाचार की प्रतीक्षा किये जाते रहने पर ग्रीष्म में मेघ पंक्ति के समान आकर किसी दूती ने राजा से यह बात कही ।।३।। हे राजन्! क्या आपने यह बात सुनी कि आपके घर में मनोहारी, शरीर से कोमल, चित्तहारी एक अभिनव शिशु ने आगमन किया है ।।४।। माता से गोद में रखे गये, सुन्दर, नये मेघ समान श्याम, सद्योजात शिशु को खूब देखकर इस समय मेरा मन तृप्त नहीं हो रहा है ।।५।।

ननु रोदिति यः शनैः शनैर्धृतभृङ्गं सरसीरुहं यथा
ललनामनसो मुहुर्मुहुः सरसोद्वेगकरः परंप्रियः ।६।

नहि दृष्टिचरो पुरेदृशः शिशुरेको जगतीतले पुनः
रविरेव रवेस्तुला सदा किमु कश्चिद् भजतेऽरुणोपमा ७।

अवशा कथने महीपते तव सौभाग्यमदः समागतम्
चल पश्य निजं सुतं नहि मिथ्यां कथये तवाग्रतः ।८।

अतीतसमुदाचारां कर्णयामृतविन्दुदाम्
तां सन्देशहरां राजा मेने कादम्बिनीमिव ।९।

निवेदिन्यै सुतोत्पत्तिं हर्षदुत्फुल्ललोचनः
आनपत्योद्धृतिं मत्वा ददौ हारं हृदि स्थितम् ।१०।

अन्ये द्वे राजकामिन्यौ सुषुवाते त्रिसंख्यकान्
सुतान्तत्रापि कैकेयो पुत्रमेकमजोजनत् ।११।

रानी माता के मन का बार-बार सानन्दोद्वेगकारी वह परम प्रिय, भ्रमरधारी कमल की नाईं, धीरे-धीरे (कहाँ-कहाँ) रोता है ।।६।। इस संसार में इससे पूर्व एक भी ऐसा बालक नहीं देखा गया, सूर्यकी उपमा सदा सूर्य ही है, कोई अरुण की उपमा प्राप्त करता है क्या ? ।७। राजन् ! सम्प्राप्त आपके इस सौभाग्य के वर्णन में मैं असमर्थ हूँ। चलिये अपने तनुज को देखिये, तुम्हारे सामने मैं झूठ नहीं कहती ।।८।। सानन्दातिरेक से समुदाचार को भी छोड़ देने वाली, कानों को अमृतविन्दु प्रदान करने वाली उस सन्देश लाने वाली को राजा ने कादम्बिनी सा माना (समुदाचार लङ्घिनी, जलविन्दुदायिनी मेघ माला जैसी उसे राजा ने माना) ।।९।। पुत्रजन्म का समाचार बताने वाली उस दूती को, हर्ष से प्रसन्ननयन राजा ने हृदि (वक्ष) स्थित हार को अनपत्यता का उद्धार सा मानकर दे डाला ।।१०।। राजा की अन्य दो पत्नियों ने तीन पुत्र पैदा किये, उनमें भी कैकेयी ने एक पुत्र पैदा किया (अन्य दो को सुमित्रा ने) ।।११।।

जातकप्रसवित्र्यस्तास्तिस्रो भार्या महीपतेः
भूपति तमलङ्चक्रुर्ब्राह्मणं श्रुतयो यथा ।१२।

जातकर्मणि सम्पन्ने गुरुश्च दशमेऽहनि
व्यधाज्जातकनामानि भाविभावानुसारतः ।१३।

कौशल्यायाः सुतो रामः कैकेय्या भरतस्तथा
लक्ष्मणश्चैव शत्रुघ्नः सुमित्रानन्दनौ मतौ ।१४।

भाग्योदयप्रसन्नेन सावधानमहीक्षिता
संस्कारयज्ञपूर्त्यर्थं दत्ताः प्रचुरदक्षिणाः ।१५।

भूपतिर्दत्तसर्वस्वो बभार विपुलां श्रियम्
सुरपीतावशिष्टस्य क्षीणस्येव निशापतेः ।१६।

प्रसूतप्रसवित्रीभ्यश्चान्यद् वस्तुकदम्बकम्
नादेयं नृपतेरासीच्चन्द्रज्योत्स्नाप्रकाशवत् ।१७।

पुत्रप्रसविनी राजा की उन तीनों पत्नियों ने राजा को वैसे ही अलङ्कृत किया जैसे ब्राह्मण को श्रुतियाँ (अलङ्कृत करती हैं) ॥१२॥ जातकर्म सम्पन्न हो जाने पर दशवें दिन गुरु (वशिष्ठ) ने भावीभावों (कर्मों) के अनुसार जातकों का नामकरण किया ॥१३॥ कौशल्या के पुत्र राम, कैकेयी के भरत तथा सुमित्रा के पुत्र लक्ष्मण और शत्रुघ्न कहे गये ॥१४॥ भाग्योदय से प्रसन्न सावधान राजा ने, संस्कार-यज्ञ की पूर्ति के लिये प्रभूत दक्षिणा प्रदान की ॥१५॥ इस अवसर पर सर्वस्वदान कर राजा ने देवों से पीतशेष क्षीण चन्द्रमा के समान अपार शोभा धारण की ॥१६॥ राजा के लिये चन्द्र - चन्द्रिका - प्रकाश के समान उत्पन्न जातकों और प्रसूता - रानियों को छोड़कर और कोई भी वस्तु अदेय नहीं रही ॥१७॥

पित्रोर्निराशातमसाप्लुते हृदि प्रकाशरेखामभिरेखयन्तम्
प्रकृष्टदिष्टयाः परिणामरूप विभ्राजमानं नवपत्रकोपमम् ।१८।

दिगम्बरं कुञ्चितकेशराशिं चन्द्राननं श्यामवपुर्ललामम्
सम्यग्विभक्तावयवं शुभेक्षणं नीलत्विषा निर्जितमिन्द्रनीलम् ।१९

प्रसूशुभाङ्के समवस्थितं तं क्षिपन्तमारान्निजपाणिपादम्
मनो मुनीनामपि लोभयन्तं मुदा नृपोन्वैक्षत तत्र रामम् ।२०।

चतुःसुतानाञ्च निरीक्षणान्तं चतुर्गुणं मोदमिहाभिरक्षितुम्
पर्याप्त एकार्थमसौ नृपस्य स्वान्तावकाशो लघुरेव जातः ।२१

परं पुमांसं नररूपधारिणं सम्प्राप्य जाता प्रकृतिर्मुदन्तम्
स्वजन्मसाफल्यमवाप्तये सा तत् कारणं सेवितुमुन्मुखीव ।२२।

दिशः प्रसेदुर्गगनं प्रसन्नं धरा प्रसन्ना सरितः प्रसन्नाः
जाता समस्ता प्रकृतिः प्रसन्ना प्रसन्नरूपं समवाप्य पूरुषम् २३

माता-पिता के निराशारूप अन्धकार से भरे हृदय में अभितः प्रकाश रेखा को अङ्कित करते हुए, प्रबल भाग्य के परिणामस्वरूप शोभायमान नयी कोपल के समान निर्वस्त्र, कुञ्चितकेशराशि, चन्द्रमुख, सुन्दर श्याम शरीर, भलीभाँति विभक्त अङ्ग, शुभनेत्र (ईक्षण), नीलकान्ति से इन्द्र-नीलमणि को भी जीत ले रहे प्रसवित्री माँ की सुन्दर गोद में विराजमान हाथ पाँव फेंक रहे मुनियों के भी मन को लुभा रहे, उस शिशु राम को राजा ने वहाँ सानन्द देखा ।।१८-२०।। चारों पुत्रों को देखने के बाद चौगुने आनन्द की रक्षा करने में राजा का एकार्थ पर्याप्त भी अपना स्थान छोटा ही पड़ गया ।।२१।। मनुष्यरूप धारी परमपुरुष को प्राप्तकर प्रकृति भी परमानन्द को प्राप्त हो गयी । अपने जन्म को सफलता पाने के लिये उसके (अपने ही) कारण की सेवा करने के लिये उन्मुख सी हो गयी ।।२१।। दिशायें प्रसन्न हो गयीं, आकाश प्रसन्न हो गया, धरती प्रसन्न हो गयी, नदियाँ प्रसन्न हो गयीं (बहुत क्या) प्रसन्नरूप (आनन्दस्वरूप) पुरुष को प्राप्तकर सारी प्रकृति ही प्रसन्न हो गयी ।२३।

सर्गस्थितेः कारणमागतं तं निभाल्य कार्यं न भवेत्प्रसन्नम्
कथं स्थितिस्त्वात्मविरोधिनी स्यात् प्रसन्नताऽतोऽधिगता प्रसन्नताम्

कस्मिश्चिद्दिवसे काचित्पुरन्ध्री समुपागता
उवाचात्मदशां प्रौढा नत्वा श्रीराममातरम् ।२५।

अर्जितमोदं प्रशमिततपनं जृम्भितहासं धवलितककुभम्
निर्जितकामं जलधरवपुषं कुञ्चितकेशं कुसुमितवदनम् २६।

सञ्चितशोभं सरसिजनयनं कौसुममालं कुवलयसदृशम्
वर्जितपापं मुकुलितदशनं शोभितपादं सुललितचलनम् ।२७।

वीक्ष्य ललामं नयनविलसितं सुन्दररामं रघुकुलतिलकम्
मे हृदि सद्यो व्यपगतमदने स्वामिनि जातं व्यसनमनुपमम् ।२८

अद्भुतबालो विलसतु सुचिरं सद्मनि तेऽयं विहरतु निभृतम्
जीवितकालं वितरतु गिरिशो रक्षतु चैनं प्रतिपलमनलः ।२९।

संसार की स्थिति के कारण को आया देखकर कार्य प्रसन्न न हो? स्थिति अपनी ही विरोधिनी कैसे हो सकती है? इसीलिये प्रसन्नता भी प्रसन्नता को प्राप्त हो गयी ।।२४।। किसी दिन कोई एक नगर महिला आयी और उस प्रौढा ने प्रणाम कर राम की माता कौशल्या से अपनी दशा बताई ।।२५।। आनन्दप्रद, तापबुझाने वाले, हासयुक्त, दिशाओं को शुभ्र बनाने वाले, काम को जीतने वाले, मेघश्याम शरीर, घुंघरालेबाल प्रसन्नमुख शोभापूर्ण, कमलनयन, पुष्पमालाधारी, नीलकमल सरीखे, पापशून्य, कुड्मलदन्त, सुन्दर पाँव, सुन्दर चाल-थिरकन अभिराम, नेत्र-विलास, रघुकुलतिलक सुन्दर राम को देखकर, कामरहित मेरे हृदय में हे मालकिन! अनुपम आसक्ति पैदा हो गयी है। यह अद्भुत बालक बहुत दिनों तक विलसित हो, तुम्हारे घर में यह सुरक्षित बिहरे, भवानीपति इसे लम्बी आयु दें और प्रतिक्षण अग्नि इसकी रक्षा करें ।।२६-९।।

निशम्याप्यात्मजोत्कर्षं कौशल्याऽभूद्भयातुरा
पुत्रस्नेहातुरा राज्ञी दृष्टिभावमजानती ।३०।

यस्मान्नाप्नोति खे चन्द्रो हानिं बहुभिरीक्षितः
तद्धेतोः कज्जलं माताऽकरोच्चन्द्रमुखे शिशोः ।३१।

आयानतौवनिकटं रघुवंशयोनि-
र्ग्रीष्मे निभालयितुमन्वयजं समन्तात् ।
नोद्वेजकोऽभवदसौ तपनःस्नुषायाः
क्रोडस्थितेन शिशुना परिशीतलायाः ।३२।

अङ्के निधायजननीन्दुमुखं रुदन्तं
मीनेक्षणं कमलपादममुं स्वबालम्
कर्तुं प्रशान्तमिति बुद्धिवशादटन्ती
नम्राननानि कमलानि ददर्श वाप्याम् ।३३।

जातेऽम्बरे कलुषिते सघनैः पयोदैः
कोप्यन्वभून्न विरहं पुरि शीतरश्मेः
रात्रौ शुचेरपि निजाननचन्द्रदीप्त्या
काष्ठां प्रकाशयति बालकरामभद्रे ।३४।

पुत्र स्नेहातुर रानी नजर को न जानती हुई अपने पुत्र की बड़ाई सुनकर भी कौशल्या भय से त्रस्त हो गयी ।।३०।। बहुतों से देखा गया भी चन्द्रमा जिसके कारण आकाश में कोई हानि नहीं पाता उसी के लिये माता ने बालक के चन्द्रमुख में काजल का टीका लगा दिया ।।३१।। रघुवंशयोनि (कारण) सूर्य अपने वंशप्रसूत (राम) को चारों ओर से देखने के लिये ग्रीष्म में अति समीप आते हुए भी वह, अपनी गोद में वर्तमान शिशु से परिशीतल कुलवधू (कौशल्या माता) के लिये उद्वेगकारी नहीं हुए ।।३२।। माता रोते हुए चन्द्रमुख, मत्स्यनेत्र, कमलचरण उस अपने शिशु को गोद में लेकर चुपकराने के विचार से झूमती हुई वापी में नमितमुखकमलों को देखा ।।३३।। घने बादलों से आकाश के मलिन हो जाने पर बालक रामभद्र द्वारा अपने मुख-चन्द्र-प्रभा से दिशाओं के प्रकाशित करते रहते आषाढ़ की रात में किसी ने भी नगर में चन्द्रमा का अभाव महसूस नहीं किया ।।३४।।

श्यामोऽम्बुभृच्चपलया युत आप्तशोभो
रामोऽपि पीतवसनाञ्चितकृष्णमूर्तिः
सामान्यतो व्यपगतेऽपि तयोर्विभेदे
क्वायं शिशुर्द्युतिवपुः क्व जडः स मेघः ।३५।

अभ्रत्विषं रुचिरपीतपटं दधानं
शीते दिवारुणमयूखसुखेन बालम्
योक्तुं प्रसूर्यदि गता भवनाट्टभागं
केकां निशम्य च ममज्ज कुतूहलाब्धौ ।३६।

योगो भवेन्नहि शिशोर्ननु शीतरोगै-
र्बुद्ध्येऽनया दहनसेवनतत्परा सा
सद्यो बभूव विवशा ज्वलनं निरीक्ष्य
स्वाङ्कार्भक मृतवचोभिरवाप्तशैत्यम् ।३७।

प्रतिक्रियं कर्म भवेद् विभिन्नं मान्या सदैषा नहि शाब्दिकोक्तिः
सर्वाः क्रिया बालगताश्च यस्मात् तोषाय राज्ञः सुचिरं बभूवुः ।३८

विद्युत् से शोभा प्राप्त श्याम मेघ तथा पीतवसन शोभित श्याम स्वरूप श्रीराम, सामान्यतः दोनों में भेद न रहने पर भी (दोनों की तुलना कहाँ) कहाँ यह ज्योतिशरीर शिशु और कहाँ वह जड़ मेघ ॥३५॥ सुन्दर पीताम्बर धारे, श्यामकान्ति बालक को शीतकाल में दिन में सूर्यकिरण सुख से समन्वित करने के लिये माता जब महल की अटारी पर यदि गयी तो (मेघश्याम राम को देखकर हर्षित मयूर) की केका सुनकर आश्चर्य समुद्र में डूब गयी ॥३६॥ बालक को कहीं ठंड से शीतरोग न लग जाय इस विचार से माता अग्नि सेवन में लग गयी (आग तापने लगी) किन्तु अपने गोद में अवस्थित बालक की अमृतवाणी से ठंडे हुए आग को देखकर माता अवश हो गयी ॥३७॥ वैयाकरणों की यह उक्ति सदैव मान्य नहीं है कि प्रत्येक क्रियाओं के साथ कर्म अलग-अलग होते हैं क्योंकि राम की बालगत सारी क्रियायें बहुत काल तक राजा के सन्तोष के लिये ही हुई ॥३८॥

प्ररोदनं जृम्भणमस्फुटोक्तिः किं पादयोर्वा भुजयोः प्रवृत्तिः
हासो भवेदीक्षणमेव वा स्यादासीन्न किं चारुतमं नृपाय ।३९।

यदिङ्गितेनैव जना व्यवस्थां राज्ये विधातुं विहितप्रयत्नाः
स एव कर्तुं स्वमनो व्यवस्थितं जातेङ्गितज्ञानमना बभूव ।४०।

स्युर्मे न जाता अनवाप्तकामा इतीच्छयैवानुदिनं निबद्धः
दृष्ट्यैव यं बिभ्यति लोकजाताः स भूपतिर्जातसुखाद् बिभेति ।४१

ख्यातास्तु दुर्धर्षपदेन लोके भवन्ति वश्याः स्वयमेव यस्मात्
अपत्यजः स्नेह इहास्ति चित्रं तत्त्वं निविष्टं विधिना जनेषु ।४२

अङ्के निधाय चतुरो लघुबालकान् सोऽ-
योध्यापतिर्दशरथः शुशुभे प्रकामम्
धर्मार्थकामयुतमोक्षफलं विधृत्य
संस्कारराशिरिव पुण्यमयः प्रभूतम् ।४३।

रोना हो, बोलना हो (जंभाना हो), अस्फुट कथन हो अथवा पैरों-भुजाओं से घुटने चलना हो, हास हो या खेल हो राम का कौन सा व्यापार राजा के लिये अतिशय मनोहारी नहीं रहा ? ॥३ ॥ जिसके सङ्केत मात्र से ही लोग प्रयासपूर्वक राज्य में व्यवस्था करने में लग जाते थे वही राजा अपने मन को व्यवस्थित करने के लिये अपने पुत्र के सङ्केतज्ञान में मन लगाने लगे ॥४०॥ अपने बच्चों की कोई भी इच्छा अपूर्ण न रहे इसी इच्छा से ही प्रतिदिन वह बँधे रहते थे जिसकी दृष्टि से ही सारे लोग डर जाते थे वहीं राजा बालकों को सुख से वञ्चित न होना पड़े, इससे डरते थे ॥४१॥ संसार में दुर्धर्ष पद से प्रसिद्ध भो लोग जिससे स्वयं वशवर्ती हो जाते हैं विधाता द्वारा लोगों में निवेशित वह सन्तान जनित स्नेहरूप तत्त्व अद्भुत है ॥४२॥ अयोध्यापति राजा दशरथ छोटे-छोटे चारों बालकों को गोद में रखकर उस प्रकार अतिशोभित हुए जैसे धर्म अर्थ काम से समन्वित मोक्ष फल को धारण कर पुण्यमय सस्कार राशि ही हों ॥४३॥

बालैश्चतुर्भिर्युताः काञ्चनीयाः क्षौमावृतास्तत्र दोलाः सुरम्याः
दोलायमाना प्रसूभिर्यदासन् चित्तं समं दोलितं चापि राज्ञः ।४४

कालमासाद्य स राजः पुत्राणां हितकाम्यया
अन्नप्राशनसंस्कारं चकार विधिना पुनः ।४५।

प्रभूतान्नप्रदानेन तोषितास्तेन च प्रजाः
प्रजाभिश्चकृतास्तस्यात्मजा आशीर्वचोयुताः ।४६।

रामः स्वभ्रातृभिः साकं वर्धमानो निरन्तरम्
नाददात्केवलं शर्म श्रेयस्तल्लजमप्यदात् ।४७।

यदाङ्गने रिङ्गणकर्मलग्नान् विलोक्य बालान्ससुखो महीशः
उत्थाप्य तानङ्कगतानकार्षीत्तदैव मेने सफलं निजं जनिम् ।४८

हस्तान्प्रसार्याङ्गुलीर्मेलयित्वा वृत्ते लयग्राहि नृत्ये प्रवृत्ताः
जह्रुस्तदा भ्रातरो राजचित्तं वात्या तृणं मण्डलाकारिणीव ।४९

श्रुत्वापराधं विहितं प्रजासु क्षणेन यो दण्डविधौ प्रवृत्तः
नृपः स आसील्ललनाननोन्मुखः श्रुत्वाऽपि भार्योक्तसुताभियोगान्

चारों बालकों से युक्त सोने की बने रेशमी वस्त्रों से परिवेष्टित वहाँ जो सुन्दर हिंडोले थे वे जब माताओं से दोलायित किये जाते तो उसके साथ राजा का मन भी डोलने (प्रसन्न) होने लगता ॥४४॥ समय प्राप्तकर राजा ने बालकों के कल्याण के विचार से फिर सविधि अन्नप्राशन संस्कार किया ॥४५॥ राजा ने प्रभूत आनन्द से अपनी प्रजाओं को सन्तुष्ट किया और प्रजाओं ने राजपुत्रों को आशीर्वाद प्रदान किया ॥४६॥ अपने भाइयों समेत सतत वर्धमान राम ने केवल सुख ही (प्रेम ही) नहीं, उत्तम श्रेय आनन्द भी प्रदान किया ॥४७॥ सुखी राजा ने आँगन में सरकते बालकों को जब देखा, तो देखकर उन्होंने उन्हें अपनी गोद में ले लिया और उस क्षण अपना जन्म सफल माना ॥४८॥ हाथों को फैलाकर, अंगुलियों को परस्पर जोड़कर चारों भाई घेरे में लयग्राही नृत्य करने लगे और तब उन्होंने राजा के मन को वैसे ही आकृष्ट किया जैसे आवर्तवती आँधी तिनकों को हर लेती है ॥४९॥ प्रजाओं में किये गये अपराध को सुनकर ही जो तत्क्षण दण्ड देने में लग जाते थे वही राजा पत्नियों से कहे गये बालकों की शिकायतों को सुनकर भी हर्ष से उनके मुख की ओर उन्मुख हो जाते थे ॥५०॥

अगारवस्तून्यपसारितानि स्वस्थानतोऽनेन भवत्प्रियेण
कार्यविरोधे नियतोऽवरोधे किं श्रीमताऽयं चपलोर्भको मे ।५१।
मुहुर्मुहुस्ते कथयामि राजन् ददासि कर्णौ नहि मे वचःसु
बाल्ये निरुद्धः कुपथान्न बालः पितुः स दुःखाय भवेद्भविष्ये ।५२
अलीकमन्युस्तदनन्तरं नृपो यदा लुलोके मुखमम्बुजं शिशोः
पलायितौ द्वौ समकालमेव भीतः स रामो नृपतेश्च मन्युः ।५३।
प्रासादमध्यमणिकुट्टिमभूमिभागे तल्पेऽथवा कुसुमराजिभिराप्तशोभे
रामः सहानुजगणेन विचित्रकेलीः कुर्वन्स्त्वमातृमनसामपहारकोऽभूत्
प्राप्तव्यमेवमनसेप्सितवस्तुजातं बुद्धयाऽनया यदि स बालहठं चकार
कामं भवेन्न सुकरं परिदातुमेतत् प्राजीजनत्पुनरनेन स मातृमोदम् ।
दृष्ट्वा निरभ्रगगने परिशोभिचन्द्रं रामस्तमाप्तुमभिलाषमुदाजहार
सामर्थ्यहानिमसकृत्प्रनिभाल्य मातुः स्थालीगतेन शशिनैव स
पर्यतुष्यत् ।५६।

आपके इस लाडले ने भवन की वस्तुओं को इधर-उधर बिखेर दिया है, अन्तःपुर में यह काम में अवरोध करने में लगा रहता है, आपसे क्या ? यह मेरा बच्चा अन्तःपुर में कार्यविरोध के लिये ही नियुक्त है ? ।।५१।। राजन् मैं बार-बार कह रही हूँ, पर मेरे कथन पर कान ही नहीं देते। लड़का यदि बचपन में कुमार्ग से नहीं रोका जाता तो भविष्य में वह पिता के लिये दुःखदायी होता है ।।५२।। इसके बाद राजा ने जब कृतककोप युक्त होकर बच्चेके मुखकमलकी ओर देखा तो दोनों एक साथ भाग गये-डरे हुए राम और राजाका क्रोध ।।५३। महलोंमें मणिकी बनी फर्श की भूमियों में अथवा पुष्पों से सुशोभित शय्या पर सर्वत्र छोटे भाईयों समेत नाना क्रीडाओं को करते हुए राम ने अपनी माताओं के मन का अपहरण किया ।५४।। मनचाही वस्तु मिलनी ही है, इस विचार से जब वह (ऐसी वस्तु के लिये कभी) बालहठ करते थे, किन्तु वह देना पर्याप्त सुकर नहीं होता था और इस प्रकार वह इस क्रिया से भी माता में पुनः आनन्द पैदा करते थे ।।५५।। निरभ्रगगन में परिशोभित चन्द्रमा को देखकर राम ने उसे पाने की अभिलाषा व्यक्त कर दी, फिर माता की शक्ति के बाहर की वस्तु देखकर (माता द्वारा निर्दिष्ट) स्थाली में प्रतिबिम्बित चन्द्रमा से ही संतुष्ट हो गये ।।५६।।

भाले महार्हमणिसंयुतपत्रपाश्यां मुक्तायुते श्रवणयोरपि कुण्डले द्वे
हारं प्रभाकरमपिप्रभया नमन्तं शोभाकरं सुललितं हृदि धारयन्तम्
केयूरकङ्कणसुशोभितबाहुयुग्मं काञ्चीगुणाङ्कितकटिं प्रतिकर्मयुक्तम्
अभ्रं स्वकृष्णवपुषा च विडम्बयन्तं दृष्ट्वा सुतं दशरथो मुदमन्ववाप

स्वतुण्डेन कुक्षिं मुहुश्चालिखन्तं सदा शङ्कया दिक्षु चक्षुः क्षिपन्तम्
स्थितं स्वाजिरे वाशमानं कदाचिद् शिशू रामभद्रो ददर्शैकदृष्टिम् ।

कणान्तण्डुलस्य स्वहस्ते गृहीत्वा त्वमायाहि काक त्वमायाहि काक
वदन्नेवमस्यानुगोऽसौ यदाऽभूदकार्षीत्तदा स्वानुगां लोकदृष्टिम्

अरिष्टेन साकं समीर्ष्यां दधानाः शशंसुस्तदानीं नभःस्था दिविस्थाः
श्रुतिर्यं सदान्वेति काकानुगोऽसौ न काकस्य भाग्यं कदाचिन्निरूप्यम्
क्व काकेनशीते तपस्याऽन्वकारि क्व पञ्चाग्निनाऽदाहि गात्रं स्वकीयम्
कृता तीर्थयात्रा क्वचिद् वाऽमुनैवं यदस्यानुगो
बालरूपः परात्मा ।६२।

मस्तक पर बहुमूल्य मणि से युक्त पत्रपाशी (अलङ्कार विशेष), दोनों कानो में मोती से युक्त दो कुण्डल, प्रभा से सूर्य को भी तिरस्कृत करने वाले, शोभाकर, सुन्दर हार को हृदय पर धारण किये हुए सुजवन्द और कंकण से सुशोभित दोनों भुजायें, सोने की करधन से युक्त कटि-भाग, साभरण तथा अपनी कृष्णकान्ति से मेघ का सादृश्य करते हुए पुत्र राम को देखकर राजा दशरथ आनन्दित होते थे ॥५७-५८॥ शिशु रामभद्र ने कदाचित्, अपनी चोंच से बार-बार कोख को कुरेदते हुए सदा शङ्का से आँखों को चारों ओर दिशाओं में दौड़ाते हुए अपने आँगन में बोलते हुए एक कौआ को देखा ।५९। हाथमें चावल (भात) के कणों को लेकर, कौआ, तुम आओ, कौआ आओ, ऐसा कहते हुए वह रामभद्र जब इसका पीछा करने लगे तो लोगों की आँखों को अपनी ओर समाकृष्ट कर लिया ।६०। कौअेसे ईर्ष्या रखते हुए उस समय आकाशस्थ देवोंने प्रशंसा की, कि सदा श्रुतियाँ भी जिसका अनुगमन करती है, वही अब कौअे के पीछे भाग रहा है, इस कौअे का भाग्य कभी बखाना नहीं जा सकता ॥ इस कौअे ने शीत में कहाँ तपस्या की, अथवा पञ्चाग्नि से कहाँ अपना शरीर तपाया, अथवा इसने कहाँ तीर्थ यात्रा की, जो बालरूप परमात्मा इस प्रकार इसका अनुगमन कर रहा है ॥६२।

अवश्यं महात्माऽस्ति रामानुगम्यः
सकृत्सन्तातिं वायसोऽयं ददाति
अयं त्वात्मघोषे सदैवावसक्तो
न दृष्टौ विभेदोऽस्त्यतश्चैकदृष्टिः ।६३।

समं भ्रातृभिः पर्यटन् सद्मनि स्वे
ददर्शैकदा कीशमेकं प्रघाणे
स रामोऽभवद् बद्धभावस्तदानीं
निरोद्धुं कपिं चापि कर्तुं स्वकीयम् ।६४।

कपिः सोऽपि दूरं समीपं कदाचित्
स्थितो बालमारात्परं चागृहीतः
विलोभं समुत्पादयन्शैशवेऽस्मिन्
बहिर्यात एवावतस्थे न बन्धे ।६५।

नरा वानरान् नर्तयन्ते सलीलं
परं वानरो नर्तयन्नत्र मर्त्यम्
प्रकाशस्य कोटावुदन्तं निनाय
क्वचिन्नाव्यनोऽनोगता नौः कदाचित् ।६६।

राम के द्वारा पीछा किया गया यह निश्चित ही महात्मा है, यह कौए की जाति एकी बार सन्तान देती है, यह तो सदैव अपने घोष में ही आसक्त रहता है, इसकी दृष्टि में कोई विभेद नहीं है. इसीलिये तो यह एकदृष्टि (एकाक्ष) कहा जाता है ॥६३॥ अपने भाइयों के साथ अपने भवन में विचरते हुए राम ने एकबार बरामदे में एक बानर को देखा। तब उन राम ने यह भाव बना लिया कि इस बानर को पकड़ने और अपना बनाने चलता हूँ ॥६४॥ वह बानर भी कभी दूर तो कभी पास, कभी बालक के समीप खड़ा हो जाता, पर पकड़ा नहीं गया। इस प्रकार उस शिशुपन में लोभ पैदा करता हुआ बच्चे को लुभाता हुआ वह बाहर खड़ा हो गया पर बन्धन में नहीं आया।६५। मनुष्य बानरों को सलील नचाते हैं, किन्तु यहाँ तो बानर ही मर्त्य (मनुष्यरूप राम) को नचाता हुआ इस कहावत का उदाहरण प्रस्तुत कर दिया, कि कभी गाड़ी नाव पर तो कभी नाव गाड़ी पर ॥६६॥

स्वयं धावयन्पर्यधावत्प्लवङ्गो ललाटन्तपो यावदर्को बभूव
कृतेऽपि प्रयत्ने यदाभून्न बद्धस्तदा रोदितुं भ्रातृयुक्तः प्रवृत्तः। ६७
गता मूर्द्धजा व्यस्तभावं समन्तान् मुहुर्लुण्ठनाद् धूलिभिश्चावलिप्ताः
मुखं कज्जलेनावमृष्टं यदाऽभूत्तदाऽयं बभूव स्वयं कीशडिम्भः।
श्रमेणश्लथं वीक्ष्य बालं विचित्रं प्रकृत्या मनोज्ञं प्रवृत्त्यानुरक्तम्
स्वभावात् शिशोर्वाऽनुभावप्रकर्षादकस्मात्कपिरतेन जातो गृहीतः।।
गृहीतो गृहीतो वदन् रामभद्रः समं भ्रातृभिः पर्यतुष्यद् यदैव
तदावीक्ष्य बालाननं तुष्टियुक्तं कपिश्चापि तुष्टिं परामाप्तवान्सः।
परं स्वर्णदाम्ना प्रकामं निबद्धः कपिः राजभोगान् सदा सेवमानः
परां निर्वृतिं प्राप रामेण साकं जुषन्ते समृद्धिं समृद्धैः सहस्थाः। ७१
एवं प्रतिदिनं किञ्चिन्नूतनं दृश्यं च दर्शयन्
जातस्तोषाय सर्वेषामयोध्यावासिनामयम् ।७२।

राम स्वयं दौड़ रहे हैं, बानर भी चारों ओर दौड़ता रहा तब तक सूर्य प्रखर (ललाटन्तम) हो गया। प्रयास करने पर भी बानर बँधा नहीं तब भाई समेत वह रोने लग गये ।।६७।। बाल चारों ओर विखर गये हैं, बार-बार गिरने से धूलिधूसरित भी हो गये हैं और मुख जब काजल से पुत गया तो वह शिशु राम भी स्वयं ही बानर शिशु हो गये ।।६८।। उस विचित्र बालक को श्रम से शिथिल, प्रकृति से मनोज्ञ, प्रवृत्ति से अनुरक्त देखकर अपने स्वभाव या शिशु के अनुभावप्रकर्ष से सहसा वह बानर राम से बाँध लिया गया (राम ने उसे पकड़ लिया ।।६९।। पकड़ लिया, पकड़ लिया, कहते हुए रामभद्र भाइयों समेत जभी खूब सन्तुष्ट, प्रसन्न हो गये तब बच्चों के मुख को देखकर वह बानर भी परम सन्तोष प्राप्त कर गया ।।७०।। इसके बाद सोने की शृङ्खला से पर्याप्त बँधा हुआ, सदा राजभोगों का उपभोग करता हुआ, राम के साथ वह परमानन्द प्राप्त करता था, समृद्ध लोगों के साथ रहने वाले समृद्धि का सेवन करते ही हैं ।।७१।। इस प्रकार प्रतिदिन कोई न कोई नया दृश्य दिखाते हुये राम सारे अयोध्यावासियों के सन्तोष का कारण बने ।।७२।।

शिशवस्तरुणा वृद्धाः पुमांसो योषितोऽथवा
श्रीरामं कामयामासुः पशवो नभसङ्गमाः ।७३।

उदयाद्रिं गते सूर्ये कयाचिद् योषितैकदा
राकान्ते परिदृष्टोऽभूद् रामो राजीवलोचनः ।७४।

गत्वा गृहं सखीं सद्यो विस्मयोत्फुल्ललोचना
श्रीरामं वर्णयामास हर्षगद्गदया गिरा ।७५।

प्रातर्गता नृपगृहं सखि कार्यहेतोर्दृष्टं मयोदितमपूर्वमहः स्वरूपम्
पूर्वे रविं तदनु पश्चिमदिग्विभागे चन्द्रं नृपाङ्गणगतं च
विचित्रनीलम् ।७६।

दृष्ट्वा तदद्भुतमचिन्त्यमगर्ह्यरूपं
चन्द्रेण घस्रमणिना परिषेव्यमाणम्
कामं स्वजन्मफलमेव मया ह्यवाप्तं
व्यर्थो जनिर्ननु भवेन्नहि येन दृष्टम् ।७७।

बच्चे, नौजवान, बूढ़े स्त्री या पुरुष, पशु - पक्षी सभी श्रीराम को चाहते थे ॥७३॥ निशान्त (राकान्त) में एकबार सूर्य के उदयाचल पर आने पर राजीवलोचन राम किसी स्त्री से देखे गये ॥७४॥ आनन्दमिश्रित आश्चर्य से उत्फुल्लनयन वह तुरन्त अपनी सखी के घर जाकर हर्षगद्गद वाणी में राम का वर्णन करने लगी ॥७५॥ सखि प्रातःकाल मैं कार्यवश राजगृह गयी थी, वहाँ उदित हुए अपूर्व प्रकाशरूप का दर्शन किया। पूर्व में तो सूर्य था और पश्चिम में चन्द्र तथा राजा के आँगन में एक विचित्रनील प्रकाश था ॥७६॥ चन्द्र और सूर्यमणि से परिव्याप्त (घिरे हुए) उस अद्भुत, अचिन्त्य, अनिन्द्यरूप को देखकर मैंने अपने जन्म का पूरा फल प्राप्त कर लिया, जिसने उसको नहीं देखा उसका जन्म ही व्यर्थ है ॥७७॥

नीलोत्पलं विफलतामुपयाति तत्र
साम्यं च तस्य वपुषो नहि नीलमेघे
नीलं नभः क्व नितरां वपुषा विहीनं
क्वायं शिशुर्नयनगोचरतामुपेतः ।७८।

नीलं तमश्चलति नो चलतीतिवादे
नैयायिका न चलतीति मुधा वदन्ति
दृष्टं मया सुललितं सुमनोऽभिरामं
नीलं महश्चलति नीलतमोऽपकुर्वत् ।७९।

राकापतिस्तुहिनदीधितिरप्यपूर्णः
सर्वातिशायिसुषमो मदनोऽप्यनङ्गः
लक्ष्मीविलासकमलं दिवसैकशोभि
देशस्वरूपसमयै रसमोऽर्भकोऽयम् ।८०।

अन्वेषयेज्जगति मादकतानिवासं
कश्चिज्जनो यदि च मोहकतानिकेतम्
किं वा वशीकरणभूमिमथाऽपि विन्दे-
त्तस्मिन् शिशावविकलं सकलं स लब्धा ।८१।

नीलकमल तो उसके समक्ष व्यर्थ है, उसके शरीर की उपमा नीलमेघ में भी नहीं है, नीला आकाश-अरे, कहाँ शरीरविहीन (शून्य) आकाश और कहाँ नयनगोचर प्राप्त यह नील शिशु (दोनों में क्या तुलना ?) ।७८। नीलतम चलता है, नहीं चलता है,इस विवादमें नहीं चलता ऐसा नैयायिक व्यर्थ ही कहा करते हैं। मैंने तो देखा सुललित, मनोभिराम नील तेज, नीलतम को भगाता हुआ चल रहा था ॥७९॥ राकापति, हिमदीधिति चन्द्रमा भी अपूर्ण ही है, सर्वश्रेष्ठसुन्दर काम भी अनङ्ग है, लक्ष्मी का विलासकमल भी मात्र दिन में ही शोभता है, यह बालक तो देश, स्वरूप और समय तीनों से अतुल (परे) है ॥८०॥ यदि कोई व्यक्ति संसार में मादकता का निवास, मोहकता का निवास, अथवा वशीकरण भूमि खोजे तो वह उस बालकमें सभीको अविकलरूप में पायेगा ॥८१॥

ये सन्ति कामरहिता मुनयः प्रवीणा
निर्मत्सराः सततमीश्वरलग्नचित्ताः
तेषामपापमनसां मनसि प्रकामं
काम शिशुः स जनयन्नृपगेहमास्ते ।८२।

सौन्दर्यराशिरपरो मदनस्वरूपो लावण्यपूरपरिपूरितवारिराशिः
माधुर्यमेव वपुषा परिवर्द्धयन्सः शान्ति स्वतां विमलतां
प्रकटीकरोति ।८३।

पृथ्वीप्रभुत्वमथवा द्युसदाधिपत्यं
तुच्छातितुच्छमिह तं समवाप्य नूनम्
सोऽयं निधिर्निधिगणैरविगर्हणीयो
लक्ष्यः सतां विमलबुद्धिमतां जनानाम् ।८४।

किञ्चिन्न विश्वपटले समताऽपि येन
स्यात्तस्य निर्जरगणैश्च कृतेऽपि शोधे
निश्चप्रचं हि विधिनाऽपि निदर्शनाय
स्वोत्कृष्टसृष्टिरधुना विहिताऽस्मदर्थम् ।८५।

कामरहित, प्रवीण, मत्सरशून्य, सतत ईश्वर में लगे मन वाले जो मुनि-गण हैं, पापशून्य उनके भी मन में, राजा के घर में रहता हुआ वह बालक, पर्याप्त काम (प्राप्तीच्छा) पैदा करता है ॥८२॥ सौन्दर्यराशि यह अपरकामस्वरुप है, लावण्यप्रवाह से भरपूर समुद्र है, शरीर से वह माधुर्य को भी बढ़ाता है, अपनी शान्ति और विमलता को प्रकट करता है ॥८३॥ उसे प्राप्त कर लेने पर इस जगत् में धरती का स्वामित्व अथवा देवाधिपत्य तुच्छातितुच्छ है। निधियों से भी प्रशंस्य यह वह निधि है जो विमलबुद्धि सज्जनों का लक्ष्य है ॥८४॥ देवों से भी खोजे जाने पर इस विश्वपटल में जिससे किसी की कोई समता नहीं है, निश्चय ही विधाता ने निदर्शन के लिये ही अपनी उत्कृष्ट रचना इस समय हम लोगों के लिये बनाई है ॥८५॥

धन्यो नृपो दशरथः कृतपूर्वपुण्यः
सीमन्तिनी तदनु कोशलजाऽपि धन्या
धन्येयमस्ति नगरी महतामयोध्या
दृष्टो यदत्र महसां निधिरेक एव ।८६।

दीर्घायुषा विधिरमुं नवजं युनक्तु
दद्याच्छिवोऽपि सततं शिवराशिमस्मै
कुर्वन्सदा श्रुतिभिरुक्तमनिन्द्यकर्म
भूयादयं जगति मानवताप्रतीकः ।८७।

कौशल्यायाः सुतं द्रष्टुं साक्षान्मन्मथमन्मथम्
समुत्सुकाः स्त्रियः काश्चिदेकदा समुपागताः ।८८।

प्रणमन्तं प्रियं रामं दृष्ट्वा सहजसौभगाः
सुचरित्राः पलिक्न्यस्ता असिचन् वाक्यवारिभिः ।८९।

रक्षतात्, सनातनः प्रियम्बदम्
बालकं, पुरःस्थितं सुकोमलम् ।९०।

पूर्व जन्म में पुण्य करने वाले राजा दशरथ धन्य हैं, तदनन्तर नारी कौशल्या धन्य हैं, बड़े लोगों (देवों) की नगरी अयोध्या धन्य है जो तेजों की अतुल निधि (राम) यहाँ देखे गये ॥८६॥ विधाता इस नवजात शिशु को दीर्घायु करें, भगवान् शिव सदैव इसे मङ्गलपुञ्ज प्रदान करें, श्रुत्युक्त शुभ कर्म करता हुआ संसार में यह बालक सदैव मानवता का प्रतीक होवे ॥८७॥ मन्मथ काम के भी साक्षात् मन्मथ, कौशल्यापुत्र राम को देखने एक बार कुछ स्त्रियाँ आयीं ॥८८॥ प्रणाम करते हुए राम को देखकर सुचरित्र, सहज सुभग उन शुभ्रशिर (पके बालों वाली) बूढ़ी स्त्रियों ने इन वचनजल से सिञ्चित किया ॥८९॥ इस सम्मुखस्थ, सुकोमल, प्रियम्बद बालक की सनातन (पुरुष) रक्षा करें ॥९०॥

निर्जरा, जरां व्यपोहयन्त्वलम्
विश्वसृट्, करोतु वंशसर्जकम् ।६१।

माधवो, धवं करोतु संसृतेः
मन्मथः, क्रियादमुं च मन्मथम् ।६२।

इन्दिरा, श्रियं निजां निधापयेत्
शङ्करः, करोतु शं प्रतिक्षणम् ।६३।

मातरो, मुदा दिशन्तु रक्षणम्
अम्बिका, भवेत्सदा प्रकाशिका ।६४।

अग्निभूरमुं, च पात्वहर्निशम्
वासवः, सुरक्षको भवेद् ध्रुवम् ।६५।

बालको, भवेत्सदा महाशयः
पालको, निरापदो निरामयः ।६६।

देवगण इसकी बुढ़ाई को रोकें (सदा तरुण रखें), विधाता वंशनिर्माता बनायें ॥६१॥ माधव (विष्णु) इसे सृष्टि का स्वामी बनायें, कामदेव इसे सबका मनोहारी करें ॥६२॥ इन्दिरा (लक्ष्मी) अपनी श्री (शोभा सम्पत्ति) को इसेमें निहित करें, शङ्कर प्रतिक्षण शान्ति प्रदान करें ॥६३॥ मातायें (मातृकायें) सदा प्रेमपूर्वक रक्षा करें, माँ भवानी सदा प्रकाशिका बनें ॥६४॥ अग्निसुत कुमार कार्तिकेय इसकी अहर्निश रक्षा करें, इन्द्र नियतरूप से सुरक्षक हों ॥६५॥ बालक सदा महान् विचार का हो, पालक हो, निरापद और निरामय हो ॥६६॥

विद्यारम्भोऽभवत्तेषां तोषाय पुरवासिनाम्
शासकाः शिक्षिताः स्युश्चेत्प्रजाभाग्यं व्यनक्ति तत् ।९७।

सम्प्राप्ते पञ्चमे वर्षे स्वपुत्राभ्युदयेच्छया
चूडाकर्म ततो राजा कर्णवेधमकारयत् ।९८।

संस्कारा अभवन्तेषां कर्त्तव्यत्ववशाद् ध्रुवम्
संस्काराः संस्कृता यैस्तु तेषां ते सन्ति निष्फलाः ।९९।

यज्ञोपवीतकृत्यानि कृत्वा दशरथो नृपः
निश्चिन्तोऽभूत् शिशून्सर्वान्दत्त्वा संरक्षणे गुरोः ।१००।

अल्पकालात् समस्तानि विद्यास्थानानि भूतये
यथाविधि गृहीतानि पुण्यश्लोकैर्नृपात्मजैः ।१०१।

समावर्तनसंस्कारे व्यतीते वचसो गुरोः
राजनीतेः प्रयोगार्थं योजितास्ते स्वकर्मसु ।१०२।

उन बालकों का विद्यारम्भ नगरवासियों के सन्तोष के लिये हुआ। यदि शासक शिक्षित हों तो वह प्रजा के भाग्य को व्यक्त करता है ॥९७॥ पाँचवें वर्ष के आने पर अपने पुत्रों की अभ्युदय की कामना से राजा ने चूड़ाकर्म और फिर कर्णवेध कराया ॥९८॥ उनके संस्कार कर्तव्यता के कारण सम्पन्न हुए। जिनसे संस्कार संस्कृत होते हैं (स्वयं वे व्यक्ति संस्कृत नहीं होते) उनके वे संस्कार तो निष्फल हैं, करना है इसलिये उनके संस्कार हुए अन्यथा जिससे संस्कार स्वयं संस्कृत होते हैं उनके लिये वे व्यर्थ हैं ॥९९॥ सारे बच्चों का यज्ञोपवीत संस्कार करके गुरु के संरक्षण में उन्हें देकर राजा दशरथ निश्चिन्त हो गये ॥१००॥ पुण्यश्लोक उन राजकुमारों ने अल्पकाल में ही कल्लाण के लिये संसार की सारी विद्यायें सविधि ग्रहण कर ली ॥१०१॥ गुरु शिक्षा समाप्त हो जाने पर समावर्तन संस्कार हो जाने पर गुरु की आज्ञा से वे सभी राजनीति के प्रयोग ज्ञान (व्यावहारिक ज्ञान) के लिये अपने कार्यों में लगा दिये गये ॥१०२॥

चत्वारो भ्रातरः शिष्टाः स्नेहवन्तः परस्परम्
आसन् तथापि तेष्वेवं जातं कार्याय युग्मकम् ।१०३।

रामलक्ष्मणयोश्चैकं शत्रुघ्नभरतात्मकम्
द्वितीयं युग्मकं लोकेऽनुपमेयं च विश्रुतम् ।१०४।

उत्साहशक्तिसम्पन्नाः कामं सर्वे नृपात्मजाः
रामो राम इवैवासीत् लक्ष्मणो लक्ष्मणः परम् ।१०५।

नृपोऽधुना पङ्क्तिरथः सभायां समं चतुर्भिस्तनयैर्व्यराजत
आम्नायभेदेन वपुर्विभज्य स्थितो यथा ब्रह्मशरीरिशब्दः ।१०६

सभा पुरैषा सकलाश्च सभ्यास्त एव राजाऽपि स एव धन्यः
निजासनं तत्र परं गृहीते श्रीरामभद्रेण नवाऽऽगता श्रीः ।१०७

पितुर्निदेशात्स्वपुरस्थितानां दशाविशेषां परिवीक्षितुं गतः
स रामभद्रो नयनातिथित्वं गृहेषु यातः पुरधूपितेषु ।१०८।

चारों भाई, शिष्ट तथा परस्पर स्नेह युक्त थे, फिर भी कार्य के लिये उनमें ऐसी जोड़ी बनी ॥१०३॥ राम-लक्ष्मण की एक और भरत-शत्रुघ्न की दूसरी जोड़ी बनी। दोनों जोड़ी संसार में अनुपम रूप में जानो गयी ॥१०४॥ वैसे तो सारे राजपुत्र प्रभूत उत्साहसम्पन्न थे तथापि राम तो राम जैसे ही थे लक्ष्मण लक्ष्मण जैसे ॥१०५॥ राजा दशरथ सभा में अब चारों पुत्रों के साथ वैसे ही शोभते थे जैसे अम्नायभेद से शरीर को विभक्त कर ब्रह्मशरीरी शब्द हो ॥१०६॥ यह सभा पहले वाली ही थी, सारे पारिषद भी वे ही थे, धन्य वह राजा भी वही थे फिर भी रामभद्र के अपने आसन ग्रहण कर लेने पर सभा में नयी शोभा आ गयी ॥१०७॥ पिता के आज्ञा से अपने नगरवासियों की विशेष अवस्था का निरीक्षण करके के लिये गये हुए वह रामभद्र पहले से ही धूपित गृहों में नयनातिथि बने ॥१०८॥

तं सेवितुं पादपटं नवीनं न विस्तृतं केन निमेषनिर्मितम्
स बालवृद्धैर्युवभिर्वधूभिः समं समेषां प्रियतामुपेतः ।१०९।

पौरप्रवृत्तिं प्रति जागरूको विनम्र आचाररतो दयालुः
अजातशत्रुः स बभूव सर्वतो रूपेण शीलेन सुभाषितेन ।११०।

अथ दशरथः पूर्णाऽऽकाङ्क्षः सुतोन्नतिसाधकान्
विविधविषयान्कामं कृत्वा तदा समुपस्थितान् ।
सुललितसुतान्योग्यान्कुर्वन्नुपायचतुष्टये
गुरुमतसरण्याऽसंख्यातं सुखं बुभुजे नृपः ।१११।

श्रीश्यामान्वितसुन्दरोऽस्ति जनको माता च यस्याम्बिका
यः श्रीराजकिशोर आप्तचरितः शाण्डिल्यवंशोद्भवः
पूर्वंश्चाभिनवास्तुतिर्विलिखिता येन क्वचित्तन्महा-
काव्ये चारुणि राघवेन्द्रचरिते सर्गश्चतुर्थो गतः ।११२।

उनकी सेवा के लिये किसने निमेष निर्मित नया पादपट नहीं बिछा दिया (सभी ने पलक पाँवड़े बिछा दिये)। वह बालक वृद्ध-युवानारियों समेत सभी के प्रिय हो गये ॥१०९॥ पुरवासियों की क्रियाओं के प्रति जागरूक, आचार से विनम्र और दयालु वह रूप, शील, सुभाषित सभी से अजातशत्रु बन गये ॥११०॥ अब पूर्णाभिलाष राजा दशरथ पुत्रों की उन्नति के साधक, समुपस्थित नाना प्रकार के कार्यों को पूरी तरह सम्पन्न करके, सुन्दर पुत्रों को उपायचतुष्टय में योग्य बनाने के लिये गुरु के आदेशानुसार (कार्य करते हुए) असंख्य सुखों का भोग करते रहे ।१११। श्रीश्यामसुन्दर जिनके पिता हैं तथा जिनकी माता अम्बिकादेवी हैं, जो आप्तचरित शाण्डिल्यवंशोत्पन्न श्रीराजकिशोर (नामक) हैं, जिन्होंने कभी अभिनवास्तुति लिखी थी उनके द्वारा विरचित इस सुन्दर राघवेन्द्रचरित महाकाव्य में चौथा सर्ग पूर्ण हुआ ॥११२॥

पञ्चमः सर्गः

अथैकदा हेममये नृपासने स्थितः प्रजानामधिपः स्वसंसदि
अजात्मजोऽजात्मजमुख्यभूसुरैः समं समासीत् प्रमुखैश्च मन्त्रिभिः
यथा सुधर्मास्थदिवस्पतिः स्वकैरमात्यमुख्यैर्गुरुणा च शोभते
तथा नृपः पंक्तिरथः पुरोधसा सुमन्तमुख्यैः सचिवैर्व्यराजत ।२।
निशम्य भूपोऽधिकृतान्समस्तान् तथा प्रदायव्यवहारनिर्णयान्
सुखं क्रियाकल्पविधौ यदा स्थितस्तदा बभूव प्रतिहारशंसितः ।३
अशेषराजन्यकिरीटमौक्तिकप्रभाविराजच्चरणाग्रवण्टक
त्वदीयसंदर्शनलालसोऽधुना समागतो द्वारि कृपालुकौशिकः ।४।
निशम्य यन्नाम पुरा रणाङ्गणे नृपा दिवान्धा अभवन्ननीकिनः
स साम्प्रतं सत्यवचाः समागतः समुत्थितोऽतोर्ऽचितुमत्र तं नृपः ॥

एक बार प्रजाओं के रक्षक, अजपुत्र दशरथ (अज के पुत्र अथवा अज-ब्रह्म राम जिनके पुत्र हैं) अज पुत्र वशिष्ठादि ब्राह्मणों तथा प्रमुख मन्त्रियों से समन्वित स्वर्ण सिंहासन पर विराजमान थे ॥१॥ जिस प्रकार सुधर्मा सभा में अवस्थित देवराज इन्द्र अपने प्रमुख मन्त्रियों एवं गुरु बृहस्पति के साथ सिंहासन पर सुशोभित होते हैं वैसे ही राजा दशरथ पुरोहित वशिष्ठ तथा सुमन्त प्रधानमन्त्रियों से सुशोभित थे ॥२॥ समस्त अधिकारियों तथा देयवाद निर्णयों को सुनकर तथा व्यवहार निर्णयों को देकर जब वह सुखपूर्वक क्रियाकलापविधि (काव्यादिकलाओं) में निरत हुए ही थे कि तबतक प्रतिहार ने सन्देश सुनाया ॥३॥ समस्त राजाओं की मुकुटमौक्तिकों (मणियों) की प्रभा से शोभायमान पादाग्रभाग, दयालुकौशिक विश्वामित्र आपके दर्शन की लालसा से द्वार पर आये हैं ॥४॥ पूर्वकाल में जिनके नाम को युद्धस्थल में सुनकर ही ससैन्य राजा लोग दिन में ही अन्धे (उल्लू-कौशिक) बन जाते थे, इस समय वही सत्यवाक् आये हैं (यह सुनकर) उनकी पूजा के लिये राजा आसन से उठ खड़े हुये ॥५।
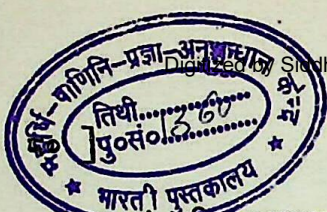
अवेक्ष्य तं सत्क्रिययाऽभ्यपूजितं सुखस्थितं ब्रह्मगुणैर्विराजितम्
मुनिं विराजं स नृपो विराड्वरोऽन्वपृच्छदस्यागमनप्रयोजनम् ।६
कृतार्थयन्जङ्गमतीर्थराडिव द्विजातिराजन्यगुणैर्विमिश्रितः
चिकीर्षितुं लोकहितं परीक्षितुं नृपं च सोवाच वचोऽप्यरुन्तुदम् ७
क्षतात् किल त्रायत इत्यसौ सृजिः लभेत यः क्षत्रियवाच्यतां भुवि
अपि त्वयि क्षत्रियपुङ्गवे सति क्षतं लभन्ते मुनयो व्यथाकरम् ।८
विशङ्कमानो मनुजात्पराभवं पुलस्त्यपौत्रो दिविजद्विषां गणान्
न्ययोजयद्वेदप्रचोदितं विधिं विहन्तुकामः मखकर्मरोधकान् ।९
मखैर्द्विजा देवगणानुपासते सुरा नरेभ्यो ददति श्रियं पुनः
क्रतौजपुंसश्च बिभेति रावणो यतो मखध्वंसविधौ स तत्परः ।।१०।।
अवंशवृद्धौ मुरलीध्वनिश्रुतिः स्वयं निरुद्धेति वचो विचारयन्
स रावणो दाशरथेः समुद्भवं कुतोऽप्यविज्ञाय मखं न काङ्क्षति ।

ब्रह्मगुणों से सुशोभित, सत्कार से अभिपूजित विराजमान उन मुनि को सुखस्थित देखकर राजश्रेष्ठ नरेश ने उनके आगमन का प्रयोजन पूछा ।।६।। जङ्गम तीर्थराज के समान कृतार्थ करते हुए, ब्रह्म-क्षत्र गुणों से समन्वित, लोकहित करने तथा राजा की परीक्षा करने के लिये, वह मर्मवेधी वचन बोले ।।७।। जो संसार की घावों (क्षत - दुःख) से रक्षा करता है वही संसार में क्षत्रिय शब्दवाच्यता को प्राप्तकरे (यह क्षत्रिय का अर्थ है), क्षत्रियश्रेष्ठ आपके रहते भी मुनिजन पीडाकारी क्षत (घाव दुःख) प्राप्त कर रहे हैं ।।८।। मनुष्य से पराजय की आशङ्का करता हुआ पुलस्त्यपौत्र रावण यज्ञकर्मविध्वंसक राक्षसों को वेदोक्त विधिका विनाश करने को लगा रखा है ।।९।। ब्राह्मण यज्ञों द्वारा देवों की उपासना करते हैं और फिर देवगण मनुष्यों को श्री प्रदान करते हैं, क्योंकि रावण यज्ञज पुरुषों से (यज्ञ प्रभाव से उत्पन्न रामादि से) डरता है, इसलिये वह यज्ञध्वंस क्रिया में लगा है ।।१०।। वंश (बांस) वृद्धि न होने पर वंशी-ध्वनिश्रवण समाप्त हो जायेगी (न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी) इस बात का विचार करते हुए, राम की उत्पत्ति को न जानकर वह रावण किसी भी प्रकार से यज्ञ नहीं चाहता ।।११।।

स्वधर्मलग्नाः श्रुतिमार्गगामिनो द्विजाः समर्था निजधर्मरक्षणे
स्वयं परं वीक्ष्य नृपान्परन्तपान् न कार्यजातं प्रति ते समुत्सुकाः।
शृणोतु राजन् विधिवद् वचांसि मे सुखं वसेयुः सकलाः प्रजा यदि
प्रपीडिताश्चेत्श्रुतिशीलिनो द्विजा नृपो नहि स्थायि सुखं समश्नुते।
यथैव मष्तिष्कगता रुजा नरं प्रबाधते पुष्टमशेषवर्ष्मणा
तथा निरुद्धा निजकर्मसु द्विजा नृपं तदङ्गं व्यथयन्ति निश्चितम्।
अतः क्षमस्त्वं यदि धर्मरक्षणे स्ववंशजां कीर्तिमपीहसेऽथवा
त्वरस्व नूनं विगतस्पृहो भवन् निवेद्यमानस्य मयाऽनुपालने ।१५
द्विजप्रसादात्समवाप्तसन्तते द्विजस्य देवस्य च धर्मरक्षणे
सुतौ स्वकीयौ ननु रामलक्ष्मणौ प्रदेहि मह्यं हननाय रक्षसाम्॥
विकम्पते बज्रहतेर्यथा गिरिः प्रकम्पनाद् वा विटपी प्रकम्पते
विकम्पमानो वचसो मुनेर्नृपः पतिष्णु कायं बिभराम्बभूव सः॥

अपने धर्म में लगे हुए, श्रुतिपथगामी ब्राह्मण अपने धर्म की रक्षा में स्वयं समर्थ हैं फिर भी परन्तप राजाओं (का ही यह कार्य है) को देखकर वे इस कार्य के प्रति समुत्सुक नहीं है (राक्षसों का संहार राजा ही करें)॥ हे राजन्, आप मेरी बातों को विधिवत् सुनें, यदि सारी प्रजायें सुखपूर्वक रहें किन्तु वेदविद् ब्राह्मण यदि पीड़ित हों तो राजा स्थायी सुख का सम्यक् उपभोग नहीं कर सकता ।।१३।। जैसे बलवान् व्यक्ति को भी यदि मस्तिष्क रोग हो तो सम्पूर्ण शरीर को पीड़ित करता है उसी प्रकार अपने कर्म से अवरूद्ध ब्राह्मण निश्चय ही राजा और उसके अङ्ग (प्रजादिगण) को प्रपीडित करते हैं ।।१४।। इसलिये यदि आप धर्मरक्षामें समर्थ हैं अथवा अपने वंश रघुकुल को कीर्ति बनाये रखना चाहते हैं तो मेरे द्वारा कहे जा रहे निवेदन के अनुपालन में निःस्पृहभाव से शीघ्रता करें ।१५। द्विज (ब्राह्मण) की कृपा से प्राप्त सन्तान, हे राजन, द्विज और देवों की रक्षा में अपने पुत्रों राम-लक्ष्मण को, राक्षसों के बध के लिये, हमें प्रदान करें ।।१६।। बज्रप्रहार से जैसे पर्वत काँप जाता है, अथवा वायु से छोटे-छोटे वृक्ष काँप उठते हैं उसी प्रकार मुनि के कथन से काँपते हुए उन राजा ने अपने पतिष्णु शरीर को (किसी प्रकार) धारण किया ।।१७।।

कथञ्चिदाधाय धृतिं स्वमानसे स्वशुष्कमोष्ठं परितो लिहन्पुन:
निरीक्ष्यमाणो विवश: सभाजनैस्तप:पतिं भूपतिरध्युवाच ।१८

मुनेरमुष्मिन्महनीयभारते भवादृशा: सन्ति मनीषिणो यदि
न धर्मलोपो भवितेति निश्चितं तथापि कर्त्तव्यधिया ब्रवीम्यहम् ।

रघोरुदाराभिजने प्रसूतिमान् नृपो द्विजानां च गवां सुखाय वा
किमु स्वदेहार्पणनिष्क्रयेण नो व्यधात्पुरा वाऽद्य नृपत्वनिष्कृतिम् ।

इदं शरीरं भवतां न मामकं नियोज्यमेतद् भवदिच्छयैव वा
परं प्रभो स्वप्रभुभिर्विधायकैरवेक्षणीया हि विधेयवृत्तय: ।२१।

अतीत्य तार्तीयकमंशमायुषोऽहमाप्तवानस्मि सुतानिमान् प्रियान्
दश व्यतीयु: सह पञ्चभि: समा अहर्यथैकं मम पश्यतो मुने ।२२

दिवौकसां चापि सुशिक्षितैर्बलैर्न ये प्रधृष्या: सह तै: रणाङ्गणे
स्तनन्धयानाञ्च नियुक्तिरक्रमे विपाकघोरे किमु सुष्ठुकर्मणि ।२३

किसी प्रकार से अपने चित्त में धैर्य धारण कर अपने सूखे हुए ओष्ठ को चाटते हुए, सभासदों से विवश देखे जाते हुए राजा तपोनिधि से बोले ॥१८॥ हे मुनि ! इस महनीय भारत में यदि आप जैसे मनीषी हैं तो यह सुनिश्चित है कि धर्म का लोप नहीं होगा फिर भी मैं कर्तव्यबुद्धि से कह रहा हूँ ॥१९॥ रघु के उदार वंश में पैदा हुआ राजा ब्राह्मणों अथवा गायों के सुख के लिये अपने शरीर के भी अर्पण (दिलीप राजा ने) के निष्क्रय से पहले अथवा आज भी निष्क्रिया नहीं की है क्या ?२०॥ यह शरीर आपका ही है मेरा नहीं, अथवा आपकी इच्छा से ही यह नियोजनीय है, किन्तु हे प्रभो, विधायक, प्रभुजनों को विधेयवृत्तियों को (किसको कहाँ लगाया जाय) देखना ही चाहिए ॥२१॥ मैंने अपनी आयु का तीसरा भाग बिताकर चौथेपन में इन प्रियपुत्रों को पाया है । मुनिवर ! इन्हें देखते हुए मेरे पन्द्रह वर्ष एक दिन के समान बीत गये ॥२२॥ देवों की सुशिक्षित सेनाओं से भी जो धर्षणीय नहीं हैं उन राक्षसों के साथ नियमशून्य, परिणाम घोर युद्ध में दुधमुहों को लगाना क्या अच्छे कार्य में लगाना होगा ?२३॥

अलं विबद्धोऽपि सुतीयमोहतः कथञ्चिदाधृत्य धृतिं स्वभावजाम्
निदेशमङ्गीकरवाणि चेत्पुनर्ब्रवीतु किं युक्ततमं भवेदिदम् ।२४।
निपीय यस्याध्यवसायजां कथां प्रमाणरूपं समुदाहरन्ति यम्
तपःसहा बिभ्यति यस्य नामतः पुनर्विवक्षुः स च कौशिकोऽभवत् ।
अवन्ध्यकोपस्य मुनेः प्रतिक्रियामनन्तरं दाशरथीं मनःस्थितिम्
वशी वशिष्ठः परिवीक्ष्य तत्क्षणं जगाद वाणीं समयोचितां ततः ।
नृपस्य साकेतनिवासिनो यशो विबर्द्धनेच्छावशतः प्रियङ्करः
वृषार्थमर्थी पुरि गाधिनन्दनो विराजते यन्ननु तत् सुमङ्गलम् ।२७
असम्भवं यः प्रकरोति सम्भवं लघुर्महान्स्यादपि तस्य सन्निधौ
अवाप्य मृत्युञ्जयभालसंस्थितिं नहि प्रणम्यः किमु वक्रचन्द्रमाः ।।
अनिष्टशङ्कावशगा हितेच्छवः क्वचिन्न कुर्वन्ति सुतान् विदूरगान्
पुनः कथा काऽस्ति महीक्षितो मम ह्य आप्तवान् यः स्वांशशून्
मनोरमान् ।२६।

पुत्रमोह से बिबद्ध भी मैं किसी प्रकार से सहज धैर्य धारण कर यदि आपकी आज्ञा का पालन करूँ तो फिर आप ही बतायें कि यह बहुत उपयुक्त होगा।।२४।। जिसकी अध्यवसाय जनित कथा को पीकर लोग उन्हें प्रमाणरूप में उदाहृत करते हैं, जिसके नाम से तपस्विजन (सभी लोक) डरते हैं, वह विस्वामित्र पुनः वक्तुकाम हुए ।।२५।। इसके बाद अबन्ध्य (अन्यर्थ) क्रोध वाले मुनि विश्वामित्र की प्रतिक्रिया और मनःस्थिति को देखकर जितेन्द्रिय वशिष्ठ ने तत्काल समयोचित बात कही ।।२ ।। अयोध्या निवासी (जन तथा) राजा के यश को बढ़ाने की इच्छावश प्रियङ्कर, गाधिनन्दन विश्वामित्र धर्म के लिये जो याचक बनकर विराजमान हैं, वह तो सुमङ्गल है ।।२७।। जो असम्भव को भी सम्भव बना देते हैं, उनके समीप तो लघु भी महान् बन जाता है। शङ्कर के भाल पर स्थान पाकर वक्र चन्द्रमा भी वन्दनीय नहीं हो जाता क्या ?२८। अमङ्गल की आशङ्का के वशीभूत, हितेच्छु (माता-पिता) पुत्रों को कभी दूर नहीं रखते फिर तो मेरे राजा की बात ही क्या है जो अपने सुन्दर बच्चों अभी कल ही प्राप्त किया है ।।२६।।

अवश्यमेषां विषये विनिर्णयः कृतो मया स्वानुभवादपीक्षणात्
इमौ विजेतुं न हि कोऽपि चेतनो न तेजसां क्वापि वयः समोक्ष्यते
निशम्य वाचं गुरुणाभ्युदीरितां हृदा गुरौ भक्तिपरायणो नृपः
अवोचदेनं मुनिमात्मगेहगं सप्रश्रयं गौरवमण्डितां गिरम् ।३१।
ऋषे सुतस्नेहवशान्मयाऽपि यः कृतः प्रतिप्रश्न इहाभिसङ्गतः
स मर्षणीयो भवता कृपालुना कृतस्तवैवानुचरेण केनचित् ।३२
अपि स्वधर्मेऽपि दधत्सुविज्ञतां द्विजातिसेवाभ्यनुरक्तमानसः
भवादृशं प्राप्य शुभेच्छुकं निजं मयापराधो विहितश्च मोहतः ।।
अमू सुतौ मे गुरुणैव पालितौ स काङ्क्षतीमौ प्रहितौ विवेकतः
अतः प्रभृत्यद्य सुताविमौ न मे भवान् पिताऽतः कुरुतान्मनोरथम्
निशम्य साकेतनृपास्यनिर्गतं वचो विशेषार्थदमात्मनि स्थितः
स कौशिकः सत्यवचा निरुद्धवाक् सगद्गदं वाचमुवाच भूपतिम् ।

अपने अनुभव और दर्शन से इनके विषय में मैंने तो यह निश्चय किया है कि कोई भी जन्तु इन्हें (राम-लक्ष्मण को निश्चित ही जीतने में समर्थ नहीं है । तेजस्वियों कहीं कोई अवस्था नहीं देखी जाती ।३०। गुरुके प्रति हृदय से भक्ति परायण राजा गुरु (वशिष्ठ से कही गयी इस बात को सुनकर, अपने घर आये उन विश्वामित्र मुनि से सविनय गौरवान्वित वाणी बोले ।।३१।। हे ऋषि, पुत्र प्रेमवश मैंने जो इस विषय में अभिसङ्गत प्रतिप्रश्न किया है कृपालु आप उसे क्षमा करें, तुम्हारे किसी अनुचर ने ही तो यह किया है ।।३२।। अपने धर्म के प्रति सुविज्ञता रखते हुए भी द्विजों की सेवा में अनुरक्त मैंने मोहवश, अपने शुभेच्छु आप जैसे को प्राप्त कर, अपराध किया है ।।३३।। ये मेरे पुत्र गुरु द्वारा ही पाले गये हैं, यह इन्हें विवेकपूर्वक आपके साथ भेजने की इच्छा रखते हैं, इसलिये अबसे ये मेरे पुत्र नहीं, आप ही इनके पिता हैं, मनोरथ पूर्ण करें ।।३४।। साकेत नरेश के मुख से विनिर्गत विशेष अर्थप्रद वाणी सुनकर, आत्मस्थित, सत्यवादी, निरूद्धवचन विश्वामित्र राजा से सगद्गद वाणी बोले ।।३५।।

नृप त्वयात्र स्वगुरौ प्रदर्शितो य एष भावोऽभिजनप्रशंसितः
समीक्ष्य तं शुष्कतमेऽपि मे हृदि नवानुरागेण पदं न्यधायि किम्
नियम्य भावान्सहजोत्थितांस्त्वया प्रदर्शिता स्वोयदृढामतिर्मयि
दशेन्द्रियाणां मनसो नियन्त्रणादसंशयं पङ्क्तिरथोऽसि विश्रुतः। ३७
गुरौ स्वभक्तिः करणेषु संयमो मयि स्वविश्वासततिः प्रदर्शिता
अवश्यमेतस्य शुभस्य कर्मणो ध्रुवं निजाभीष्टफलान्यवाप्स्यसि।
ततः परं द्वावपि रामलक्ष्मणौ सुतौ स्वजीवादधिकं च सम्मतौ
द्रुतं समाहूय नृपो महर्षये समर्पयामास बधाय रक्षसाम् ।३९।
स्वसूनुदेशान्तरयानदुःखितौ प्रणम्य मातापितरावुभौ सुतौ
नवं नवं द्रष्टुमथाभिलाषिणाववादिषातां स्वगुरोः पदौ शुभौ। ४०
स्वरश्मियोगैर्विदिशोऽपि बन्धयन् प्रकाशते भानुरदो जगद् यथा
स भानुवंशीयनृपोऽपि शोभितः सुतावभिप्रेष्य मुनीष्टनीवृतम्।

हे राजन्, आपने अपने गुरु के प्रति जो यह अभिजन प्रशंसित भाव दिखाया है उसे देखकर नीरस भी मेरे हृदय में, लगता है, नूतन अनुराग ने स्थान बना लिया है ॥३६॥ सहजोत्पन्न भावों को रोककर तुमने मेरे प्रति अपनी दृढ़ बुद्धि (भक्ति) दिखायी है, मन से दश इन्द्रियों का नियन्त्रण करने के कारण निःसन्देह आप विश्रुत दशरथ (अन्वर्थ) हैं। (आगे दशवदन के नियन्त्रण की भी इससे सूचना मिलती है) ॥३७॥ गुरु के प्रति अपनी भक्ति, इन्द्रियों पर संयम, और मेरे प्रति आपने अपनी विश्वासपरम्परा दिखाई है, इस शुभ कर्म का स्वाभीष्ट फल निश्चित और अवश्य आप प्राप्त करेंगे ॥३८॥ इसके बाद अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय राम-लक्ष्मण दोनों ही पुत्रों को तुरन्त बुलाकर राजा ने राक्षसों के वध के लिये महर्षि को समर्पित कर दिया ॥३९॥ दोनों ही पुत्रों ने अपने प्रयाण से दुःखी माता-पिता को प्रणाम कर, नई-नई वस्तुओं को देखने जानने के अभिलाषी अपने गुरु के पवित्र पदों को प्रणाम किया ॥४०॥ अपनी किरणों के योग से विदिशाओं को भी बाँधता हुआ सूर्य जैसे इस जगत् को प्रकाशित करता है उसी प्रकार वह सूर्यवंशीय राजा दशरथ भी मुनि के अभीष्ट स्थान पर पुत्रों को भेजकर शोभित हुए ॥४१

ततः कृताचारपरम्परो मुनिः फलेन साकं ससुखं गतो यदा
तदा सुदूरं नयनानि तैः सजूर्गतान्ययोध्यापुरवासिनामपि ।४२।
अनन्तरं कौशिकसङ्गहर्षितौ स्ववामभागे सरयूं विधाय तौ
मुदेन्द्रकाष्ठागतरम्यसम्पदो निरीक्षमाणौ कुतुकेन जग्मतुः ।४३

उपान्त्यभागे शरदो मनोहराश्छटाः प्रकृत्या हृदयापवर्जिकाः
नवा अधिग्राममधिष्ठिताः शुभा अलं बभूवुः परितोषिका दृशाम्

उभावधिग्राममवेक्ष्य वापिकाः सुपुष्टशृङ्गाटकवेल्लिसंयुताः
क्वचिच्च ता एव विहीनपुष्करा विचिन्तयन्तौ नियतिं श्रितौ सृतिम् ।४५।

पलालसन्दोहमवस्थितं क्वचित् क्वचित्पलालापहृतिं च धान्यतः
खलेऽपि धान्यस्य समुत्करं क्वचिन्निभाल्य रामो मुमुदे सलक्ष्मणः ।
प्रपञ्चहीना गतमानमत्सराः कुटुम्बिभिः साकमपास्तविश्रमाः
स्वकर्मलग्नाः कृषका अनेकशस्तयोर्बभूवुश्च मनोपहारकाः ।४७

इसके बाद आचार परम्परा का पालन कर मुनि जब फल (राम-लखन) के साथ चले तो उनके साथ अयोध्यावासियों की आँखें भी बहुत दूर तक गयीं (दूर तक जाते हुए उन्हें निहारते रहे) ॥४२॥ इसके बाद विश्वामित्र के संसर्ग से प्रसन्न, अपने बाँयें सरयू को करके, पूर्व दिशा की रम्य सुषमा को सकौतुक देखते हुए सहर्ष दोनों भाई चले ॥४३। आस-पास फैली हुई हृदयावर्जक, गावों में बिखरी, पवित्र नवीन शरत् की स्वभाव मनोहर छटा उनकी आँखों में खूब तृप्ति प्रदान की ॥४४। सुपुष्ट सिंघाड़े की लता से युक्त, गाँवोंमें वावलियों को देखकर, जो कहीं-कहीं कमल-विहीन भी थीं, दोनों वे भाग्याश्रित सृष्टि प्रकृति को सोचते हुए आगे बढ़े ॥४५॥ कहीं पुआलों का ढेर, तो कहीं धान से पुआल को अलग किये जाते तो कहीं खलिहान में धान का अम्बार देखकर, राम, लक्ष्मण के साथ, प्रसन्न हुए ॥४६॥ मान-मत्सरशून्य प्रपञ्चरहित अपने परिवार के साथ प्रसन्न (श्रान्तिशून्य) अपने कार्यों में लगे हुए कृषक अनेकशः उनके मनोपहारी हुए ॥४७॥

परोपकाराय च जन्मधारिणां गवां गणानां समवाप्य सौहृदम्
विधाय मृद्वीं पृथिवीं सुकर्कशां ददुर्मुदं वापरताश्च हालिकाः ।४८
उभाविदानीं वयसैव बालकौ परं प्रबुद्धौ च भविष्णुशासकौ
कृतं प्रजाभ्यः कृषकश्रमं स्वयं ललच्छतुस्तौ बहुमानसंयुतम् ।४९
इमामनूनां कृषिमेव मातरं नमन्त आजन्म तपश्चरन्ति ये
प्रवृत्तिधर्मेष्वनुरक्तचेतसो निभाल्य रामो मनसा ननाम तान् ।।
निसर्गसिद्धं नृपगेहजं सुखं विहाय सम्प्राप्तमहर्षिसङ्गती
कदापि तौ दृष्टिचरौ बभूवतुर्न संस्मरन्तौ स्वदशां सुखात्मिकाम् ।
मुनेर्गुरोर्जागरणात्पुरैव तौ प्रभातकाले कृतनित्यसत्क्रियौ
प्रतीक्षमाणौ गुरुमेव तस्थतुर्मुनिर्न यावन्निशि विष्टरं गतः ।५२।
सुतावुभौ दाशरथी स्वभावतः कुशाग्रबुद्धौ कुशलौ च कर्मसु
बभूवतुस्तौ मुनिकौशिकप्रियौ प्रमाण्यकार्षीत्प्रथमः स्वयोग्यताम्

परोपकार के लिये ही जन्म लेने वाले गो समूहों (गाय-बैलों) से सौहार्द प्राप्त, कठोर धरती को मुलायम बनाकर, बुवाई में लगे हलधरों ने उन्हें आनन्द प्रदान किया ॥४८॥ अवस्था से बालक, परं बुद्ध, भावीशासक उन दोनों ने इस समय प्रजाओं में किसान के परिश्रम को स्वयं बहुत आदर से देखा ॥४९॥ इस श्रेष्ठ माता कृषि को प्रणाम करते हुए, जो तपस्या करते हैं, प्रवृत्तिधर्म में अनुरक्त चित्त, उन किसानों को देखकर राम ने मन से उन्हें नमस्कार किया ॥५०॥ स्वभावासिद्ध राजगृह के सुख को छोड़कर, महर्षि का सान्निध्य प्राप्त कर कभी भी वे दोनों अपनी सुखी पूर्वदशा को स्मरण करते नहीं देखे गये ॥५१॥ प्रातःकाल मुनि के जागने के पहिले ही अपनी नित्य सत्क्रियाओं को सम्पन्न कर वे दोनों गुरु की (आज्ञाओं की ही) प्रतीक्षा करते हुए सारे दिन खड़े रहते थे, जबतक रात में मुनि आसन पर नहीं चले जाते थे ॥५२॥ दशरथ के दोनों ही पुत्र स्वभावतः, कुशाग्र बुद्धि और कार्यों में दक्ष थे, दोनों ही विश्वामित्र को बराबर अभीष्ट थे, फिर भी राम ने अपनी योग्यता को प्रमाणित किया ॥५३॥

अनेकवार्ताविधिना परीक्षितुं मिथः समाभाषणतत्परे मुनौ
वचोविधौ दर्शयता प्रकर्षतां प्रसह्य रामेण मुनेर्मनो जितम् ।५४
श्रुतौ तदङ्गेषु च पञ्चलक्षणे स्मृतौ प्रवृत्तौ निपुणं विचक्षणम्
निरीक्ष्य रामं स धनुर्विदाम्वरो मनस्यकार्षीत् किमपि प्रशिक्षणे
प्रबृद्धरागो महनीयशिष्ययोर्मुनिर्महान् प्रीतिमनाः शिशुद्वयम्
क्षुधापिपासे नहि बाधिके क्वचित् यतो बलाञ्चातिबलामशिक्षयत्
समानवृत्ती रघुवंश्ययोर्द्वयोस्तथापि रामीयगुणानुरागतः
अहैतुकस्नेहवशात्स कौशिको प्रदित्सुरासीदपरं जयप्रदम् ।५७।
अमोघवीर्यं ज्वलदग्निसन्निभं न वार्यमाणं त्रिदशासुरैरपि
समुद्भवार्हं स्वत एव सन्ततौ स जृम्भकास्त्रं तमशिक्षयन्मुनिः ।५८
महर्षिसङ्गात्समवाप्तचेतनौ नवं नवं ज्ञानमुपार्जितुं रतौ
अनन्यभावेन गुरोरुपासकौ दृढानुरक्तिं बिभराम्बभूवतुः ।५९।

अनेकों बातों की प्रक्रिया से परीक्षा करने के लिये मुनि के परस्पर संभाषण में लग जाने पर वाणी प्रयोग में प्रकर्षता को प्रकट करते हुए राम ने बलात् मुनि का मन जीत लिया ॥५४॥ श्रुतियों, उनके अङ्गों (वेद वेदाङ्ग), पञ्चलक्षण (पुराण), स्मृति और प्रवृत्ति से सम्यक् प्रवीण देखकर धनुर्विदों में श्रेष्ठ मुनि ने राम को कुछ विशेष प्रशिक्षण देने का मन बनाया ।५५॥ अतिशय प्रेमी, महान् मुनि ने प्रसन्न मन से महनीय शिष्य दोनों बालकों को उस बला और अतिबला शिक्षा का उपदेश किया जिससे कहीं भी भूख-प्यास बाधक नहीं होती थीं ॥५६॥ यद्यपि दोनों राघवों के प्रति मुनि का व्यवहार समान था फिर भी राम के गुणों पर अनुराग होने के कारण उन मुनि ने अहैतुक प्रेमवश जयप्रद दूसरी विद्या भी देने को इच्छा की ॥५७॥ प्रज्वलित अग्नि समान, अमोघ वीर्य, देव-दानवों से भी अप्रतिषिद्ध, सन्तान में स्वयं संक्रान्त हो जाने वाले जृम्भकास्त्र की, मुनि ने, राम को शिक्षा दी ॥५८॥ महर्षि विश्वामित्र के संपर्क से चैतन्य प्राप्त, नये-नये ज्ञान को उपार्जित करने में लगे हुए, अनन्यभाव से गुरु के उपासक दोनों भाइयों ने गुरु के प्रति दृढ़ अनुराग धारण किया ॥५९॥

अथैकदाऽस्तं व्रजिते विभावसौ न दृष्टिमायाति निशोथिनीपतौ
स रामभद्रः श्रुतवान् भयङ्करं प्रपूरयन्तं नभसः शुषिं ध्वनिम् ।।
मृगेन्द्रशावेन करीन्द्रगर्जितं निशम्य चाञ्चल्यमुपेयते यथा
तथैव रामेण निशम्य तद्रवं निजानुयागेन वचो मुनेः श्रुतम् ।६१
शिशो यदर्थं त्वमिहासि याचितः स एव कालः समुपागतः स्वयम्
द्विजक्रतुध्वंसकरी निशाचरी विहायसा याति रवं प्रकुर्वती ।६२
विज्ञाय भावं जगतां शुभैषिणो गुरोः समासादितहस्तलाघवः
स ताडकाया अहरत् प्रियानसून् शरेण दीप्तेन च शब्दवेधिना ।।
तदद्भुतं कर्म निरीक्ष्य देवताः सुदुष्करं रामकृतं विसाध्वसाः
ससाधुवादं नभसो न्यपातयन् द्युलोकपुष्पग्रथिताः स्रजो मुदा ।६४
अवध्यभूते त्रिदशैर्भयप्रदे चलेऽपि लक्ष्ये प्रहरन्तमायुधम्
अवाप्तसिद्धिं निशि वीक्ष्य कौशिकः शिशुं हृदाऽऽलिङ्ग्य
मुदान्वितोऽभवत् ।६५।

एक बार सूर्य के अस्त हो जाने पर, निशानाथ चन्द्रमा के दिखायी न पड़ने पर (प्रदोषकाल में) रामभद्र ने आकाश के अन्तराल को भरते हुए भयङ्कर ध्वनि को सुना ।।६०।। गजेन्द्र-ध्वनि सुनकर जैसे सिंह शिशु चञ्चल हो उठता है उसी प्रकार उस ध्वनि को सुनकर (कुछ चौकन्ने हुए ही थे कि) अपने कार्य के लिये उन्होंने मुनि की यह वाणी सुनी ।।६१।। बालक ! जिस लिये तुमको यहाँ मैंने माँगा था, वह समय अपने आप आ गया है। ब्राह्मणों के यज्ञ की विनाशिका राक्षसी (ताडका) ध्वनि करती हुई आकाश से जा रही है ।।६२।। संसार के शुभेच्छु गुरु के भाव को समझकर हस्तलाघवपूर्वक प्रदीप्त शब्दवेधी बाण से राम ने ताडका के प्रिय प्राणों का अपहरण कर लिया ।।६३।। राम द्वारा किये गये उस सुदुष्कर और अद्भुत कर्म को देखकर विशेष (विगत) साध्वस देवताओं ने साधुवादपूर्वक सानन्द स्वर्ग-पुष्प-ग्रथित मालायें आकाश से वर्षायीं ।।६४।। देवों से अवध्य, भयप्रद, चलायमान भी लक्ष्य (ताडका) के प्रति रात्रि में शस्त्र का प्रहार करते और सफलता प्राप्त राम को देखकर सानन्द मुनि ने हृदय से लगा लिया (आलिङ्गन कर हर्षित हुए) ।।६५।।

निशम्य वृत्तं परिवीक्ष्य ताडकां मृतां परिज्ञाय च कारणं शिशुम्
विवृद्धमन्युः प्रतिकारमानसः सुबाहुमारीचगणोऽकरोत्क्रुधम् । ६६

नरास्थिमांसैः रुधिरैर्मलैस्ततो निवासभूमीः क्रतुशोलिनां द्रुतम्
अपूरयन्तेन्वशुचेर्विधायका मनोगतेरभ्यधिकेन रंहसा । ६७।

निशम्य चीत्कारवचांसि राघवः स्वयंगतस्तत्र ददर्श राक्षसान्
मखैकविघ्नव्रतलग्नचेतसः स्वपक्षयोषिद्धननात् रुषान्वितान्। ६८

ततः समादाय शरं स शस्त्रविद् ज्वलन्तमेकं त्रिमुखं भयङ्करम्
यदैव चिक्षेप रिपून्मुखं तदा सुवाहुनाशः समपादि पत्त्रिणा । ६९

पुनश्च तेनैव निरस्तपत्त्रिणा समूलघातं निहिता निशाचराः
विधाय मारीचमलं विदूरतः समागतः रामनिषङ्गमक्षयम् ।७०

कृतेऽप्यमुष्मिन् त्रिदशैः सुदुष्करे कठोरकृत्यं विगतस्मयं शिशुम्
हृदा समालिङ्ग्य मुनिर्जगाद तं द्युलोकपुष्पैर्महितैः सुशोभितम्।

समाचार सुनकर, ताडका को मृत देखकर, बालक राम को उसका कारण जानकर, क्रोधाढ्य, प्रतीकार के विचार से सुबाहु मारीच आदि क्रुद्ध हो गये ॥६६॥ अशुचिकारी उन सबों ने मनोवेग से भी अधिक तेजी से यज्ञ करने वाले मुनियों की निवास-भूमि को शीघ्र ही मनुष्यों की हड्डियों मांस-रुधिर-मलों से भर दिया ॥६७॥ चीत्कारध्वनि सुनकर राम स्वयं वहाँ गये और अपने पक्ष की स्त्री ताडका के मारे जाने से क्रोधान्वित, यज्ञ विघ्नमात्रव्रत में संलग्न चित्तवाले राक्षसों को देखा ॥६८॥ इसके बाद शस्त्रविशारद उन्होंने प्रदीप्त त्रिमुख एक भयङ्कर वाण को लेकर ज्यों ही शत्रुओं की ओर चलाया कि उस वाण से सुबाहु मृत्यु को प्राप्त हो गया ॥६९॥ फिर उसी सबल वाण से सारे राक्षस मूलसमेत मारे गये और उसी वाण ने मारीच को दूर फेंककर पुनः उस अक्षय तूणीर में आ गया ॥७०॥ देवों से भी सुदुष्कर इस कठिन कार्य को करके भी अहङ्कारशून्य, आकाश से गिराये गये फूलों से पूजित, सुशोभित बालक राम को हृदय से आलिङ्गित कर विश्वामित्र मुनि बोले ॥७ ॥

ब्रवीमि किं राम निरीक्ष्य कर्म ते न जातु दृष्टं भुवनत्रये क्वचित्
ध्रुवं त्वया सुष्ठु मयि प्रदर्शिता कृपोररीकृत्य मदीयशिष्यताम् ।

अथाध्वरध्वंसविधौ पटीयसो निशाचरौकस्य कथावशेषताम्
निरीक्ष्य गाधेस्तनयो निरापदः समभ्यनन्दद् विपदां निवारकम् ।

उपस्थितेऽस्मिन्मखरक्षणात्मके पवित्रकर्मान्यतमे महत्तमे
अशेषवीरैरनवाप्तयोग्यता प्रदर्शिता विस्मयकारिणी त्वया ।७४

अवन्ध्यभूतस्य समुद्यमस्य यत् फलद्वयं कर्मकरैरवाप्यते
यशस्तयोस्त्वं प्रथमं ह्यवाप्तवान् श्रियं द्वितीयां न चिरादवाप्स्यसि

मिथिं समुत्पाद्य पुरा नरेश्वरं निमेः शरीरान्मथितान्महर्षिभिः
यो राजवंशः कुतलेऽवतारितो मदाश्रमादुत्तरतः स राजते ।७६

प्रजोदयो जीवनलक्ष्यमस्तु मे निधाय भावं मिथिलावनोपतिः
विदेहसीरध्वजनामविश्रुतः प्रशासते सम्प्रति योगिपुङ्गवः ।७७

हे राम, मैं क्या कहूँ, तुम्हारे कार्य देखकर तो मैं तीनों लोकों में कहीं कोई (तुम्हारे जैसा) नहीं देखा, मेरी शिष्यता स्वीकार कर निश्चय ही आपने मेरे प्रति कृपा दिखाई है ।।७२।। यज्ञविनाश कार्य में समर्थतर राक्षस स्थानों की कथाशेषता (विनाश देखकर) निरापद, गाधिनन्दन ने, विपत्ति विनाशक राम का अभिनन्दन (प्रशंसा) किया ।।७३।। महत्तम पवित्रकार्यों में उपस्थित इस एक यज्ञरक्षणरूप कार्य में तुमने समस्त वीरों से अप्राप्य अद्भुतकारी योग्यता प्रदर्शित की है ।।७४।। कर्म करने वाले सफल उद्यम का जो दो फल प्राप्त करते हैं उनमें प्रथम यश तो तुमने प्राप्त ही कर लिया है, द्वितीय-श्री भी तुम शीघ्र ही प्राप्त करोगे ।। महर्षियों ने मथित निमि शरीर से पहले मिथि नामक राजा को उत्पन्न कर जिस राजवंश को इस भूतल पर उतारा था, वह हमारे आश्रम से उत्तर में है ।।७६।। प्रजाओं का अभ्युदय ही हमारे जीवन का लक्ष्य हो ऐसे भाव को रखकर मिथिलानरेश, योगिश्रेष्ठ, विदेहसीरध्वज नाम से प्रख्यात राजा इस समय वहाँ शासन कर रहे हैं ।।७७।।

अवर्षणाद् भाव्यसुखस्य निष्कृतिं चिकीर्षया तोषयितुं पुरन्दरम्
वसुन्धरां दारयितुं हलेन सः प्रवृत्त एवालभतात्मजां भुवः ।७८

अपत्यलाभेन गतः प्रसन्नतां प्रियप्रजो योगिवरो विदेहताम्
अलं विसस्मार तथानपत्यतां समं प्रजानामधिपस्य चिन्तया ।।

धरात्मजा यत्र भवेन्नु लालिता कथं धरित्री न भवेत्फलप्रदा
फलप्रदायां भुवि किं प्रजाजनाः सुखं वसेयुर्न नृपः सुखी न किम् ।

स आत्मनोप्यभ्यधिकां प्रियां सुतां मुखश्रियाऽपास्तसरोजिनीश्रियम्
अनन्तकामैरुपसेविताङ्घ्रये प्रदित्सयाऽऽसादयति स्वयम्वरम् ।८१

तदद्भुते यज्ञविधौ निमन्त्रितः स्वशिष्यवृन्दैरहमस्मि राघव
अतः सुसज्जो भव तं दिदृक्षया सलक्ष्मणस्त्वं मिथिलाभवं सवम् ।

ततोऽपसव्ये श्रवणान्तगे दृशि स्फुरन्नभीक्ष्णं झषवत्सुपल्वले
वितर्क्यमानो नवयौवने पदं दधत् स रामोऽनुमुनि न्यधात्पदम् ।

अवर्षण के कारण भावी सुख की निष्कृति करने की इच्छा से इन्द्र को प्रसन्न करने लिये हल से वह धरती को जोत ही रहे थे कि धरणीसुता (सीता) को प्राप्त किया ।।७८।। अपत्य (सन्तान) लाभ से प्रसन्न हुए प्रजाप्रिय राजा योगिश्रेष्ठ विदेह हो गये वह प्रजाओं के स्वामी (त्व) की चिन्ता के साथ अनपत्यता को भी एकदम भुला गये ।।७९।। जहाँ धरा की पुत्री (सीता) लालित हो वह धरणी फलप्रदा क्यों न हो ? फलप्रद पृथिवी पर प्रजायें क्यों सुखी न हों ? और राजा भी क्यों न सुखी रहे ? ।।८०।। मुख-श्री से रात को भी तिरस्कृत करने वाली, अपने से भी अधिक रस प्रिय पुत्री को अनन्त कामों से सेवित चरणवाले (वर को) प्रदान करने की इच्छा से वह स्वयम्बर कर रहे हैं ।।८१।। हे राम, उस अद्भुत यज्ञकार्य में मैं सशिष्य बुलाया गया हूँ (निमन्त्रित हूँ) । इसलिये मिथिला में होने वाले उस यज्ञ को देखने के लिये तुम भी सलक्ष्मण तैयार हो जाओ ।८२। तभी सुन्दर सरोवरमें मीन समान, कान पर्यन्त फैली हुई, पल्लवसदृश दायीं आँखके बार-बार फड़कने पर, उसपर वितर्क कर रहे, यौवन की नयी देहली पर पाँव रखते हुए राम ने मुनि के पीछे अपने पाँव रखे (मुनि के पीछे चल पड़े ।८३।।

अनन्तरं शोणतटं कृताह्निको नदं तमुत्तीर्य स गाधिनन्दनः
यदेषदेवान्वचलत्तदा पथि प्रदर्शयामास रघूद्वहं शिलाम् ।८४।
प्रदर्श्य तत्रैकशिलां ससम्भ्रमं शिलेतिवृत्ते जनयन् कुतूहलम्
किमप्यनुष्ठातुमनिन्द्यमद्भुतं जगाद रामं करुणाप्लुतो मुनिः ।
इयं शिला या पुरतस्तव स्थिता मनुष्यरूपा परिदृश्यतेऽधुना
कृता न धात्रा न हि शिल्पिनाऽपि सा विनिर्म्मितैषा शपथेन
कस्यचित् ।८६।
अपूर्वसृष्टिर्दुहिताब्जजन्मनः सनादहल्या नवयौवना पुरा
बभूव बद्धोपयमे तपस्विना पितुर्निदेशादिह गौतमेन सा ।८७।
निशीथकाले शशिनश्छलादुषस्युपस्थिते देवनदीं गते मुनौ
प्रधर्षितेन्द्रेण गतत्रपेण सा पतिव्रतानां धुरि संस्थिता शुभा ।८८
निरीक्ष्य तारास्थितिमम्बरे पुनस्ततोऽर्द्धमार्गाच्च परावृते मुनौ
निशापतिर्द्वारि गृहे दिवस्पतिर्बभूवतुर्द्वौ स्वकृतेर्निवेदकौ ।८९।

इसके बाद शोण के तट पर दैनिक कृत्य करके, उस नद को पार कर विश्वामित्र जब कुछ थोड़ा ही बढ़े थे कि रास्ते में उन्होंने राम को एक शिला दिखायी ।।८४।। वहाँ ससम्भ्रम एक शिला दिखाते हुए, उसकी कथा के विषय में कुतूहल (उत्कण्ठा) पैदा करते हुए, कुछ अद्भुत प्रशंसनीय कार्य कराने के लिये करुणा से भरे वह मुनि विश्वामित्र राम से बोले ।।८५।। आपके सामने इस समय जो यह मनुष्यरूप शिला दिखाई पड़ रही है, इसे न ब्रह्मा ने बनाया न किसी शिल्पी ने प्रत्युत् किसी के शाप से ऐसी बनायी गयी है ।।८६।। ब्रह्मा की अपूर्व सृष्टि सदा (चिर) नवयौवना अहल्या पहले पिता की आज्ञा से तपस्वी गौतम से परिणय-सूत्र में बँधी (विवाह किया था) थी ।।८७।। रात में ही चन्द्रमा के छल से प्रभात उपस्थित हो जाने पर मुनि जब (देवनद) गङ्गा में (स्नानादि) के लिये चले गये थे तब पतिव्रताओं की शिरस्क उसका, निर्लज्ज इन्द्र द्वारा (धर्षित हुई), सतीत्व लूट लिया गया ।।८८।। फिर आकाश में नक्षत्रों की स्थिति देखकर, गौतम मुनि के आधे रास्ते से ही लौट आने पर द्वार पर चन्द्रमा और घर में इन्द्र अपने कृत्य के निवेदक बने ।८९।

पलायमानौ प्रसमीक्ष्य तेन तौ स्वशापयोगेन पुरस्कृतावुभौ
शशी मृगाङ्कस्तदन्तरं क्षयी व्यधायि शक्रोऽपि सहस्रयोनिभाक् ।

असावहल्याऽपि मुनेर्वचोऽनलाद् गता शिलात्वं निजभाग्यदोषतः
सृजिर्विधातुर्महनीयसौभगा प्रतीक्षमाणा तव पादसंस्पर्शम् ।९१

त्वरस्व मे वत्स पदा निजेन तां कुरुष्व यत्नेन विशुद्धमानवीम्
समागतस्त्वं वसुधातले पुनर्मृतां समुज्जीवयितुं मनुष्यताम् ।९२

दयार्द्रचित्तः करुणाप्लुतो मुनिः सुहृत्समेषां स च गाधिनन्दनः
बभूव हृष्टो मनसा हरिं स्मरन् शुभामहल्यामनुवीक्ष्य तत्क्षणम् ।

विबोध्यमानेव सुषुप्तितस्तया न किञ्चिदज्ञायि विलोक्य बालकम्
अहल्ययाऽवाप्तमनीषया तया पुनर्मनस्येवमकारि शेमुषी ।९४।

पुरतो ननु बालकं शुभं धृतपादं नवयौवनेऽद्भुतम्
परिवीक्ष्य मयाऽनुचिन्त्यते गतमाश्चर्यकरं स्वजीवनम् ।९५।

उन्हें भागते हुए देखकर मुनि ने उन दोनों को अपने शाप से पुरस्कृत किया, मृगाङ्क चन्द्रमा को उसके बाद से क्षयी तथा इन्द्र को सहस्रयोनि बना दिया ॥९०॥ वह बेचारी अहल्या भी अपने भाग्यदोष से मुनि की वागग्नि (शाप) से शिला बन गया। विधाता की महनीय सुन्दर सृष्टि तुम्हारे पाद-स्पर्श की प्रतीक्षा कर रही है ॥९१॥ हे वत्स, शीघ्रता करो, अपने पाँव से, यत्नपूर्वक उसे विशुद्ध मानवी बनानेकी जल्दी करो। तुम इस धरती पर मृत मनुष्यता को फिर से जीवित करने के लिये ही आये हो ॥९२॥ दया से द्रवित मन, करुणाभरित, सर्वमित्र मुनि विश्वामित्र, मनसे हरि का स्मरण करते हुए तत्क्षण (पाद-स्पर्श के बाद) शुभ अहल्या को देखकर प्रसन्न हो गये ॥९३॥ सुषुप्ति से जगायी सी, बालक को देखकर, उसने कुछ नहीं समझा। फिर बुद्धिप्राप्त अहल्या ने मन में यह बुद्धि की (मन में सोचा) ॥९४॥ नवयौवन में पदार्पण किये हुए इस पवित्र, अद्भुत बालक को सामने देखकर मैं बीते हुए विस्मयकारी अपने जीवन के बारे में सोचती हूँ ॥९ ॥

कियतो समयादयं जनः स्थित आसीत् विजने शिलागतः
सकलानि वचांसि दुर्भगः सहमानो लघुचेतसामपि ।९६।

हृदयं परिदूयते मनः मम नाद्यापि बिभर्ति शर्म वा
कथमेवमलम्भि वा मया त्रपयेयं सहिताऽपि चेतना ।९७।

समवाप्य नवामिमां दशां स्वमतीतं परिचिन्तयाम्यहम्
वचसः प्रतिभाति मे मुनेः किमु रामः समुपागतः स्वयम् ।९८।

ध्रुवमस्मि कलङ्कशालिनी कुयशो वत्स्यति जीवनावधि
सफला जनिरस्ति मे पुनर्यदि रामस्य पदा स्वकीकृता ।९९।

तव पादसरोरुहस्पृशः मम शापस्य कृतोऽवधिः पुरा
कृपया विधिना स पूरितो नवदुःखाय कृताऽथवा कृपा ।१००।

घटनां सकलां रहोगतामपि जानासि पुराऽभवच्च या
वद विश्वपते करोमि किं परिणामो विपरीत ईक्षितः ।१०१।

कितनों दिनों से यह (मैं तुच्छ) व्यक्ति इस जगत् में क्षुद्रबुद्धि छोटे जीवों तक) के दुष्ट वचनों को सुनती हुई शिलागत होकर पड़ी रही ।९६ मेरा हृदय अत्यन्त दुःखी है मेरे मन को आज भी सुख शान्ति नहीं है। अथवा मैंने वह दशा कैसे पायी, चेतना युक्त भी लज्जित हूँ ॥९७॥ इस नयी अवस्था को प्राप्त कर मैं अपना अतीत सोचती हूँ, मुनि की वाणी के अनुसार मुझे लगता है कि क्या स्वयं राम आ गये हैं ? ॥९८॥ निश्चय ही मैं कलङ्कशालिनी हूँ, पूरे जीवन भर अपयश बना रहेगा। फिर भी यदि राम के पैरों से अपनात्व प्राप्त कर गयी हूँ तो मेर जनम सफल है ॥९९॥ पहले मेरे शाप की अवधि तुम्हारा पदकमलस्पर्श ही (मुनि द्वारा) किया गया था। विधाता ने कृपापूर्वक उसे पूरा कर दिया है, या नये दुःख के लिये कृपा की है ? ॥१००॥ एकान्त में घटित हुई पहले की सारी घटना को आप जानते हैं, हे लोक नाथ, विपरीत परिणाम को प्राप्त मैं अब क्या करूँ ? ॥१०१॥

क्व स इन्द्रपदे कृतश्रमः क्व स चन्द्रोऽप्यबलारिपुर्मतः
क्व पतिर्गृहितां भजन्मुनिः क्व च नारीछलितापतिव्रता ।१०२
अवशा जनितैव वाऽबला जनितो वा विधिना खलः पुमान्
फलमेव भवेत्सदेत्थमाः! किमु मन्येत पतिं निजं प्रभुम् ।१०३।
नहि राम इतीव नाम ते ह्यभिरामोऽभिलषन्पुनर्लघुम्
नहि कोऽपिजनोऽस्पृशन्निमां स्वपदा या भवताप्यलङ्कृता ।१०४
अवतार इहाचलातले तव जातोऽघिविनाशहेतवे
नियतं हि ममोपकुर्वता निरघित्वं मयि साधितं त्वया ।१०५।
कथयेयुरलं जनाश्च मां यदि चारित्र्यविहीनमूर्द्धजाम्
नहि मेऽनुशयोऽधुना मनाक् परिपूता तव पादपांशुभिः ।१०६।
अनुभाव इतीदृशो महान् मनुजत्वं प्रददाति योऽश्मने
स्वत एवमनेन निश्चिता त्वयि सत्ता ननु पारमेश्वरी ।१०७।

कहाँ इन्द्र पद पर रह कर भी किया गया वह दुष्कर्म, और कहाँ वह परिज्ञात अबला-शत्रु चन्द्रमा, गृहस्थाश्रम में रहते हुए कहाँ वह मुनि, और कहाँ छली गयी पतिव्रता नारी मैं ? ॥१०२॥ अथवा अबला अवश पैदा ही हुई है ? अथवा विधाता ने पुरुष को नीच बनाया है ? और यदि सदा ऐसा ही फल हो तो क्या नारी पति को अपने स्वामी माने ?। तुम्हारा राम इतना ही नाम नहीं है प्रत्युत् छोटों को भी चाहने वाले तुम अभिराम भी हो, इस मुझ तुच्छ को तो किसी ने स्पर्श भी नहीं किया, जिसे आपने अपने पैरों से भी अलङ्कृत किया है ॥१०४॥ पापियों के विनाश के लिये इस धरती पर (अचला शिलातल पर) तुम्हारा अवतार (प्राकट्य) हुआ है। मेरा उपकार करते हुए तुमने निश्चय मुझे निरपराध निष्पाप) सिद्ध कर दिय है ॥१०५॥ यदि लोग मुझे चरित्रहीना में प्रधान भी कहें तो भी मुझे अब कोई पश्चात्ताप नहीं है क्योंकि तुम्हारे पाद-धूलियों से पवित्र हो गयी हूँ ॥१०६॥ आपका इतना भारी प्रभाव (तेज) है कि जो पत्थर को भी मानुष्य प्रदान कर देता है। इससे अपने-आप में सिद्ध है कि तुम में परम ईश्वरीय सत्ता है ॥१०७॥

प्रणमामि विभो स्वकर्मभिः प्रतिबद्धा भगवन्तमीदृशम्
अनपेक्षितमस्ति मेऽपरं तव पादेष्वनुरक्तिरस्तु मे ।१०८।
स्वभाग्यदोषप्रतिबद्धमङ्गलां निशम्य रामश्च पतिव्रतागिरम्
निसर्गमानुष्यविवर्द्धनेच्छया सलक्ष्मणस्तां प्रणमन्नुवाच सः ।१०६
अलं विषादेन कृतं च मन्युना न दोष एवाऽस्ति नरस्य कस्यचित्
स्वपूर्वकृत्यप्रतिबद्धमानवैरवर्णनीयोऽनुशयोऽनुभूयते ।११०।
जना न विज्ञाय परिस्थितिं ध्रुवामपि स्वभावदयशःसु सस्पृहाः
निगुह्य कीर्तिं परिदर्शयन्ति तेऽशुभामधिक्षेपविधौ स्वयोग्यताम् ।
इह प्रसङ्गे भवती न दोषिणी न वा मुनिर्गौतम एव दोषभाक्
अमर्षकोपावपहाय दुर्हृदौ समं भवद्भ्यां समयोऽतिवाह्यताम् ।।
भवेद्भवत्या हृदि नोद्गमः पुनः कदापि शोकस्य च मर्मघातिनः
मया व्यवस्था क्रियतेऽत्रशोभने तव स्मृतिः स्यादघनाशिनी कलौ ।

हे विभो, ऐसे भगवान् आपको, अपने कर्मों से बँधी हुई मैं प्रणाम करती हूँ। तुम्हारे पैरों में मेरी अनपेक्षित भक्ति है, और ब.द में भी बनी रहे। अपने भाग्यदोष से प्रतिबद्ध किन्तु मङ्गलमयी, पतिव्रता की वाणी सुनकर सहज ही मानवता के प्रवर्द्धन की इच्छा से राम, लक्ष्मण समेत उसे प्रणाम करते हुए बोले ॥१०६॥ विषाद न करो, मन्यु (क्रोध) व्यर्थ है, किसी मनुष्य का दोष नहीं है। अपने पूर्व कर्मों से बँधे हुए मनुष्य अवर्णनीय क्लेश का भोग करते हैं ॥११०॥ नियत परिस्थिति को न जानकर लोग अयशभागी बनते हैं, वे यश को छिपाकर (गँवाकर) आरोपक्रिया में ही अपनी अपवित्र योग्यता दिखाते हैं।१११। इस प्रसङ्ग में न आप दोषी हैं और न ही मुनि गौतम दोषभागी हैं। इसलिये दोनों ही अमर्ष-क्रोध तथा हृदय का मालिन्य समाप्त कर आप लोग समानरूप से अपना समय-यापन करें ॥११२॥ आपके हृदय में मर्मघाती इस शोक का कभी उदय न हो, अयिशोभने, मैं इस विषय में यह व्यवस्था करता हूँ (वर प्रदान करता हूँ) कि कलियुग में तुम्हारा स्मरण पाप नाशक होगा ॥११३॥

ततोऽर्थनां गौतमदम्पतिश्रितां हृदा गृहीत्वा मुनिगाधिसूनुना
प्रचोदितो रम्यवपुः सहानुजः स रामभद्रो मिथिलोन्मुखोऽभवत् ।।

अनन्तरं यावदसौ रघूद्वहो महर्षिणा साकमवाप जह्नुजाम्
ततोऽपि पूर्वं चरितं महात्मनो व्यधाद्दिगन्तं स्वयशोऽभिपूरितम्

नदीं समुत्तारयितुं निवेदितो न नाविकस्तत्र बभूव तत्परः
विभीषिकां काञ्चिदसौ प्रदर्शयन्नुवाच रामं कृतमस्तकाञ्जलिः ।।

कदाप्यसंमार्ज्यं तवांघ्रियुग्मकं समुत्सहे दातुमहं तरिं न ते
यदा प्रपेदेऽश्म मनुष्यतां तदा कथा तरेः केह तवांघ्रिसेवनात् ।११७

निशम्य रामस्तरिवाहकाभ्युदीरितां गिरं कौशिकवक्त्रमुन्मुखः
निभाल्य तत् साश्रु निरस्तचेष्टितं मुदोमिति व्याहरदत्र
नाविकम् ।११८।

इसके बाद गौतम दम्पती की सपर्या (प्रार्थना) को हृदय से ग्रहण कर विश्वामित्र से निर्दिष्ट, सुन्दरशरीर रामभद्र अनुज समेत मिथिला की ओर उन्मुख हुए ।।११४।। इस बीच राघव राम महर्षि के साथ जब तक गङ्गा तट पर पहुँचे, इससे पहले ही उनके यश से परिपूर्ण, उन महात्मा की, चरित्रगाथा दिगन्तरों में पहुँच गयी ।।११५।। कहे जाने पर भी नाविक गङ्गा से पार करने को तैयार नहीं हुआ। कुछ अपूर्व विभीषिका दिखाते हुए माथ पर हाथ जोड़कर वह राम से बोला ।।११६।। तुम्हारे दोनों पाँवों को बिना धोये मैं तुम्हें अपनी नाव (में बैठने) देने का उत्साह नहीं कर सकता। जब (चरणस्पर्श से) पत्थर भी मनुष्यभाव को प्राप्त कर गया तो फिर तुम्हारे पद सेवन (स्पर्श) से नाव की तो बात ही क्या? ।।११७।। नाविक की कही गयी बात को सुनकर महर्षि विश्वामित्र की ओर उन्मुख हुए, और साश्रु (सानन्द व्यापारशून्य उस (मुनि के मुख) को देखकर, राम सहर्ष 'ठीक है' ऐसा उस नाविक से बोले ।।११८।।

एवं स्वीयजनानुकूलविधिना तेषां मनस्तोषयन्
गुर्वाज्ञापरिपूरणाय सततं वाक्कायचित्तैः रतः।
वैदेहीकरपीडनाय नियतं सम्पत्स्यमानं शुभं
द्रष्टुं यज्ञमसौ जगाम मिथिलां भ्रात्रा समं राघवः ।११९।

श्रीश्यामान्वितसुन्दरोऽस्ति जनको माता च यस्याम्बिका,
यः श्रीराजकिशोर आप्तचरितः शाण्डिल्यवंशोद्भवः
वैदुष्यं खनकीयमस्ति लिखितं येन क्वचित्तन्महा-
काव्ये चारुणि राघवेन्द्रचरिते सर्गो गतः पञ्चमः ।१२०।

इस प्रकार अपने लोगों को अनुकूल कार्यों द्वारा, उनके मन को सन्तुष्ट करते, गुरु की आज्ञापूर्ति के लिये, सतत, वाक्, काय, मन (मन-वचन-कर्म) से निरत, सीता–परिणय के लिये हो रहे निश्चित मङ्गलमय यज्ञ को देखने के लिये भाई समेत वह राम जनकपुर गये ॥११९॥ जिनके पिता श्री श्यामसुन्दर और माता अम्बिका हैं, शाण्डिल्य गोत्रोत्पन्न, आप्तचरित जो श्रीराजकिशोर मणि हैं, जिन्होंने मूषक वैदुस्य नामक प्रहसन लिखा है उनके द्वारा लिखित सुन्दर राघवेन्द्रचरित महाकाव्य में यह पाँचवाँ सर्ग पूर्ण हुआ ॥१२०॥

षष्ठः सर्गः

ततः परं लक्ष्मणकौशिकाभ्यां साकं च सिद्धाश्रमवासिवृन्दैः
स्वसीम्नि रामं सुषमानिधानं ननन्द दृष्ट्वा मिथिलाधिदेवी ।१

सा राध्यतो भावविदो दुहित्रे संस्मृत्य वाचं स्वसुतौपयामिकीम्
तत्पूर्तिकालं समवेक्ष्य चागतं व्यलोकयद्राममनेकदृष्टया ।२।

भावः समस्ताः प्रभवन्ति यस्माद् य एक एवंविषयोऽपि तेषाम्
अध्वानमायाति स एव दृष्टयाः स्याद् वीक्षितः काममनेकदृष्टया

स्वातीस्थसूर्येण विकासितेऽम्बरे व्रजन्तमाराान्नवनीरदोपमम्
समीक्ष्य रामं मिथिलावनी सा हृच्छुक्तिसम्भावनया प्रहृष्टा ।४।

अनेकजन्मार्जितपुण्यराशिप्रसूतभाग्योदयकारिदर्शनम्
अवाप्य रामस्य निजाश्रु हर्षजं मही प्रतिश्यायमिषान्मुमोच सा ।५

इसके बाद सिद्धाश्रमनिवासी मुनिवृन्द, लक्ष्मण, विश्वामित्र समेत, शोभानिधान श्रीराम को अपनी सीमा में देखकर मिथिला की अधिष्ठात्री देवी अति प्रसन्न हुई ॥१॥ भविष्यवेत्ता सिद्ध की अपनी पुत्री (सीता) के विवाह सम्बन्धी कथन को स्मरणकर और उसकी पूर्ति का समय आया हुआ देखकर उसने राम को अनेक प्रकार से देखा ॥२॥ जिससे सारे भाव उत्पन्न होते हैं उनमें तद्विषयक एक भी कोई भाव दृष्टिपथ में आता है तो वही अनेक दृष्टियों से देखा जाता है ॥३॥ प्रसन्न नभ में स्वाती के सूर्य से जलभरे नये मेघ सदृश श्याम राम को समीप देखकर वह मिथिला की धरती हृदयरूपी शुक्तिसम्भावना से प्रसन्न हुई (हृदय मोती खिल उठी) ॥४॥ अनेक जन्मों के अर्जित पुण्यराशिजनित भाग्य के उदयकारी राम के दर्शन को प्राप्तकर वह मिथिलाभूमि नीहार के बहाने अपने हर्षजनित आँसू टपकाये ॥५॥

सुतां विरञ्चेः स्वपदा स्पृशन्नयं सुसंयमी कौशिकसङ्गहर्षितः
गन्ता दशां कामिति चिन्तयन्ती शुकावलीरावमिषाज्जहास सा ।
यदेष सम्भावयितुं पुनर्मां भाग्यादयोध्यात इहागतोऽस्ति
स माञ्च मोक्ता किमु चिन्तयाऽनया प्रियाऽऽप्तिकालेऽश्रुमुखी
बभूव सा ।७।

गच्छेन्नु दर्पं स्मरमन्मथोऽयं सुता मदीयाऽस्य मनो मथिष्यति
आयोध्यकः क्व क्व च मैथिली मे तावल्लपेदेष मही व्यचिन्तयत्
भवेदयं शूरपदाभिवाच्यो द्विषो जयेत्काममसौ रणाङ्गणे
मत्कन्यया वामकरेण वाहितं काष्ठा धनुर्वा यशसः श्रियोऽस्य ।
अपूर्वचौरे मिथिलामुपागते हठान्मुनीनाञ्च मनांसि मुष्णति
न जातु रत्नं मम चोरयेदसौ भियाऽनया सा मिथिला व्यकम्पत ।
अवध्यभूतां परमेष्ठिसृष्टिं हत्वाऽपि यो नानुशयं करोति
किमर्थमत्रागत ईदृशः पुमान् अभूदतो धान्यमही नतानना ।११

सुसंयमी, विश्वामित्र के सम्पर्क से प्रसन्न यह राम ब्रह्मसुता (धरती) को पैरों से स्पर्श कर किस दशा को प्राप्त होंगे ऐसा सोचती हुई वह सुओं की चहचहाहट के बहाने हँस पड़ी ॥६॥ भाग्य से मुझे कृतार्थ करने के लिये यह जो अयोध्या से यहाँ आये हैं, मुझे छोड़ देंगे (मुक्त करेंगे) मानो इस चिन्ता से प्रिय राम, की प्राप्तिकाल में ही वह नीहार के बहाने अश्रुमुखी हो गयी ॥७॥ काम के मन को भी मथित करने वाला यह दर्पप्राप्त तो नहीं हो जायगा ? (कोई बात नहीं) मेरी पुत्री सीता इसके मन को मथित करेगी। कहाँ अयोध्यावासी यह और कहाँ मेरी सीता ? ऐसा मिथिला धरती ने सोचा ॥८॥ यदि वह पराक्रमी हों तो निश्चय ही युद्ध में शत्रुओं को जीत लेंगे अथवा मेरी पुत्री (सीता) से बायें हाथ से उठाई गयी धनुष ही इनके यश-श्री की काष्ठा, सीमा-कसौटी होगी ॥ मुनियों के भी मन को बलात् चुरा रहे अपूर्व चौर राम के मिथिला में आने पर मानो इस डर से धरती काँप गयी कि कहीं यह मेरी कन्यारत्न (सीता) को न चुरा ले ॥१०॥ अवध्य कही गयी भी परमात्मा की सृष्टि (नारी-ताडका)को भी मारकर जो दुःखी नहीं होता ऐसा पुरुष यहाँ क्यों आया है मानो यह सोचकर धरती धानसे झुक गयी नम्रमुखी हो गयी ।

अयं शिशुः क्व स्पृहणीयशोभः क्व राक्षसास्ते भयदाः सुरेभ्यः
चित्रं महत्कर्म कृतं निहत्य प्रकर्षधर्षानसुरान् सुरद्विषः ।१२।
अहोऽनुभावोऽस्य महीपजस्य प्रकृष्य चित्तं विवशं करोति
स्वस्थाप्यहं यस्य विलोकनेन स्वां संस्थितिं सम्प्रति विस्मरामि ।
कठोरधान्या धृतपीतवस्त्रा प्रकाशितश्रीर्मिथिलामयी मही
आमन्त्रयामास नु किं भविष्णुं सुतापतिं सा कणिशाग्रबाहुना ।।
उड्डीयमानां गगने निरभ्रे स्वदक्षिणस्यां दिशि वीक्ष्य पोतकीम्
शशाङ्कनाड्यां वहति प्रभञ्जने चलन्स रामो मिथिलां निरैक्षत ।
सुपक्वशालेः कणिशान्सुपुष्टान् केदारनीरं श्रमहन्तृ शुभ्रम्
आदाय दृष्ट्वा समुपस्थितां तां जहर्ष रामो मिथिलाधिदेवीम् ।
सलक्ष्मणैः स्वाभिमुखीनसारसैः पेपीयमानो व सतृष्णनेत्रैः
निरीक्ष्यमाणश्च शिखण्डिभिर्मुहुः सलक्ष्मणश्चैष ययौ घनोपमः ।

स्पृहणीय सुषमा वाला कहाँ यह बालक ? और देवों को भी भयत्रस्त करने वाले कहाँ वे राक्षस ? बड़ों - बड़ों को भी धर्षित करने वाले देवशत्रु राक्षसों को मारकर इन्होंने महान् अद्भुत कार्य किया है ।।१२।। अरे इस राजपुत्र का अनुभाव (तेज) तो अद्भुत है, जो खींचकर बलात् चित्त को विवश कर देता है, जिसके देखने से स्वस्थ भी मैं इस समय अपनी स्थिति को भी भूली जा रही हूँ ।।१३।। सुषमामण्डित मिथिला धरती पकी हुई धान की फसलों से युक्त अतएव मानो पीतवस्त्र धारे हुई, धान की बालियों रूपी अंगुलियों से ऐसी लगती थी मानो, भावी जामाता को बुला रही थी ।।१४।। निरभ्र आकाश में दाहिने उड़ती हुई कपोती को देखकर, वायु के चन्द्रनाडी में बहते रहते, चले जा रहे राम ने मिथिला को देखा ।।१५।। खूब पकी हुई धान की सपुष्ट बालियों तथा श्रमापहारी शुभ्र ताल (केदार) जल को लेकर उपस्थित (स्वागतार्थ) उस मिथिला की अधिदेवता को देखकर राम प्रसन्न हुए ।।१६।। हंसों सहित, सतृष्ण नेत्र अपने सम्मुख हुए सारसों से भृशं पीयमान तथा मयूरों से देखे जाते हुए मेघसदृश राम सलक्ष्मण आगे चले ।।१७।

क्रिकीदिवान्दक्षिणतः स पश्यन् स्ववामतश्चातकदम्पती च
शनैर्जगामैष पुरो विलोकयन् गवां गणान्प्रस्नुतपीवरौधसाम् ।१८

स स्वानुभावेन चराचराणां प्रवृत्तिमात्रं परितः प्रभावयन्
विश्रान्तये पादपमूलमास्थितो निरुद्धकार्यैर्विहगैर्विलोकितः ।१९

कदाप्यचिन्त्यं ननु यस्य दर्शनं स्वयं समायातमवेक्ष्य तं नरम्
स पुष्पवर्षं च गणा अगानां स्वभागधेयानि बहूनि मेनिरे ।२०।

स्वा मन्यमाना अजितात्मनः सदा नेत्रीयशोभाविषये हरिण्यः
विनिर्जितास्ता अपि वीक्ष्य रामं प्रापुः परं दैर्घ्यफलं स्वनेत्रयोः

श्रीराघवीयामतिशायिशोभां श्रुत्वा मुखेभ्यः शफरीगणानाम्
दैर्घ्यं निनिन्दुः पृथवो झषादयो दृष्ट्वा न रामं सलिलार्थमागतम्

विशेषतत्त्वेन विनिर्मितं तं निरीक्षमाणा वशगा बभूवुः
हिंस्रा अतस्तं पशवो निरीक्ष्य स्वहिंस्रभावं परितो विसस्मरुः ।२३

अपने दाहिने टिटिहिरियों तथा बाँये से चातक-चातकियों को और सामने स्रवितथनों वाली गायों को देखते हुए वह धीरे-धीरे चले जा रहे थे ॥१८॥ अपनी आभासे चराचर जगत् की प्रवृत्ति को सर्वतः प्रभावित करते हुए पेड़ के नीचे आराम के लिये रुके तो व्यापारों को रोककर पक्षियों ने उन्हें देखना प्रारम्भ कर दिया ॥१९॥ जिनका दर्शन सर्वथा अचिन्त्य है उन पुरुष को स्वयं आया हुआ देखकर वृक्षसमूहों ने पुष्प वर्षापूर्वक अपने भाग्यों को धन्य समझा ॥२०॥ नेत्रशोभा के विषय में अपने को सदैव अविजित माननेवाली मृगियाँ, राम को देखकर पराजित भी, उन्होंने अपनी आँखों की दीर्घता का परमफल प्राप्त कर लिया ।२१। शफरी रोहू) मछलियों के मुखसे राम की उत्कृष्ट शोभा को सुनकर, मोटी लम्बी, मछलियों ने जलार्थ आये हुए राम को न देखकर अपनी लम्बाई की निन्दा की ॥२२॥ विशेषतत्त्वों से बने हुए उन्हें देखकर हिंसक पशु भी वश में हो गये अतः उन्होंने अपने हिंस्रभाव को सर्वथा भुला दिया ॥२३॥

परावृतैर्मानसतो समं सा स्वहंसशावैः प्रकृतिः पुरन्ध्री
प्रकम्पिता शाववियोगशङ्कया समीक्ष्य रामं नवमम्बुदोपमम् ।।
स तीरभुक्तीयजनैः प्रशंसितो मुग्धाङ्गनाभिः स्फुटमीक्षितश्च
अहैतुकस्नेहवशात्सहैवाध्वानं व्रजद्भिः शिशुभिः समं ययौ ।२५
सलक्ष्मणो राम उदारकीर्तिर्व्रजन् दिदृक्षुर्मुनिना समं सवम्
निरीक्ष्य शोभां मिथिलैकगम्यां श्रमावबोद्धा मनसाऽपि नाऽभूत्
उल्लंघ्य पन्थानमसौ क्रमात्पुरीं सम्प्राप्य रामो जनकेन पालिताम्
चमत्कृतोऽभूच्च निरीक्ष्य सत्कृतौ पुरोधसा साकमुपस्थितं नृपम्
पादौ ग्रहीतुं स्वगुरोः प्रवृत्तं नृपं तथाऽऽलिङ्गयितुं गुरुश्च
अवेक्ष्य रामः प्रशशंस साम्प्रतं गुरोर्महत्त्वं नृपतेश्च योग्यताम् ।२८
एवंप्रशस्ते महिते नृपीये वसन्सतीर्थ्यैः सममग्न्यगारे
पुरीं दिदृक्षुर्मणिकाञ्चनोपमां सोऽन्येद्युरिच्छां गुरवेन्यवेदीत् ।२९

मानसरोवर से लौटे हुए अपने हंस बच्चों समेत, नूतन जलधर सदृश राम को देखकर बच्चों के वियोग की आशङ्का से वह प्रकृति पुरन्ध्री काँप गयी। (कहीं बादल को देखकर ये फिर न मानसरोवर लौट जाँय)। ४।। तिरहुत के लोगों द्वारा प्रशंसित, वहाँ की भोली भाली स्त्रियों द्वारा खूब निहारे जाते हुए तथा अकारण स्नेहवश साथ-साथ रास्ते पर चलते हुए बालकों के साथ राम चले ।।२५।। यज्ञ को देखने की इच्छावाले उदार-कीर्ति सलक्ष्मण श्रीराम मुनि विश्वामित्र के साथ चलते हुए जनकपुरी (मिथिला) की अपूर्व शोभा देखकर मन से भी थकान का अनुभव नहीं किये ।।२६।। रास्ते को पारकर क्रमशः जनकपालित मिथिला नगरी में पहुँचकर उन्होंने पुरोहित समेत राजा जनक को सत्कार में उपस्थित देखकर विस्मय का अनुभव किया ।।२७।। राजा को विश्वामित्र के पाँव पकड़ने और गुरु विश्वामित्र को राजा के आलिङ्गन के लिये प्रवृत्त होते देखकर राम ने इस समय गुरु का महत्त्व और राजा की योग्यता दोनों की प्रशंसा की ।।२८।। इस प्रकार राजा के सुन्दर, महनीय, अग्निगृह में सहपाठी मित्रों के साथ रह रहे राम ने दूसरे दिन मणि और सुवर्ण जैसी नगरी को देखने की इच्छा को गुरु से निवेदित किया ।।२९।।

पौरैर्वितर्क्यः शिशुभिर्निरीक्ष्यः स्वकान्तिशान्तीकृततिग्मरश्मिः
पौराङ्गनानाञ्च मनांसि लोभयन् वीथ्यां शनैः स भ्रमणञ्चकार

सलक्ष्मणं तं समवेक्ष्य पौरा वितर्कयामासुरयं शिशुः कः
किं छद्मवेशी मघवा सचन्द्रः कामो वसन्तेन समं व्रजेन्नु किम् ।।

भवेदयं कः क इहेप्सितोऽस्य प्रयोजनं किञ्च पुरीनिरीक्षणे
वितर्कयत्स्वेवमथो जनेषु प्रवृत्तिवित्कश्चिदुवाच पौरः ।३२।

सहस्रयोनौ क्व मघोनि साहसो नासावनङ्गो मदनो निरीहः
सम्भाव्यतेऽसौ रसराज एवं कृतार्थयन् याति च नः सवीरः ।३३

प्रदर्शयन्तत्र निजामभिज्ञतामुवाच कश्चिन्नरदेवसभ्यः
इमौ शिशू दाशरथी समागतौ सकौशिकावत्र निहत्य राक्षसान् ३४

बालैः सखाऽयं युवभिश्च मित्रं वृद्धैः शरण्यो ललनाभिरात्मभूः
भावानुसारं सकलैर्विलोकितो रक्षाप्रदाता पशुभिश्च पक्षिभिः ३५

अपनी प्रभा से सूर्य को भी शीतल (शान्त) करने वाले, (यह कौन है इस प्रकार) पुरवासियों से वितकणीय, बालकों से (सकौतुक) दर्शनीय, नगरवासिनी महिलाओं के मनों को लुभाते हुए राम धीरे-धीरे जनकपुर की गलियों में घूमते रहे ।।३०।। लक्ष्मण समेत राम को देखकर नगर-निवासियों ने यह कल्पना की कि यह बालक कौन है ? कहीं चन्द्रमा समेत यह छद्मवेश में इन्द्र तो नहीं ? या फिर बसन्त के साथ काम तो नहीं चल रहा ? ।।३ ।। यह कौन हो सकता है ? अथवा यहां इसका अभीष्ट क्या है ? नगरी के देखने में इसका प्रयोजन क्या है ? इस प्रकार लोगों के वितर्क करते रहने पर, प्रवृत्ति (विधिज्ञ) का जानकार कोई पुरवासी बोला ।।३२।। सहस्रयोनि इन्द्र में कहां साहस है (कि वह यहां घूमे) बेचारा शरीर विहीन काम यह हो नहीं सकता, यह तो वीर रस समेत रसराज (शृङ्गार) ही हो सकता है जो इस प्रकार से हमें कृतार्थ करते हुए चला जा रहा है ।।३३।। उनमें से कोई राजसभासद अपनी जानकारी (अभिज्ञता-सयानापन) दिखाते हुए बोला कि ये दोनों बालक राजा दशरथ के पुत्र हैं, राक्षसों को मारकर विश्वामित्र के साथ यहाँ आये हैं ।।३४।। बालको से सखा, तरुणों से मित्र, वृद्धों से शरण-दाता, सुन्दरियों से काम, इस प्रकार पशु-पक्षी आदि सभी के द्वारा रक्षक राम अपने-अपने भावों के अनुसार देखे गये ।।३५।।

निदाघतापैरभितप्तपुंसः कादम्बिनीवत्परितोषयन्त्याः
मनोभिरामां सुषमां नगर्या विलोक्य रामो निजगाद लक्ष्मणम् ३६
स्वकुट्टिमाभाजितरत्नराशिभिर्वाद्यैर्हसद्भिर्जलदध्वनिञ्च
अभ्रङ्कषैर्हर्म्यशिरोगृहैरियं महीध्रशृङ्गं किमुपेक्षते पुरी ।३७।
महार्हमुक्तामणिविक्रयक्रयक्रियारतान् नागरिकान् विलोक्य
इयं पुरी वार्णवभाग एको विचारणैषा समुदेति नूनम् ।३८।
अस्यां क्वचिच्छात्रगणाः पठन्ति क्वचिच्च यागेषु रताः श्रुतिज्ञाः
विपश्चितो वादरताः क्वचिच्च ध्रुवं पुरीयं किमु पाठशाला ३९
अश्रान्तचारा मिथिलापुरीयं वैतालिकोक्तीरसकृद्दधाना
धिधा वदद्भिर्मुरजैः सुशोभिता नटीव संदृश्यत आत्मनिष्ठा ४०
कुसुम्भरागस्पृहयालु योषिता पुष्पासवासक्तकुलीनपूरुषा
अहो पुरीयं प्रकरोति नूनं हेमन्तघस्रं कुसुमेषुमित्रम् ।४१।

ग्रीष्म की ताप से झुलसे व्यक्ति को वर्षा के समान परितोष प्रदान करने वाली नगरी की मनोभिराम सुषमा को देखकर राम ने लक्ष्मण से कहा ॥३६॥ फर्शों पर जड़ी हुई शोभायमान अपनी मणियों से, मेघध्वनि का उपहास कर रहे वाद्यों से और गगनचुम्बी महलों की ऊँची चोटियों से यह नगरी लगता है पर्वतशिखर को भी तुच्छ बना रही है (उपेक्षा कर रही है ॥३७॥ बहुमूल्य मोतियों-मणियों आदि की खरीदारी और बेचने में लगे हुए नागरिकों को देखकर यह विचार उत्पन्न होता है कि यह नगरी है ? या समुद्र का ही एक भाग है ? ॥३८॥ कहीं छात्र लोग पढ़ रहे हैं, और कहीं वैदिक लोग यज्ञ कर रहे हैं, कहीं विद्वान् लोग वाद कर रहे हैं, मानो यह नगरी पाठशाला हो ॥३९॥ सतत आवागमन वाली, बार-बार वैतालिकों की (मंगल) वाणी को धारण करने वाली, धि-धा बजते मुरजों (मृदङ्गों) से सुशोभित यह मिथिलापुरी आत्मनिष्ठ नटी सी दिखती है ॥४०॥ कुसुमी रङ्ग (की साड़ियों आदि) की अभिलाषिणी यहाँ की नारियाँ हैं और पुष्पों की सुगन्ध इत्र-मद्य) पर कुलीन पुरुष अनुराग रखते हैं, लगता है यह नगरी हेमन्त दिनों को काममित्र (बसन्त) बना रही है (हेमन्त दिन को फूलों से मित्र बना रही है) ॥४१॥

गत्यागतिं धामनि संदधद्भिर्बालैर्विसारैरिव पोतवृन्दैः
मीनेक्षणाभिः परितःसुपूर्णा न वापिका भ्रान्तिमसौ करोति किम् ४२

सुगन्धिपुष्पैः प्रतिरोपिताभिर्लताभिरेषाऽधिगृहं सुशोभिता
प्रपालिताभिः शुकसारिकाभिः पुरी मनः कर्षति वाटिकेव ४३

जना यथायोग्यमभिप्रपन्नाः स्वकर्म कुर्वन्ति मनोऽभिसंस्तुतम्
किं रङ्गशाला नगरी प्रतीयते नृपो यदस्या ननु सूत्रधारः ।४४।

ऐन्द्रीधनूवद्धृतचित्रशाटिकाः सौदामिनीवत्शुभदन्तकान्त्यः
कादम्बिनीवन्मधुरं स्वनन्त्यो भ्राम्यन्ति रामा मिथिलाविहायसि ४५

हिमाद्रिपार्श्वे वसतां जनानां परम्परैका परितो विलोक्यते
अपीह लोकाः समुपासते शिवां निभालय त्वं गिरिजागृहं पुरः ४६

शोभानिधानं गुणराशिरेषा चारित्र्यमूर्तिर्महनीयकीर्तिः
शम्भोःप्रिया श्लाघ्यतमा जनेषु प्राक्पुण्यवद्भिः समुपास्यते ध्रुवम्

थिरकते छोटे-छोटे बच्चों शिशुओं (छोटी मछलियों) समेत घरों (प्रकाश) में आती-जाती (उछलती-कूदती) मीनेक्षणा महिलाओं दिखाई पड़ती मछलियों) से सर्वतः भरी-पूरी यह नगरी बावली (वापी) की भ्रान्ति नहीं पैदा करती क्या ? ।।४२।। घरों में लगायी गयी सुगन्धित पुष्पों से युक्त लताओं से सुशोभित तथा पाले गये शुक-सारिकाओ से युक्त यह नगरी वाटिका के समान मन को आकृष्ट कर रही है ।।४३।। हर प्रकार से सम्पन्न लोग मनोनुकूल यथायोग्य अपने कर्म कर रहे हैं, लगता है मानो यह नगरी रंगशाला है और राजा इसका सूत्रधार (यह नगरी रंगशाला प्रतीत हो रही है क्योंकि इसका सूत्रधार राजा है) ।४४। इन्द्र धनुष के समान नानारंगी विचित्र साड़ियों को पहने हुई बिजली जैसे चमकते दाँतों वाली, हंसी जैसी मीठी ठुनकने वाली यहाँ की रमणियाँ मिथिलारूपी नभोमण्डल में विचरण कर रही है ।।४५।। हिमालय के पास तराई में रहने वालों में एक परम्परा सर्वत्र दिखाई पड़ती है, वह यह कि यहाँ के लोग शक्ति की पूजा करते हैं, देखो सामने पार्वती देवी का मन्दिर है ।।४६।। शोभा की खान, गुणो की समूह, चरित्रता की मूर्ति, महनीय यश, लोगों में अतिप्रशंस्य, शिव जी की वल्लभा गिरजा देवी यहाँ निश्चय ही पुरातन पुण्यशाली जनों से पूजी जाती हैं ।।४७।।

शक्त्या ययैवाकलयन्ति रूपं ब्रह्माण्डपिण्डा गणनामतीताः
प्रकाशरूपामनुभूतिगम्यां मूर्त्या जनास्तां परिशीलयन्ति ।४८।
चलेव गत्वाऽऽयतनं तदीयं पश्येव तां तत्र च मूर्तिरूपाम्
कुर्यास्व यात्रां सफलां स्वकीयामवाप्य तस्याः करुणाम्बुविप्रुषः ४९
तस्मिन्क्षणे तत्र निशम्य शब्दान् पादाङ्गदोत्थान् करभूषणोद्भवान्
रामो यदा दृष्टिमदात् स्वदक्षिणे तदा लुलोके वनितौघमेकम् ५०
चीनांशुका भूषणमण्डिताश्च स्वेदाम्बुसिक्ताङ्गलता रमण्यः
देवीगृहात् सार्चनपात्रहस्ता अवातरन्त्योऽक्षिगता बभूवुः ।।५१।।
वयोविलासेन पदक्रमेण देवीस्तुतिव्याहरता स्वरेण
एता विभिन्नाः किमभिन्नरूपा भ्रान्तिर्मनश्चाक्रमताधिरामम् ५२
सर्वा वयस्याः सुषमाभियुक्ताः कृशाङ्गयष्ट्यो लतिकानुरूपाः
पुष्पानना वीक्ष्य मुदा कुमारः स चिन्तयामास चलल्लतास्ताः ५३

जिस शक्ति से ही असंख्य ब्रह्माण्डपिण्ड उसी के रूप-अनन्त रूप है ऐसा लोग मानते हैं। प्रकाशस्वरूपा, अनुभूति मात्रज्ञेय उसकी लोग मूर्ति के द्वारा आराधना करते हैं ।।४८।। हम दोनों उनके मन्दिर में चलें, चलकर वहाँ मूतिरूप में उनका दर्शन करें, उनकी करुणाजल की बूँदों को प्राप्त कर हम दोनों अपनी यात्रा सफल करें ।।४९।। उसी समय पैरो के नूपुर तथा हाँथों की चूड़ियों की झंकार ध्वनि को सुनकर राम ने ज्यों ही अपने दाहिने दृष्टि डाली कि तब एक वनिता वृन्द का उन्होने दर्शन किया ।।५०।। चीन की रेशमी परिधान धारे हुई तथा गहनों से अलंकृत, पसीनों से तर, हाँथ में पूजा पात्र लिये हुई, मन्दिर से उतरती सुन्दरियाँ उन्हें दिखाई पड़ी ।।५१।। एक ही वाग्विलास, पादनिक्षेप तथा स्वर से देवी की स्तुति गीत गा रही उन्हें देखकर राम के मन में यह भ्रान्ति पैदा हुई कि यह सभी अलग-अलग अनेक हैं अथवा अभिन्न-एक ।।५२।। दुबली-पतली कृशकाया, पुष्पवदना, सुषमायुक्त, लतिकासदृश सारी सखियों को देखकर सहर्ष कुमार (कुमारो की चाह रखने वाले) राम ने सोचा कि ये सारी की सारी चलती फिरती लतायें हैं क्या ? ।।५३।।

ततः स काञ्चित् सरसीरुहाननां मृणालतन्वीं मृदुशैवलाम्बराम्
झषेक्षणामालिलताभिरावृतां ददर्श कन्यां सरसीमिवैकाम् ।५४।

निरुद्धमद्यावधि हंसहृत्तदा तदीयमैच्छत् प्रतियातुमेनाम्
अशक्तमेवाऽभवदत्र किन्तु तन्निबद्धमाराद्दृढशीलपिञ्जरे ।५५।

ततो हृदाऽसौ हृदयस्य रामः समीह्यमानां शशिशुभ्रवक्त्राम्
अवेक्ष्य तस्यां कलहंसगत्यां व्यापारयामास विलोचनानि ।५६।

अयुक्त एष व्यवहार एवं स्विद्यत्कपोलो मनसा विचिन्तयन्
अधिक्षणं नम्रमुखो यदाऽभूत् धरात्मजादृष्टिपथं तदा गतः ।५७।

द्वाभ्यामदृष्टस्य मनोभवस्य वशंगतौ द्वावपि राजपुत्रौ
सापाङ्गमन्योन्यमवेक्षमाणौ पदं न्यधातां च विरोधिदिक्षु ।५८।

तस्मिन्क्षणे वीक्ष्य च राघवीयं सीतागतं हार्दमकृत्रिमं तत्
वृक्षालताः स्नेहरसानुविद्धाः शृंगारचेष्टाकुलिता बभूवुः ।५९।

इसके बाद राम ने किसी एक सरसी सी कन्या को देखा, जो कमलमुखी (कमल समान कमलरूपी मुख वाली) मृणालतन्वी (मृणाल के समान तन्वी-मृणालरूपी तन्वी), कोमल सेवार जैसी वस्त्र धारे (कोमल सेवार वस्त्रवती), मीननयना (मीनरुप नेत्र वाली), सखीलताओं से घिरी थी ।।५४।। आज तक निरुद्ध उन राम का हंसहृदय उस (सरसी) में जाना चाह रहा था, किन्तु शीघ्र ही वह कठोर शील रूपी पिंजरे में बंध गया और जाने में असमर्थ हो गया ।।५५।। इसके बाद (सभी के, हृदय के राम हृदय से चाही जा रही, चन्द्रसदृश शुभ्रमुखी उस कन्या को देखकर, उस मृदुहंसगामिनी पर अपनी दृष्टि फेंकी ।।५६।। (कुलवती कन्या को देखने का) यह ऐसा व्यापार ठीक नहीं है, रोमाञ्चित पसीनेयुक्त)कपोल हो रहे यूं सोचते हुए जिस क्षण उन्होने अपनी आँखे नीचे झुकाई (नम्रमुख हुए) तभी धरणिसुता (सीता-नम्रमुख को धरा सुता दिखनी ही चाहिए) की दृष्टिपथ में आ गये (सीता ने देखा) ।।५७।। दोनों ही राजकुमार (राजकुमार राम और राजकुमारी सीता) अदृष्ट काम के वशवर्ती हो गये, एक दूसरे को तिरछे देखते हुए उन्होंने अपनी आँखे विपरीत दिशाओं में लगा दीं ।।५८।। उस समय सीतागत राम के स्वाभाविक हार्दिकभाव (प्रेम) को देखकर स्नेह रससिक्त सारे वृक्ष-लता समूह शृंगार चेष्टाओ से संकुलित हो गये ।५९।

स्नेहस्वरूपां गजवक्त्रमातरं शिवप्रियां लोकहितेऽनुरक्ताम्
सलक्ष्मणस्तां प्रणमन्स रामः पिप्राय कैः स्वं झषनेत्रसद्म ।६०।
'मह्यं पतिं देहि ममानुरूपं पत्नीं मदीयां कुरु मेऽनुकूलाम्'
इतिद्वयोः प्रार्थनयोः स पूत्यर्याश्वासयन्तीमिव मूर्तिमैक्षत ।६१
सीतेक्षणानन्तरमागतेषु स्वान्तःस्थभावेषु विभिन्नधर्मिषु
दोलायमानः शुशुभे स रामस्तरंस्तरङ्गेष्विव राजहंसः ।६२।
अगाधगाम्भीर्यवशप्रशान्तोच्छलन्मनोभावतरङ्गराशिः
गतोर्णवीयामुपपूर्णिमं दशां सीतामुखं चन्द्रमिवाभिपश्यन् ।६३।
अयं पुरारातिधनुर्विखण्डको भवेद् भविष्ये किमिदं विचारयन्
कामं स रुद्रप्रतिकारबुद्धेरङ्गानि रामस्य विवेश कामः ।६४।
कन्दर्पमित्राभ्यनुरागरञ्जितस्वभावपुष्पाणि किरन्मुखक्षितौ
सीतानुरागाद् धृतहृत् हारतसः शेफालिकावृक्षइवाभिदृष्टः ।६५

जगत् के कल्याण में लगी हुई - अनुरक्त शिवप्रिया, गजानन की माता स्नेहस्वरूपा माता पार्वती को लक्ष्मण समेत प्रणाम करते हुए राम ने आनन्द से अपने मीन नेत्र भवन को भर लिया ॥६०॥ 'मुझे मेरे अनुरूप पति प्रदान करो' 'मेरे अनुरूप मुझे पत्नी प्रदान करो' इस प्रकार माता-राम दोनों की प्रार्थनाओं का आश्वासन देती हुई सी गिरिजा मूर्ति को राम ने देखा ॥६१॥ सीता दर्शन के बाद आये हुए हृदय के विभिन्न धर्मी भावों में दोलायमान राम ऐसे शोभित हुए जैसे तरंगों में तैर रहा राजहंस ॥६२॥ अगाध गांभीर्य से प्रशान्त भी उच्छलित हो रहे मनोभावरूपी तरङ्गों वाले राम, सीतामुख रुपी चन्द्रमा को देखते हुए, पूनम के समुद्र की दशा को प्राप्त हो गए ॥६३॥ आगे चलकर यह राम शिवधनुष का भञ्जक होगा, मानो यह विचार करते हुए, रुद्र के प्रति बदला लेने के भाव से काम ने राम के अङ्गों में प्रवेश किया ॥६४॥ काममित्र (श्रृंङ्गार-प्रेम-बसन्त) के राग में रंगे हुए स्वाभाविक फूलों (प्रसन्नता) को (सीता के) मुखरुपी धरापटल पर बिखेरते हुए हृतचित्त राम सीतानुराग के कारण हरे-शेफालिका वृक्ष जैसे देखे गये ॥६५॥

अवश्यलभ्येषु भवेद्धि वस्तुषु प्रशंसितेष्वार्यमनःप्रवृत्तिः
एवं विचारैरनुरागबद्धः रामः प्रगेपुष्करवद् विरेजे ।६६।
अवेक्ष्य सीतामुखचन्द्रविम्बं रामस्य सन्मानसचन्द्रकान्तः
धर्मात्प्रकृत्याः किमभिद्रुतोऽसौ विभर्त्ययं स्वेदपृषन्ति यस्मात् ६७
निगूहमानोऽभिनवां समागतां मनःस्थितिं यज्ञविधिं दिदृक्षुः
अन्येद्युराज्ञामधिगम्य रामो गुरोः समं तेन चचाल सानुजः ६८
महाविशाले पटवासमण्डपे राजन्यवीरैरभिनन्दितं धनुः
निरीक्ष्य रामो मनसा ननाम स्वयम्प्रभुं शङ्करमात्मनिष्ठम् ६९
प्राप्यास्ति सीता धनुरस्ति खण्ड्यं भावद्वयेनेति विराजमानम्
श्रद्धात्मविश्वासयुतं स्वशिष्यं द्रष्टा भविष्यस्य ददर्श कौशिकः७०
वीरप्रसूनावचयैकधुर्यः सितासिते द्वे कुसुमे विधृत्य
स कौशिकः पूजयितुं जयश्रियं नमन् शिवं स्वासनमध्युवास ७१

उत्तम लोगों की मनः प्रवृत्ति अवश्य प्राप्य, सुन्दर वस्तुओं में ही होती है, ऐसे विचारों से अनुराग (प्रेम रक्तिमा) बद्ध राम प्रात कालीन कमल के समान सुशोभित हुए ।।६६।। राम के शरीर पर पसीने की बूँदें निकल आयीं, लगता था मानो सीतामुखचन्द्रबिम्ब को देखकर उनके सुन्दर चित्तचन्द्रकान्त (चन्द्रवत् कान्त-चन्द्रकान्त मणि) सहज धर्म से बहने लगा हो (चन्द्र को देखकर चन्द्रकान्त मणि से रस चूने लगता है ।।६७।। आयी हुई इस नई मनःस्थिति को छिपाते हुए धनुर्यज्ञ क्रिया को देखने की इच्छा से दूसरे दिन गुरु की आज्ञा प्राप्तकर सानुज राम गुरू के साथ चल पड़े ।।६८।। बहुत बड़े सुन्दर विचित्र वस्त्र मण्डप (वितान तले बने मण्डप) में क्षत्रिय वीरों से अभिनन्दित शिवधनु को देख कर राम ने आत्मनिष्ठ, स्वयंप्रभु शिव को मन ही मन प्रणाम किया ६९।। सीता प्राप्त होगी, धनुष खण्डनीय है (तोडूंगा इन दो भावो से विराजमान, श्रद्धा और विश्वासयुक्त अपने शिष्य राम को भविष्यद्रष्टा विश्वामित्र ने देखा ।।७०।। वीरपुष्पों के चयन में अप्रितम धुरीण उन कौशिक मुनि ने (राम लक्ष्मण रूपी) दो, नील-शुभ्र फूलों को लेकर, मानो विजय श्री की पूजा के लिए, अपना आसन ग्रहण किया ।।७१।।

'अधिज्यमेतद् गिरिशस्य चापं करोति यः प्राप्स्यति मैथिलीं सः
राजन्यवीरान्समुपस्थितानसौ प्रचोदयामास विदेहवाणी ।७२।
परं दिगन्तात्समुपागतानां सीताभिलाषव्रतदीक्षितानाम्
प्रकम्पनानामिव जित्वराणां धनुर्गिरीशस्य गिरिर्बभूव ।७३।
वीरत्वकाष्ठामभिवीक्ष्य मैथिलो निःसारयामास वचस्त्विषान्वितम्
अवाप्य तद्धन्त परं बभूवुर्नम्राणि राज्ञां कुमुदाननानि ।७४।
अवेक्ष्य तद्दाशरथिस्तृतीयः सद्यो विसस्मार निजानुयोगम्
चकार तीव्रं प्रतिवादमारात् संस्तौति सूर्यं किमु सूर्यकान्तः ७५
अवाच्यमुक्तं मिथिलाधिपेन श्रोतुं न योग्यं यदुदीरितं तत्
वीरैर्विहीना किमियं वसुन्धरा धराधिपोऽयं प्रलपन्निव स्थितः ७६
किं दुष्करं कर्म चकास्ति भूतले प्रसह्य यन्नाध्यवसायिभिः कृतम्
किं वा विधाता रचयन् स जानकीं पतिं न पूर्वं जनयाञ्चकार७७

'इस शिव धनुष को जो चढ़ा देगा वहीं सीता को प्राप्त करेगा' इस प्रकार की जनक की प्रतिज्ञा को उन्होंने उपस्थित राजाओं को सुनाया ।.७ ।। किन्तु दिशाओं से आये, विजयी तथा सीता प्राप्ति की अभिलाषाव्रत में दीक्षित, (वायु की तरह) काँपते हुए से राजाओं के लिए वह शिव धनुष पहाड़ बन गया ।।७३।। वीरता की सीमा कसौटी धनुष) को देखकर विदेहराज जनक ने तीक्ष्ण बातें कही, उसको सुनकर राजाओं के कुमुदमुख अत्यन्त झुक गये ।।७४।। उसे देखकर तीसरे दशरथ नन्दन लक्ष्मण ने शीघ्र ही अपना कर्तव्य भुला दिया (कि मुझे छोटे होने के कारण बोलना नहीं चाहिए और तुरन्त ही जनक का तीव्र प्रतिवाद किया। सूर्यकान्त (सूर्यवत् कान्त सूर्य से भी अधिक तेजस्वी सूर्यकान्त मणि-सूर्यवंशी) सूर्य को सहन कर सकता है क्या ? ।।७५।। मिथिला नरेश ने जो अनुचित बात कही वह सुनने योग्य नही है, यह धरती क्या वीरों से शून्य है, यह राजा इस प्रकार का प्रलाप सा कर रहा है ।।७६।। ऐसा कौन सा दुष्कर कार्य है, इस धरती पर जिसे उद्योगशालियों ने बलपूर्वक न किया हो ? अथवा जानकी की रचना करते हुए उन विधाता ने क्या उनका पति पहले से बनाया ही नहीं ।।७७।।

व्यर्था मयागूर्विहिता विवाहे जल्पन्निदं खिन्न इवावनीपतिः
जानाति वीरानखिलान् किमेषोऽथवा समस्तान्निजवद् वितर्कते ७८
गुरोरनुज्ञाप्रतिपालनोत्सुकस्तूष्णीं स्थितः संसदि यावदत्र
भ्राता ममाऽयं रघुवंशमूर्द्धा न कोऽपि शक्तः प्रतिवक्तुमेवम् ७९
भ्रातुर्वशंयातमिदं शरीरं किमप्यशक्यं सुकरं विधातुम्
समुद्यतं चेन्मिथिलाधिपोक्तिर्विचारकोटौ न विपश्चितां क्वचित् ८०
दुःखान्धकारं मिथिलानृपस्थं स्वगीर्मयूखैः शकलानि कुर्वन्
रामानुजः संसदि यावदास्ते तावद्गुरुः राममिहादिदेश ।८१।
उत्तिष्ठ वत्स त्वमिहस्वकर्मणा तदेव कुर्याः सफलं त्रयं स्यात्
धनुर्विखण्ड्येत नृपोऽस्तु नीरुक् लभेत सीताऽपि निजानुकूल्यम् ८२
प्रणम्य पादौ स्वगुरोरनन्तरं स्वभ्रातरं स्नेहमयं विलोक्य
कदा गतः क्वाऽस्पृशदत्र चापं तिरोदधन्नेष धनुर्व्यखण्डयत् ।८३।

विवाह के विषय में मैंने व्यर्थ ही प्रतिज्ञा की इस प्रकार खिन्न से प्रजल्पना करते हुए यह राजा जनक क्या सभी वीरों को जानते हैं ? अथवा सभी को अपने समान ही मानते हैं ? ॥७८॥ गुरू की आज्ञा के परिपालन को उत्सुक, रघुवंश शिरोमणि मेरे बड़े भाई राम जब इस सभा में चुप बैठे हैं तो कोई भी ऐसी बात कहने में समर्थ नहीं है ।७९। अपने बड़े भाई राम का वशंगत यह शरीर किसी भी अशक्य को सुकर बनाने के लिए यदि तत्पर है तो फिर मिथिला नरेश का कथन कहीं भी विद्वानों की विचारसरणि में नहीं आता (सर्वथा अविचारणीय है) ॥८०॥ मिथिला नरेश में विद्यमान दुःखरूपी अन्धकार को, सभा में रामानुज लक्ष्मण अपनी वाग्रश्मियों से खण्डित करही रहे थे कि गुरु विश्वामित्र ने राम को आदेश दिया ॥८१॥ हे वत्स, उठो, अपने कार्य से तुम यहाँ वही करो जिससे ये तीनों सफल हो जाँय धनुष टूट जाय, राजा स्वस्थ हो और सीता अपने अनुकूल पति प्राप्त करें ॥८२॥ इसके बाद अपने गुरु (विश्वामित्र) के पैरों को प्रणाम कर अपने छोटे भाई लखन को स्नेहपूर्वक देखकर राम कब गये, कब धनुष छुआ और कब धनुष तोड़ा इसे किसी ने देखा ही नहीं (तिरोहित ही रहा) ॥८३॥

स्त्रीभिर्मुदा राजगणैश्च लज्जया स्नेहेन वृद्धैर्युवभिः सुसख्यतः
साश्चर्यमेषो गुरुभिः समन्तात् ससाधु शब्दैरमरैर्निरीक्षितः ८४
उपास्तुवन् वन्दिजनास्तदानीं वाद्यान्यनेकानि सुमङ्गलानि
न केवलं सद्मनि मैथिलीपितुः पथि व्यजृम्भन्त दिवौकसामपि८५
शोकान्धकारे विगतेऽपि राज्ञो न यावदभ्येति प्रहर्षभानुः
तावत्समाच्छादयदत्र किञ्चित् सपर्शवंथाभ्रं मिथिलान्तरिक्षम् ८६
कालाभ्रमेतत् किमु कम्पनोऽयं जनैः स यावन्निपुणं निरीक्षितः
ज्ञातोऽभवत्तत्र कुठारहस्तो मनोजवोऽयं ननु जामदग्न्यः ।८७।
निपातयन्वाक्करकाममङ्गलां सञ्चालयन्दीप्तकुठारशम्पाम्
निघ्नन्द्विजो मोदकृषिं नृपस्याऽसौ वज्रनिर्घोषमुदाजहार ।८८।
हं हो दुरात्मान इहागताः किं गुरोर्मदीयस्य धनुर्विखण्डितुम्
अपास्तलज्जा नितरां विगर्हिता यूयं समस्ताः श्रुतिधर्मनाशकाः८९

उस समय वह स्त्रियों द्वारा प्रेमसे राजाओं द्वारा लज्जा से, वृद्धोंद्वारा स्नेह से युवाओं द्वारा सन्मित्रभाव से, गुरुओं द्वारा साश्चर्य तथा देवों द्वारा ससाधुवाद पूर्वक देखे गये ।।८४।। बन्दिजनों ने स्तुति की, जनक के भवन में ही नहीं, देवो की राह स्वर्ग में भी अनेक सुमंङ्गल बाजे बजने लगे ।।८५।। राजा के शोकान्धकार समाप्त हो जाने पर भी जब तक आनन्दसूर्य आया नहीं कि तबतक मिथिला-अन्तरिक्ष को परशुरामरूपी अपूर्व मेघ ने घेर लिया ।।८६।। यह प्रलयकालीन मेघ है अथवा पवन ? जब तक लोगों ने ठीक से देखा तो ज्ञात हुआ कि मनोवेगशाली, कुठार पाणि यह जमदग्निपुत्र परशुराम हैं ।८७। अशुभ वाणी रूपी करका (बनौली-ओला) बरसाते हुए, चमकते कुठाररूपी बिजली को चमकाते हुए राजाजनक की आनन्दमयी कृषि को नष्ट करते हुए वह बज्रनिर्घोष वाणी बोले । ८८। अरे दुष्टों, तुम सब यहाँ मेरे गुरू की धनुष को तोड़ने क्यों आये हो (धनुष तोड़ने आये हो क्या ?), निर्लज्ज, विनिन्दित तुम सभी श्रुति धर्म के नाशक हो ८९।

यः पार्वतीशो गरलाभिपायी संसारकल्याणकृदेकदेवः
शिवस्य तस्यैव धनुर्विखण्डितुं यूयं समस्ता मम बध्यभूताः ६०
नोचातिनोचाः कुटिलाः सकल्मषाः पृच्छाम्यहं वो वदताऽस्य नाम
विखण्डितं येन धनुः पिनाकं नो चेत्समस्तानिह नाशयामि ६१
श्रुत्वा तदीयं कटुभाषितं मुहुश्चिराय चाभ्यस्तमिव प्रलापम्
रोद्धुं रुज सङ्गिजनाभिदूषिकां रामानुजो वैद्य इव प्रवृत्तः ६२
विषौषधं क्ष्वेडमितीव मत्वा कटूक्तिशान्तिं कटुभाषितेन
वाञ्छन्नसौ द्विर्गुणितेन रंहसा प्रचक्रमे सान्त्वयितुं प्रलापिनम् ६३
प्रदर्शयन् स्वं स्वधितिं सदेवं विकत्थसे त्वं किमनल्पजल्पिन्
गतायुषोऽन्तं समये करोति स्वयं कृतान्तोऽपि निजानुयोगतः ६४
किं नाशयामीति च बध्यभूता द्वावेव शब्दौ नितरामधीतौ
तपोधनो वेत्ति तपः सुमङ्गलं नूनं जटाभिस्त्वमिहासि तापसः ६५

जो पार्वती पति, विषपायी, संसार का कल्याणकारी, एक मात्र देव हैं उन्हीं शिव की धनुष तोड़ने के लिए आये तुम सभी मेरे वध्यभूत हो ।६०। अधमों से भी अधम, कुटिल, पापियों मै पूछता हूँ तुम सबसे उसका नाम बताओ जिसने धनुष तोड़ी, अन्यथा यहीं सभी को नष्ट कर दूँगा ।।६१।। उनकी कटूक्तियों को बार-बार सुनकर और बहुत दिनों से अभ्यस्त से प्रलाप को (सुनकर), संसर्गप्राप्त व्यक्ति को दूषित करने वाले रोग को वैद्य के समान रोकने के लिए राम के अनुज लक्ष्मण प्रवृत्त हो गये ।।६२।। विषौषध विष हैं मानो यह मानकर कटुभाषण की शान्ति कटुभाषण से ही चाहते हुए प्रलापी परशुराम को शान्त करने के लिए दुगुने वेग से बोलना प्रारम्भ किया ।६३।। हे बहुभाषी तुम सदा ही इसी प्रकार अपना कुठार दिखाते हुए व्यर्थ प्रलाप करते रहते हो, क्षीणायुव्यक्तिका समय पर स्वयं कृतान्तभी अपने अनुयोगवश, विनाश कर देता है ।।६४।। मार डालता हूँ और बध्यभूत है सभी' क्या इन्हीं दो शब्दों को खूब पढ़ा है आपने ? तपस्वी तो सुमङ्गलकारी तपस्या ही जानता है, तुम तो मात्र जटाओं से ही तपस्वी हो (वास्तव में नहीं) ।।६५।।

न यस्य पार्श्वे समुदेति शान्तिः किं वा न योऽस्ति प्रियदर्शनोऽपि
स चर्मनद्धः पटहोऽस्ति केवलं शून्याऽन्तरित्थं प्रकरोति शब्दम् ६६
वपुर्घटः शान्तिजलेन यस्य प्रपूरितः सोऽभ्युदयाय वर्तते
शक्त्या विहीनो मनुजो विकत्थते रिक्तो घटो घोषमुपैति नूनम् ६७
गुरोर्मदीयस्य धनुर्विखण्डितं कण्ठीकृतं वाक्यमदो ब्रवीषि
व्यापारितोऽस्मिन्नपि तुच्छरक्षणे प्रादर्शयस्त्वं निजयोग्यतां गुरुम् ६८
सौमित्रिणोक्तं वचनं निशम्य स्नेहाभिषिक्तोऽग्निरिवोग्रमूर्तिः
स रैणुकेयः प्रतिवादकारिणं शिशुं तितृक्षन्निव तं बभाषे ।६६।
रे दुष्ट वाचाल कृतापराध त्वां घातये पश्यत रे जनौघाः
मा वारयध्वं हननोद्यतं मां यमस्य तुष्टयं बलिमर्पयामि १००
पितुः प्रासादाय शिरो जनन्याश्छेत्ता समाराधितवामदेवः
सहस्रबाहोरपि योऽस्ति हन्ता तं जामदग्न्यं शिशुरेष भाषते १०१

जिसके पास शान्ति नहीं पैदा होती है अथवा जो प्रियदर्शन नहीं है, वह चमड़े से मढ़ा गया नगाड़ा मात्र है जो अन्दर से खाली और बाहर से इस प्रकार शब्द करता है ।।६६।। जिसका शरीर रूपी घड़ा शान्ति-रूपी जलसे भरा हुआ है वही अभ्युदय के लिए होता है किन्तु शक्तिहीन पुरुष मात्र आत्मश्लाघा करता है, खाली घड़ा निश्चयही अधिक बजता है ।६७।। मेरे गुरु को धनुष (किसने तोड़ी है? यही रटी हुई बात (बार-बार) कह रहे हो इस तुच्छरक्षामें लगे हुए तुमने गुरुके प्रति अपनी भक्ति तो दिखा दी ।।६८।। सुमित्रानन्दन से कहे गये वचनों को सुनकर स्नेह (घृत) आहुति प्राप्त और प्रचण्ड अग्नि के समान उग्ररूप वह रेणुका पुत्र परशुराम प्रतिवादकारी उस बालक लक्ष्मण को काटते हुए से उनसे बोले ।।६६।। अरे दुष्ट, वाचाल, अपराधी, तुम्हे मारता हूँ । अरे लोगों, इसे मारने के लिए उद्यत मुझे नहीं रोकें, यमराज की तुष्टि के लिए मैं यह बलि अर्पित करता हूँ ।।१००।। महादेव को प्रसन्न करने वाले, पिता की प्रसन्नता के लिए माता के भी शिर को काटने काटने वाले, तथा वह जो सहस्रबाहु को भी मारने वाला है उस जमदग्नि पुत्र परशुराम से यह बालक प्रविवाद करता है ।।१०१।।

रुद्रो लघुर्वा लघु चापमस्य प्रकृष्टकालाग्निरहं लघुर्वा
कृतोऽपराधो लघुरस्य किं वा यदेष बालोऽस्ति वदन्कटूक्तिम् १०२
मत्वा शिशुं त्वां नहि हन्मि साम्प्रतं त्वमेव भेत्ता धनुषो न जाने
असंशये वस्तुनि मे प्रवृत्तिर्बालापराधिन् न विलज्जसे त्वम् १०३
कस्त्वं वदत्वं कुत आगतोऽसि प्रखण्डितं केन धनुर्वदस्वयम्
अपीह वाञ्छस्यगतायुषं स्वं विनिर्दिश स्वाङ्गुलितोऽपराधिनम् १०४
मुने समाश्रित्य दयां शिशौ त्वं न हन्सि मामेष गुणोऽस्ति किं त्वयि
अज्ञासिषं पूर्वमहं कदाचित् त्वं सर्वथाऽऽस्से मुनिवृत्तिशून्यः १०५
तस्मादवज्ञाय तवापि वेशं कृतो मयाऽत्र प्रतिवाद एव
नो चेत्तवेमं परशुं विचूर्णयन् समूलघातं विनिहन्मि तेऽस्तिताम् १०६
परिस्थितिं तां विषमां समीक्ष्य प्रियानुजं चेङ्गिततो निरुध्य
दावाग्निशान्त्यै घनवत् स रामो गुरोर्निदेशान्मुनिमाबभाषे १०७

इसके लिए शिव लघु हैं अथवा धनु तुच्छ, है और तो और प्रचण्ड-कालाग्नि रूप मैं भी तुच्छ हैं, कटुभाषण करता हुआ यह बालक जो अपराध किया, क्या वह भी तुच्छ हूँ ? ॥१०२॥ तुम्हें बालक जानकर इस समय नहीं मारता, तुम्हीं धनुष तोड़ने वाले हो यह मै नहीं जानता असंदिग्ध वस्तु में ही मेरी प्रवृत्ति होती है, हे अपराधी बालक, (मुझसे बात करते) तुम लज्जित नहीं होते ॥१०३॥ तुम कौन हो ? कहाँ से आये हो ? धनुष किसने तोड़ी है ? तुम स्वयं बताओ ? यदि तुम अपने को गतायु नहीं मानते तो उस अपराधी को अपनी अंगुली से इङ्गित कर दो ॥१०४॥ लखन बोले हे मुनि बालक पर दया करके तुम मुझे नहीं मारते, किन्तु तुममें यह गुण है क्या ? मैने तो पहले जाना था कि तुम कदाचित् सर्वथा मुनिवृत्ति रहित हो ॥१०५॥ इसीलिए तुम्हारे वेश को न जानकर ही मैने प्रतिवाद किया अन्यथा तुम्हारे इस फरसे को चूर चूर करते हुये तुम्हारे अस्तित्व को ही समूल प्रहार कर समाप्त कर देता ॥१०६॥ उस विषम परिस्थिति को देखकर, संङ्केत से छोटे भाई को रोककर गुरु की आज्ञा से परशुराम दावाग्नि की शान्ति के लिए घन सदृश (मेघतुल्य) राम बोले ॥१०७॥

अयोध्यको दाशरथिस्तवाग्रे सप्रश्रयं त्वां प्रणमन्स्थितोऽस्ति
अवेहि मामत्र निमित्तमात्रं रामं मुने रौद्रधनुर्विखण्डने ।१०८।
पुरः स्थितस्यास्य गुरोः प्रसादान्महर्षिमुख्यस्य च कौशिकस्य
ब्रह्मद्विषोऽसून् विनिहत्य सङ्गरे समागतोऽहं मिथिलां दिदृक्षुः १०९
उत्थापने केवलमेव वृत्तः स्रस्तेषु राजन्यकदम्बकेषु
समाप्तकालं स्वयमेव चापं विखण्डितं नात्र ममापराधः ११०
अत्रापि दोषो यदि ते स्वतर्के स्थितोऽस्मि दण्डप्रतिपालनाय
क्षमस्व चागांसि शिवाभिसेविन् कृतानि बालेन ममानुजेन १११
भो राम यावानसि मन्मथस्त्वं तावाननन्तोऽस्ति शठोनुजस्ते
विखण्डितं रौद्रमदो धनुः स्वयं परीक्षितुं त्वामपरं ददामि ११२
गृहाण मे चापमदोऽधुना त्वं तथा समक्षं कुरुतादधिज्यम्
मन्ये तदा त्वां वृजिनेन हीनं नो चेदुभौ स्तो मम दण्डपात्रे ११३

अयोध्या निवासी, दशरथपुत्र राम सविनय प्रणाम करता हुआ आपके सामने है। हे मुनि, इस शिवधनुष के तोड़ने में मुझ राम को आप निमित्त मात्र समझें ॥१०८॥ सामने विराजमान, महर्षि प्रधान इन गुरु विश्वामित्र की कृपा से ब्रह्मद्वेषी राक्षसों को युद्ध में मारकर देखने की इच्छा से मिथिला में आया हूँ ॥१०९॥ सारे राजाओं के थँक (हार) जाने पर मैं मात्र उठा ही रहा था कि समाप्तकाल (जीर्ण) धनुष अपने आप टूट गया, इसमें मेरा कोई अपराध नहीं है ॥११०॥ आपके विचार में यदि इसमें भी मेरा दोष है तो मैं दण्ड स्वीकार करने को खड़ा हूँ। हे शिवोपासक मेरे छोटे भाई बालक ने जो अपराध किया है, उसे क्षमा करें ॥१११॥ हे राम, तुम जितने ही मन्मथ (काम-मनोहारी) हो तुम्हारा छोटा भाई उतना ही (अनन्त-शेष अतिशठ है। तुमने स्वयं इस धनुष को तोड़ा है (वास्तव में तुम राम आ गये हो) परीक्षा के लिए तुम्हें दूसरी धनुष देता हूँ ॥११२॥ अब तुम मेरी इस धनुष को ग्रहण करो और मेरे समक्ष इसे चढ़ाओ तो मैं तुम्हें अपराध मुक्त मानूँगा, अन्यथा तुम दोनों ही मेरे दण्ड के भागी बनोगे ॥११३॥

तदोमिति व्याहरते निजं धनू रामाय दत्वा स च जामदग्न्यः
पश्यन्स्थितोऽपश्यदसौ तदानीं जातं स्वयं चापमधिज्यमेतत् ११४
अपास्तमन्युर्मुनिरात्मदर्शी रामं हृदाश्लिष्य यियासुरासीत्
मत्वा परं लोकविरोधि नूनं जहार रामोऽस्य मनोजवत्वम् ११५
अकाल आयातमनभ्रियोपलं निरस्य जाते मिथिलाम्बरे शुभे
श्रीरामचन्द्रं सह चन्द्रकान्त्या श्रीसीतया योक्तुमियेष मैथिलः ११६
तातज्ञां प्राप्य सीता सदसि निजसखीदत्तहस्तावलम्बा
सद्भावाऽऽगत्य मुग्धा कृतरतिविजया पर्वशुभ्रांशुबिम्बा ।
अक्रीणाद् भर्तृचित्तं विकसितवपुषो रामचन्द्रस्य कण्ठे
मुक्त्वा भद्रां स्रजं सा युवतिजनसुलभया व्रीडया स्रग्धराऽस्य ११७
श्रीश्यामान्वितसुन्दरोऽस्ति जनको माता च यस्याम्बिका
यःश्री राजशिोर आप्त चरितः शाण्डिल्य वंशोद्भवः
कर्तुस्तस्य च कारक प्रकरणे नूत्नाध्वनोऽस्मिन् महा—
काव्ये चारुणि राघवेन्द्रचरिते षष्ठश्च सर्गो गतः ।।११८।।

तब स्वीकार है ऐसा कहते हुए राम को अपनी धनुष देकर परशुराम देखते खड़े रहे और तब देखा कि यह धनुष तो अपने आप ज्यारुढ़ हो (चढ़) गयी ।।११४।। क्रोधशून्य, आत्मदर्शी मुनि परशुराम राम को छाती से लगाकर जाना चाह रहे थे किन्तु उन्हें लोक विरोधी सा मानकर राम ने उनका मनोवेगत्व हरण कर लिया ।।११५।। असमय और अनभ्र (बिन बादल) आये पत्थर (ओले) को हटाकर मिथिलाकाश के पुनः स्वच्छ हो जाने राजा जनकने चन्द्रकान्ति सीता को श्रीरामचन्द्र से जोड़ने (विवाह बन्धन में बाँधने) की इच्छा की ।।११६।। फिर सभा में पिता की आज्ञा प्राप्तकर अपनी सखी (सखियों) के हाथों का सहारा लेकर पूर्णचन्द्रमुखी, रतिबिजयिनी, हाथ में माला (वरमाला) थामे मुग्धा (भोली भाली सुकुमारी) सीता सद्भावपूर्वक आकर प्रसन्न मुख (शरीर) रामचन्द्र के गले में सुन्दर वरमाला को डालकर, युवति जन सुलभ लज्जा से पति के हृदय को खरीद लिया ।।११७।। जिनके पिता श्री श्यामसुन्दर और माता अम्बिका हैं, शाण्डिल्य गोत्रोत्पन्न आप्तचरित जो श्रीराजकिशोर मणि हैं, कारक प्रकरण पर(हिन्दी भाष्य)लिखने नवीन मार्ग बनाने वाले उनके सुन्दर राघवेन्द्र चरित महाकाव्य में छठा सर्ग पूर्ण हुआ ।।११८।।

सप्तमः सर्गः

ततो विदेहः कृतमन्त्रणः सः श्रीकौशिकेन स्वपुरोधसा च
पुरीमयोध्यां विससर्ज दूतान् श्रीरामतातस्य निमन्त्रणाय ।१।
निमन्त्रणं प्राप्य भृशं प्रसन्नो ज्ञात्वेतिवृत्तं मिथिलागतश्च
गुरोर्वशिष्ठस्य पुनर्निदेशाद् भूपः स गन्तुं मिथिलामियेष ।२।
सम्मन्त्र्य मुख्यान्सचिवान्ततो नृपो यात्राव्यवस्थाप्रतिसारिताज्ञः
ज्ञातुं कुलाचारविधिं समन्तादन्तःपुरातिथ्यमसावगृह्णात् ।३।
ततः समासां महिषीजनानां मोदाय वृत्तं मिथिलापुरीयम्
विज्ञाप्य भूभृत्स्वकुलानुसारं संतोषयामास कुलाधिदेवताः ।४।
सम्प्राप्य सम्वादमिमं नितान्तमानन्ददं प्रीतिकरं शुभात्मकम्
जना अयोध्यापुरवासिनस्तदा प्रकल्पयामासुरलं गृहाणि ।५।

इसके बाद उन राजा विदेह ने पुरोहित शतानन्द तथा श्री विश्वामित्र से विचार कर श्रीरामचन्द्र के पिता राजा दशरथ को निमन्त्रित करने के लिए दूतों को अयोध्या भेजा ॥१॥ निमन्त्रण को प्राप्तकर, मिथिला-गत राम के समाचार को जानकर, वशिष्ठमुनि की आज्ञा से वह राजा मिथिला जाने की तैयारी करने लगे ॥२॥ इसके बाद सचिवों से विचार कर, यात्रा की व्यवस्था का आदेश कर कुलाचार पद्धति जानने के लिए वह रनिवास में गये ॥३॥ तदनन्तर समस्त प्रधान देवियों को आनन्द-दायी मिथिलानगरी का समाचार सुनाकर राजाने अपने कुल की परम्परा के अनुसार देवों की पूजा की ॥४॥ अतिशय प्रीतिकर, आनन्दप्रद तथा मङ्गलमय इस समाचार को प्राप्तकर उस समय अयोध्यापुर वासियों ने अपने घरों को खूब सजाया ॥५॥

सतोरणैर्नूतनरागरञ्जितैश्चलत्पताकैः सपयोघटैः सा
गृहैरयोध्या नगरी नवोढाभ्रान्तिंनकेषामकरोन्मनःसु ।६।
आनद्धशब्दः परिवादिनीक्वणो घनस्य घोषःसुषिरारवो वा
क्वचिन्निनादः पणवस्य तस्यां पुर्यामबाधं कलितो दिवानिशम्७
श्रोतॄन्समालक्ष्य प्रयुक्तमाराद् व्यक्तं समं वा मधुरं विकृष्टम्
गीतं समन्तात्खलु नादब्रह्मणो मोदस्वरूपं प्रकटीचकार ।८।
त्रितालबद्धा स्वलयानुसारिणो प्रातःप्रयुक्ता मृदु भैरवींश्रुतिः
मनांसि केषामपकृष्य सद्यो निमज्जयामास मुदोऽर्णवे न ।९।
गान्धारहीनश्च निषादहीनः स्वारोहकाले दिवसे प्रयुक्तः
सा रे म पा धा स इतिस्वरूपः केषां न रागो हृदयं जहार १०
आरोहयोगान्ववरोहयोगः सायम्प्रयुक्तस्य मनश्चकर्ष
सा रे प मा पा ध पनो ध सां, सां–निधाप मा पा ध पगामरेसा११

बन्दनवारों से युक्त (सुकण्ठ सुन्दर गले वाली), लहराती पताकाओं से युक्त (लहलहाते सौभाग्य से युक्त) सजल घटों से समन्वित घरोंवाली वह अयोध्या नगरी किनके मन में नवोढा की भ्रान्ति नहीं पैदा कर रही थी ।६। उस अयोध्या में उस समय निर्बाधगति से ढोल की थाप, वीणा-नाद, झाँझ-मंजीरे की झंङ्कार, वंशी की टेर और नगाड़ों की ध्वनि सतत सुनाई पड़ रही थी ।।७।। श्रोताओं को लक्ष्य कर सर्वत्र स्फुट, सम, और मधुर विकृष्ट गीत चल रहा था लगता था मानों शब्द ब्रह्म के आनन्द-रूप में यह सब प्रकट किया जा रहा हो ।।८।। उस समय प्रातःकाल गायी जा रही अपने लय की अनुगामिनी त्रितालबद्ध भैरवीश्रुति किन के मनों को बलात् आकृष्टकर आनन्द समुद्र में नहीं डूबो रही थीं ।।९।। दिन में प्रयुक्त अपने आरोहकाल में गान्धार तथा निषाद रहित-सारे म पा धा स-इस प्रकारका राग किनके मनका हरण नहीं कर रहाथा? १० सायंकाल में प्रयोग किया गया आरोह–अवरोह से युक्त-सा रे प मां पा ध प नी ध सां-पनि धा प मा पा ध प गा म रे सा-ध्वनि किनके चित्त को नहीं आकृष्ट कर लेता था ? ।।११।।

गीतोऽनुसायं स्वरसम्प्रयोगः प्राच्यप्रियस्तुष्टिमदाज्जनेभ्यः
पूर्वं स रे पा म प नी स पश्चात् सां नी ध पा मा पगरे मगारिसा १२
वादिद्वितीयः सह पञ्चमेन संवादिना निद्वयरञ्जितश्च
विवर्ध्य सर्वैः स्ववपुः स्वरैरसौ रागः समेषां निशि हृन्ममन्थ १३
'श्रीराम वीराग्र महानुभाव' इत्थं प्रहृष्टेन सुगायकेन
मात्रासु बद्धो दशसु प्रयुक्तो रागो जनान् रामपरानकार्षीत् १४
धधाधि ताकत् धधिता ककन् गगन् पुनः समे धेति निबद्धमात्रः
रागः प्रयुक्तः कृतिगायकाभ्यां नोल्लासयामास मनांसि केषाम् १५
भावानुसारं वपुषः प्रवृत्तिस्तालैर्लयैः साकमथाङ्गवृत्तिः
जनैरवस्थानुकृतिःकृता चोत्कर्षःसमारव्यत्पुरवासिहर्षजम् १६
वादित्रघोषेण सुमङ्गलानां सनूपुराणाञ्च गतागतेन
अभूदयोध्या खलु रङ्गशाला रात्रिन्दिवं मङ्गलगायनेन ।१७।

प्रतिदिन सायंकाल में गाया जा रहा, पूर्वीजनों का प्रिय स्वर पहले तो-स रे पा म पनीस-और फिर-सां नी ध पा मा पग रे म गा रिसा लोगों को सन्तोष प्रदान कर रहा था ।।१२।। दो नि से रमणीय, संवादी पञ्चम के साथ वादी द्वितीय (स्वर से) युक्त यह (देशी) राग सारे स्वरों से अपने को बढ़ाकर रात्रि में सभी के हृदय को मथित कर दे रहा था ।।१३।। प्रसन्न सुन्दर गायक द्वारा, दशों मात्राओं में निबद्ध 'श्रीराम वीराग्र महानुभाव' इस प्रकार, प्रयुक्त (झप) राग लोगों को रामपरायण कर दे रहा था ।।१४।। रागकर्ता और गायकों द्वारा प्रयुक्त 'धधाधि ताकत् धधिता तकन् गगन्' और धा इस सम में निबद्ध राग किनके मनों को हर्षित नहीं कर रहा था ? ।।१५।। भाव के अनुसार शरीर का सञ्चालन (नृत्य) तथा ताल लय के साथ अङ्गप्रवृत्ति (नृत्त) और लोगों (नटों) द्वारा अवस्था की अनुकृति (नाट्य) की जा रही थी जो पुरवासियों के हर्षजनित उत्कर्षको व्यक्त कर रही थी ।।१६।। सुमङ्गल वादित्र घोष, सनूपुर (रमणियों) के गमनागमन तथा मंगल गायनों से (नृत्य, गीत, वादित्र-सङ्गीतसे) वह अयोध्या रात-दिन मानो रङ्गशाला बन गयी थी ।।१७।।

प्रातः समारभ्य निशान्तकालं यावन्नगर्यां समुपासितः शिवः
शब्दार्थरूपो निखिलान्तरात्मा नृत्तेन नृत्येन च गीतकर्मणा १८
ततः समासादितमङ्गलो नृपो मौहूर्त्तिकादिष्टमुहूर्त्ततल्लजे
गुरुं पुरस्कृत्य पितामहात्मजं सानीकिनोको मिथिलां प्रतस्थे१९
कुम्भस्थलीकर्कशताऽस्मदीया भुशुण्डदण्डस्य विनिर्मितिर्वा
कुम्भोरुशोभां मिथिलास्थयोषितां जेतेति बुद्ध्या करिणो जगर्जुः२०
अनूनवेगाः सवितुर्हयेभ्यो विजित्य वायुं निजवेगदर्पिताः
गन्तव्यभूमिः कियतीयती स्यान्मत्वा प्रकामं तुरगाश्चुकूर्दिरे २१
स्वसीम्नि रुद्धा मिथिलाभियायिनो मुहुर्वदन्तो जहृषुश्च सैनिकाः
कामं न युद्धाय वयं व्रजामः परं व्रजामः प्रमदप्रदोऽयम् ।२२।
एकेन खड्गेन रिपुक्षयेऽपि भटाः कथं बिभ्रत खड्गयुग्मकम्
वामभ्रुवां किं मिथिलास्थितानां भ्रूयुग्मकं ते प्रसमीक्ष्य बिभ्रति २३

प्रातःकाल से प्रारम्भकर रात्रिके अवसान तक निखिलान्तरात्मा, शब्दार्थ रूप भगवान् शिव नृत्त, नृत्य और गीत से उपासित हो रहे थे ॥१८॥ इसके बाद सभी मङ्गल कार्यों को प्राप्तकर (सम्पादित कर), ज्योतिषी द्वारा बताये गये शुभ मुहूर्त में राजा, ब्रह्मपुत्र वशिष्ठ को आगे कर सेनासमेत, मिथिला की ओर प्रस्थान किये ॥१९॥ हमारी गण्डस्थली की कठोरता तथा शुण्डादण्ड की बनावट मिथिला नगरी की रमणियों की स्तन और उरुओं की शोभा को जीत लेगी मानो ऐसा सोचकर हस्तिवृन्द गर्जना करने लगा ॥२०॥ सूर्य के घोड़ों से भी अधिक वेगशाली, वायु को भी जीतने वाले, अपने वेग से दर्पित घोड़े, मानो यह मानकर कि इतनी थोड़ी गन्तव्यभूमि हमारे लिए कितनी (कुछ भी नहीं होगी कूद रहे थे ॥२१॥ अपनी सीमाओं में बँधे हुए, मिथिला जाने वाले सैनिक बार-बार यह कहते हुए प्रसन्न हो रहे थे कि हम तो युद्ध के लिए नहीं जा रहे हैं, फिर भी जा रहें हैं यह गमन परमानन्द दायी (प्रमदा-सीता प्रदायी) है ॥२२॥ एक ही खड्ग से शत्रुनाश हो जाता है फिर ये सैनिक दो-दो खडग क्यों धारण किए हुए हैं ? लगता है कि क्या वे विदेह स्थित स्त्रियों के दो-दो भौंहों को देखकर डर रहे थे ? (दो दो खड्ग धारण कर रहे थे) ॥२३॥

अनेकरागैर्विहिताः पताका दृष्ट्वा विदूरान्नृपसैन्यसंस्थिताः
जना अमन्यन्त ननूत्प्लवन्ते धरोर्ध्वमब्धौ समुपागते झषाः २४
पूर्वं प्रयाणात्प्लुत एष दुन्दुभेर्घोषो दिगन्तान्समुपाद्रवत् किम्
दिगङ्गना बोधयितुं समन्ताद् द्रष्टुं सचक्रं नृवरं प्रयाणे ।२५।
सम्प्रस्थिते पंक्तिरथे तदानीं सृतिङ्गमा अप्यपथैरगच्छन्
यात्रारजोभिर्नितरां विदूषितान्यर्कोऽस्पृशद्दिग्वनितांशुकानि २६
सोमायमानस्तुविभावसुस्तदा चक्राह्वदुःखाय बभूव दिष्टचा
रात्रीयमाणे दिवसे तदानीं नार्यो नृपं सद्वचसाऽभ्यनन्दन् २७
क्वचित्क्षतिर्मा भवतात्प्रजानां हानिर्नभूयाद्वयसां पशूनाम्
विचारयन्तीव वरूथिनी सा शनैः शनैः पूर्वदिशं प्रतस्थे ।२८।
स्वोत्साहपूरप्रणिदारिताध्वश्रमाद्रिशृङ्गो ऽवनिपाल एषः
वृद्धोऽपि गच्छन्स्वजनैरभीक्षितो महासरस्वानिव वर्द्धमानः २९

राजसेना में अवस्थित, अनेक वर्णों की पताकाओं को दूर (समीप) से देख कर लोगों ने यह अनुमान किया कि मानो धरती पर उतर आये समुद्र में मछलियाँ तैर रही हों ।।२४।। प्रयाण से पहले ही भारी दुन्दुभिघोष दिगन्तों में फैल गया मानो उस प्रयाग (विवाहरूप उत्तम यज्ञ) में सचक्र (समण्डल-चक्र समेत) राजा (रामरूप विष्णु) को देखने के लिए दिगङ्गनाओं को बताने के लिए वह दिशाओं में चला गया ।।२५।। राजा दशरथ के उस समय प्रस्थान करने पर परम्परानुयायी भी विपथों से चलने लगे। यात्रा की धूलियों से अत्यन्त दूषित दिगङ्गनाओं के अंशुकों का सूर्य ने भी स्पर्श किया ।।२६।। दैवयोग से उस समय चन्द्रवत् हुआ सूर्य चकवा पक्षी के लिए दुःख का कारण बन गया और दिन के रात्रिवत् हो जाने के कारण उस समय नारियों ने राजा की सदुक्तियों से प्रशंसा की ।।२७।। प्रजाओं की कहीं कोई हानि न हो, अथवा पशु-पक्षियों की भी कोई हानि न हो मानों ऐसा विचारती हुई वह सेना धीरे-धीरे पूर्वदिशा की ओर चल पड़ी २८ वृद्ध भी महासमुद्र जैसा प्रवर्द्धमान यह राजा अपने उत्साह सेना) प्रवाह से रास्ते की थकान को मिटाने वाला पर्वत शिखर सा है ऐसे वह अपने लोगों द्वारा देखे गये ।।२९।।

उत्पाट्य वृक्षानिव किं गजाश्वान् क्षोदैः पदोत्थैर्विदिशोऽभिपूरयन्
प्रकम्पयन् शत्रुगणान्सचक्रः प्रभञ्जनोऽयं किमु पश्चिमीयः ।३०।

अशेषराजन्ययशोजलानि प्रशोषयन् रत्नविभूषिताङ्गः
किं वाडवाग्निर्व्रजति क्षमायामित्थं स लोकैरनुतर्कितो ययौ।३१।

आयात्ययोध्याधिपतिस्तरस्वी निशम्य वृत्तान्तमिमं स्पशेभ्यः
उपस्थितः सीम्नि मुदा विदेहस्तत्सत्कृतावाशु समन्त्रिमुख्यः ।३२।

भाग्यान्ममाऽयं त्रिदशेन्द्रबन्धुः समागतश्चोपपुरं प्रसङ्गात्
सभाजनीयो मिथिलानिवासिभिर्हृदेत्यवोचन्मिथिलानरेन्द्रः ३३

पूर्वोन्मुखः पंक्तिरथस्तदानीं पश्यन्प्रतीचीं जनकोऽपि संस्थितः
भावैस्तरङ्गैः परिपूरितावुभौ नदाविव द्वौ मिलितौ परस्परम्३४

निरामयत्वं परिपृच्छ्य तौ नृपौ जनैस्तु धानीं चलिताववेक्षितौ
सूर्येण साकं मिथिलाम्बरे किं गभस्तिमन्तावपरौ व्रजन्तौ ।३५।

वृक्षों की तरह गज-अश्व समूहों को उखाड़कर (चलाकर) उनके प्रहारों से उत्पन्न धूलियों से विदिशाओं को भरता हुआ, शत्रुओं को कंपाता हुआ मानो यह सचक्र (समण्डल-चक्रावात समेत) पहुंचा हवा है ऐसे वह लोगों द्वारा देखे गये ।३०।। मणियों से अलंकृत शरीर वह समस्त राजाओं की कीर्तिजल को सुखाता हुआ धरती पर वाडवाग्नि चला जा रहा है क्या ? इस प्रकार लोगों से उत्प्रेक्षित वह आगे चले ।।३१।। चरों से यह समचार सुनकर कि अयोध्या नरेश तेजी से चले आ रहे हैं, शीघ्र ही सहर्ष उनके सत्कार में सीमा पर प्रधान मन्त्रियों समेत जनक उपस्थित हो गये ।।३२।। मेरे भाग्य से प्रसंगवश मेरे नगर के समीप देवेन्द्र मित्र दशरथ पधारे हैं (इसलिये वह) मिथिला निवासियों द्वारा पूजनीय हैं (मिथिला निवासी उनकी सेवा करें), मिथिलानरेश ने हृदय से यह बात कही ।।३३।। उस समय पूर्व की ओर मुख किये राजा दशरथ तथा पश्चिम की ओर देखते हुए जनक खड़े थे। भावतरंगों से भरपूर मानो दो महानद आपस में मिल रहे हों ।।३४।। दोनों राजा परस्पर अनामय का कुशल क्षेम पूंछकर राजधानी की ओर चलते हुये लोगों द्वारा ऐसे देखे गये मानों मिथिलाकाश में सूर्य के साथ दो और सूर्य चल रहे हों ।।३५।।

सह प्रसन्नेन च गाधिसूनुना सलक्ष्मणं राममवेक्ष्य भूपतिः
अवाप्तवान् तन्न कदाप्यवाप्तं सुखं तदानीं पुलकाश्रुसंयुतः ।३६।

अनन्तरं वीक्ष्य कृतां व्यवस्थां निवासहेतोर्वरयात्रिणां शुभाम्
जिष्णोः सुहृत्स प्रशशंस सादरं स्नेहं विधिं द्रव्यमथापि पात्रम् ३७

पेयानि चोष्याणि मनोरमाणि लेह्यानि खाद्यानि मृदूनि तावत्
उपस्थितानि प्रसमीक्ष्य वाचं शुभां शशंसुर्वरयात्रिणः समे ।३८।

भोज्यं च पारम्परिकं तदानीमासीदलं यद्यपि तुष्टिकारकम्
तथापि मोदाय बभूव सर्वतो विशेषभोज्यं मिथिला निवासिनाम् ३९

शुभ्रैः शरच्चन्द्रनिभैः सुपिच्छिलैर्घनैर्घृताढ्यैर्दधिभिः समन्तात्
पूर्णान्यमत्राणि निरीक्ष्य कोशला अदुः स्वदृष्टीः पृथुकाधिभाजने ४०

पाठीनभित्तं शकलं च मादगुरं जम्बीरयोगाञ्चितरोहिताऽघम्
स्रवज्जलां लोभवशां न केषां मत्स्याशनानां रसनाश्चकार ।४१।

प्रसन्न विश्वामित्र तथा लक्ष्मण समेत राम को देखकर आनन्दाश्रुपूरित राजा दशरथ ने वह आनन्द पाया जो वह कभी नहीं पाये थे ॥३६॥ इसके बाद बारातियों के निवास की की गयी सुन्दर व्यवस्था को देखकर इन्द्रमित्र राजा दशरथ ने (राजा जनक की व्यवस्था में) स्नेह, विधि, द्रव्य और पात्र की सादर प्रशंसा की ॥३७॥ उपस्थित सुन्दर और कोमल पेय, चोष्य, लेह्य, खाद्य वस्तुओं को देखकर सारे बारातियों ने सुवचनों से व्यवस्था की प्रशंसा की ॥३८॥ उस समय यद्यपि पारम्परिक भोजन ही पर्याप्त सन्तुष्टिकारक था फिर भी मिथिलावासियों के विशेष भोजन सर्वतः आनन्द के कारण बने ॥३९॥ शरच्चन्द्र सदृश सफेद सुपिच्छिल गहरे घी से भरपूर दही से सर्वत्र भरे हुए पात्रों को देखकर कोशल वासियों ने चिउड़े के बर्तनों की ओर आँखें फेरीं ॥४०॥ भारी पाठीन मछली के टुकड़े, मद्गुर के खण्ड तथा नीबू के योग से बनायी रोहू आदि मछलियाँ किन मत्स्य भक्षियों की जिह्वा को टपकती लारवाली तथा लोभवश नहीं कर दिया ॥४१॥

जानन्तु देशा इतरेऽपि कामं कुर्वन्तु सत्कारमनेकधा वा
परं लभन्ते मिथिलाधिवासिनः सम्बन्धिसत्कारविधानमुख्यताम् ४२

श्वेतोपकार्याकृतसन्निवासः श्वेतोत्तमाङ्गैर्मुनिभिः समं सः
श्वेतैः शिरोजैरभिशोभमानो विस्तारयामास यशांसि भूपतिः ४३

कृताह्निकः सोऽनुदिनं विधाय दानादिकं स्वीयजनानुरक्तः
साहित्यसङ्गीतकलाश्च मैथिलीः विमर्शयन्तत्र निनायवासरान्

अथापरेद्युः परमे पवित्रे मार्गस्य शुक्ले शुभपञ्चमीतिथौ
आहूय सर्वान्जनको मनस्वी निर्वर्तयामास विवाह संस्कृतिम् ४५

समं सुतैर्दाशरथैश्चतुर्भिः कन्याश्चतस्रः परिणेतुमिच्छन्
नृपो विदेहः स्वपुरोधसं तदा निवेदयामास विनम्रवाचया ४६

रामेण सीता सह लक्ष्मणेनोर्मिला व्रजेद् वै भरतेन माण्डवी
शत्रुघ्नमेतु श्रुतकीर्तिरेषा कुरुष्व यत्नं करपीडने शुभे ॥४७॥

अन्य देशों के लोग भी अनेक प्रकार से सत्कारको भले ही जानते अथवा करते हों पर मिथिलावासी सम्बन्धियों के सत्कार में सबसे आगे होते हैं ॥४२॥ श्वेत शिरोंवाले मुनियों समेत शुभ्रमहलों में निवास किये हुए श्वेत बालों से शोभित राजा ने अपनी कीर्ति को फैलाया ॥४३॥ स्वजनानुरक्त राजा प्रतिदिन दैनिक विधि समाप्त कर दानादि देकर मिथिला की साहित्य-संगीत-कला पर विचार-विमर्श करते हुए वहाँ अपने दिन बिताया करते थे ॥४४॥ फिर दूसरे दिन शुभ मार्गशीर्ष (अगहन) शुक्ल पक्ष की पञ्चमी तिथि पर सभी को बुलाकर मनस्वी राजा जनक ने विवाह संस्कार सम्पन्न किया ॥४५॥ दशरथ के चारों पुत्रों के साथ अपनी चारों कन्याओं का विवाह करने की इच्छा करते हुए राजा जनक ने उस समय अपने पुरोहित से विनम्र वाणी में कहा ।४६॥ सीता राम के साथ, उर्मिला लक्ष्मण के साथ, माण्डवी भरत के साथ तथा श्रुतकीर्ति शत्रुघ्न के साथ सम्बन्ध प्राप्त करें इसके लिए आप इनके पवित्र पाणि-पीडन का प्रयास करें ॥४७॥

ततः शतानन्दपदेन विश्रुतो मान्यः पुरोधा निमिवंशजानाम्
पूज्यं पुरस्कृत्य महर्षिमुख्यं कृत्ये प्रवृत्तो वशिनं वशिष्ठम् ।४८।

गणेशमम्बां परिपूज्य राज्ञा यदा बभूवुः परिपूजिता वराः
देवैर्नभःस्थैरभिपातित निद्युलोकजन्यानि सुमानि तेषु ॥४९॥

उच्चार्य नामानि यदा पितृणां कन्यावराणाञ्च कृतं सुमङ्गलम्
इत्थं प्रतीतं सकलैर्जनैर्यद् वरैः स्वयं मङ्गलमङ्गलं कृतम् ।५०।

कन्या गृहीत्वा कृतहोमकृत्या लाजाहुतौ व्यापृतमानसा च
सा बन्धुता नैव जहार केषां मनांसि कर्मण्यनुरक्तचेतसाम् ।५१।

श्री सीतया सार्द्धमभिप्रपन्ने श्रीरामभद्रेऽध्वरकर्मकौशले
साकं प्रकृत्या किमु पूरुषः परः सिसृक्षुरित्थं विबुधा व्यचारयन् ५२

यस्याभिषेकप्लुतवारिविन्दुभिः पुराभिजाता सरयूः पवित्रा
महर्षिणा तेन तदाभिषेचितौ तौ दम्पती पुण्यतमौ बभूवतुः ५३

तब निमिवंशियों के मान्य प्रसिद्ध पुरोहित शतानन्द पूज्य, महर्षि मुख्य, वशी, वशिष्ठ को आगे कर विवाहकृत्य कराने में लग गये ॥४८॥ राजा जनक ने गणेश और गौरी की पूजा कर तब वरों की पूजा की तब आकाशस्थ देवों ने स्वर्गीय पुष्पों की उनपर वर्षा की ॥४९॥ जब वर-कन्याओं के पितरों का नामोच्चार कर पुरोहित ने सुमङ्गल पाठ किया तो सारे लोगों को ऐसा लगा मानो वरो ने स्वयं मंगल का भी मंगल कर दिया हो ॥५०॥ होमकार्य करके, लाजाहुति में व्यापृत चित्त कन्याओं को लेकर उन्होंने जो बन्धुता पाई वह बन्धुता कर्मानुरक्त चित्तवाले किनके मनों को आकृष्ट नहीं की ? ॥५१॥ श्री जानकी के साथ श्रीरामचन्द्र को यज्ञकर्म में प्रवृत्त देखकर विद्वानो ने विचार किया कि मानो प्रकृति के साथ परमपुरुष जगत् निर्माण की इच्छा कर रहा हो ॥५२॥ जिसके स्नान से जल बहे बिन्दुओं से पहले सरयू पवित्र हुई थी उसी जल से महर्षि से अभिषिक्त वे दोनों पति-पत्नी (सीता-राम) उस समय अतिशय पवित्र हुए ॥५३॥

संव्यानशाटीधृतपर्वमङ्गलौ तौ कौतुकागारमभिव्रजन्तौ
सीतासखीनामविवाहितानां मनोविनोदाय चिरं बभूवतुः ।५४।
आशैशवान्मातृभुजान्तरं श्रितो गृहीतविद्यो जितराक्षसोऽसौ
रामः परां कामपि निर्वृतिं ययौ सम्प्राप्य सङ्गं मिथिलावधूनाम् ५५
प्रसारणाय स्वयशःपताकां कौलान्तरिक्षे जनको मनस्वी
सुशिक्षितां ताञ्च निसर्गसंस्कृतां पूर्वं प्रयाणात्तनयामशिक्षयत् ५६
दत्ता परस्मै विधृतान्यगोत्रा कन्या प्रकृत्या भवति द्विजेति
अतस्तया भर्तृमतं विधेयं विस्मृत्य पूर्वाभिमतं समन्तात् ।५७।
अज्ञातपूर्वे भवने स्वभर्तुः सम्प्राप्य मातापितरौ नवौ तया
तथा समासेन च वर्तितव्यं तौ बोधतां येन निजात्मजां ताम् ५८
सेवैव पूर्वैरभिसम्मता तथा भवन्ति वश्या ननु देहिनो यथा
ध्रुवं तया स्वश्वसुरौ निषेव्यौ कृत्वा पतिं तच्चरणानुरागिणम् ५६

विवाह पर्व की मङ्गल वेला पर उत्तरीय और साड़ी को पकड़े हुए कौतुक (कोहबर) भवन में जारहे सीताराम, दोनो ही अविवाहित सीता की सहेलियों के लिए देर तक मनोविनोद के कारण बने ।।५४।। बचपन से ही माता की गोद में रहे, फिर विद्या प्राप्त कर राक्षसों को जीतने वाले वह राम मिथिला नगर की स्त्रियों का साहचर्य प्राप्तकर कुछ अनिर्वचनीय ही आनन्द को प्राप्त हुए ।।५५।। कुलरूपी अन्तरिक्ष में अपनी यश पताका को फैलाने के लिए पिता मनस्वी जनक स्वभाव संस्कृत तथा सुशिक्षित भी उन सीता को विदाई से पूर्व शिक्षा देने लगे ।।५६।। दूसरे को प्रदान की गई तथा दूसरे का गोत्र (वंश) धारण की हुई कन्या स्वभावतः द्विज होती है। इसलिए उसे अपने सभी पूर्व विचारों को भुलाकर पति के विचारों का ही पालन करना चाहिए ।।५७।। अपने पति के पहले से अनजान घर में नये माता-पिता (सास-श्वसुर) को प्राप्तकर, उसे संक्षेप में ऐसा करना चाहिएकि जिससे वे उसे अपनी सन्तान रूप ही मानें ।।५८।। उस प्रकार की सेवा ही बृद्धो से अभिसम्मत है जिससे प्राणीवश में हो जाते हैं इसलिए अपने उस पति को (सास-श्वसुर का चरणानुरागी बनाकर उन दोनो की सम्यक् सेवा ही, कन्या को करनी चाहिए ।।५६।।

दिष्ट्या सपत्न्यो यदि सन्ति ता अपिवृत्त्या स्वसख्या अनुकूलनीयः
दाक्षिण्यमाश्रित्य निजेषु नूनं वाह्यः स्वकालोऽपि मुदाविगर्वया ६०
स्वं स्वीयवंशं स्वपितुः समज्यां निधाय सर्वं हृदि पुत्रि नित्यम्
सञ्चालय स्वां तरणीं भवाब्धौ श्रद्धाक्षिपां प्रत्ययकेनिपातिकाम् ६१
ततश्चतुर्थेह्नि विवाहवारात् सम्बन्धिनौ सम्मिलितौ प्रहृष्टौ
आलिङ्गयन्तौ नितरां समौ तौ स्ववक्षसाऽन्यौरसमाप्तसौहृदौ ६२
सत्कार्यसत्कारकयोर्द्वयोस्ते निपीड्यमाने हृदये तदानीम्
संश्लिष्यकिंनोहृदयान्यबान्धां तूष्णीमयोध्यामिथिलानिवासिनाम् ६३
विनिश्चिते प्रस्थितिसन्मुहूर्त्ते प्राघूर्णिकाराधनसक्तचेतसः
समीक्षमाणाः करपीडनान्ते प्रोचुर्हृदा ते मिथिलाधिवासिनः ६४
अहो वयं धन्यतमा महीतले यदत्र पश्याम उमाप्रसादात्
सुतां स्वकीयामुपबद्धभावां रामेण साकं शशिनेव कौमुदीम् ।६५।

दैवयोग से यदि सवतें भी हों तो सखीवृत्ति से उन्हें भी अपने अनुकूल बना लेना चाहिए। अपनों के प्रति दाक्षिण्य का सहारा लेकर गर्वरहित होकर सानन्द समय काटना चाहिए ॥६०॥ अपने वंश, अपने पिता की कीर्ति, स्वयं को, हे पुत्रि, यह सब नित्य अपने हृदय में रखकर श्रद्धारूपी पतवार तथा विश्वास रूपी डाँडवाली अपनी नौका को तुम संसार समुद्र में चलाओ ॥६१॥ इसके बाद विवाह के दिन से चतुर्थ दिन प्रसन्न सम्मिलित दोनों पक्ष के सम्बन्धी अपने वक्ष से दूसरे के वक्ष का आलिङ्गन करते हुए परम प्रसन्न हुए ॥६२॥ उस समय सत्कार्य और सत्कारक उन दोनो के निपीड्यमान हृदय, संश्लिष्ट होकर चुप-चाप अयोध्या और मिथिला निवासियो के हृदयों को नहीं बाँधा क्या ? (बाँध लिया) ॥६३॥ विवाह के बाद प्रस्थान के शुभ मुहूर्त निश्चित हो जाने पर अतिथियों के आराधन में दत्तचित्त मिथिला निवासी जनों ने हृदय से यह कहा ॥६४॥ धरती पर हम अतिबड़भागी हैं जो पार्वती की कृपा से यहाँ पर अपनी पुत्री सीता को राम के प्रति वैसे ही जुड़ी हुई देख रहे हैं जैसे चन्द्रमा से चन्द्रिका ॥६५॥

योग्येन युक्ता दुहिता ऽस्मदीया कुर्यादपूर्वं किमपि प्रशंस्यम्
इत्येव काङ्क्षाऽपि भवेत्सुपूर्णा वयं यथा स्याम विगर्हिता न ६६
अवाप्य भर्तुः सहजं सुमानुषं तदेव मत्वा सकलं स्वजीवने
आयुर्व्यतीताद् यदि कन्यका नो मंस्यामहे स्वान्कृतिनस्तदैव ६७
उमा महेशेन समं प्रकीर्त्यते लक्ष्मीश्च पत्या सह विष्णुना यथा
तथाऽस्मदीया दुहिताऽपिलोके प्रकीर्तिता स्यादिति कामना नः ६८
एषात्मजा नः पतिवर्त्मगा भवेन्मागाच्च बुद्धिःकुपथे कदाचित्
उपेक्ष्य सर्वं स्वसुखं सदाऽस्याः रुचिः स्वभर्तुः यशसे प्रकाशताम् ६९
प्राप्तुं पितुश्चाशिषमेव सीतामुपस्थितां वीक्ष्य विदेहराजः
अन्वर्थनामैव बभूव विक्लवो दृष्टया जडः सन्हृदयेन शून्यः ७०
सीता यदाश्रूणि विमोचयन्ती ग्रीवामगृह्णात् सुदृढं जनन्याः
तदाऽवहद् या करुणापयस्विनी तस्यां ममज्जुः सकलाः सचेतनाः ७१

उपयुक्त वर रामचन्द्र से सङ्गत हमारी पुत्री सीता कुछ ऐसा अपूर्व प्रशंसनीय कार्य करे जिससे हम निन्दित न हों, बस यही एक इच्छा हमारी सम्यक् पूरी हो ॥६६॥ पति के सहज सुमानुष प्रेम को प्राप्तकर अपने जीवन में उसी को सर्वस्व मानकर यदि हमारी यह कन्या अपना सारा जीवन बिता दे तभी हम अपने को कृतकृत्य समझेंगे ॥६७॥ जैसे पार्वती शिव के साथ, तथा लक्ष्मी विष्णु के साथ सदा संकीर्तित होती हैं वैसे ही हमारी बेटी भी संसार में अपने पति राम के साथ (शिव-पार्वती, लक्ष्मी-नारायण, सीता-राम) प्रकीर्तित हों यही हमारी कामना है ॥६८॥ यह हमारी कन्या सदा पति-पथ की अनुगामिनी बने, कभी भी इसकी बुद्धि कुमार्ग पर न जाये, अपने सारे सुखों की उपेक्षा कर इसकी रुचि सदैव अपने पति के कीर्ति हेतु प्रसिद्ध हो ॥६९॥ पिता के आशीर्वाद मात्र को प्राप्त करने के लिए उपस्थित सीता को देखकर विदेहराज इतने द्रवित हो गये कि अन्वर्थ नाम विदेह बन गये, दृष्टि से जड़ और हृदय से शून्य हो गये ॥७ ॥ आँसू बहाती हुई सीता जब अपनी मां के गले लगी तो उस समय जो करुणा की नदी बही उसमें सारे चेतन प्राणी डूब गये ॥७१॥

पत्युर्गृहे क्वापि न बन्धुदर्शनं विचिन्तयन्तीत्थमसौ रसात्मजा
यदालिलिङ्गात्मजनान्समस्तान् ग्रावा न कः प्रस्रवतामुपेतः ७२
न्यासस्वरूपां स्वगृहेऽभिपोषितां कन्यां वरायार्पयते कुटुम्बिने
लाभस्वरूपा शुच एव रक्षिताः भेत्तुं समर्था अशनेर्मनांसि ।७३।
अमंस्त सीतात्मनिभान् समस्तानेकैव याऽऽपत् प्रियतां समेषाम्
सैवाद्य मुक्त्वा किमु नो व्रजिष्यतीत्युक्त्वाऽरुदन् के न विमुक्तकण्ठम्
वैनीतकस्थां समवेक्ष्य मैथिलीं खिन्ना बभूवुर्मिथिलानिवासिनः
लताश्च वृक्षाः पशवो वयांसि स्त्रियोऽथ वृद्धाः शिशवो युवानः७५
फुल्लाननामश्रुविपूरिताक्षीं भावद्वयान्दोलितचित्तवृत्तिम्
समीक्ष्य सीतां मिथिलास्त्रियोऽवदन् भूयादियं भर्तृमता सदैव ७६
यावद् विभान्त्यभ्रतले ऽर्करश्मयः सदागतिर्वा नियतं प्रयाति ।
तावद् यशोऽस्याः जगति प्रकाशतां कुर्वत्सुषीमं हृदयं जनानाम्७७

पतिगृह में इन अपने बन्धुओं का कहीं भी दर्शन नहीं होगा ऐसा सोचती हुई धरापुत्री सीता ने जब समस्त स्वजनों का आलिङ्गन किया तो कौन पत्थर भी नहीं पिघल गया ? ।।७२।। न्यासरूप में अपने घर में पालित कन्या को कुलीन समर्पित वर को प्रदानकर लोगों ने बज्र के भी हृदय को विदीर्ण करने में समर्थ शोक को ही लाभरूप में सुरक्षित कर लिया ।।७३।। जो सीता सभी को आत्मतुल्य मानती थी और एक भी जो सभीकी प्रियथी, वही आजहम लोगोंको छोड़कर चली जायेगी क्या? ऐसा कहकर किन लोगों ने विमुक्त कण्ठ से रुदन नहीं किया ।।७४।। शिविका में बैठी जानकी को देखकर सारे मिथिला वासी दु खी हो गये । पशु पक्षी, वृक्ष लतायें, शिशु, वृद्ध, युवा, स्त्रियाँ सभी (संतप्त हो गये) ।।७५।। सुमनमुखी सीता को आँसू से भरी आँखों से युक्त तथा दो भावों से आन्दोलित मनोवृत्ति वाली देखकर मिथिला की नारियों ने कहा कि यह सदैव अपने पति की अभिमत बने ।।७६।। जब तक आकाश में सूर्य की किरणें प्रकाशित होतीं हैं, अथवा वायु नियत रूप से बहता रहे तब तक इसका यश लोगों के हृदय को सुन्दर बनाता हुआ संसार में विराजमान रहे ।।७७।।

यदाधिसीमं वरयात्रिणो निमिर्व्यसर्जयत् के न समाप्नुवन् किम्
वराः स्वभार्याः समधीः समृद्धिं गुरुः समर्चां वरयात्रिणः सुखम् ७८
प्रियाणि दत्त्वा मिथिलानरेन्द्रो यदा परावर्तत रिक्तहस्तः ।
स्थितं तदानीमनुभावशेषं तं वीक्ष्य सर्वा मिथिला श्लथाऽभूत् ७९
ततो यियासुर्लघुनाऽध्वना नृपः स्वराजधानीविरहाभिपीडितः
व्रजन् समुत् पंक्तिरथस्तदानीं नारायणीतीरमसौ प्रपेदे ।।८०।।
प्रियामयोध्यामभिगन्तुकामः शशाक शीघ्रं न नृपोऽभिगन्तुम् ।
नारायणीनीरविगाहनेच्छावशंगतानात्मजनान् निरीक्ष्य ।८१।
अस्याः प्रभावो नहि वर्णनीयो लब्धोऽनया यःस्वत एव नान्यतः
न कोऽपि पश्यन् जलमेतदीयं गन्तुं समर्थः परिहाय मज्जनम् ८२
ऋतौ व्यतीते घनसङ्कुलेऽस्याः नीलं प्रशान्तं प्रवहत्कमन्धम्
चित्ते न केषां विगतस्पृहाणां स्पृहां समुत्पाद्य हसद् विभाति ८३

सीमा पर जनक ने जब बारातियों को विदा किया तो किन्होंने क्या नहीं पाया ? वरों ने अपनी पत्नियाँ, समधी दशरथ ने समृद्धि (दहेज) गुरु (वशिष्ठादि) ने सम्यक् पूजा तथा बराती सुख (प्राप्त किये) ।।७८।। प्रिय (पुत्रियों और अभीष्ट दहेज आदि) वस्तुओं को देकर मिथिला नरेश जनक जब खाली हाथ लौटे तो उस समय महिमामात्रावशिष्ट उन्हें देखकर सारी मिथिला नगरी विकल हो गयी ।।७९।। राजधानी के (बहुत दिन छोड़ने) के वियोग से अभिपीडित उस समय राजा दशरथ लघु-मार्ग से जाने की इच्छा रखते हुए, सानन्द चलते, नारायणी नदी के तट पर पहुँचे ।।८०।। नारायणी के जल में स्नान की इच्छा रखने वाले अपने लोगों को देखकर प्रिय अयोध्या में शीघ्र जानने की इच्छा रखने वाले भी राजा शीघ्र जाने में समर्थ नहीं हुए ।।८१।। स्वतः न कि किसी और से इस नदी ने जो प्रभाव पाया है वह अवर्णनीय है । इसके जल को देखकर कोई भी व्यक्ति इसमें स्नान किये बिना जाने में समर्थ नहीं होता ।।८२।। वर्षा ऋतु के बीत जाने पर बहता हुआ इसका शान्त नील जल किन निःस्पृह लोगों के भी चित्त में लालसा पैदाकर, प्रसन्न नहीं दिखता ? ।।८३।।

स्थिता धरित्र्यां धृतविष्णुरुपा नित्यं दधाना सुमनःस्तवोक्तीः
चलद्वलाकाच्छविभिर्हसत्यसौ नारायणी विष्णुपदीयसौभगम् ८४
सरिद्वरेयं यशसा श्रिया वा रूपेण तुल्या ऽखिललोकविष्णोः
स्नानाम्बुपानादुत दर्शनाद् वा हरत्यघं कायवचोमनःस्थितम् ८५
उल्लंघ्य सीमानमतः स मागधं स्नात्वा तरण्यां पितरं समर्च्य
मनोरमायामवधीयभूमौ व्रजन्सचक्रो नृपतिर्विरेजे ॥८६॥
गच्छन्नयोध्यां महनीयकीर्तिर्मध्येपथं वीक्ष्य छटाः प्रकृत्याः
निसर्गसञ्जातमुदाभियुक्तो रामो हृदो भावमुवाच लक्ष्मणम् ८७
नीपे भ्रमन्नेष मयूरपोतस्तृणं चरन्नेष कुरङ्गशावकः ।
चुम्बन् प्रियामेष कपोतराजो मनांसि यूनां व्यथयन्ति साम्प्रतम् ८८
वानीरकुञ्जैः प्रतिरुद्धवेगं स्रोतः समालिङ्ग्य प्रियं प्रसन्ना
विहङ्गमश्रेणियुता सपुष्पा मुदे न केषां बनभूमिरेषा ।८९।

धरती पर विष्णुरुप धारण कर (नारायणी नाम से) अवस्थित, सदैव सुमन सज्जनों द्वारा स्तुति (स्तोत्र-प्रशंसा) धारण करती हुई, उड़ती बलाकाओं की शोभा से यह नारायणी विष्णु के पैर से निकली गंगा के भी सौभाग्य का उपहास करती हैं विष्णुपदीय सौभाग्य तो-नारायणी होने के कारण मुझे ही है) ।८४॥ यह सरिद्वरा कीर्ति, शोभा अथवा रूप से समस्त लोकों के रूप विष्णु के समान ही है इसके स्नान, अम्बुपान आचमन) अथवा दर्शन से ही यह शरीर, मन, वचन के पापों को हरण कर लेती है ।८५॥ इसके बाद मगध के सीवान को पारकर, मनोरमा नदी में स्नान कर, पितरों का सम्यक् तर्पण कर अवध प्रदेश की मनोरम भूमिमें ससमूह चलते हुए राजा शोभायमान हुए।८६॥ महनीय कीर्ति रामने, अयोध्याकी ओर जाते हुए, रास्तेमें प्रकृति की सुषमाको देख कर, स्वाभाविक समुत्पन्न आनन्द समन्वित होकर, लक्ष्मण से, अपने हृदय के भाव को, इस प्रकार बताया ॥८७॥ नीपवृक्ष के नीचे भ्रमण करता हुआ यह मयूरशिशु, घास चरता हुआ यह मृगछौना, और प्रियतमा कपोती का आलिङ्गन करता हुआ यह कपोतराज, इस समय नवयुवकों के चित व्यथितकर रहे हैं ॥८८॥ वेतस कुञ्जों से समवरुद्धवेग प्रिय प्रवाह का समालिङ्गन कर प्रसन्न, पक्षिवृन्द समन्वित पुष्पवती यह वनभूमि किसके आनन्द का कारण नहीं है ? ।॥८९॥

स्रोतस्विनीकच्छमुपागता इमे प्रियानुषक्ताः सरसीकपक्षिणः
उदात्तदाम्पत्यविधिं यशस्विनं नृदम्पतीभ्यां किमुपादिशन्ति ९०
नेत्राभिरामैरतसीप्रसूनैः कलायपुष्पैरभिशोभिता मही
समाह्वयन्ती सुहृदोऽनुरागात् स्वां वीक्षितुं नूनमुपस्थितेयम् ९१
उत्फुल्लतां पद्मकदम्बकेषु व्रजत्सु कः प्रक्ष्यति नो दृगर्हताम्
इतीव मत्वा सरसीमधिष्ठिता वैसारिणा जातु समुत्प्लवन्ते ९२
पादाभिघातं किमशोकवृक्षः किमास्यमद्यं वकुलः प्रतीक्षते ।
प्रतीक्षमाणः सहकारमञ्जरीं पुंस्कोकिलो भ्राम्यति वाटिकायाम्
आयात्ययोध्यामचिरं यशस्वी सुतैःस्नुषाभिः सह मेदिनीपतिः ।
निशम्य वृत्तान्तमिमं दिदृक्षवो ययुः स्वहर्म्योपरि पौरयोषितः ९४
मनोभिरामं नयनाभिरामं रामं विरामं कविकल्पनायाः ।
द्रष्टुं द्युलोकात्समुपागतानां देवाङ्गनानां सुषमामयुस्ताः ९५

नदी की कछार में वर्तमान प्रियसमन्वित ये जलचर पक्षी लगता है, मानव दम्पतियों को यशस्वी उदात्त दाम्पत्य विधि की शिक्षा दे रहे हैं ॥९०॥ नेत्राभिराम तीसी के फूलों, तथा मटर के पुष्पों से सर्वत्र सुशोभित धरती, सखी के अनुराग वश पुकारती हुई अपने को ही देखने के लिए मानों स्वय उपस्थित हो गई है ॥९१॥ कमलवृन्दों के प्रफुल्लता को प्राप्त हो जाने पर कौन व्यक्ति नयनाभिरामता को नहीं पूंछता ? मानों यही मानकर सरोवरों में रहने वाले पक्षी इधर उधर तैर रहे हैं ॥९२॥ लगता है कि, अशोक वृक्ष (रमणी का) पादाघात तथ बकुल मुखासव की प्रतीक्षा कर रहा है, बगीचे में कोयल सहकार (आम्र) मञ्जरी की प्रतीक्षा करता हुआ मानो इधर-उधर चक्कर काट रहा है ॥९३॥ यशस्वी राजा दशरथ अपने पुत्रों और बहुओं के साथ शीघ्र ही अयोध्या में पहुँच रहे हैं, इस समाचार को सुनकर, दर्शनोत्सुक पुर-नारियाँ अपने-अपने महलों पर चढ़ गयीं ॥९४॥ मनोभिराम, नयनाभिराम, कविकल्पना के विराम (अवसानसीमा) राम को देखने के लिये (प्रसादारूढ़) वे स्वर्गलोक से आयी हुई देवाङ्गनाओं की शोभा प्राप्त कर रही थीं ॥९५॥

किं पौरवध्वः स्वगृहोर्ध्वभागेष्वारोपयन्नुत्पलिनीः समन्तात्
याः सौरधुर्याननमीक्षितुं मुदाकृतान्यधोऽधो नयनानि ताभिः ९६
काचिद् ययौ वीक्षितुमत्ररामं मुक्त्वा स्रजोग्रन्थनमर्द्धभागात् ।
अनीविवन्धं खलु शाटिकान्तं काचिद् भुजाभ्यां परिधृत्य चागता ९७
आलक्तकैरर्द्धपदावसक्तैर्विन्यस्य चिह्नान्यपि हर्म्यपृष्ठे ।
जगाम काचित्परया स्वसख्या धृतैकदृक्कज्जलरेखया सजूः ९८
अशेषकार्याणि विहाय सद्यो निर्वर्त्यमानानि पुरःस्थितानि ।
जग्मुर्दिदृक्षावशगास्तदानीं मन्त्रैर्हृतात्मान इव स्त्रियोऽन्याः ।९९।
सपुष्पलाजान् विनिपातयन्त्यः पौराङ्गनाः राममवेक्षमाणाः ।
स्वा मेनिरे पुण्यभृतो नितान्तं निशान्तमायातमजात्मजात्मजम् १००
सभर्तृकास्ता अभिनन्दितुं मुदा द्वारिस्थिताः पार्थिवधर्मपत्न्यः
विलोक्य सस्त्रीकसुतान्समागतान्प्रोचुर्नमोक्तीः कुलदेवताभ्यः १०१

लगता था, मानो नगर बहुओं ने अपने भवनों के उपरि भाग पर सर्वत्र कमलिनियाँ लगा दी थीं जिन्होंने सौरधुर्य (सूर्यवंश शिरोमणि) राम के मुख को देखने के लिये अपने-अपने नेत्रों को नीचे की ओर झुकाई हुई थी ॥९६॥ राम को देखने के वहाँ कोई तो मालागुम्फन को बीच में ही छोड़कर आ गयी थी और कोई नीवी बाँधे बना ही साड़ी के किनारों को दोनों हाथों से थामे हुई चली आयी थी ॥९७॥ आधे पैर में ही लगाये गये महावर से भवन की छत पर चिह्नों को रखती, अपने एक आँख में ही काजल की रेखा धारण कर मानो दूसरा सखी के साथ कोई भाग आयी थी ॥९८॥ और अन्य स्त्रियाँ, निबटाये जा रहे, सामने वर्तमान अन्य सभी कार्यों को छोड़कर, राम को देखने की इच्छा की वशवर्तिनी होकर उस समय मन्त्र से आकृष्ट की भाँति चली (गयी) आयी थीं ॥९९॥ फूलों समेत लावा की वर्षा करती हुई, निशान्त (रनिवास) में आये हुए, अज पुत्र दशरथ के पुत्र राम को देखती हुयी पुरनारियों ने अपने को अतिशय पुण्यशाली माना ॥१००॥ पति समेत बहुओं का स्वागत करने के लिये सानन्द द्वार पर खड़ी हुई राजा की धर्मपत्नियों ने पतियों समेत आये हुए पुत्रों को देखकर कुलदेवताओं का नमोवाचन किया (नमस्कार किया) ॥१०१॥

वैनीतकात्साक्षतवंशपात्रे पादौ दधाना मिथिलेशनन्दिनी ।
आवाहितायाश्च समागतायाः शोभां श्रियः सानुपदं बभार १०२

समीक्ष्य भ्रातॄन् चतुरः सदारान् सद्यः परिक्षिप्तपदान् स्म राङ्गणे
पूर्वानुभूतिप्रवणा रमण्यो व्यचिन्तयन् स्वं समतीतजीवनम् १०३

राज्ञोऽपिरम्या गृहरूपवाटिका नितान्तमभ्यस्तसुमैः सुशोभिताः
नूनं नवीना लतिकाश्चतस्रः सुमैर्युताः प्राप्य भृशं विरेजे ।१०४।

प्रतिदिवसमनेकैः कल्प्यमानैरुपायैरुपवनमिव सौधे संस्थितान्सेवमाना
प्रियतमहृदि सीता स्नेहमुत्पादयन्ती
समुदलसदभिख्यामालिनी मालिनीव ।१०५।

श्री श्यामान्वितसुन्दरोऽस्ति जनको माता च यस्याम्बिका
यः श्रीराजकिशोर आप्तचरितः शाण्डिल्यवंशोद्भवः
दुर्गासप्तशतीविवृत्तिकरणे लिप्तस्य चास्मिन् महा–
काव्ये चारुणि राघवेन्द्रचरिते सर्गो गतः सप्तमः ।।१०६।।

शिविका से (निकाल कर) अक्षतान्वित बाँस की डोलची में पाँव रखती हुई जनककुमारी ने अनुपद आवाहित तथा समागत लक्ष्मी की शोभा को धारण किया ।।१०२।। कामाङ्गण में शीघ्र ही पाँव रखने वाले सपत्नीक चारों भाइयों को देखकर स्त्रियाँ, अपने प्रथम मिलन की पूर्वानुभूतियों में तल्लीन होकर अपने अतीत जीवन स्वयं विचारने लगी ।।१०३।। अतिशय पहिचाने हुए फूलोंसे राजाकी रमणीयभी भवनरूपी वाटिका पुष्पोंसे युक्त चार नूतन लताओं को प्राप्तकर अत्यन्त (प्रभूत) सुशोभित हुई ।।१०४।। प्रतिदिन क्रियमाण नाना उपायों से, प्रासाद में विद्यमान लोगों की सेवा करती हुई, प्रियतम के हृदय में विलीन, उपवन के समान स्नेह (सुमन) उत्पन्न करती हुई, सुन्दर सीता ने मालिनकी शाभाको धारण किया १ ५ जिनके पिता श्री श्याम सुन्दर और माता अम्बिका हैं, आप्तचरित, शाण्डिल्यगोत्रोत्पन्न जो श्री राजकिशोर मणि हैं, दुर्गासप्तशतीकी व्याख्या करने में लगे हुए उनके द्वारा विरचित इस श्रीराघवेन्द्र चरित महाकाव्य में यह सातवाँ सर्ग पूर्ण हुआ ।।१०६।।

अष्टमः सर्गः

सदारान्स्वसुतान्वीक्ष्य प्राप्य सार्वभवंसुखम् ।
अयोध्यायां बभौ राजाऽमरावत्यां महेन्द्रवत् ॥१॥
अयोध्यामागतं श्यालं प्रियं प्राघूर्णिकं नृपः ।
एकदा सुखमासीनः पारेहासं वचोऽब्रवीत् ॥२॥
अङ्ग केकयराजस्य किं करवाणि तव प्रियम् ।
अत्यन्तं परितृप्तोऽस्मि व्यवहारात्तवानघ ॥३॥
ततः स्वपितृसन्देशं कालं वीक्ष्य निवेदितुम् ।
उवाच साञ्जलिः श्रीमान् युधाजित् प्रियदर्शनः ॥४॥
प्रस्थानसमये पित्रा कथितोऽस्मि निवेदितुम् ।
सन्देशं सावधानस्त्वं शृणु मे भगिनीपते ॥५॥

अपने पुत्रों को सपत्नीक देखकर, सम्पूर्ण सुख प्राप्तकर राजा दशरथ अयोध्या में वैसे ही विराजमान हुए जैसे अमरावती में इन्द्र ॥१॥ एक बार अयोध्या में आये हुए अपने अतिथि, प्रिय साले से राजा ने हास से परे समुख यह बात कही ॥२॥ हे केकयराजपुत्र, मैं तुम्हारा कौन सा अभीष्ट पूरा करूँ ? हे निष्पाप, सुन्दर, मैं तुम्हारे व्यवहार से अत्यन्त प्रसन्न हूँ ॥३॥ इसके बाद अपने पिता के सन्देश को निवेदित करने का समय देखकर प्रियदर्शन श्रीमान् युधाजित् हाथ जोड़कर बोले ॥४॥ हे भगिनीपति जीजाजी, मेरे प्रस्थान के समय पिताजी ने एक सन्देश आप से कहने को कहा था, आप सावधान होकर सुनें ॥५॥

बह्वोः कालान्न दृष्टोऽस्ति प्रियो मे दुहितुः सुतः ।
अवश्यं प्रेषणीयोऽसौ समं भ्रात्रा सुदर्शनः ।।६।।
तदाऽऽज्ञापय राजेन्द्र प्रस्थातुं केकयं प्रति ।
भरतश्चापि शत्रुघ्नं मया साकमरिन्दमम् ।।७।।
प्राप्य कान्तापितुश्चेमं सन्देशं स्नेहवर्द्धकम् ।
राजा प्रस्थापयामास स्वसुतौ प्राणतः प्रियौ ।।८।।
एवं विगतचिन्तेऽपि स्वसाम्राज्यं प्रशासति ।
भूपतौ सहसोत्पन्ना वार्धक्यविषया स्मृतिः ।।९।।
धर्मार्थकाममोक्षेषु त्रयोऽप्याद्या निषेविताः ।
मया सम्यक्परं मोक्षे बुद्धिर्मे न गता क्वचित् ।।१०।।
रघूणामन्वये जातास्त्यक्तसाम्राज्यसम्पदः ।
अभूवन्मोक्षसिद्ध्यर्थं वार्धक्ये मुनिवृत्तयः ।।११।।

बहुत दिनों से मेरा दौहित्र देखा नहीं गया। इसलिए उस प्रियदर्शन (भरत को भाई (शत्रुघ्न) के साथ अवश्य भेजें ।।७।। इसलिये हे राजेन्द्र मेरे साथ शत्रुदमन भरत और शत्रुघ्न को केकय देश के लिए प्रस्थान करने की आज्ञा प्रदान करें ।।७।। अपनी प्राणेश्वरी (कैकेयी) के पिता के इस स्नेहवद्धक सन्देश को प्राप्तकर राजा ने अपने प्राणों से भी प्रिय दोनों बच्चों को भेजवा दिया ।।८।। इस प्रकार निश्चिन्त भाव से राज्य शासन करते हुए भी राजा को अकस्मात् वृद्धास्था विषयक स्मृति पैदा हो गई ।।९।। धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों में मैंने प्रथम तीन का विधिवत् सेवन कर लिया है, किन्तु मोक्ष के प्रति मेरी बुद्धि कभी गयी ही नहीं ।।१०।। रघु के वंश में सभी लोगों ने वृद्धावस्था में मोक्ष सिद्धि के लिये साम्राज्य सम्पत्ति को छोड़कर मुनिवृत्ति धारण कर ली है ।।११।।

मया सोढ्वाऽनुसर्त्तव्यः पूर्वजैः परिशीलितः ।
अभिषिच्य सुतं राज्ये राज्यभारधुरन्धरम् ।१२।
चत्वारो मे सुताः सन्ति प्रजाचित्तानुरञ्जकाः ।
ज्येष्ठस्तेषां सुतो रामः परं सर्वप्रियो मतः ।१३।
गृहीत इव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत् ।
अतो राज्यं प्रदायाऽस्मै सेवितव्यं वनं मया ।१४।
एवं सञ्चिन्त्य राजेन्द्रो राज्यश्रीहितकाम्यया ।
आहूयोवाच सर्वज्ञं वशिष्ठं प्रणमन्नसौ ।१५।
गुरो नोपासितः सम्यङ्मयाऽध्वा रघुवंशजः ।
जातोऽस्मि साम्प्रतं वृद्धो राज्यभारं समुद्वहन् ।१६।
अतो दातुं मनो मोक्षे गन्तव्यं काननं मया ।
राज्यभारं समारोप्य स्कन्धे पुत्रस्य कस्यचित् ।१७।

मुझे भी अपने पूर्वजों द्वारा अनुशीलित मार्ग का, राज्यभार में धुरन्धर राम को राज्य में राजपद पर अभिषिक्त कर, अनुगमन करना चाहिए ।।१२।। मेरे चारो पुत्र प्रजाओं के चित्त का अनुरञ्जन करते हैं किन्तु उनमें ज्येष्ठ राम सबसे अधिक और सर्वप्रिय माना जाता है ।।१३।। मृत्युगृहीत सा मानकर धर्म करते रहना चाहिए, इसलिये मुझे भी राम को राज्य देकर वन का सेवन करना चाहिए ।।१४।। इस प्रकार राज्य के हित की कामना से ऐसा सोचकर राजेन्द्र दशरथ ने सर्वज्ञ वशिष्ठ को बुलाकर, प्रणाम करते हुए कहा ।।१५।। हे गुरुदेव ! मैंने रघुवंशीय मार्ग का ठीक से पालन नहीं किया है । राज्यभार ढोते हुए मैं अब बूढ़ा हो गया हूँ ।।१६।। इसलिए किसी भी पुत्र के कन्धे पर राज्य भार समर्पित कर मोक्ष में मन लगाने के लिये मुझे जंगल जाना चाहिए ।।१७।

चत्वारः सन्ति मे पुत्राः सर्वे योग्या विचक्षणाः ।
परं ज्येष्ठः सुतो रामः सर्वेषां प्रियदर्शनः ।१८।

स हि विद्याव्रतस्नातः प्रजारक्तोऽनसूयकः ।
शूरो नम्रो जितक्रोधो बुद्धिमाँश्च प्रियम्वदः ।१९।

नीरोगः स युवा ज्येष्ठः स्वेषु सर्वेषु भ्रातृषु ।
कुलोचितमतिः श्रेष्ठो व्यवहारेऽपि लौकिके ।२०।

श्रेयस्येव रतः साधुर्वृद्धानां परिपूजकः ।
सानुक्रोशः स्थिरप्रज्ञो गुप्तमन्त्र उदारधीः ।२१।

युधि देवैरधृष्योऽसौ धनुर्विद् व्यूहवित्तथा ।
आरोहं विनयं चापि जानाति गजवाजिनाम् ।२२।

निग्रहानुग्रहं वेत्ति न्यायकर्त्ता विचक्षणः ।
दीनप्रियः शुचिर्दान्तःकालज्ञः स्मृतिमान् प्रियः २३।

मेरे चार पुत्र हैं, सभी योग्य और पण्डित हैं किन्तु उनमें ज्येष्ठ पुत्र राम सभी का प्रियदर्शन है ॥१८॥ विद्याव्रतमें स्नात, प्रजारक्त, अनसूयक वीर, विनम्र, क्रोधजयी, बुद्धिमान् और प्रियम्व है ॥१९॥ वह नौजवान नीरोग तथा सभी भाइयों में श्रेष्ठ हैं, उसकी बुद्धि कुलोपयुक्त है तथा वह लौकिक व्यवहार में भी श्रेष्ठ है ।२०॥ वह सज्जन बेचारा सदा श्रेय में ही लगा रहता है, बड़ों का पूर्ण पूजक है, दयावान् स्थिरमति, गुप्तमन्त्र तथा उदारबुद्धि है ।।२१।। युद्ध में वह देवों से भी अधर्षणीय, धनुर्विद्या तथा व्यूहविद्या के जानकार हैं, हाथी-घोड़ों पर सवारी करना तथा उन्हें वश में करना भी वह जानते हैं ।।२२।। न्यायकर्ता, विद्वान् वह निग्रह (दण्ड) अनुग्रह (कृपा) करना जानते हैं, दीनप्रिय, पवित्र, समयज्ञ, दान्त, स्मृतिमान् और प्रिय है ।।२३।।

दृप्तिमात्सर्यहीनोऽसौ स्वदोषपरदोषवित् ।
आयव्ययं विजानाति न प्रमत्तः न चालसः ।२४।
विद्वत्प्रियः सुसभ्योऽयं परिवारस्य पालकः ।
औचित्यस्य परित्राता धर्ता धर्मस्य तत्त्वतः ।२५।
एनमेव प्रतिष्ठाप्याऽमुष्य राज्यस्य पालने ।
अहं विगतभारःसन्नुपासिष्ये मुनिव्रतम् ।२६।
एवं मे निश्चयो ब्रह्मन् तत्र का भवतो मतिः ।
इति ज्ञातुं समाहूतः सम्यङ्मे समुपादिशेत् ।२७।
आनुकूल्यं भवत्यस्मिन् विषये भवतो यदि ।
श्व एवैतन्महत्कार्यं सम्पाद्यमिति मे मतिः ।२८।
श्रुत्वा राज्ञो वचो युक्तं वशिष्ठः सर्वविन्मुनिः ।
तथ्यपूर्णां ततो वाणीमुवाच समयोचिताम् ।२९।

गर्व-अहङ्कार शून्य वह स्वपरदोषज्ञ हैं, आय-व्यय के ज्ञाता वह न आलसी हैं न प्रमत्त ।।२४। विद्वत्प्रिय, सुसभ्य, परिजनपालक, औचित्य के रक्षक, धर्मतत्त्व को वह धारण करते हैं ।।२५।। इस राज्य के पालन में इन्हीं को प्रतिष्ठितकर विगतभार मैं मुनिव्रत को धारण करूँगा २६। हे ब्रह्मन् मेरा यही निश्चय है, इसमें आप के क्या विचार हैं? यही जानने के लिये आपको बुलाया है, आप मुझे भलीभाँति निर्देश दें? ।।२७।। यदि इस विषय में आप की अनुकूलता हो तो यह महत्त्वपूर्ण कार्य कल ही हो जाय, ऐसा मेरा विचार है ।।२८।। राजा की उपयुक्त बात को सुनकर सर्वज्ञ, मुनि वशिष्ठ ने उस समय समयोचित तथ्य पूर्ण वाणी कही ।।२९।।

चतुर्थे पुरुषार्थे ते बुद्धिरेषा प्रशंसिता ।
एतच्चापि परं युक्तं राज्यं ज्येष्ठाय काङ्क्षितम् ।३०।
राज्यतन्त्रे परं राजन् नीतिनिर्द्धारिका प्रजा ।
प्रष्टव्या विषये चैषा ह्यासीदेषा परम्परा ।३१।
सा यथाऽऽज्ञापयेत्कृत्वा निश्चयं बहुसम्मतम् ।
मान्यं तद् भवता राजन् राजा प्रकृतिरञ्जनात् ।३२।
प्रजाप्रतिनिधीन्तस्मादाकारय महीपते ।
तेषां सम्मतिमादाय स्यास्त्वं पूर्णमनोरथः ।३३।
प्रक्रिया कालसापेक्षा परमेषा विशाम्पते ।
योज्याऽद्याऽतो द्रुतं राजन्नयोध्यावासिनां सभा ।३४।
तत आयोजने जाते प्रजाभिश्चानुमोदिते ।
प्रस्तावे तस्य पूर्त्यर्थं सुमन्त्रं न्ययुजन्नृपः ।३५।

चतुर्थ (मोक्षरूप) पुरुषार्थ में लगी हुयी तुम्हारी बुद्धि, प्रशंसित है (प्रशंसनीय है)। और बड़े पुत्र के लिये राज्य देने की इच्छा भी अत्युत्तम है ॥३०॥ किन्तु राजन्, राज्यतन्त्र में नीति निर्धारक तो प्रजा ही होती है, इस विषय में उससे पूछना चाहिए, यही परम्परा भी रही है ॥३१॥ बहुमत से सम्मत जिस निर्णय का वह आदेश दे, राजन् आपको उसे मानना है, राजा तो, प्रकृतिरञ्जक, होता है ॥३२॥ इसलिये हे राजन्! आप प्रजा के प्रतिनिधियों को (सांसदों को) बुलवायें, उनकी सम्मति लेकर आप आप्तकाम बनें ॥३३॥ किन्तु राजन् सारी प्रक्रिया कालसापेक्ष है, इसलिये आज ही शीघ्र अयोध्यानिवासियों की आम सभा करायें ॥३४॥ तब सभा का आयोजन हो जाने पर प्रजाओं द्वारा अनुमोदित होने पर, उस प्रस्ताव की पूर्ति के लिये राजा ने सुमन्त्र को नियुक्त किया ॥३५॥

रामं समुद्यतं कर्तुं वशिष्ठं स्वगुरुं ततः ।
मुदा नियोज्य सुप्रीतोऽन्वभूच्छान्तिं परां नृपः ।३६।
त्रिकालज्ञो वशिष्ठोऽपि जानन्वृत्तं समासतः ।
राममागत्य तं प्रीत्या प्रोवाच वदतां वरः ।३७।
राम-राम महाबाहो पिता ते लोकपूजितः ।
श्वस्त्वामिच्छति संयोक्तुं यौवराज्ये प्रजाज्ञया ।३८।
अनुकूलयितुं वत्स त्वाञ्च शिक्षयितुं विधिम् ।
पित्रा तेऽहं विनिर्दिष्टः सावधानं वचः शृणु ।३९।
इदानीं ते पिता वृद्धः सिसेविषति काननम् ।
ज्येष्ठस्त्वं तु सुतस्तस्य प्रजा त्वामभिकाङ्क्षति ।४०।
लोकरक्षणबुद्ध्या त्वं स्वपितुश्च हितेच्छया ।
स्वजन्मफलपूर्त्यर्थं मद्वाक्याद् भव तत्परः ।४१।

इसके बाद प्रसन्नता पूर्वक, राजा ने अपने गुरु वशिष्ठ को राम को तैयार करने के लिए लगाकर, परम शान्ति का अनुभव किया ।।३६।। त्रिकालज्ञ वशिष्ट भी सारे वृत्तान्तों को संक्षेप में जानते हुए भी, राम के पास आकर, वक्तृ प्रधान उन्होंने राम से सप्रेम कहा ।।३७। हे लोकपूजित, महाबाहु राम, तुम्हारे पिता प्रजा की आज्ञा से कल तुम्हें युवराज पद पर नियुक्त करना चाहते हैं । ३८।। हे वत्स, तुम्हें उसके अनुकूल बनाने तथा नियमों की शिक्षा देने के लिए तुम्हारे पिता ने मुझे निर्देश किया है, सावधान हो मेरी बात सुनें ।।३६ । तुम्हारे पिता अब वृद्ध हो गये हैं, वन की सेवा करना चाहते हैं, तुम उनके ज्येष्ठ पुत्र हो, प्रजा भी तुम्हें खूब चाहती है ।।४०।। इसलिए तुम मेरी बातों को मानकर, लोकरक्षा के विचार से, अपने पिता की हितकामना करने तथा अपने जन्म ग्रहण करने के फलकी पूर्ति के लिए यौवराज्य के लिए तैयार हो जाओ ।।४१।।

अद्योपोष्य शुचिर्भूत्वा ससीतस्त्वं दृढव्रत।
कृताह्निको भवप्रातः संस्कारार्थं सुसज्जितः ।४२।
एवमुक्त्वा गुरौ याते सत्क्रियाभिः सुपूजिते ।
स्वमातरमनुप्राप्य रामो वृत्तं न्यवेदयत् ।४३।
तदाशिषं गृहीत्वा स प्रसन्नो विगतस्मयः ।
दीक्षितो मन्त्रयाञ्चक्रे सीतया सह लक्ष्मणम् ।४४।
निशम्य रामवृत्तान्तं प्रसन्नैः पुरवासिभिः ।
समं सर्वेऽभवन्प्रीताः सेवका राज्यमाश्रिताः ।४५।
महार्णवनिभे तस्मिन् प्रासादे मौक्तिकैःप्रिये ।
तिमिनक्रादिसञ्चारस्तस्मिन्कालेऽभिलक्षितः ।४६।
दैवाहतमतिः कुब्जा कैकेय्याः पादसेविका ।
अमर्षेणायुनक्तत्र प्रसन्नामपि भट्टिनीम् ।४७।

सीता समेत आज उपवास रखकर, हे दृढव्रत, पवित्र होकर प्रात काल दैनिक कृत्यादि करके संस्कार के लिए तैयार हो जाना ॥४२॥ ऐसा कह कर सत्कारादि से सुपूजित गुरु के चले जाने पर राम ने अपनी माता कौशल्या के पास जाकर सारा वृत्तान्त निवेदित किया ॥४३॥ माता का आशीर्वाद लेकर, स्मयशून्य, प्रसन्न, विद्वान् उन्होंने सीता समेत लक्ष्मण से मन्त्रणा की ॥४४॥ राम के राज्याभिषेक वृत्तान्त को सुनकर पुरवासियों समेत सभी राज्याश्रित सेवक भी प्रसन्न हुए ॥४५॥ मुक्ता (वन्दनवारों) से सुन्दर महासमुद्र जैसे उस राजमहल में ऐसा लग रहा था मानो मत्स्य-मगर तैर रहे हों ॥४६॥ भाग्यवश नष्ट बुद्धि, कैकेयी की परिचारिका कुब्जा ने उस समय प्रसन्न भी रानी को ईर्ष्या समन्वित क्रोध से युक्त कर दिया ॥४७॥

राज्ञी दशरथं तत्र वरमेनमयाचत ।
विवासनञ्च रामस्य भरतस्याभिषेचनम् ।४८।
अथाभिषेकसंस्कारे निरुद्धे कमलेक्षणः ।
रामःस्वयमनुप्राप्तस्तत्र पितृदिदृक्षया ।४९।
प्रणम्य मध्यमाम्बां स यावत्पश्यति भूतले ।
ददर्श पितरं तत्र लुठन्तं झषवन्मरौ ।५०
शून्यदृष्टयाऽभिपश्यन्तं गगनं शुष्कलोचनम् ।
हा रामेति शनैः शब्दं वदन्तं दीनचेष्टितम् ५१।
प्रवृत्तिरहितं चाशीर्दाने तातं निरीक्ष्य सः ।
हेतुजिज्ञासयाऽद्राक्षीन्मातरं करुणान्वितः ।५२।
तवस्नेहाद्दशेयं ते पितुर्भद्र समागता ।
त्वमेव केवलं वैद्यः कर्तुमेनं निरामयम् ।५३।

रानी ने राजा दशरथ से यह वर माँगा कि राम का निर्वासन और भरत का अभिषेक किया जाय ॥४८॥ अभिषेक संस्कार के रुक जाने पर कमलनयन राम वहाँ कोपभवन में पिता को देखने की इच्छा से स्वयं पधारे ॥४९॥ मध्यम माता को प्रणाम कर वह जब धरती पर देखते हैं तो मरुस्थल में छटपटाती मछली के समान वहाँ पिताजी को देखा ॥५०॥ शून्य आँखों से आकाश को देखते हुए, खाली सूखे नेत्र, हाराम हा राम, धीरे-धीरे कहते हुए, दुःखी अवस्था में उन्हें देखा ॥५१॥ आशीर्वाद प्रदान में पिता को निश्चेष्ट देखकर राम ने करुणायुक्त होकर कारण जानने की इच्छा से माताजी की ओर निहारा ॥५२॥ हे भद्र, तुम्हारे स्नेहवश तुम्हारे पिता की यह दशा हुई है, इन्हें नीरोग करने में तुम्हीं उपयुक्त चिकित्सक हो-ऐसा माता ने कहा ॥५३॥

चतुर्दश समा वासः वने ते जनकप्रिय ।
यौवराज्ये पुनर्भूयाद् भरतस्याभिषेचनम् ।५४।

इति दत्तवराया मे वाचं श्रुत्वा महीपतिः ।
सत्यसन्धस्तवस्नेहान्मुमूर्षुरिव तिष्ठति ।५५।

निर्गच्छेन्मे पितुर्दुःखं यावज्जीवं तथाऽम्ब मे ।
इदानीं त्वं प्रसन्ना स्या इति रामोवचोऽब्रवीत् ५६

अनन्तरं परावृत्य स्वमात्रोश्चरणौस्पृशन् ।
वनं गन्तुं मनश्चक्रे रामो धृत्वा मुनिव्रतम् ।५७।

रामोथं निश्चयं ज्ञात्वा वारिताऽपि धरात्मजा ।
साकं पत्या वनं गन्तुं सन्नद्धाऽभूत्सुकोमला ।५८।

अंशिनं क्व परित्यज्य स्थातुमंशोऽपि दृश्यते ।
लक्ष्मणं चाप्यतः कश्चिद् रोद्धुं शक्तोऽऽभवन्नहि ।५९।

आगे बोली-हे पितृप्रिय, वन में चौदह वर्षों तक तुम्हारा निवास, और युवराज पद पर भरत का अभिषेक हो ।।५४।। इस प्रकार मुझे दिये गये वर प्रदान की बात सुनकर सत्यप्रतिज्ञ राजा तुम्हारे प्रेम के कारण मुमूर्षु से निश्चेष्ट हो रहे हैं । ५५।। अयि माँ, पिता का दुःख समाप्त हो और तुम जीवन भर सुखी प्रसन्न रहो, राम ने ऐसी बात कही ।।५६।। इसके बाद लौटकर, दोनों (अन्य) माताओं के पैर स्पर्श करते हुए (प्रणाम कर) मुनिव्रत धारण कर राम ने वन जाने का विचार कर लिया ।।५७।। राम निश्चय को जानकर, रोके जाने पर भी अतिशय सुकुमारी सीता भी पति के साथ वन जाने को तैयार हो गयी ।।५८।। यह कहीं देखा जाता है कि अंशी के बिना अंश रह सके ? इसीलिए लक्ष्मण को भी कोई रोकने में समर्थ नहीं हो सका । ५९।।

स्वरूपनिर्णयोत्साहैरारण्यकव्रतोचितैः ।
सम्पन्नो रामभद्रस्तु द्रष्टुं तातमुपस्थितः ।६०।
अपरिम्लानवक्त्रोऽसौ चरणौ स्वपितुः स्पृशन् ।
मध्यमाम्बां प्रणम्योचे रामः पितृपरायणः ।६१।
अम्ब तात भवद्रामः पित्रिच्छापरिपालकः ।
असंशयं वनं याति स्वाशिषा संयुनक्तु माम् ।६२।
राजसद्माम्बरात्तस्मान्निःसृतैः करकोपमैः ।
विचित्रवृत्तसम्वादैर्नष्टा पौरमनःकृषिः ।६३।
विलपन्तस्तदा पौरा नष्टोत्साहा हृतश्रियः ।
राममेवाऽनुधावन्तो गच्छन्तं जगदुर्वचः ।६४।
किमयं करुणः साक्षाद् दयाधर्मविमिश्रितः ।
शक्त्यास्त्रसंयुतो वीरो गच्छेद्वा मूर्तिमानिव ।।६५।।

अरण्य व्रत के अनुरूप निर्णय, स्वरूप तथा उत्साह से युक्त रामभद्र पिता जी को देखने के लिए उपस्थित हुए ।६०। प्रसन्नमुख, पितृ परायण राम पिता के चरणों को स्पर्श करते हुए मझली माँ को प्रणाम कर उससे बोले ।६१। हे माँ, हे पिता, पिता की इच्छा का परिपालक आपका राम निश्चय ही वन जा रहा है, आप हमें अपने आशीर्वाद से संपृक्त करें ।६२। उस राजभवनरूप आकाश से उत्पन्न ओले स्वरूप नानाप्रकार के समाचारों और वार्ताओं से पुरवासियों की मनरुपी खेती नष्ट हो गयी ६३। उस समय भग्नोत्साह, श्री विहीन, विलपते हुए पुरवासी चलते हुए राम के पीछे दौड़ते हुए ये बातें कह रहे थे ।६४। दया (सीता) और धर्म (लक्ष्मण) से मिश्रित यह साक्षात् करुण (राम) अथवा शक्ति और अस्त्र से युक्त साक्षात् मूर्तिमान् वीर ही यहाँ से चला जा रहा है ।६५।

अथवा नगरैश्वर्यं श्रिया साकं सुखेन च ।
वनं जिगमिषच्चैतद्दुःखेऽस्मान् क्षिपतिध्रुवम् ।६६।
प्रत्यावर्तयितुं रामं पौरैः सह समागतम् ।
सुमन्त्रं राघवो युक्त्या समाधाय न्यवर्तयत् ।६७।
अचिन्तितं समायाति दूरं याति सुचिन्तितम् ।
मनसा चिन्तयन् रामो ययौ संत्यक्तवैभवः ।६८।
ईषद्दूरं गता श्रान्ता सीता जिज्ञासुरध्वनि ।
प्रथमं जनयामास रामवक्त्रेऽश्रुविप्रुषः ।६९।
गङ्गातीरमनुप्राप्तं गङ्गासन्तरणेच्छया ।
आगतं राममन्वीक्ष्य प्रावोचत्प्ररुदन्गुहः ।७०।
धिग् राज्यं राज्यनीतिश्च द्वेष्टि स्वार्थाय यत्शुभम् ।
अन्यथाऽयं कथं यायात्कृच्छ्रं मानवतामयः ।७१।

अथवा श्री और सुख के साथ इस नगर का ऐश्वर्य ही यहाँ से वन जाने की इच्छा कर रहा है जो नियत ही हमें दुःख में ढकेल रहा है।। ६६ । राम को लौटाने के लिए नगर निवासियों समेत आये हुए सुमन्त को युक्तिपूर्वक समझाकर राम ने लौटा दिया ।६७। सुचिन्तित दूर चला जाता है, अचिन्तित समीप आ जाता है, मन से यही विचार करते हुए राम, वैभव छोड़कर, चल पड़े ।६८। थोड़ी दूर ही गयी सीता रास्ते में यह जानने की इच्छा रखती हुई (कि अभी और कितना चलना होगा) राम के मुख पर प्रथमतः आँसुओं की बूदों को उत्पन्न कर दी ।६९। गङ्गा के किनारे पहुँच कर, गङ्गा पार करने की इच्छा से आये हुए राम को देखकर रोता हुआ गुह बोला ।७०। उस राज्य और राजनीति को धिक्कार है जो स्वार्थ के लिये अच्छे का शुभ का द्वेष करती है अन्यथा मानवता के साक्षात् रूप यह राम इस कष्ट को क्यों पाते ?

अहोऽयोध्या विदीर्णाऽभूत्त्यजन्तीयं कथं न भूः ।
अवश्यं भूभृतः सङ्गाज्जाता साऽप्यचला च कुः ।७२।
कामं कार्यं जनाः कुर्युर्महान्तो लघु दारुणम् ।
लघुनामया महत्कार्यं कर्त्तव्यं निश्चितं धिया ।७३।
जनान्नेष्याम्यहं पारं तस्मादद्मि सबान्धवः ।
अतो मां कथयन्तीह निषादं भुवि मानवाः ।७४।
पापानि वर्जयन्नित्यं गुणान्गूहे यदात्मनि ।
अतो रामस्य साहाय्यं करिष्यामि गुहोऽस्म्यहम् ।।७५।।
एवं सञ्चिन्त्य धर्मात्मा गुहो रामपदौ स्पृशन् ।
स्थातुं निवेदयामास गङ्गाकूले वने न तु ।७६।
परावृत्य वनान्मित्र स्वीकरिष्ये तवार्थनाम् ।
इति प्रतिश्रुतं रामं गङ्गाया उदतारयत् ।७७।

ओह! इन्हें छोड़ती हुई अयोध्या की धरती फट क्यो नहीं गयी ? निश्चय ही राजा (पर्वत के सम्पर्क के कारण यह भी अचल (कठोर) (पत्थर) हो गयी है ।७२। बड़े लोग यथेच्छ तुच्छ दारुण कार्य भले ही करें किन्तु क्षुद्र मुझे तो बुद्धिपूर्वक महान् कार्य ही करना चाहिए ।७३। मैं लोगों को पार ले जाता हूँ, उसी से सपरिवार खाता भी हूँ। इसीलिये यहाँ लोग मुझे निषाद (नौ-पार के जाने से, षाद-खाद-खानेवाला) कहते हैं ।७४। क्योंकि मैं पापों को छोड़कर सदैव गुणों को अपने में ही ढंके रहता हूँ, इसलिये मैं राम की सहायता करूँगा, मैं गुह जो हूँ ।७५। ऐसा सोचकर, धर्मात्मा गुह राम के पैरों का स्पर्श करता हुआ राम से गङ्गा के किनारे रहने के लिए कहा, वन में नहीं ।७६। हे मित्र वन से लौटकर मैं तुम्हारी प्रार्थना स्वीकार करूँगा ऐसे वचन देने वाले राम को उसने गङ्गा से पार उतार दिया ।७७।

भरद्वाजं नमस्कृत्य प्रयागे मुनिपुङ्गवम् ।
तद्दर्शितपथेनैष प्रणमन्यमुनां ययौ ।७८।
हरन्तं हृदयं पुंसामुपमन्दाकिनि स्थितम् ।
किंशुकादि सुमैः रम्यं सुद्रुमैः परिशोभितम् ।७९।
चित्रकूटमनुप्राप्य बहुमूलफलैर्युतम् ।
सहर्षं न्यवसद् रामः पत्न्या भ्रात्रा युतोऽनघः ।८०।
एकाकिनमयोध्यायां सुमन्त्रं वीक्ष्य भूपतिः ।
शापं स्मरन्जहौ प्राणान् राम रामेत्युदीरयन् ।८१।
दिवं दशरथे याते रामेऽरण्यं गते तदा ।
मन्त्रिणो मन्त्रयाञ्चक्रुर्भरतानयनं प्रति ।८२।
दूतान् विसृज्य संगोप्य शवं राज्ञोऽपि यत्नतः ।
अयोध्या मा भवद्योध्या तदर्थं ते व्यचिन्तयन् ।८३।

प्रयाग में मुनिश्रेष्ठ भरद्वाज को प्रणाम कर, उनके दिखाये मार्ग से वह, यमुना को प्रणाम करते हुए, आगे बढ़े ।७८। किंशुक आदि फूलों से, रमणीय वृक्षों से परिशोभित, लोगों के हृदय को आकृष्ट करने वाले, मन्दाकिनी के तट पर उपस्थित नानाप्रकार के मूलफल से युक्त चित्रकूट पहुँचकर, निष्कलुष राम पत्नी और भाई समेत रहने लगे ।।७९-८०।। सुमन्त को एकाकी अयोध्या में (लौटे हुए) देखकर, (मुनि के) शाप का स्मरण करते हुए, राम-राम ऐसा कहते हुए राजा दशरथ ने प्राण छोड़ दिये ।८१। तब राम के वन और दशरथ के स्वर्ग चले जाने पर मन्त्रियों ने भरत को लाने का विचार किया ।८२। दूतों को भेजकर, राजा के शव को भी यत्नपूर्वक छिपाकर, वे यह सोचने लगे कि कहीं अयोध्या में द्वन्द्व न छिड़ जाय ।८३।

कैकेयीतनयः शीघ्रमागत्य पितुरालयम् ।
ज्ञात्वा वृत्तं पितुर्भ्रातुर्गत्वा प्रोवाच मातरम् । ८४ ।

आः कृतं किमिदं राज्ञि स्वभर्तृमृत्युकारणम् ।
बाधितया सुतस्नेहात् पापं लोकापवादकम् । ८५ ।

उपदिष्टं त्वया बाल्ये पितृतुल्योऽग्रजोमतः ।
इदानीमपकुर्वत्या नाशं प्रापितावुभौ । ८६ ।

अनार्यमाचरन्त्या किं रक्षितं वंशजं यशः ।
वैधव्यमाप्नुवत्या किं लब्धं लोकोत्तरं सुखम् । ८७ ।

कथं जिह्वा न ते भ्रष्टा बहिरास्यात् कलङ्किनी ।
ययाप्रार्थि वनं गन्तुं रामं राजीवलोचनम् । ८८ ।

असौ जीवः समेषां नः पितुरेव न केवलम् ।
अहं हतो हतं राज्यं साम्प्रतं कर्मणा तव । ८९ ।

कैकेयी पुत्र भरत तुरन्त पिता के घर आकर, पिता और भाई के वृतान्त को जानकर माता के पास जाकर बोले ।८४। अरी, पुत्र प्रेम में लोकापवाद को बाँधने वाली रानी तूँ ने पति के मृत्यु का कारण रूप यह कैसा अनर्थ कर डाला ? ।८५। बचपन में तूँ ने मुझे उपदेश दिया था कि बड़ा भाई पिता समान होता है, इस समय अपकार करती हुई तूँ ने दोनों को ही (पिता-भाई) नष्ट कर दिया ।८६। यह अनुचित कार्य करती हुई तूँने क्या कुल की कीर्ति रखी है ? या कि वैधव्य प्राप्त करती हुई अलौकिक सुख पायी है ? ।८७। जिस जीभ से तूँ ने राजीवनयन राम को वन जाने की याचना की कलङ्किनी वह तुम्हारे मुख से बाहर होकर गिर क्यों न गयी ।८८। वह पिता जी के ही नहीं हमारे सभी के प्राण हैं । तुम्हारे इस कार्य से इस समय मैं और राज्य दोनों मारे गये ।८९।

त्वदृते कोऽपि राज्येऽस्मिन्नास्ति रामापकारकृत् ।
इत्थं त्वयि मतिर्जाता भाग्यमेवात्र कारणम् । ६० ।

भरतः कुयशो भोक्ता दैवमेवं किमस्ति मे ।
अतस्त्वद्गर्भतो जातो गर्भपातो न तेऽभवत् । ६१ ।

वदिष्यन्ति जनाः सर्वे भरतेच्छानुवर्तिनी ।
कैकेयीजननी तस्य प्रादाद् रामाय काननम् । ६२ ।

कं कमहं वदिष्यामि नासीन्मेऽत्र रुचिर्मनाक् ।
प्रत्येतूक्तोऽपि तत्सर्वं नैतच्चास्ति विनिश्चितम् ।६३।

अन्तर्यामिन् स्वयंसाक्षिन् वेत्सि वृत्तं समासतः ।
स्वप्नेऽपि भरतः किंस्विद् राज्यमैच्छद् विनाग्रजम् ।६४।

नाहं लभै सुखं शान्ति तथा नश्यतु मे शुभम् ।
मनसाऽपि मतिर्मेस्याद् यदि रामं विवासितुम् ।६५।

राम का अनभल करने वाला इस राज्य में तुम्हें छोड़कर और कोई नहीं है, तुममें यह मति (कैसे) हुई, भाग्य ही इसमें कारण है ।६०। भरत अपकीर्ति का भोग करेगा, क्या मेरा यहीं भाग्य है ? क्या इसीलिये तुम्हारे गर्भ से पैदा हुआ ? तुम्हारा गर्भभात क्यों नहीं हो गया ? ।६१। सारे लोग कहेंगे कि भरत को इच्छा का पालन करती हुई, उसकी माता कैकेयी ने राम को वनवास दे दिया ।६२। मैं किस-किस से कहूँगा कि इसमें मेरी कोई भी रुचि नहीं थी ? और कहने पर यह सब लोग विश्वास करें, यह अनिश्चित ही है ।६३। हे स्वयंसाक्षी, अन्तर्यामी, तुम सारा वृत्तान्त संक्षेप में जानते हो । क्या स्वप्न में भी भरत ने बिना बड़े भाई के राज्य चाहा था ? ।६४। राम को बनवास करने की यदि मन से भी मैने सोचा हो तो मैं सुख-शान्ति न पाऊँ और मेरा सारा शुभ पुण्य नष्ट हो जाय ।६५।

सौमित्रिणा युतो रामो जनकस्यात्मजया सह ।
यस्य हेतोर्वनं यातस्तं धिग् धिङ् मम जीवनम् ।९६।

अधुनैव वनं गत्वा राममानाय्य यत्नतः ।
प्रायश्चित्तं करिष्यामि प्राक्पापस्याऽयशस्कृतः ।९७।

भरतं वनोद्यतं दृष्ट्वा निरुन्धन्गुरुरब्रवीत्
रथमुत्क्षिप्य धावन्तं वाजिनं सारथिर्यथा । ९८ ।

ऋते त्वत् कोऽस्ति विश्वस्मिन् प्राप्तं राज्यं त्यजेत्तु यः ।
राज्यत्यागेन सिद्धाऽस्ति श्रीरामानुजता त्वयि । ९९ ।

न कृत्वा पितृसंस्कारं न धृत्वा धर्मधीरताम् ।
प्रहृष्टः किं विधिज्ञस्त्वामायान्तं वीक्ष्य राघवः । १०० ।

त्वया साकं तु निष्पाप प्रयास्यामो वनं वयम् ।
प्रत्यावर्तयितुं रामं प्रियं ते जीवनावधिम् । १०१ ।

जिसके कारण जनकसुता और लक्ष्मण समेत राम वन चले गये मेरे उस जीवन को बार-बार धिक्कार है ।९६। आज ही वन जाकर, प्रयत्न पूर्वक राम को लाकर, अपकीर्तिकारी पूर्व पाप का प्रायश्चित्त करूँगा ।९७। रथ को फेंककर दौड़ने वाले घोड़े को रोक रहे सारथि के समान गुरु वसिष्ठ ने वन जाने को तैयार भरत को रोकते हुए कहा ।९८। तुम्हें छोड़कर, इस ससार में ऐसा और कौन है जो प्राप्त राज्य को छोड़े, और इस प्रकार राज्य परित्याग से तुममें राम की अनुजता सिद्ध हो गयी ।९९। पिता का संस्कार न करके, धर्म धैर्य धारण न करके वन में तुम्हें आता देखकर विधिवेत्ता राम प्रसन्न होंगे क्या ? ।१००। हे निष्पाप भरत, तुम्हारे जीवनावधि प्रिय राम को लौटाने के लिये तुम्हारे साथ वन में हम सभी चलेंगे ।१०१।

पितुरन्त्येष्टिसंस्कारं पूर्वं कुरु महामते ।
गन्तव्यं काननं पश्चादानेतुं तं पितुः प्रियम् । १०२ ।

विश्रृङ्खलं निरोद्धुं तं गजवद्वनगामिनम् ।
समर्थो भरतं जातो गुरुर्धर्माङ्कुशेन सः । १०३ ।

निवृत्ते कार्यजातेऽभूद्‌यियासुर्भरतः पुनः ।
स्फुलिङ्गोभस्मना छन्नो दीप्तो भस्मन्यपावृते । १०४ ।

मातृभिर्गुरुणा भ्रात्रा पौरैः रामं दिदृक्षुभिः ।
राज्यरक्षातिरिक्तेन सैन्येन सह सोऽव्रजत् । १०५ ।

सन्दिहानं गुहं प्रीत्या परिष्वज्यानुकूलयन् ।
निर्ममो निरहङ्कारो भरद्वाजाश्रमं गतः । १०६ ।

सत्कृतो भरतस्तत्र पात्रत्वं स्वं प्रमाणयन् ।
आतिथेयोक्तमार्गेण ससैन्यस्तरसा ययौ । १०७ ।

हे महामति ! पहले तुम पिता की अन्त्येष्टि क्रिया करो, फिर उस पितृ-प्रिय को लाने वन जाना । ०२। विश्रृङ्खल (साँकल रहित), वनगामी, गज समान उस भरत को धर्मरूपी अंकुश से रोकने में वसिष्ठ समर्थ हुए ।१०३। मृत्युसंस्कार सम्बन्धी सारे कार्यों के पूर्ण हो जाने पर भरत फिर वनगमनेच्छु हो गये । राख से ढंकी आग राख हट जाने पर प्रदीप्त हो उठती है ।१०४। राम को देखने के इच्छुक माताओं, गुरुओं, भाई, और पुरवासियों समेत भरत, राज्य की सुरक्षा से अतिरिक्त सेना को साथ लेकर वन की ओर चले ।१०५। सन्देह करने वाले गुह को प्रेम से आलिङ्गन कर, अनुकूल करते हुए, निर्मम, अहङ्कार शून्य भरत भरद्वाज के आश्रम में पहुँचे ।१०६। वहाँ सत्कार प्राप्तकर अपनी पात्रता प्रमाणित करते हुए, भरद्वाज से बताये मार्ग से ससैन्य आगे बढ़े ।१०७।

पदार्ति राममानेतुं पदातिर्भरतोऽव्रजत् ।
करुणेनेव सर्वेषां हृदयं पुनरञ्जयत् । १०८ ।

अग्रजाऽऽक्रान्तमध्वानं गच्छन्रीत्याग्रजस्य च ।
नासौ किं भरतो रामाऽनुजत्वं प्रत्यपद्यत् । १०९ ।

अथवोत्साहसंयुक्तः कारुण्यं जनयन् हृदि ।
यत्र रामो गतस्तत्र भरतोऽहास्त शून्यहृत् । ११० ।

रामो मां पूर्ववद्द्रष्टा मात्रा मां योक्ष्यतेऽथवा ।
विविधं तर्कयन्नित्थं पन्थानं स स्खलन्ययौ । १११ ।

अपश्यद् भरतं यावत् राम उत्फुल्ललोचनः ।
तावदन्वभवत्पादं स आर्द्रं प्रणताश्रुभिः । ११२ ।

भरतं कथञ्चिदुत्थाप्य पतितं दण्डवत्पदोः ।
समालिङ्ग्य समाश्वास्य रामोऽप्राक्षीदनामयम् । ११३ ।

पदचारी राम को लाने भरत भी पैदल ही गये इस प्रकार साक्षात् करुणा से उन्होंने सभी के हृदय को पुनः प्रीणित किया ।१०८। बड़े-भाई से संक्रान्त रास्ते पर अग्रज के ही ढंग से चले जाते हुए इस भरत ने राम की अनुजता प्रमाणित नहीं कर दी क्या ? ।१०९। अथवा लोगों के हृदय में रुणा उत्पन्न करते हुए उत्साह सम्पन्न शून्य हृदय भरत वहाँ गये जहाँ राम गये थे ।११०। राम मुझे पहले जैसा ही देखेंगे ? या मुझे भी माँ से जोड़ देंगे ? इस प्रकार अनेकों प्रकार की बातें सोचते हुए वह गिरते-पड़ते रास्ते पर चले जा रहे थे ।१११। प्रसन्ननयन राम ने जब तक भरत को देखा तब तक उन्होने प्रणत भरत के आसुओं से पैर को आर्द्र हुआ अनुभव किया ।११२। दण्डवत् पैरों पर गिरे हुए भरत को किसी प्रकार से उठाकर राम ने आलिङ्गनकर, आश्वस्त कर अनामय पूछा ।११३।

आश्वस्तो भरतः प्रोचे कोऽपराधः कृतो मया ।
यद् भवान् वनमायातो हित्वा मामप्यनाथवत् ।११४।

कुशलं किमयोध्यायां जातं राज्यमराजकम् ।
स्वयं पश्यतु माञ्चेमा मातृः वैधव्यकर्षिताः ।११५।

न कोऽपि मां विजानातु केन मे किं प्रयोजनम् ।
भवानेवावजानीतात्तदा मे मरणं शुभम् ।११६।

एवमुक्त्वा त्यजत्यश्रु भरते मौनमाश्रिते ।
रामेम्लानमुखाम्भोजे दृष्टाः शोकाश्रुबिन्दवः ।११७।

प्रणम्य प्रथमं पूज्यान् पश्चात् पित्रेऽश्रुतर्पणम् ।
कृत्वा निर्वर्तयामास स निवापादिसत्क्रियाः ।११८।

अन्येद्यू रह आसीने भरते भरताग्रजे ।
कैकेयी स्वयमागत्य रुदती राममब्रवीत् ।११९।

आश्वस्त होकर भरत ने कहा-मैंने कौन सा अपराध किया था जो मुझे अनाथ जैसा छोड़कर आप वन चले आये ।११४। अयोध्या में क्या कुशल है, राज्य अराजक हो गया, आप स्वयं मुझे और वैधव्य पीडित इन माताओं को देखें ।११५। भले ही कोई न जाने कि मुझसे किससे और कौन प्रयोजन है? आप ही जान जॉय तो मेरा मरना ही अच्छा हो ।११६ ऐसे कहकर ऑसू बहाते भरत के चुप हो जाने पर, राम के म्लान-अम्लान मुख कमल पर ऑसू की बूंदें देखी गयीं ।११७ पहले पूज्यजनों को प्रणाम कर फिर पिता के लिये प्रथम अश्रुतर्पण करके पश्चात् राम ने निवापादि सत्कार्य संपन्न किये ।११८। दूसरे दिन एकान्त में जब भरत और राम बैठे थे, स्वयं आकर रोती हुई कैकेयी ने कहा ।११९।

पुत्र राम कृतं कार्यं यन्मया कुयशस्करम् ।
अग्नि विनाऽप्यहं नित्यं दहन्ती शुष्कतां गता ।१२०।

भगवानेव जानाति क्व भेदो युवयोः कृतः ।
भरतादधिकं सत्यं त्वमेवासीः मम प्रियः ।१२१।

न जाने हेतुना केन तद्दिने मे मतिर्गता ।
वनं यस्मात्त्वमायातः प्रियया स्नुषया सह ।१२२।

इदानीं हृदयेऽस्मिन्मेऽनुशयः किम्प्रकारकः ।
को जानाति न यस्यास्ति प्रतीकारः कथञ्चन ।१२३।

किं ब्रूयान्नथवा कुर्यां दध्यां वा जीवनं कथम् ।
क्षमस्व मम दौरात्म्यं क्षमासारा हि साधवः ।१२४।

इत्येवं मध्यमाम्बां स्वां क्रन्दन्तीं दीनचेष्टिताम् ।
उवाच करुणार्द्रोऽसौ रुग्णामिव चिकित्सकः ।१२५।

पुत्र राम मैने जो अपयशकारी कार्य किया, उससे बिना आग के भी नित्य जलती हुई मैं सूख गयी हूँ ॥१२०॥ भगवान् भी जानता है कि मैंने तुम दोनों में कहाँ कोई भेद किया था, तुम मेरे लिये भरत से भी अधिक प्रिय थे ॥१२ ॥ न जाने किस कारण से उस दिन मेरी बुद्धि नष्ट हो गयी थी, जिससे तुम प्रिय वधू के साथ वन आये ॥१२२॥ कौन जानता है कि इस समय मेरे हृदय में कितना पश्चाताप है, जिसका किसी प्रकार से प्रतीकार नहीं ॥ २३॥ क्या कहूँ, क्या करूं, अथवा जीवन कैसे धारण करूँ? मेरी दुष्टता को क्षमा करें क्योंकि सज्जन क्षमाधनी होते हैं ।१२४। इस प्रकार दुःखी अवस्था वाली रोती हुयी अपनी मध्यम माता को देखकर, रोगिणी के लिये चिकित्सक जैसे करुणार्द्र राम बोले ॥१२५॥

न मातर्जातु ते दोषः पितुर्वा भरतस्य वा ।
नाहमैच्छम् वनं गन्तुमासीद्भावि परंन्विदम् ।१२६।

सम्पत्स्यते तदेवान्ते यच्च दैवेन निश्चितम् ।
भाव्यमानं फलं यादृग् बुद्धिर्भवति तादृशी ।१२७।

एवम्बहुविधैर्वाक्यैः समाश्वास्य स्वमातरम् ।
आचार्यस्य गुरोर्वाक्यं शुश्रूषुस्तमुपागमत् ।१२८।

आचार्येण तथा पौरैर्दृष्ट्वाऽऽसीनं समं शुभम् ।
रामं स भरतः प्रोचे कृत्वा मुकुलितौ करौ ।१२९।

वयमत्र महाभागप्रत्यावर्तयितुं पुनः ।
नृपं निसर्गतः सिद्धं त्वामयोध्यां समागताः ।१३०।

यदि मामीहते तात प्रजाश्चापीहते यदि ।
तदाऽस्माभिः समं भद्र निवर्तेत महामते ।१३१।

माता जी, कदाचित् न आपका दोष था, न पिता का और न भरत का ही, मैं भी वन जाना नहीं चाहा था, पर यह तो होना ही था । यह भावी था ॥१२६॥ भाग्य ने जो निश्चित किया है, अन्त में होगा वही । जैसा भावी परिणाम होता है, बुद्धि भी वैसी ही हो जाती है ॥१२७॥ ऐसी ही तमाम बातों से अपनी माता को आश्वासन देकर आचार्य गुरु की बात सुनने की इच्छा से उनके पास आये ॥१२८॥ आचार्य और पुर वासियों के साथ पवित्र राम को बैठे हुए देखकर भरत ने हाथ जोड़कर राम से कहा ॥१२९॥ हे महाभाग, स्वभावतः राजा बने आपको अयोध्या में लौटाने के लिये हम लोग यहाँ आये हैं । १३०॥ हे भद्र यदि आप मुझे और प्रजाओं को चाहते हैं तो हे महामति, आप हम सबों के साथ लौट चले ॥१३१॥

निशम्य भरतस्येदं वाक्यं बुद्धिमतां वरः ।
पित्रा दत्तं वने वासं श्रेयस्करममन्यत ।१३२।

राज्यं तु भरतायादात् मह्यं वासं वनें तथा ।
सत्यसन्धो नृपश्रेष्ठः पिता मे मातृचोदितः ।१३३।

नाहं राज्यं ग्रहीष्यामि निर्वर्तिष्ये वनान्न वा ।
द्वाभ्यामपि हि कर्मभ्यां सत्यं स्यात्त्रुटितं पितुः ।१३४।

भूत्वा भ्रष्टप्रतिज्ञोऽसौ पिता मे निरयं व्रजेत् ।
नेदं काङ्क्षाम्यतो गन्तुं बुद्धिर्नादिशतीहमाम् ।१३५।

एवमुक्त्वा गते रामे तूष्णीं स भरतः पुनः ।
उवाच विलपन्रामं किं भवानत्र वक्ति नः ।१३६।

"अहं राघव कैकेय्या वरदानेन मोहितः ।
अयोध्यायां त्वमेवाद्य भव राजा निगृह्यमाम्" ।१३७।

भरत के इस वाक्य को सुनकर बुद्धिमानों में श्रेष्ठ राम ने पिता से दिये वनवास को ही श्रेयस्कर माना ॥१३२॥ सत्यप्रतिज्ञ, राजश्रेष्ठ मेरे पिता ने माता जी कहने पर भरत को राज्य और मुझे वनवास दिया था ।१३३। न मैं राज्य लूँगा न वन से ही लौटूँगा क्योंकि इन दोनों ही कार्यों से पिता जी का सत्य टूटता है ॥१३४॥ भ्रष्ट प्रतिज्ञ होकर मेरे पिता जी नरकगामी हों, मै यह नहीं चाहता हूँ, इसलिये मेरी बुद्धि लौट चलने का आदेश नहीं देती ॥१३५॥ ऐसा कह कर राम के चुप हो जाने पर भरत ने रोते हुए फिर राम से कहा तो फिर आप हमें क्या कहते हैं ।१३६ "हे राम, मैं कैकेयी के वरदान से किंकर्तव्यमूढ हूँ, मुझे बन्दी बनाकर आज से तुम्ही अयोध्या में राजा बन जाओ" ॥१३७।

सत्यसन्धेन नः पित्रा भवानुक्तोऽनया गिरा ।
अकाङ्क्षत् स वनं तुभ्यं नार्थस्तस्य महामते ।१३८।
श्रुत्वैतद्वचनं रामो भरतस्याक्लिष्टकर्मणः ।
भरतं प्रहसन्नूचे न श्रुतं किं वचोऽपरम् ।१३९।
"श्रेयसे वृद्धये तात पुनरागमनाय च ।
गच्छ स्वारिष्टमव्यग्रः पन्थानमकुतोभयम्" ।१४०।
अतश्चारित्र्यसंयुक्त स्थातव्यं वने मया ।
पिता मे नास्त्ययोध्यायां यश्च मामुपदेक्ष्यति ।१४१।
स त्वं गच्छ यथाशीघ्रं कुरु राज्यं महामते ।
आगमोक्तविधानेन प्रजाः प्रीत्यानुपालयन् ।१४२।
बाष्पस्तम्भितकण्ठोऽसौ श्रुत्वैतद्रामनिश्चितम् ।
उवाचभरतोरामं कृच्छ्राद् धारितजीवनः ।१४३।

सत्यसन्ध हमारे पिता ने यह बात आप से कही थी, हे महामति, उनका यह अभीष्ट नहीं था कि तुम्हारे लिये उन्होंने वनवास चाहा ।।१३८।। शुभकर्मा भरत के इस वचन को सुनकर, हँसते हुए भरत से राम ने यह भी कहा कि तुमने यह दूसरी बात भी नहीं सुनी थी ? ।।१३९।। पिता जी ने यह भी कहा था—हे तात श्रेय के लिए, वृद्धि के लिए, पुनः आगमन के लिए, अव्यथित होकर, निर्भय होकर अपने अरिष्ट (अन-भीष्ट भी मार्ग पर जाओ ।।.४०।। इसलिये हे चारित्र्यसंपन्न मुझे वन में रहना चाहिए। इस समय अयोध्या में हमारे पिता हैं नहीं जो हमें उपदेश दे सकेंगे ।।१४१।। इसलिये हे महाबुद्धि तुम शीघ्र अयोध्या लौट जाओ और शास्त्रोक्त विधि से प्रेम पूर्वक प्रजा का पालन करते हुए राज्य करो ।।१४२।। राम के इस निश्चय को सुनकर आँसू से अवरुद्ध कण्ठ तथा कठिनाई से जीवन धारण करने वाले भरत ने राम से कहा ।।१४३।।

सत्यं वदति धर्मात्मन् भवतोऽहं प्रियानुजः।
वत्स्यामि भवता साकं भवन्तं प्रतिपालयन् ।१४४।
मत्वा पितृवचो यस्माद् भवानत्र समागतः ।
तस्मादत्र निवत्स्यामि नाहं पित्रा प्रचोदितः ।१४५।
स्वपित्रा नाहमुक्तोऽस्मि नेच्छाऽऽसीन्मयिचास्यवा ।
कनीयांस्तु भवेद्राजा नेयमस्ति परम्परा ।१४६।
अतो हे नरशार्दूल त्वयासाकमरिन्दम ।
निवत्स्यामि गमिष्यामि राज्यं कर्तुं कदापि न ।१४७।
प्रकृतेः प्रत्यये लुप्ते जाते दशरथात्यये ।
परस्परममन्येतामुभौ प्रत्ययलक्षणम् ।१४८।
उभौ दाशरथी बालौ सिद्धान्तपरिरक्षकौ ।
दृष्ट्वाऽऽचार्यो वशिष्ठस्तु समाधानं दिशन्जगौ ।१४९।

हे धर्मात्मा आप ठीक कहते हैं, मैं आपका प्रिय अनुज हूँ, इसलिए आपकी सेवा करता हुआ वन में ही आपके साथ रहूँगा ॥१४४॥ क्योंकि आप पिता का वचन मानकर यहाँ आये हैं, इसलिए मैं यहीं रहूँगा, मुझे पिता ने कुछ नहीं कहा है ॥१४५॥ न पिता ने मुझसे कहा था, न राज्य की मुझे इच्छा थी, और यह परम्परा भी नहीं है कि छोटा भाई राजा बने ॥१४६॥ इसलिए हे नरसिंह, मैं तुम्हारे साथ ही रहूँगा, राज्य करने कभी नहीं जाऊँगा ॥१४७॥ प्रजा का विश्वास समाप्त हो जाने पर, पिता राजा दशरथ के निधन हो जाने पर दोनों ने ही एक दूसरे के विश्वास को स्वीकारा ॥१४८॥ दशरथ के दोनों बच्चों को सिद्धान्त परिरक्षक देखकर गुरु वशिष्ठने समाधान देते हुए कहा १४९।

संदृश्य द्वावपीदानीं बालौ सत्यं प्रतिस्थितौ ।
एषोऽस्मि परमप्रीतो रघुवंशपुरोहितः ।१५०।

कर्त्तव्यं किमकर्त्तव्यं विषयेऽस्मिन्मतिर्मम ।
रामो गच्छेद् वनं नूनं भरतो न नृपो भवेत् ।१५१।

अयोध्यां भरतो गच्छेद् गृहीत्वा रामपादुके ।
अवधौ पूर्णतां याते रामो भवतु शासकः ।१५२।

अनुल्लंघ्य गुरोर्वाक्यं वदत्योमिति राघवे ।
दीनवद् भरतः प्रोचे मन्येऽहं सविदा सह ।१५३।

अयोध्यां नैव यास्यामि नन्दिग्रामे वसन्नहम् ।
व्यवस्थां च करिष्यामि भूत्वा प्रतिनिधिः स्वयम् ।१५४।

अयोध्यां तु प्रवेक्ष्यामि साकं भ्रात्राऽन्यथा नहि ।
नागच्छेदवधौ भ्राता प्रवेक्ष्यामि हुताशनम् ।१५५।

इस समय दोनों बच्चों को सत्य के प्रति अवस्थित देखकर रघुवंश पुरोहित यह मैं बहुत प्रसन्न हूँ ॥१५०॥ क्या करना चाहिए? क्या नहीं करना चाहिए? इस विषय में मेरा विचार है कि राम वन जाँयें और भरत भी राजा न रहें ॥१५१॥ राम की पादुका (खड़ाऊँ) लेकर भरत अयोध्या जाँय। अवधिपूर्ण हो जाने पर राम राजा हो जायें ॥१५२॥ गुरु की बात का अनुल्लंघन कर राम के ठीक है, ऐसा कहने पर दुःखी से भरत ने कहा कि मैं इसे एक शर्त पर मानूंगा ॥१५३॥ मैं अयोध्या में नहीं जाऊँगा किन्तु नन्दिग्राम में रहते हुए राम का स्वयं प्रतिनिधि बनकर व्यवस्था करूँगा ॥१५४॥ मैं अयोध्या में प्रवेश करूँगा तो भइया के साथ ही अन्यथा नहीं। अवधि समाप्ति पर यदि भइया नहीं आये तो अग्नि में प्रवेश कर जाऊँगा ॥१५५॥

अयमिह भरतो यदीत्थं भवेद्वा शुभाऽस्य प्रसूः
प्रभवति हि फलं तरुतस्तथा यादृगास्ते तरुः ।
न्यवृतदिति जनैर्वदद्भिश्च साकं स रामानुजो
भवतु विलसितं विधातुः क्षमः कोऽपनेतुं च तत् ।१५६।
श्री श्यामान्वितसुन्दरोऽस्ति जनको माता च यस्याम्बिका
यः श्रीराजकिशोर आप्तचरितः शाण्डिल्यवंशोद्भवः
साहित्यस्य च दर्शनत्वमसकृद् व्याख्यायतोऽस्मिन् महा-
काव्ये चारुणि राघवेन्द्रचरिते सर्गो गतश्चाष्टमः ।५७।

वृक्ष जैसा होता है उस वृक्ष से वैसा ही फल पैदा होता है, यह भरत ऐसा है या इसकी प्रसू (जननी) शुभ है ऐसा कह रहे लोगों के साथ वह भरत परम शान्ति प्राप्त किये, विधाता की जो इच्छा है (विलास है) उसे हटाने में कौन समर्थ है? ॥१५६॥ श्री श्यामसुन्दर जिनके पिता और माता अम्बिका हैं, शाण्डिल्यगोत्रोत्पन्न आप्त चरित जो श्री राज-किशोर मणि हैं, साहित्यदर्शन की बराबर व्याख्या कर रहे उनके इस सुन्दर राघवेन्द्रचरित महाकाव्य में आठवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥१५७॥

नवमः सर्ग

भरते सम्प्रयाते स रामो बुद्धिमतां वरः
चिन्तयामास संत्यक्तुं चित्रकूटमथाश्रमम् ।१।

उत्पन्नां जनसम्पर्कात् विचिकित्सां हृदिस्थिताम्
मुनीनां वीक्ष्य धर्मात्मा चित्रकूटनिवासिनाम् ।२।

मात्रादिसेवितं स्थानं दृष्ट्वा शून्यं च साम्प्रतम्
क्षणं तत्राप्यवस्थातुं नैच्छद् रामो धृतव्रतः ।३।

अन्येद्युः स उषस्येव नभसि क्षीणतारके
पथिदर्शकरूपेणागन्तुमुत्के विभावसौ ।४।

गन्धवाहे शनैर्वाति शिशिरे सह सीतया
सहानुजो ययौ शृण्वन् वाशितं जयवाचकम् ।५।

भरत के चले जाने पर बुद्धिमानों में श्रेष्ठ उन राम ने अब चित्रकूट आश्रम को छोड़ देने का विचार किया ॥१॥ धर्मात्मा राम ने जनसम्पर्क से उत्पन्न चित्रकूट निवासी मुनियों की हृदयस्थ (अव्यक्त) विचिकित्सा (परेशानियों) को देखकर-माताओं आदि से सेवित और अब उनसे शून्य उस स्थान को देख कर धैर्यशील उन्होंने एक क्षण भी वहां रहने की इच्छा नहीं रखी ॥२-३॥ दूसरे दिन प्रातःकाल ही जब आकाश में विरल-तारे रह गये थे और राह में सूर्य दर्शक के रूप में आने की अभिलाषा (उत्कण्ठा) युक्त हुए, शीतल मन्द वायु चल रही थी, सीता के साथ अनुज समेत श्रीराम पक्षियों के जयवाचक कलगान को सुनते हुए चल पड़े ॥४-५॥

सम्प्राप्यात्रिमुनेः स्थानं चन्द्रवन्नेत्रवल्लभः
सानुसूययतेः पादौ ववन्दे श्रद्धया सह ।६।
श्रावं श्रावं तु यद्वृत्तमासीद् द्रष्टुं समुत्सुका
दर्शं दर्शं च तां तुष्टाऽनुसूयाऽभूद् विदेहजाम् ।७।
बरा सीता हि नारीणां यदियं पतिवर्त्मगा
पतिमन्वेति किं राज्ञी या सूर्यं नैव पश्यति ।८।
श्रमस्वेदं वहन्तीयं प्रकृत्या कोमलाङ्गना
स्वेदापनयने पत्युः प्रवृत्ताञ्चलवायुना ।६।
पादचिह्ने पुनः पत्युः क्षिपन्ती प्रान्तरे पदम्
कुरुते सा करस्पर्शात् पत्युः पादौ गतक्लमौ ।१०।
शीलमासाद्य वैदेह्याः वनस्थं राघवं प्रति
अनसूयाऽकरोत् सीतामाशिषा समलङ्कृताम् ।११।

चन्द्रमा के समान नयनभिराम श्रीराम अत्रिमुनि के आश्रम में पहुँच कर अनुसूया समेत यति (अत्रि) के पैरों को श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया ।६। जिसके(जिस) वृत्तान्त को सुन-सुनकर अनुसूया देखने को उत्सुक थी उस सीता को देख देखकर सन्तुष्ट हो गयी ॥७॥ पतिपथ की अनुगामिनी यह सीता निश्चय ही नारियों में श्रेष्ठ है जो सूर्य को भी नहीं देखती (असूर्यम्पश्या राजदाराः) वह रानी क्या पति के पीछे चलेगी ॥८॥ स्वभाव से ही सुकुमारी यह नारी स्वयं पसीने से तर है (फिर भी) आँचल की हवा से पति के पसीने को हटाने (सुखाने) में लगी है ॥६॥ फिर भी जंगल में पति के पदचिह्नों पर पाँव रखती हुई वह सीता पति के पैरों की थकान (कर स्पर्श से दबाकर मिटा रही है ॥१०॥ वनवासी राघव राम के प्रति जनक नन्दिनी के शील को देख कर अनसूया ने उसे आशीर्वाद से विभूषित किया ॥११॥

अङ्गरागं वरं माल्यं वस्त्रमाभरणं तथा
म्लानिदोषैरसंस्पृष्टं ददौ तस्यै शुचिव्रता ।१२।

अभ्यनुज्ञामृषेः प्राप्य रामस्तापसमण्डलम्
गत्वा शुश्राव तत्कष्टं रक्षोभिः प्रत्यहःकृतम् ।१३।

निश्चित्य विरुजः कर्तुं दण्डकारण्यवासिनः
ददर्श प्रचलन् रामो विराधं राक्षसाधमम् ।१४।

ब्रह्मणो वरदानेन शस्त्रावध्यं भयङ्करम्
शस्त्राघातैः श्लथं कृत्वा श्वभ्रे तं सन्न्यपातयत् ।१५।

अनन्तरं मुनिं द्रष्टुं शरभङ्गमथाद्भुतम्
गच्छन् ददर्श रामस्तं देवसङ्घैः समावृतम् ।१६।

नत्वा स्थितो यदा रामः देवागमनकारण्
पर्यपृच्छत् तदाऽश्रौषीत् मुनेर्वाचमनिन्दिताम् ।१७।

शुचिव्रत मुनि पत्नी ने सीता को मालिन्यादि विकार शून्य उत्तम लेप माल्य तथा वस्त्रालङ्कार प्रदान किये ॥१२॥ ऋषि (अत्रि) की आज्ञा लेकर राम ने पस्वि समूहों में जाकर राक्षसों के द्वारा उनके प्रति प्रतिदिन किये जाने वाले कष्टों को सुना ॥१३॥ दण्डक वनवासी लोगों को दुःखरहित करने का निश्चय (प्रण) कर चलते हुए श्रीराम ने राक्षसाधम बिराधा को देखा ॥१४॥ ब्रह्मा के वरदान से शस्त्र से अवध्य, भयङ्कर उसे शस्त्रों से शिथिल कर गर्त में डालकर मार डाला ॥१५॥ इसके बाद अद्भुत ऋषि शरभङ्ग को देखने के लिये जाते हुए श्रीराम ने उन्हें देववृन्द से घिरे हुए देखा ॥१६॥ प्रणाम कर खड़े हुए श्रीराम ने जब देवों के आगमन का कारण पूँछा तो मुनि की (इस) प्रशस्त वाणी को सुना ॥१७॥

प्रसन्ना मां निनीषन्ति ब्रह्मलोकमिमे सुराः
ब्रह्मलोकं न गच्छामि त्वामदृष्ट्वा प्रियातिथिम् ।१८।
नराणामद्वितीयं त्वां स्वोपमानं स्वयंगतम्
अदृष्ट्वा मे मतिस्तात क्वचिद् गन्तुं न वाञ्छति ।१९।
जानाम्यध्यवसायं ते मदर्थं समुपागतः
अतस्त्वं सुप्रसन्नः सन् भुङ्क्ष्व मे तपसां फलम् ।२०।
नामैव केवलं यस्य सर्वेच्छापरिपूरकम् ।
रूपवान् स स्वयं भाग्यादागतः सपरिच्छदः ।२१।
तिष्ठ यावदहं यामि तवलोकं सनातनम्
द्रष्टुमेवापि यं देवाः सन्ति नित्यं हि गृध्नवः ।२२।
एवमुक्त्वा विनिर्दिश्य सुतीक्ष्णाश्रमपद्धतिम्
मुनिश्चितां समाधाय प्रविवेश हुताशनम् ।२३।

प्रसन्न ये देवता मुझे ब्रह्मलोक लेजाना चाहते हैं किन्तु) प्रिय अतिथि तुम्हें बिना देखे मैं ब्रह्मलोक नहीं जाऊंगा (कैसे जा सकता हूँ) ॥१८। हे तात ! अपने ही उपमान, मनुष्यों में अद्वितीय नारायण आपको बिना देखे मेरी बुद्धि कहीं भी जाने की इच्छा नहीं रखती ॥१९॥ मैं आपके निश्चय को जानता हूँ, आप मेरे लिये ही आये हैं, इसलिये विधिवत् प्रसन्न आप मेरी तपस्याओं के फल का उपभोग करें ॥२०॥ जिसका नाम मात्र ही सभी (सभी की) इच्छाओं का परिपूरक है, सौभाग्य से वह (साक्षात्) सपरिकर स्वयं यहाँ आ गया है ।।२१॥ आप रुकें, जब तक मैं आपके उस सनातन लोक को जाता हूँ जिसे देखने को देवलोग भी नित्य ही अभिलाषी (लोभी इच्छुक) रहते हैं ।।२२॥ ऐसा कह कर सुतीक्ष्ण मुनि के आश्रम का मार्ग बताकर समाधि लगकर मुनि ने स्वयं को योग अग्नि में प्रवेश कर लिया॥२३॥

अनन्तरं महातेजाः पर्यपृच्छदनामयम्
तत्रत्यानां मुनीनां स दण्डकारण्यवासिनाम् ।२४।
मुनयश्च तदा प्रोचुः कदनं कौणपैः कृतम्
रामेणापि निशम्यैतन्निर्भयाः मुनयः कृताः ।२५।
ततो रामो गतः शीघ्रं सुतीक्ष्णस्याश्रमं प्रति
शरभङ्गोपदेशेन कर्तुं व्यवसितं महत् ।२६।
देहिनां दुर्गमे घोरे श्वापदैश्चरिते पथि
यान्तीं वीक्ष्याऽब्रवीद् रामः "सीता सत्यं विदेहजा" ।२७।
तपोलक्ष्म्या युतं दान्तं जटावल्कलधारिणम्
सुतीक्ष्णं मुनिमासाद्य नमन् प्रोवाच राघवः ।२८।
ऋषे सर्वज्ञ रामोऽयं ससीतः सहलक्ष्मणः
पादौ ते वन्दते भक्त्या प्रत्यवायोद्धृतौ क्षमौ ।२९।

इसके बाद उन महातेजस्वी राम ने वहाँ रहने वाले दण्डक वनवासी मुनियों का अनामय कुशल क्षेम पूंछा ॥२४॥ तब मुनियों ने राक्षसों से किये गये पापों को बताया और राम ने इस सबको सुनकर, मुनियों को निर्भय किया ॥२५॥ इस बाद राम ने शरभङ्ग मुनि के उपदेश से महान् कार्य सम्पन्न करने के लिये शीघ्र सुतीक्ष्ण मुनि के आश्रम की ओर प्रस्थान कर दिया ॥२६॥ प्राणियों से दुर्गम, घोर तथा हिंस्र पशुओं से सेवित रास्ते में चलती सीता को देखकर राम ने कहा "सच ही सीता विदेहजा है" ॥२७॥ तपः श्री समेधित, दान्त, जटावल्कल धारी सुतीक्ष्ण मुनि के पास पहुँच कर, प्रणाम करते हुए श्री राम ने कहा ।२८। हे सर्वज्ञ ऋषि सीता लक्ष्मण समेत यह राम विघ्नापसार में समर्थ आपके पैरों में भक्तिपूर्वक प्रणाम करता है ॥२९॥

सुतीक्ष्णः सहसोत्थाय स्वासनात् कुशनिर्मितात्
हस्तौ जग्राह रामस्योपपादं समुपागतौ ।३०।
स्वागतं ते महाभाग स्वयं मे गृहमागत
नित्यं कामयमानस्य स्थितस्य निजवेश्मनि ।३१।
विचिन्वन् स्वजनान् नित्यं दण्डकारण्यवासिनः
व्याजादरण्यवासस्य भ्राम्यसि स्वस्त्रिया सह ।३२।
क्व दुःखं वनवाससस्य दुर्गवाससुखं क्व च
यत्नः शिक्षयितुं तेऽस्ति 'महतामेकरूपताम्' ३३
लघोरहं लघुः क्वास्मि त्वं क्वासि महतो महान्
अनुभावस्तवैवायं यः प्रयच्छति मे यशः ३४
कुरुतादद्य वासं मे गृहे मूलफलाशिनः
स्वेच्छया राम पश्चात्त्वं स्वाभीष्टविषयं व्रज ३५

कुश निर्मित अपने आसन से सहसा उठकर सुतीक्ष्ण मुनि ने अपने पैरों के समीप पहुँचे हुए राम के हाथों को पकड़ लिया ।।३०।। अपने आवास में रहते हुए नित्य ही आपकी कामना करने वाले मेरे घर पर स्वयं पधारे महाभाग आपका स्वागत है ।।३१।। दण्डकारण्य निवासी अपने भक्तों को नित्य ही खोजते हुए वनवास के बहाने अपनी पत्नी के साथ घूम रहे हो ।।३२।। कहाँ वनवास का दुःख? और कहाँ दुर्गवास का सुख? 'बड़े लोगों की एक रूपता-समरूपता' की शिक्षा देने का यह तुम्हारा यत्न है ।।३३।। क्षुद्र से भी क्षुद्र कहाँ मैं ? और महान् से भी महान् कहाँ आप ? यह तुम्हारा प्रभाव ही है, जो मुझे यश प्रदान कर रहा है ।।३४।। आज आप फल-मूल खाने वाले मेरे घर में निवास करें, इसके बाद हे राम! आप अपनी इच्छा से अपने अभीष्ट प्रदेशों में जाँय ।।३५।।

एवमुक्त्वा स्थिते तस्मिन् सुतीक्ष्णे जडवन्मुनौ
राघवः स्वकरस्पर्शात् तं पुनः प्रत्यबोधयत् ३६
निर्वर्त्य स विधिं सायं सर्वभूतहिते रतः
उवाच रामः कार्यार्थी सुतीक्ष्णं मुनिमद्भुतम् ३७
त्वं मां ममेतिवृत्तं च भाविनीं भाग्यपद्धतिम्
बुद्ध्या त्रिकालदर्शिन्या जानासि विधिवन्मुने ३८
अधुना किं मया कार्यम् स्थितेन दक्षिणे वने
सहागतेन दिष्टयाऽत्र सीतया लक्ष्मणेन च ३९
साभिप्रायं वचः श्रुत्वा रामस्याक्लिष्टकर्मणः
क्षणं नोवाच पूतर्षिर्ध्यानस्तिमितलोचनः ४०
उवाच स पुनर्धीमान् नीतिमन्तं विचक्षणम्
सर्वलोकप्रियं रामं धर्मस्य परिरक्षकम् ४१

ऐसा कहकर उन सुतीक्ष्ण मुनि के जडवत् अचल हो जाने पर राम ने अपने हॉथ के स्पर्श से स्पर्श से उन्हें पुनः जगाया ॥३६ समस्त प्राणियों के कल्याण में निरत, कार्यार्थी राम ने सायंकालीन विधि समाप्त कर अद्भुत मुनि सुतीक्ष्ण से कहा ॥३७॥ हे मुनि ! आप अपनी त्रिकालदर्शी दृष्टि से मुझे, मेरे वृत्तान्त, तथा भावी भाग्यपथ को भलिभाँति जानते हैं ॥३८॥ सौभाग्य से सीता लक्ष्मण समेत यहाँ आये हुए, दक्षिण के वनों में रहते मुझे अब क्या करना चाहिए ? ॥३९॥ निर्दुष्टकर्म श्रीराम के साभिप्राय कथन को सुनकर ध्यान निमीलित नेत्र पवित्र मुनि एक क्षण तक कुछ नहीं बोले ॥४०॥ फिर बुद्धिमान् वह मुनि, नीतिमान् पण्डित, सर्वलोकप्रिय, धर्म के परिरक्षक, श्रीराम से बोले ॥४१॥

सम्प्रदातुं यशो मह्यं केवलं शत्रुसूदन
वाचं वाचंयमस्याद्य चिकीर्षुस्त्वं निरर्गलाम् ।४२।

इयं पृथ्वी यतो नित्यमूर्ध्वाधः परिगच्छति
अतोऽत्रत्या जनाः सर्वे भजन्ते नैकरूपताम् ।४३।

यथा दिवा पुना रात्रिः रात्र्यन्ते च पुनर्दिवा
तथायं जीवलोकोऽपि सुखं दुःखं समश्नुते ।४४।

जन्तुभ्यः क्रूरकर्मभ्यः परित्रातुमदो जगत्
उत्पादितं महत्तेजः क्षात्रं विश्वसृज़ा भुवि ।४५।

तद्धन्त साम्प्रतं श्रीमन् अमुष्मिन् दक्षिणापथे
मुनिना रैणुकेयेन नीतं नामावशेषताम् ।४६।

माभूद्धर्मस्य लोपोऽस्मिन् भुवो भागे मनोः क्वचित्
गुरुर्महानगस्त्यो मे यतमान इहस्थितः ।४७।

हे शत्रुसूदन, केवल मुझे यश प्रदान करने के लिये आज तुम वाचंयमी (मौनी) मेरी वाणी को स्वतन्त्र करना चाहते हो । ४२।। क्योंकि यह पृथ्वी नित्य ही ऊपर नीचे जाती है इसलिये यहाँ के सारे लोग एकरूप नहीं होते ।।४३।। जैसे दिन फिर रात्रि और रात्रि के बाद फिर दिन आता है उसी प्रकार यह जीव लोक भी सुख दुःख का भोग करता रहता है ।।४४।। विश्वविधाता ने क्रूर कर्मी प्राणियों से इस संसार की रक्षा करने के लिए धरती पर क्षात्ररूप महान् तेज को उत्पन्न किया है ।।४५।। श्रीमन्! इस समय इस दक्षिणापथमें रेणुका पुत्र मुनि परशुराम ने उस तेज को समाप्त कर दिया है ।४६।। पृथ्वी के इस भाग में मनु का धर्म कहीं लुप्त न हो, इसके लिए मेरे महान् गुरु अगस्त्य यहाँ रहकर प्रयास रत हैं ।।४७ ।।

दर्पोद्धतं नगं विन्ध्यं दर्पहीनं विचक्षणः
कृत्वाऽत्रैव बह्वोः कालात् रक्षति स्वार्यपद्धतिम् ।४८।
आर्यपद्धतिहीनानां शमनाय मनस्कृता
इहैव क्षयतां नीतौ वातापी चेल्वलः पुनः ।४९।
तपःशक्तिमता येन सागरश्चुलुकीकृतः
मर्यादामनतिक्रम्याऽवति धर्मं सनातनम् ।५०।
अभ्युदयाय लोकेषु स वर्णाश्रमपद्धतेः
शिष्यानुशिष्यवृत्त्या च कृतवानाश्रमान् बहून् ।५१।
न कश्चित् क्षत्रियो राजा देशमेनं यतोऽवति
व्यथयन्ति मुनीन् प्रायः प्रमत्ताः कुणपा अतः ।५२।
दैवीवृत्तौ प्रसुप्तायां वर्द्धते वृत्तिरासुरी
तस्याः लोकान् परित्रातुं तवावतरणं भुवि ।५३।

गर्व (दर्प) से उद्धत, विन्ध्य पर्वत को दर्पशून्य बनाकर पण्डित वह बहुत दिनों से यहाँ अपनी आर्य पद्धति की रक्षा कर रहें हैं ।।४८।। आर्य पद्धतिविहीन लोगों का नाश करने की बुद्धि रखने वाले उन्होंने यहीं आतापी और फिर इल्वल नामक राक्षसों को समाप्त कर दिया ।४९। तपो-विभूति समर्थ जिन्होंने समुद्र को चुलुक में पान कर लिया वह मर्यादा का अतिक्रमण न करके भी सनातन धर्म की रक्षा कर रहें हैं ।५०। संसार में वर्णाश्रम व्यवस्था के विकासार्थ शिष्य-अनुशिष्य परम्परा से उन्होंने अनेकों आश्रमों का निर्माण किया है ।।५१।। क्योंकि कोई भी क्षत्रिय राजा इस देश की रक्षा नहीं कर रहा है इसलिये प्रमत्त राक्षस प्रायः मुनियों को पीड़ित कर रहें हैं ।।५२।। दैवीवृत्ति के प्रसुप्त (लोप) हो जाने पर आसुरीवृत्ति बढ़ती है। इससे लोगों की रक्षा के लिये पृथ्वी पर तुम्हारा अवतार होता है, हुआ है ।।५३।।

तवकार्यसरण्यैव जानेऽहं तेऽपि निश्चयम्
जनस्थानसमीपस्थं गुरुं द्रक्ष्यसि मेऽनघ ।५४।
एवं बहुविधालापैरतिक्रम्य निशीथिनीम्
रामसङ्गतिजानन्दाद् बहु मेने मुनिर्जनुः ५५
आतिथ्यफलपूर्त्यर्थं वर्द्धनायातिथेर्बलम्
गन्तुकामं मुनी रामं बभाषे सोऽपरेऽहनि ।५६।
दीयतेऽद्य मया राम दर्शनात्ते गतांहसा
फलं स्वतपसां पूर्णं पन्थानः सन्तु ते शुभाः ।५७।
सुतीक्ष्णोक्तपथेनासौ विदूरं दक्षिणे स्थितम्
अग्निजिह्वमुनेः स्थानं प्राप्य प्रीतिं परां गतः ।५८।
अगस्त्याश्रममार्गस्य निर्देशं प्राप्य राघवः
गतः पाथेयरूपेण संगृह्याशीर्वचो मुनेः ।५९।

तुम्हारी कार्यपद्धति से ही मैं तुम्हारे निश्चय को जानता हूँ। हे निष्कलुष आगे आप जन स्थान के समीप रहने वाले मेरे गुरु अगस्त्य को देखेंगे ५४। इस प्रकार अनेक प्रकार की वार्ताओं से रात को बिताकर मुनि ने राम के सम्पर्क जन्य आनन्द से अपने जन्म को कृतार्थ माना ॥५ ॥ दूसरे दिन मुनि ने आतिथ्यफल की पूर्ति के लिये, अतिथि राम की शक्ति को बढ़ाने के लिये जाने की इच्छुक उनसे बोले ॥५६॥ हे राम! तुम्हारे दर्शन के पश्चात् पापरहित मैं अपनी तपस्याओं का पूर्ण फल तुम्हें प्रदान करता हूँ। तुम्हारे पथ कल्याणमय हों ॥५७॥ सुतीक्ष्ण से कहे गये रास्ते से जाते हुये उन्होने सुदूर दक्षिण में अवस्थित अग्निजिह्वा मुनि के स्थान को प्राप्त कर परम प्रसन्न हुये ॥५८॥ वहाँ से अगस्त्य के आश्रम के रास्ते की जानकारी प्राप्त कर राम ने मुनि के आशीर्वाद को पाथेयरूप में प्राप्त कर आगे प्रयाण किया ॥५९॥

अतो गहनकान्तारे दुर्गमे देहरूपके
कामक्रोधनिभैर्हिंस्रैः श्वापदैः परिपूरिते ।६०।
मोहध्वान्तोपमैर्वृक्षैः निविडं परिसङ्कुले
व्यापृते च लतागुल्मैः परिवारानुकारिभिः ।६१।
वक्राभिर्दृश्यमानाभिरदृश्याभिः क्वचित्तृणैः
पद्धतिभिः समाकीर्णे सदसद्बुद्धिसन्निभैः ।६२।
फुल्लपुष्पद्रुमैः रम्येऽप्यरम्ये कण्टकैः क्वचित्
आह्लादकारकैर्वृत्तैरिवानाह्लादकारिभिः ।६३।
विरलानोरुहं क्षेत्रमरण्यानीभुवं तथा
क्वचित् शुष्का नदीः पश्यन्नपरत्र बहूदकाः ।६४।
निर्विकारो ब्रजन्रामो जानकीलक्ष्मणाग्रतः
मायाजीवपुरःस्थस्य ब्रह्मणोऽवाप सच्छटाम् ।६५।

शरीरधारियों के लिये दुर्गम, काम, क्रोध सदृश हिंसक पशुओं से परिपूर्ण- घने तथा मोहान्धकार जैसे वृक्षों से परिव्याप्त, परिवार का अनुकार सा करती हुई लताकुञ्जों से परिपूर्ण टेढ़ी, कहीं दिखाई पड़ने वाली तथा कहीं घासों से अदृश्य अतएव सदसद् बुद्धि जैसी पगडंडियों से परिव्याप्त, आनन्द तथा दुःख प्रदान करने वाले आचरण जैसे कहीं पुष्पित वृक्षों से रमणीय तो कहीं काँटों से दुःखद, कहीं विरल वृक्षों के क्षेत्र तो कहीं घने जंगलों की धरती, कहीं सूखी नदियाँ तो अन्यत्र प्रभूत जला, ऐसे घने जंगल को देखते हुये, जनकनन्दिनी और लक्ष्मण के आगे निर्विकार चले जाते हुए राम माया और जीव के आगे वर्तमान ब्रह्म की सुन्दर शोभा को धारण कर रहे थे ।।६०-६५।।

दक्षिणाशां व्रजन् रामो ससुखं नहि विव्यथे
अधिमार्गं कृतान् पश्यन् व्यापारान् पशुपक्षिणाम् ।६६।
जातु त्यजतु कर्माणि स्वीयानि मनुसन्ततिः
न त्यजन्ति परं नूनं स्वभावान् स्वान् मृगादयः ।६७।
पञ्चास्यानां तरक्षूणां भूदाराणां वनौकसाम्
शृण्वन् शब्दान् तथा पश्यन् चेष्टाः रामो समुद् ययौ ।६८।
भल्लूकान् सैरिभान् वन्यान् गौधेयान् शल्यकांस्तथा
वृकान् न्यङ्कून् मृगान् पश्यन् पराँ प्रीतिं स आप्तवान् ।६९।
कपोताः पत्त्रिणश्चाषा दार्वाघाटाश्च चातकाः
रथाङ्गाः पुष्कराह्वाश्च बभूवुः रामप्रीतये ।७०।
निर्वर्त्य प्रत्यहं कृत्यं प्रातर्जातं जितेन्द्रियः
अव्रजत्सावधानोऽसौ यावदर्कोऽलिकन्तपः ।७१।

रास्ते में पशु पक्षियों द्वारा किये गये जा रहे सहज व्यापारों (कार्यों को देखते हुए दक्षिण दिशा में सुख पूर्वक चलते हुए राम व्यथित नहीं हुए ॥६६॥ मनु की सन्तान (मनुष्य) अपने कर्मों को कदाचित् छोड़ दे पर मृग आदि अपने स्वभावों का परित्याग नहीं ही करते हैं ॥६७॥ जंगली सिंहों, साहियों और सुअरों की ध्वनियों को सुनते तथा चेष्टाओं को देखते सानन्द राम चले जा रहे थे ॥६८॥ जंगली भालुओं, भैंसों गोहों, साहियों, भेड़ियों, बारहसिंघों अन्य मृगों को देखते हुए वह अत्यन्त प्रसन्नता को प्राप्त हुए ॥३६॥ कबूतर, नीलकण्ठ, कठफोरा, चातक, चक्रवाक, सारस, आदि पक्षिगण राम को आनन्दप्रद हुए ।७०। जितेन्द्रिय राम प्रतिदिन प्रात:कालीन सान्ध्यादि विधि को समाप्त कर तबतक सावधान चले जाते जब तक सूर्य ललाटन्तप हो जाते ॥७१॥

अधिच्छायं च विश्रम्य भुक्त्वा पीत्वा सहानुजः
भार्यां सान्त्वैश्च संतोष्याऽध्वानं स पुनरव्रजत् ।७२।

अटन्नेवमनिर्विण्णः कापथप्रान्तरेषु च
नड्वलां शाद्वलां भूमिं जलप्रायां व्यलोकयत् ।७३।

अटव्यां पर्यटन् रामो वानस्पत्यान् वनस्पतीन्
ददर्श बहुधा वल्लीः औषधीश्च फलेग्रहीः ।७४।

महीध्रोपत्यकामध्ये सन्निवेशान् समीक्ष्य सः
ग्रामान्तरे व्यधान्नित्यं निवासं रजनीमुखे ।७५।

एकमात्रमधिष्ठानं रूपस्य यशसः श्रियः
रामं वीक्ष्याभवन्प्रीतास्तत्रत्याः शबरादयः ।७६।

क्वोन्माथवागुराशुल्वाभ्यासाविष्कृतयोग्यताः
वनस्थाः क्व च रामोऽयमर्चा नागरसंस्कृतेः ।७७।

तो छाया में विश्राम कर, भाई के साथ खा-पीकर पत्नी को सान्त्वना से सन्तुष्ट कर वह पुनः रास्ते पर चल पड़ते थे ॥७२॥ इस प्रकार खराब रास्ते-जंगलों में विशोक घूमते हुये उन्होंने नरकटवाली, घासों भरी, जलप्राय धरती देखी ॥७३॥ वन में घूमते हुए राम ने वानस्पत्यों (आम्रादिवृक्षों) वनस्पतियों, लताओं, औषधियों, फले हुए वृक्षों को अनेकधा देखा ॥७४॥ पहाड़ों की उपत्यकाओं में बस्तियों को देखकर वह प्रतिदिन सायंकाल गाँव से बाहर निवास करते थे ॥७५। रूप, कीर्ति और शोभा के एक मात्र आगार राम को देखकर वहाँ रहने वाले भिल्ल आदि प्रसन्न हुए ॥७६॥ कहाँ उन्मथित करने वाली रस्सी की नाप-तौल के अभ्यास से पैदा हुई योग्यता वाले वनवासी और कहाँ राम ? यह नगर संस्कृति की पूजा है ॥७७॥

आसीत्कोप्यनुभावोऽस्मिन् रामे यस्य विकर्षणात्
पयो मूलं फलं प्रेम्णा नीतं रामाय भिल्लकैः ।७८।
पूज्यो ब्रह्मविदां रामो मान्यश्चापि धनुष्मताम्
भिल्लोक्तिषु रसं प्राप्य काव्यतत्त्वं व्यजिज्ञपत् ।७६।
कोऽयं कस्मात् कुतः क्वेति रामाभिज्ञानकाङ्क्षिणः
स्वयमेव मुदा स्वीयं वृत्तं सर्वे न्यवेदयन् ।८०।
विशेषातिथयः प्राप्ताः स्थिता ग्रामान्तरे पुनः
उपकर्णिकया ज्ञात्वा ग्राम्यास्तत्र स्त्रियो गताः ।८१।
प्रायोऽकृत्रिमसौन्दर्या मुग्धास्ताः ग्रामयोषितः
राजनीतेः स्थिता दूरं विश्वासप्रतिमूर्तयः ।८२।
अनिन्द्यसुन्दरीं दृष्ट्वा विस्मयोत्फुल्ललोचनाः
अरण्यागमने हेतुं ज्ञातुं लौल्यंसमास्थिताः ।८३।

इन राम में कोई अनिर्वचनीय प्रभाव था जिसके आकर्षण से भिल्लों ने राम को प्रेमपूर्वक जल, मूल, फल लाकर दिया ॥७८॥ ब्रह्म वेत्ताओं से पूज्य तथा धनुर्धारियों में मान्य राम ने भिल्लों की वाणी में रस प्राप्त कर काव्यतत्त्व को ज्ञापित किया ॥७६॥ यह कौन हैं ? किनके पुत्र हैं ? कहाँ से आ रहें हैं ? कहाँ जा रहें हैं ? इस प्रकार राम का परिचय पाने की इच्छा रखने वाले, स्वयं ही उन्होंने अपना समाचार सानन्द सुनाया ॥८०॥ गाँव में विशेष अतिथि आये हैं, एक दूसरे के कानों से ऐसा जानकर वहाँ गाँव की स्त्रियां पहुँच गयी ॥८१॥ राजनीति से दूर विश्वास की प्रतिमूर्तियाँ वे ग्राम नारियाँ प्रायः सहज सौन्दर्यवती तथा भोली-भाली थीं ॥८२॥ अनिन्द्यसुन्दरी सीता को देखकर आश्चर्य से प्रसन्न विस्फारित नेत्रों वाली वे वन में आने का कारण जानने के लिये अधीर हो उठीं ॥८३॥

यथाज्ञानं कृताचाराः स्नेहबद्धा इव स्थिताः
वैदेहीं समनुप्राप्य पप्रच्छुस्तां शनैरिदम् ।८४।

का त्वं शुभे किमेतौ द्वौ कथं कस्मादिहागताः
किमत्र कार्यमस्माभिस्त्वदीयाभिश्च नो वद ।८५।

श्रुत्वा तासां वचः सीता दृष्ट्वा हार्दमनाविलम्
कथयामास वृत्तान्तं करुणोत्पादकं निजम् ।८६।

क्वेमाः स्वभावतः स्निग्धाः नार्यः प्रकृतिकोमलाः
क्व कथा रामभद्रीया ग्राव्णां हृदयदारिका ।८७।

काश्चिन्महीक्षितं काश्चित् कैकेयीमधिचिक्षिपुः
मेनिरे च पुनः काश्चिद् भागधेयमनर्थकृत् ।८८।

परेषां शोभनं किञ्चिन्नान्येषामपि शोभनम्
प्रशशंसुर्विधिं काश्चिन्नयनोत्सवदायिनम् ।८९।

जानकारी के अनुसार आचार करके स्नेह बद्ध सी खड़ी हो गयीं। सीता के पास जाकर उनसे धीरे से यह पूँछी ॥८४॥ शुभे तुम कौन हो ? ये दोनों कौन हैं ? कैसे और कहाँ से यहाँ आये हैं ? तुम्हारी हो हमें यह वताओं कि यहाँ कार्य क्या है ? ॥८५॥ सीता ने उनकी बातों को सुनकर उनके शुद्ध हार्दिक प्रेम को देखकर, करुणाजनक अपने वृत्तान्त को उन्हें सुनाया ॥८६॥ कहाँ ये सहजस्निग्ध प्रकृतिसुकुमार नारियाँ और कहाँ पत्थरों के हृदय को भी फाड़ देने वाली रामभद्र की करुण कथा ॥८७॥ किन्हीं ने राजा को, और किन्हीं ने कैकेई को दोष दिया तो किन्हीं ने अनर्थकारी भाग्य को ही दोषी माना ॥८८॥ दूसरों का कुछ भी भला अच्छाई औरों को अच्छा शोभन नहीं लगता किन्हीं ने तो नयनानन्द-दायी भाग्य की प्रशंसा की ॥८९॥

पृष्टैकया पतिः सुभ्रूः कतरः श्यामगौरयोः
सीता निवेदयामास तामपाङ्गविवर्तनात् ।९०।

विस्रम्भप्रतिमूर्तीनां स्नेहेनाबद्धचेतसाम्
अकृत्रिमविलासानां भिल्लीनां हृदयं जयन् ।९१।

अनेकानि रहस्यानि महारण्यगतानि च
पृच्छन् शृण्वन् समुद् रामः क्लान्तिलेशं तु नान्वभूत् ९२।

औषधीनामनेकासां गुणधर्मान् विशेषतः
तदाज्ञासीदनायासमरण्यानीनिवासतः ९३।

एवं बहुविधं ज्ञानं नानुभूतमितः पुरा
लभमानः शनैर्गच्छन् ददर्शाऽगस्त्यमाश्रमम् ।९४।

गोदायाः स्रोतसा बाढं त्रिदिक्षु परिखीकृतः
प्रवेष्टुं दुर्गमो नूनं व्रतत्याबद्धपादपैः ९५।

किसी एक से पूँछे जाने पर कि हे सुभ्रु ! इन श्याम गौर में तुम्हारा पति कौन है ? सीता ने उसे भौहों के इशारे बता दिया ॥९०॥ विश्वास की प्रतिमूर्ति, स्नेह निबद्ध चित्त, सहजहाव-भाव वाली भिलिनियों के हृदय को जीतते हुये, घोर जंगलों के अनेकों रहस्यों को पूँछते-सुनते हुए प्रसन्न राम ने थकान का लवमात्र भी अनुभव नहीं किया ॥९१-९२॥ महारण्य के निवास से उस समय राम ने अनेक औषधियों के गुण-धर्मों को विशेष रुप से अनायास ही जान लिया ॥९३॥ इस प्रकार इससे पहले अनुभूत नाना प्रकार की जानकारियों को प्राप्त करते हुये, धीरे-धीरे चलते जाते श्रीराम ने अगस्त्य का आश्रम देखा ॥९४॥ तीन दिशाओं से गोदावरी के प्रवाह से पर्याप्त परिखीकृत तथा लताओं से अवरुद्ध वृक्षों के कारण जहाँ प्रवेश दुर्गम था ॥९५॥

वानस्पत्यैः समाकीर्णो वनस्पतिभिश्च संयुतः
वन्ध्यावन्ध्यैर्मनोज्ञोऽपि श्रेणीबद्धै रनोकहैः ।९६।
आमूलादुच्छ्रयं यावद् गुल्मिनोभिः समावृतैः
प्रकाण्डबहुलैः सालैः स्थाणुभिः परिशोभितः ।९७।
संफुल्लैः शिरोभागे क्षुपैर्गुल्मैः समन्वितः
विश्रान्तिप्रद आसीत्स आश्रमो नेत्रशर्मदः ।९८।
मुख्यद्वारं समासाद्य दिदृक्षुर्मुनिमद्भुतम्
सूचनार्थं वटुं रामः प्रेषयामास दर्शकम् ।९९।
अभ्यनुज्ञामृषेः प्राप्य स पश्यन्नाश्रमच्छटाम्
जगाम वटुना सार्द्धं हर्षेणोत्फुल्ललोचनः ।१००।
धूमैर्यज्ञोद्भवैर्व्याप्तं शकुन्तिरवसंयुतम्
प्रशान्तश्वापदाकीर्णं बटुभिश्च सुशोभितम् ।१०१।
कदलीबहुलं दिव्यं धात्रीविल्वादिसंयुतम्
राघवश्चाश्रमंवीक्ष्य तुतोष सपरिच्छदः ।१०२।

फलदार वृक्षों से भरे हुए तथा वनस्पतियों से युक्त, इस प्रकार वन्ध्य-अवन्ध्य श्रेणीबद्ध वृक्षों से मनोहारी-जड़ से लेकर ऊपर तक लताओं से घिरे शाखा बहुल सालों तथा ठूँठे वृक्षों से चतुर्दिक् शोभित-ऊपर फूली हुई झाड़ियों-लताओं से युक्त, आखों को सुख देने वाला वह आश्रम विश्रान्ति प्रदान करने वाला था ।।९६-९८।। मुख्य द्वार पर पहुँच कर, अद्भुत मुनि को देखने के इच्छुक राम सूचना के लिये दर्शक छात्र को भेजा ।।९९।। ऋषि की आज्ञा प्राप्तकर, आश्रम की शोभा देखते हुये, हर्ष से प्रसन्ननयन राम बटु के साथ गये ।।१०० यज्ञों से उत्पन्न धुओं से व्याप्त, पक्षियों के कलगान से युक्त, शान्त हिंस्र पशुओं से परिव्याप्त, बटुओं से सुशोभित केलों से भरे हुए, दिव्य, आँवला, बेल आदि वृक्षों से परिपूर्ण आश्रम को देखकर दशरथ नन्दन राम जानकी लखन समेत संतुष्ट हुए ।।१०१-१०२।।

अत्र रामेण संदृष्टा मुनयो व्रतचारिणः
दन्तोलूखलिनः केचिद् गात्रशय्यास्तथापरे ।१०३।
जपशीलास्तपोनिष्ठा मौनिनोऽनवकाशिकाः
उन्मज्जकाश्च दान्ताश्च फलमूलाशिनस्तथा ।१०४।
आकाशनिलयाः केचित् केचित् स्थण्डिलशायिनः
पञ्चाग्निनिरताः केचित् तथाऽऽर्द्रपटवासिनः ।१०५।
जलभक्षा वायुभक्षाः शिलोञ्छपरिसेविनः
सुष्ठ्वासीत्तत्र सङ्घीयव्यवस्थापरिपालनम् ।१०६।
शुकाः काका मयूराश्च कपोताश्चटकाः पिकाः
स्वच्छन्दाः रेमिरे तत्र भयशङ्काविवर्जिताः ।१०७।
विरोधं स्वं परित्यज्य द्वीपिनः सैरिभास्तथा
नकुला अहयश्चात्र व्यराजन्त गतद्विषः ।१०८।

यहाँ पर राम ने तपस्वी मुनियों को देखा जिनमें कुछ दन्तोलूखली थे तो कतिपय गात्रशय्या वाले थे ॥१०३॥ यहाँ जयशील, तपोनिष्ठ, मौनी अनवकाशी, उन्मज्जक, दान्त, फल-मूल खाने वाले थे ॥१०४॥ कुछ आकाश निलय थे तो कतिपय भूशायी थे, पञ्चाग्नि में लगे रहने वाले थे तो गीले वस्त्रधारी भी थे ॥१०५॥ जलभक्षी, वायुभक्षी, शिलोञ्छ वृत्तिवाले थे। इस प्रकार वहाँ सङ्घीय व्यवस्था का सम्यक् परिपालन था ॥१०६॥ शुक, कौए, मोर, कबूतर, गौरैया, कोयल, आदि पक्षिगण वहाँ स्वतन्त्र तथा भय-शङ्का रहित होकर विहार करते थे ॥१०७॥ अपने सहज वैरभाव को त्यागकर व्याघ्र-भैंसे, नेवले-सर्प द्वेष रहित होकर विचरण करते शोभित हो रहे थे ॥१०८॥

क्वचिद् गावश्चरन्त्योत्र निषण्णा हरिणाः क्वचित्
एवं नानाविधा जीवा अतिष्ठन् परिवारवत् ।१०९।

मन्त्रव्याख्याकृतस्तत्र वेदाध्ययनतत्पराः
श्रोत्रिया बहुशो दृष्टाः रामेणास्मिन् शुभाश्रमे ।११०।

ऋक्सामयजुषां मन्त्रान् पठतां ब्रह्मचारिणाम्
ध्वनयश्च प्रिया जाता वर्षायां भेकशब्दवत् ।१११।

एवं बहुविधं दृश्यं पश्यन्स विगतक्लमः
रामो जगाम यत्रासीदगस्त्यस्योटजं शुभम् ।११२

तत्राग्निशरणे गौरं प्रभामण्डलमण्डितम्
कम्बुग्रीवं महाबाहुं जटावल्कलधारिणम् ।११३।

दृढगात्रं कुशासीनं वर्षीयांसं शुचीक्षणम्
विरजस्तमसं दान्तं सोपवीतं धृतस्रुवम् ।।११४।

कहीं गायें चर रही थीं तो कहीं मृग बैठे थे। इस प्रकार नानाप्रकार के प्राणी परिवार के समान रह रहे थे ॥१०६॥ इस पवित्र आश्रम में राम ने अनेकश. श्रोत्रिय ब्राह्मण देखे जो मन्त्रों की व्याख्या कर रहे थे तो कोई वेद के अध्ययन में तल्लीन थे ॥११०॥ ऋक्, साम, और यजुष् मंत्रों को पढ़ रहे ब्रह्मचारियों की ध्वनियाँ वर्षा में मण्डूक ध्वनि के समान कर्णप्रिय लग रही थीं ॥१११॥ इस प्रकार नानाप्रकार के दृश्यों को देखते हुए विगतश्रम राम जहाँ अगस्त्य की पवित्र कुटिया थी, उधर गये ॥११२। वहाँ अग्निशाला में गौर, प्रभामण्डल से सुशोभित कम्बुग्रीव, महाबाहु, जटावल्कल धारी ॥११३॥ बलवान् शरीर, कुश पर बैठे हुए, अधिकवया, पवित्रदर्शन, रजस्तमोहीन, दान्त, यज्ञोपवीतधारी, स्रुवा लिये हुए ॥११४॥

प्राङ्मुखस्थं पुरोवह्निं मुनिमग्निशिखोपमम्
सानुजो राघवो दृष्ट्वा ननाम सह सीतया ।११५।
चिरं बर्द्धस्व हे राम त्वामिहैवानुचिन्तयन्
यावत्स्थितस्तदा शिष्यस्तवागममसूसुचत् ।११६।
चिन्तनं क्रियते यस्य समायाति स तत्क्षणम्
चत्वारि तस्य वर्धन्त आयुर्विद्या यशो बलम् ।११७।
एवमुक्त्वा मुनिः रामं पाद्यादिभिरपूपुजत्
वानप्रस्थेन धर्मेण भोजयामास धर्मवित् ।११८।
पश्चिमाशां गते भानावम्बरे रक्ततां गते
नीडं निवर्तमानेषु कलं कुर्वत्सु पक्षिषु ।११९।
अग्निचित्स्वाश्रमस्थेषु प्रतिसंहृतकर्मसु
धूमैर्व्याप्तासु काष्ठासु दुह्यमानासु गोषु च १२०।

सामने अग्नि, अग्निशिखा तुल्य, पूर्वमुख आसीन मुनि अगस्त्य को देखकर लक्ष्मण-सीता समेत राम ने उन्हें प्रणाम किया ॥११५॥ हे राम चिरवृद्धि हो, तुम्हें ही सोचता हुआ मैं यहाँ ज्यो ही खड़ा हुआ कि शिष्य ने तुम्हारे आगमन की सूचना दी ॥११६॥ जिसका चिन्तन किया जाता है यदि वह तत्काल आ जाता है तो उसके ये चार बढ़ते हैं-आयु, विद्या, कीर्ति और शक्ति ॥११७॥ मुनि ने ऐसा कहकर राम की पाद्य आदि से पूजा की। धर्मज्ञ उन्होंने वानप्रस्थ विधि से भोजन कराया ॥११८॥ सूर्य के पश्चिम दिशा में चले जाने पर, आकाश के लाल हो जाने पर, घोंसलों को लौटते पक्षियों के कलरव करनेपर ।११९। अग्न्याधान करने वाले मुनियों के अपने आश्रमस्थ व्यापारों को समाप्त कर देने पर, दिशाओं के धुओं से भर जाने तथा गायों के दुहे जाते रहने पर ॥१२०॥

कृतनित्यक्रियोऽगस्त्यो निर्णिक्ते विजने स्थितः
राममामन्त्रयामास सोद्देश्यं वनमागतम् ।१२१।

विष्टरे समुपाविष्टे रामे राक्षसान्तके
कृत्वा सामयिकीं वार्तामगस्त्यो मुनिरब्रवीत् ।१२२।

राम राम महाबाहो मर्यादापरिपालक
ब्रवाणित्वामहं किञ्चिन्नूत्नमित्यतिदुर्लभम् ।१२३।

श्रुत्वा तथापि ते वाचं त्वदुद्देश्यांनराधिप
यावत्कर्तुं समर्थोऽस्मि करिष्यामि सहायताम् ।१२४।

अनूचानेन धीरेण मुनिना लब्धकीर्तिना
एवमुक्तः स कालज्ञो विहसन्निदमब्रवीत् ।१२५।

आर्यावर्तं परित्यज्य किमर्थं दक्षिणापथे
आगत्य किं करोत्यत्र भगवन् तद् ब्रवीतु मे ।१२६।

नित्य क्रिया करके एकान्त वन में स्थित मुनि अगस्त्य ने सोद्देश्य वन में आये राम को बुलवाया ॥१२१॥ राक्षसों के शमन राम के आसन पर बैठ जाने पर, सामयिक वार्ताओं को करके अगस्त्य मुनि बोले ।१२२। हे राम हे राम, महाबाहु ! हे मर्यादा के परिपालक ! मैं तुमसे कुछ नई और दुर्लभ बात करता हूँ (तुमसे मैं कोई नई बात कहूँ, यह अत्यन्त दुर्लभ है) ॥१२३॥ फिर भी तुम्हारी बात और तुम्हारे उद्देश्यों को सुनकर जितना करने में समर्थ हूँ उतनी सहायता करूँगा ॥१२४॥ वेदविद्, धीर, प्राप्तकीर्ति मुनि से ऐसा कहे जाने पर समयज्ञ उन राम ने हँसते हुए यह कहा ॥१२५॥ आर्यावर्त को छोड़कर दक्षिणापथ में किसलिये आकर आप क्या कर रहें हैं ? हे भगवन् आप उसे मुझे बतायें ॥१२६॥

जानास्यशेषवृत्तान्तं यदर्थमहमागतः
उपयुक्तं च यत्तत्र कृपया शास्तु मेऽनघ ॥ १२७॥

राघवीयं वचः श्रुत्वा मुनिः स्तिमितलोचनः
पुनरुत्फुल्लनेत्रः सन्नुवाच विहसन्निव ॥ १२८॥

कैलासादब्धिपर्यन्तं देशोऽयं भारतं स्मृतम्
दृषदात्मा नगो विन्ध्यो दक्षिणोत्तरभागकृत् ॥ १२९॥

देहेऽस्मिंश्च यथा राम पदोश्च शिरसः स्थितिः
दक्षिणोत्तरयोरेवं स्थितिर्देशे प्रकल्पिता ॥१३०॥

ज्ञानं यदुत्तरे जातं दक्षिणे तद् दृढीयते
एवं परस्पराबद्धा व्यवस्था विधिना कृता ॥१३१॥

पुरा कृतयुगे राजन् नात्र दोषः समागतः
त्रेतायां कालदोषात्तु व्यवस्थेयं विखण्डिता ॥१३२॥

जिसलिये मैं यहाँ आया हूँ उस सारे वृत्तान्त को आप जानते हैं, हे निष्पाप, उसके लिये जो उचित हो, कृपाकर मुझे उपदेश करें ॥१२७॥ निमीलित नेत्र मुनि, राम की बात सुनकर, प्रसन्न नेत्र हंसते हुए से बोले ॥१२८॥ कैलास से लेकर समुद्र पर्यन्त यह देश भारत कहा गया है। पत्थरों वाला-पहाड़ों वाला विन्ध्य ही दक्षिण-उत्तर का विभाग करता है ॥१२९॥ हे राम इस शरीर में जैसे पैरों और शिरको स्थिति है इसी प्रकार देश में दक्षिण-उत्तर की कल्पना की गयी है ॥१३०॥ उत्तर में जो ज्ञान उत्पन्न होता है दक्षिण में वह दृढ़ होता है, विधाता ने इस प्रकार परस्पर सम्बन्धों की व्यवस्था की है ॥१३१॥ हे राजन्, पहले कृतयुग में यहाँ कोई दोष नहीं आया था किन्तु त्रेता में कालदोष के कारण यह व्यवस्था भङ्ग हो गई ॥१३२॥

मा भूत् कोऽपि विधिः स्थायी विश्वस्मिन् परिवर्तिनि
स्पष्टा भृशमसौ नीतिः कृता विश्वसृजा यतः ॥१३३॥
स्पर्धतां मेरुणा जाते विन्ध्यस्तु परमर्द्धिमान्
अरौत्सीत् सरणिं पूष्णो वर्द्धमानो विहायसि ॥१३४॥
एवं शक्तिप्रदो मित्रो ज्ञानदः सविता भुवम्
नाशक्नोच्च परिक्रान्तौ धियां यो नः प्रचोदकः ॥१३५॥
दक्षिणेऽस्मिन् भुवो भागे संजाते तमसावृते
व्यवस्था खण्डिता स्रष्टुः प्रिया या शेमुषीजुषाम् ॥१३६॥
अतो लोकप्रियैर्देवैः प्रार्थ्यमानो मुहुर्मुहुः
नम्रीकृत्य गिरिं विन्ध्यमागतो दक्षिणापथे ॥१३७॥
क्षणं रुद्धमपि ज्ञानं प्रसूते यां परम्पराम्
तन्निवृत्तौ भृशं राम कालो बहुरपेक्षितः १३८॥

इस परिवर्तनशील जगत् में कोई भी व्यवस्था स्थायी न हो, यह नीति अत्यन्त स्पष्ट है क्योंकि विधाता ने यही किया है ॥१३३॥ मेरु से स्पर्धा होने पर परम सतृद्ध-उन्नत-विन्ध्य ने आकाश में बढ़ते हुए सूर्य की राह रोक दी ॥१३४॥ इस प्रकार, शक्ति प्रदाता, ज्ञानदाता, उत्पन्नकर्ता हमारी बुद्धियों का प्रेरक सूर्य पृथ्वी की परिक्रमा में असमर्थ हो गया ॥१३५॥ दक्षिण के इस भूभाग के अन्धकार से ढंक जाने पर मनीषियों को प्रिय विधाता की व्यवस्था खण्डित हो गयी ॥१३६॥ इसलिये लोकप्रिय देवों द्वारा बार-बार प्रार्थना किये जाने पर विन्ध्य को झुकाकर मैं दक्षिणापथ में आया ॥१३७॥ क्षणभर के लिये अव-रूद्ध ज्ञान जिस परम्परा को जन्म देता है, हे राम उसे हटाने के लिये लम्बे समय की अपेक्षा होती है ॥१३८॥

सान्त्वयितुं च त्वत्रत्यान्भूभृद्देशनिवासिनः
वसाम्यत्रैव राजेन्द्र कार्तवीर्यप्रशासिते ॥१३९॥
अतिमर्यादमौद्धत्यं क्षत्रियाणां यथापकृत्
तद्वदेव च विप्रत्वं निर्मर्यादमवस्थितम् ॥१४०॥
ब्रह्मक्षत्रवती भूमिः संष्ठुला परिवर्द्धते
हन्त क्षात्रे गते नाशं ब्राह्मं चाप्यसुरायते ।१४१।
मानवताविनाशाय सप्रकर्षं समुद्यतान्
नियन्तुं केवलं राम तवावतरणं भुवि ।१४२।
अर्कविम्बोदयात्पूर्वं यथाऽभ्रमरुणायते
तथैवागमनात्पूर्वं कर्त्तव्या तेऽप्यवस्थितिः ।१४३।
इति मत्वा द्वयोर्देशे भागयो रघुनन्दन
विश्वामित्रस्य मे चापि प्रवृत्तिर्भूमिकाकृतोः ।१४४।

हे राजेन्द्र ! यहाँ के पार्वत्य निवासिजनों को सान्त्वना प्रदान करने के लिये कार्तवीर्य अर्जुन से प्रशसित यहीं मैं रह रहा हूँ। ॥१३९॥ मर्यादा का लङ्घन करने वाली जैसे क्षत्रियों की उद्धतता अपकार करती है उसी प्रकार निर्मर्याद रहने वाली विप्रता भी अपकारकृत् है ॥१४०॥ ब्रह्म-क्षत्र से युक्त ही धरती ठीक ढगसे बढ़ती है। दुःख है कि क्षात्र तेज के नष्ट हो जाने पर ब्राह्म तेज भी राक्षसवत् आचरण करने लगता है ।१४१। मानवता का विनाश करने के लिये प्रकर्षसहित समुद्यत असुरों को नियन्त्रित करने के लिये ही राम धरती पर तुम्हारा अवतार हुआ है ॥१४२॥ सूर्योदय से पहले जैसे बादल लाल सा हो जाता है उसी प्रकार तुम्हारे आगमन से पूर्व ही व्यवस्था करनी थी ॥१४३॥ हे रघुनन्दन ! ऐसा मानकर देश के दोनों भागों में भूमिका बनाने वाले हम दोनों की विश्वामित्र और मेरी-प्रवृत्ति है ॥१४४॥

असुराणां विनाशाय विश्वामित्रेण शिक्षितः
व्याजादरण्यवासस्य दक्षिणां भुवमागतः १४५।
अतोऽत्र नरशार्दूल शस्त्रकर्मविचक्षण
शस्त्राणि ते प्रदास्यामि वधार्हाणि सुरद्विषाम् ।१४६।
एवमुक्त्वा मुनिः सद्यो ब्रह्मज्ञाने व्यवस्थितः
प्रददौ रामभद्राय दिव्यान्यस्त्राणि तत्क्षणम् ।१४७।
ऊचे पुनरितः स्थानान्नातिदूरे प्रतिष्ठिता
ख्याता पञ्चवटी दिव्या रम्या चातिमनोहरा ।१४८।
निवासं कुर्वतस्तत्र सावधानं रघूत्तम
राक्षसानां विनाशाय भवेन्नूनं तवोद्यमः ।१४९।
एते मायाविनः सन्ति क्रूराश्च कामुकास्तथा
क्षणे रुष्टाः क्षणे तुष्टा लोलुपा अजितेन्द्रियाः ।१५०।

राक्षसों के विनाश के लिये विश्वामित्र से शिक्षा प्राप्त कर, वनवास बहाने आप दक्षिण प्रदेश में आये हैं ॥१४५॥ हे शस्त्रकार्यपण्डित. हे नरसिंह ! इसीलिये यहाँ तुम्हें मैं देवशत्रुओं के बधयोग्य शस्त्र प्रदान करूँगा ॥१४६॥ ऐसा कहकर ब्रह्मज्ञान में अवस्थित मुनि अगस्त्य ने तुरन्त तत्क्षण रामभद्र को दिव्यास्त्र प्रदान किया ॥१४७॥ फिर बोले— इस स्थान से थोड़ी दूर पर ही प्रतिष्ठित प्रसिद्ध रमणीय और अत्यन्त मनोहारी पञ्चवटी है ।१४८॥ हे रघुश्रेष्ठ ! सावधान पूर्वक वहाँ निवास करते हुए तुम्हारा प्रयास राक्षसों के विनाश के लिए होना ही चाहिए ॥१४९॥ ये सब राक्षसमायावी, क्रूर और कामुक हैं। ये लालची, अजितेन्द्रिय तथा क्षण-क्षण में प्रसन्न और नाराज होने वाले हैं ।?५०।

प्रथमं तु स्वयं तेषु वर्त्तितव्यं कदापि न
कृते प्रतिकृतिर्नूनं कर्त्तव्येति मतिर्मम ।१५१।
अशिवत्वनिवृत्तिं त्वं कृत्वा स्थापयतात् शिवम्
वीक्ष्य कालमहं राम द्रक्ष्यामि त्वामरिन्दम ।१५२।
कान्ताराद्रिनिवेशतोऽतिविषमां भौगोलिकीं संस्थितिम्
युद्धे चापि विशेषतः सुविहितां नीतिं सुपर्वद्विषाम् ।
अन्यांश्चापि रणोपयोगिविषयान् कालोपयुक्तान् पुनः
जाता चिन्तयतोस्तयोर्बहुविधं यामावशेषा निशा ।१५३।
श्रीश्यामान्वितसुन्दरोऽस्ति जनको माता च यस्याम्बिका
यः श्रीराजकिशोर आप्तचरितः शाण्डिल्यवंशोद्भवः
तस्य श्रीकरपात्रनामकयतेर्भक्तस्य चास्मिन् महा-
काव्ये चारुणि राघवेन्द्रचरिते सर्गोऽपि नवमो गतः ।१५४।

उन सबके प्रति तुम्हें प्रथम व्यवहार प्रयोग कभी नहीं करना है, किन्तु करने पर प्रतिकार अवश्य करना है, यह मेरा विचार है ॥१५१॥ अशिवत्व की समाप्ति कर तुम शिवत्व की स्थापना करो हे शत्रुसूदन राम, समय देखकर मैं तुम्हें पुनः देखूँगा ॥१५२॥ वन-पर्वत के निवेश से अत्यन्त विषम भौगोलिक स्थिति, विशेषकर युद्ध में इन्द्रशत्रु राक्षसों की सुविहित नीति, कालोपयोगी तथा रणोपयोगी अन्य विषयों का अनेक प्रकार से विचार करते हुए राम अगस्त की परस्पर में इस प्रकार की बातों से रात्रि नाममात्र शेष रह गयी ॥१५३॥ जिनके पिता श्री श्यामसुन्दर हैं तथा माता अम्बिका, शाण्डिल्य गोत्रोत्पन्न आप्तचरित जो श्री राजकिशोर हैं, करपात्र नामक यति के भक्त उनके द्वारा लिखित इस सुन्दर राघवेन्द्रचरित महाकाव्य में यह नवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥१५४॥

दशमः सर्ग

लब्ध्वा ततः समुदगस्त्यमुनेरनुज्ञां
गोदावरीसलिलशीतलभूनिभागाम्
रामः शुभामुषसि पञ्चवटीं सुरम्यां
सौमित्रिणा दयितया च समं जगाम ।१।

दृष्ट्वा निवेशमधिसानु महीरुहाणां
फुल्लैः सुमैर्हृदयहारिभिरञ्चितानाम्
शोभां प्रपातजलनिर्गतसीकराणां
चक्षुःप्रियां पथिगतो मुमुदे स रामः ।२।

उच्चावचावनिविरूढतृणैरगम्यो
गम्यः क्वचित् सरलपद्धतिभिश्च पन्थाः
तोषप्रदः समभवत् सुतरां सहिष्णो–
र्दुःखं सुखं समतया विगतस्पृहस्य ।३।

स्तोकंक्षितौ बहुतरं वियति प्रवलगन्
सङ्घो भृशं विततनेत्रवतां मृगाणाम्
मोदाय किन्न नितरामभवद् रतस्य
भाविन्यनल्पविषमस्थितिकल्पनेऽस्य ।४।

इसके बाद अगस्त्य मुनि की आज्ञा पाकर प्रसन्न राम ने उषाकाल में लक्ष्मण तथा सीता के साथ गोदावरी के जल से शीतल भूमि भागवाली सुरम्य पञ्चवटी की ओर प्रस्थान किया ॥१॥ पर्वत के ऊपर हृदयहारी, फूले कुसुमों से सुशोभित वृक्षों की तथा झरना के जल से निकले लघुकणों की शोभा देखकर पथिक राम अति प्रसन्न हुये ॥२। स्पृहारहित सुख तथा दुःख को समानरूप से सहन करने वाले रामको स्वभावतः दोनों मार्गों ने आनन्द दिया, चाहे वह ऊँची नीची भूमिपर बढ़े तृणोंसे अगम्य हो अथवा सरल मार्ग हो ।।३॥ पृथ्वी पर कम पर आकाश में अधिक कूदता हुआ दीर्घनेत्र मृगोंका झुण्ड क्या इन (राम) के मोद के लिये नहीं हुआ जो भावी अत्यन्त विषम स्थिति की कल्पना कर रहे थे ? ॥४॥

स्वीयानुभाववशतां वसतः प्रकुर्वन्
दुर्दान्तदानवगणाध्युषितस्थलेषु
क्रूरान्पशूनथ वयांसि निसर्गहिंस्रान्
विख्यापयन् स्वविजयश्च जगाम रामः ।५।

छन्नं चतुर्ष खलु दिक्षु महीध्रखण्डै-
र्नीलं सरः कमलिनीयुतमक्षिरम्यम्
दृष्ट्वाऽलिवृन्दकलकूजनतो मनोज्ञं
रामस्य चित्तमतिशान्तिदशां प्रपेदे ।६।

काकोदरस्थसरटाननिःसृतानि
सीसीयुतानि वचनानि भयप्रदानि
श्रुत्वाधिकाननमलं हरिगर्जितानि
तन्मानसानि न कदाचिदुपद्रुतानि ।७।

अन्योन्यपीडनविनिर्गतपक्षकाणां
स्रोतस्तटीयजलनिर्धुतचञ्चुकानाम्
वानीरकुञ्जलसतां वयसां विरावैः
कर्णप्रियैरतनुसौख्यमवाप रामः ।८।

दुर्दान्त दानवगणों से अधिष्ठित प्रदेशों में रहने वाले स्वभावतः हिंसक क्रूर पशुओं और पक्षियों को अपने प्रभाव से वश में करते हुये तथा अपने विजय को प्रख्यापित करते हुए राम ने गमन किया ।।५।। चारों दिशाओं से पर्वतखण्डों से घिरे हुये, कमलिनी से युक्त, आँखों को सुहाने वाले, भ्रमरवृन्द की झङ्कार से मनोरम नील सरोवर को देख-कर राम का चित्त परमशान्ति दशा को प्राप्त हुआ ।।६।। जंगल में सर्पस्थ गिरगिट के मुख से निकले हुए, भयप्रद सी-सी शब्दों को तथा सिंहों की गर्जना को सुनकर उनके मनोभाव कभी भी विचलित नहीं हुए ।७ परस्पर के पीडन से निकले हुये पंखोंवाले, नदी के प्रवाह जल में चोंचों को इधर-उधर कंपाते हुए, वेतस कुञ्जों में शोभायमान पक्षियों के कर्णप्रिय कलरवों से राम ने महान् सुख प्राप्त किया ।।८।।

उड्डीयमानवयसां वियतिप्रकामं
मालानुकारि विलसन्ननु चक्रवालम्
पश्यन्मुहुर्मुहुरलं विगताध्वखेदो
रामो जगाम धृतदक्षिणहस्तबाणः ।९।

मार्गे चलन्पुनरसौ सहसातिकायं
निःशङ्कमग्निनयनं दृढदीर्घचञ्चुम्
वीरप्रभापरिकरं वपुषाऽतिवृद्धं
गृध्रं जटायुषमदृष्टचरं ददर्श ।१०।

मार्गं त्यजन्ति सहसैव नरं निरीक्ष्य
प्रायो वयांसि परमेष कुतोऽधिमार्गम्
एवं समीक्ष्य निजकर्म विचिन्तयन् सः
शुश्राव तत्सुलपनं तु मनुष्यवाचा ।११।

जानासि मां कथय दाशरथे किमर्थं
मार्गावरोधविधिनैवमुपस्थितोऽस्मि
त्वां रक्षितुं न कुरु मे त्वमनिष्टबुद्धिं
नूनं भवेन्निजसुतः सुहृदोऽपि पुत्रः ।१२।

आकाश में उड़ते हुये पक्षियोंके मालासदृश शोभायमान समूहको बार-२ देखते हुए अत्यन्त विगत पथश्रम, दाहिने हाथ में बाण लिये हुए, राम चले जा रहे थे ।९। फिर रास्ते पर चलते हुए उन्होंने सहसा, विशाल शरीर, पूर्णअग्नितुल्यनेत्र, मजबूत लम्बी चोंच, वीरप्रभा परिवेष्टित, शरीर से अत्यन्त वृद्ध, पर्व अदृष्ट वृद्ध जटायु को देखा ।।१०।। प्रायः पक्षिगण सहसा मनुष्य को देखकर रास्ता छोड़ देते हैं, किन्तु यह रास्ते में कहाँ से क्यों है ? ऐसा विचार कर अपने काय का विचार करते हुए उन्होंने उस पक्षी की मनुष्यवाणी में सुभाषित सुनी ।।११ । हे दाशरथि : मुझे जानते हो ? बताओ कि क्यों मैं इस प्रकार मार्गा रोध विधि से उपस्थित हूँ। तुम्हारी रक्षा करने के लिए। मेरे प्रति तुम अनिष्ट विचार न करो, मित्र का भी पुत्र अपना ही पुत्र होता है ।।१२।।

मित्रं पितुस्तव सुतोऽस्म्यरुणस्य गृध्रो
जानामि तेऽपि सकलं यदनिष्टवृत्तम्
सोऽहं जटायुरभितः परिरक्षितुं त्वां
दैत्याश्रयेऽपि विपिनेऽत्र समागतोऽस्मि ।१३।

आश्वेव तामनतिदूरमवस्थितां त्वं
द्रक्ष्यस्यलं सुभग पञ्चवटीं सुरम्याम्
कालं च यत्र निवसन् सुखतः समस्तं
सम्यग्व्यतीत्य पुनरेष्यति राजधानीम् ।१४।

एवं निशम्य वचनं श्रवसे सुधावद्
रामः करौ कमलकुड्मलवद् विधाय
तातप्रियं जनकवत् समुपस्थितं तं
गृध्रं ननाम विपिने प्रतिलभ्य मित्रम् ।१५।

आसीद् विचित्र इह गृध्रमनुष्ययोगः
किं दुर्लभं जगति सत्त्वगुणान्वितस्य
सीताऽपि विष्किरकुलेशजटायुपं तं
सौमित्रिणा सममलं प्रणनाम भक्त्या ।१६।

तुम्हारे पिता का मित्र, अरुण का पुत्र मैं गृध्र जटायु हूँ। तुम्हारे जो भी अनिष्ट वृत्तान्त हैं मैं सभी को जानता हूँ। इसलिये मैं तुम्हारी चारों ओर से रक्षा करने के लिये, राक्षसों से युक्त भी जंगल में यहाँ मैं आया हूँ ॥१३॥ हे सुभग ! शीघ्र ही तुम समीपवर्ती उस सुरम्य पञ्चवटी को देखोगे। जहाँ सुखपूर्वक पूरे समय तक रहते हुये समय को ठीक-ठीक बिताकर पुनः राजधानी जाओगे ॥ ४॥ इस प्रकार श्रवण के लिये सुधा सदृश वचनों को सुनकर राम ने कमलकली के समान दोनों हाथ कर जोड़कर पिता के प्रिय, पिता के समान उपस्थित वन में मित्र गृध्र जटायु को प्राप्तकर प्रणाम किया ॥१५॥ इस वन में गृध्र और मनुष्य का संयोग विचित्र ही था। सत्त्व गुण युक्त व्यक्ति के लिये संसार में दुर्लभ क्या है ? सीता ने भी लक्ष्मण समेत पक्षियों के राजा उन जटायु को अतिभक्ति पूर्वक प्रणाम किया ॥१६॥

एवं विधाय दनुजाध्युषिते प्रदेशे
कान्तारवासि करिभिर्नितरां सुपूर्णे
अग्रेगमेकमपरं स्वहितं पतत्रिं
रामस्तुतोष विजने समवाप्य मित्रम् ।।१७।।

ततः ससीतः सहलक्ष्मणोऽसौ रामः पदार्तिर्विहगेन साकम्
उपासदत् पञ्चवटीं सुरम्यां गोदावरीवारिपृषत्पवित्राम् ।१८।

सकन्दरां हंसमयूरयुक्तां जातीजयापद्मसुगन्धपूर्णाम्
भुवं द्रुमश्रीपरिमण्डितां सः स्थातुं विलोक्यैव मनश्चकार ।१९।

मृद्भित्तिकां स्तम्भयुतां विचित्रामाच्छादितां पर्णतृणप्रयोगैः
समीकृतान्तस्तलभूमिभागां वर्षातपादौ च निवासयोग्याम् ।२०।

वंशाररां वंशगवाक्षयुक्तां वितर्दिकारोहणसम्प्रयुक्ताम्
सौमित्रिसन्निर्मितपर्णशालां दृष्ट्वा मुदाऽमूं स समध्युवास ।२१।

सौमित्रिसेवाविनिवृत्तचिन्तो विदेहजासेवितपादयुग्मः
पतत्रिसंरक्षणतः प्रसन्नः सोऽरण्यवासं ससुखं चकार ।२२।

ऐसा करके जंगली हाथियों से परिपूर्ण राक्षसाधिष्ठित प्रदेश में, अग्रेसर एक और अपने हितैषी पक्षी जटायु को मित्र प्राप्त कर वन में राम सन्तुष्ट हुए ।।१७।। इसके बाद सीता लक्ष्मण समेत राम पैदल ही जटायु के साथ गोदावरी के जलकणों से पवित्र सुरमणीय पञ्चवटी पहुँचे ।।१८।। कन्दराओं से युक्त, हंस-मयूर युक्त, चमेली-जूही-कमल की सुगन्ध से भरी हुई, वृक्षश्री से चतुर्दिक् सुशोभित, स्थान को देखकर उन्होंने वहाँ रहने का मन बना लिया १९।। मिट्टी की भीत वाली, स्तम्भों से बनी, सुन्दर, पत्तो-घासों के उपयोग से छायी गयी, अन्दर के भूभाग समतल को गयी घाम-वर्षा आदि में रहने योग्य।२०।। बांसों की किवाड़ और बांसों की ही खिड़कियों वाली वेदी-सीढ़ी से युक्त, लक्ष्मण से सुन्दर-सम्यक् बनाई गयी पर्णशाला को देखकर राम ने वहाँ प्रसन्नता पूर्वक निवास किया ।।२१।। सुमित्रानन्दन के सेवा से चिन्ता रहित, जनकनन्दिनी द्वारा सेवित पादयुगल, जटायु की सुरक्षा से प्रसन्न राम ने सुखपूर्वक वनवास किया ।।२२।।

तत्रञ्चवट्यां पयसां फलानामासीदभावोऽपि कुतःमृगाणाम्
वन्यश्रिया सम्भृतमण्डना सा कामंददौ शर्म च राजधान्याः ।२३।

राज्यं न वा काचन राजधानी सभा न सभ्या अधिपो न मानी
नानीकिनी नापि मुधाभिवादस्तथापि सौख्याय बभूव देशः ।२४।

पदं क्रमप्राप्तमरं हरेत रिक्थागतं वा द्रविणं हरेत ।
अनीश एवास्ति नरोऽपहर्तुं सौख्यं यशोवा प्रभुत्तां कदाचित् ।२५।

रामो वियच्छत्र इह स्थिरायां शास्तापशोः पक्षिमृगाण्डजानाम् ।
समीरसंवीजित एव नित्यं निरन्तरायं बुभुजे नृपत्वम् ।२६।

अधिवनं वनहीनजलाशयं तपसिपूरयितुं नवमम्बुदम् ।
नभसि वीक्ष्य समागतमेकदा प्रियतमां चकवेभरताग्रजः ।२७।

सुतनु पश्य समीरणवेगतो वियतिवारिदपङ्क्तिरितस्ततः ।
चलति किन्तु ददाति न शंवरं परमतिर्धनिकः स्वधनं यथा ।२८।

उस पञ्चवटी में जल-फल और मृगों का अभाव कहाँ था? वनसम्पदा से पूर्णतःअलङ्कृत उस पञ्चवटीने रामको राजधानीका पूर्णसुख प्रदान किया ।२३। न राज्य, न कोई राजधानी, न सभा, न सभ्य, न राजा, न सम्मानहिन सेना, न झूठा अभिवाद, फिरभी वह स्थान सुखके लिये बना २४ क्रम प्राप्त पद हरा जा सकता है, अथवा उत्तराधिकार प्राप्त धन छीना जा सकता है किन्तु व्यक्ति सौख्य, यश अथवा, प्रभुता को कदाचित् छीनने में असमर्थ है ॥२५॥ आकाशरूपी छत्र वाली इस भूमि में पशु-पक्षि मृग तथा अन्य अण्डजों के शासक राम वायु से कृतव्यजन निर्बाध, नित्य ही राजात्व का भोग कर रहे थे ॥२६॥ एक बार वन में ग्रीष्म ऋतु में चारों ओर वन में जब सरोवर जलशून्य हो गये थे, उन्हें परिपूर्ण करने के लिये आकाश में आये हुये नये मेघो को देखकर भरताग्रज राम प्रियतमा सीता से सकाम बोले ॥२७॥ तन्वङ्गि! देखो वायुवेग से आकाश में मेघवृन्द इधर-उधर भागते हैं किन्तु जल नहीं बरसते जैसे अन्यमति धनवान् अपना धन नहीं देता ॥२८॥

जलधरो विवशो भुवि वर्षिता परमहो भविता न विचारणा
गतजला सरसी लभतां कियज्जलनिधिर्लभताच्चकियज्जलम्।२६।
समुचितः पुनरेकविधिः सदा भवति तुष्टिकरो नहि संसृतौ
कुसमये नितरां समपेक्षितः प्रणिहिते समये स उपेक्षितः ।३०।
दिवसकृत्किरणैरवपीडितास्तपसि येऽभिलषन्ति जलागमम्
जलधरे प्रतिवर्षति प्रावृषं पुनरिमे कथयन्ति च दुर्दिनम् ।३१।
ऋतुषु पञ्चसु वारि दिवाकरो जलनिधेरभिकर्षति यत्नतः
समयवर्षितया स बलाहकं तुदति कामिहितं मरुता समम् ।३२।
अयि भविष्यति कः पथिकः प्रियामभिलषन्स्वगृहं न समुत्सुकः
प्रियतमं प्रियया सह योजितुं ध्रुवमयं मुदिरः समुपागतः ।३३।
सुजघने जघने खलु भूभृतः सुमिलितौ ननु पश्य घनावुभौ
अतितरां सुखदाम्बुभृतश्छटा हरति चाशु मनांसि शिखण्डिनाम्।३४

विवश मेघ धरती पर बरसेगा पर यह विचार नहीं कर पाता कि निर्जल सरोवर को कितना जल मिले और जलधि कितना जल पाये ॥२६॥ संसार में एक प्रकार की समुचित विधि सदा तुष्टिकर नहीं होती। असमय में वही वस्तु अत्यन्त अपेक्षित होती है तो अच्छे समय में उपेक्षित ॥३०॥ ग्रीष्म में सूर्य की किरणों से प्रपीडित जो वर्षागम् की अभिलाषा करते हैं, वर्षा में मेघ के बरसने पर वे ही लोग पावस को दुर्दिन भी कहते हैं ॥३१ सूर्य पाँचों ऋतुओं में समुद्र से प्रयत्न पूर्वक जल खीचता है वहीं समय पर वर्षा करने के कारण वायु समेत कामि मित्र बादलों को पीडित करता है। ३२॥ प्रियामिलाषी कौन परदेसी अपने घर के प्रति उत्सुक नहीं होगा। लगता है प्रिया से प्रियतम को जोड़ने के लिये ही यह प्रसन्न समय आया है ॥३३ हे सुजघने! देखो पर्वत के नितम्ब प्रदेश में परस्पर मिले हुए बादलों की शोभा अति सुखद है और मयूरों के मन को शीघ्र आकृष्ट कर ले रही है ॥३४॥

अहह नृत्यति नृत्यविशारदो यमभिलक्ष्य पुरः स भुजङ्गभुक्
कथमयं जलदो न करिष्यति प्रवसतां चरणं स्वगृहोन्मुखम् ।३५।

उपवनान्तलता विटपान् श्रिताः श्लथितबन्धनतः कृशतां गताः
अनुपदं स्वदशां जलदागमे ननु विचिन्त्य गताइव हर्षिताः ।३६।

जलधरं समवाप्य वसुन्धरा प्रियतमं विरहव्यथया श्लथा
सपदि मानमसौ परिहाय तं समुपसेवितुमद्य समुत्सुका ।३७।

नभसि चारु सिता विसकण्ठिकाः प्रकृतिवक्षसि हारमिव श्रिताः
सुतनु पश्य पुरन्दरकार्मुकं विरहिणीहृदयानि विखण्डितुम् ।३८।

कथमियं चपला विगतत्रपा मम पुरः परिचुम्बति वारिदम्
नियतमेव बहोः समयादियं न मिलिता स्वधवेन किमुत्सुका ।३९।

यदपि चास्तु निभालय मानिनां क्षपयति स्तनयित्नुरवः स्वयम्
मनसि रागवतामनुरागितां प्रकुरुते ननु सम्प्रति वर्षणम् ।४०।

ओ हो ! नृत्य विशारद वह भुजङ्ग भोगी मयूर जिसे सामने देखकर नाच रहा है वहो बादल भला प्रवासस्थ जनों के पैर को अपने गृहोन्मुख क्यों नहीं करेगा ? ।।३५।। उपवन प्रदेश में वृक्षाश्रित लतायें ढीले बन्धन के कारण कृशता को प्राप्त हो गयी हैं मानो पावस में प्रतिपद अपनी दशा को सोचकर हर्षित सी हो गयी हैं ।।३६। विरह व्यथा से ढीली धरती प्रियतम मेघ को प्राप्तकर शीघ्र मान का परित्याग कर आज उसकी सेवा के लिये समुत्सुक है ।।३७।। आकाश में सुन्दर शुभ्र बलाकायें प्रकृति के वक्ष पर हारजैसी लग रही हैं। शोभनाङ्गि विरहिणी हृदयों को खण्डित करने के लिये इन इन्द्र धनुषों को देखो ।।३८। देखो न यह चपला विद्युत निर्लज्ज मेरे सामने ही मेघ को चूम रही है। निश्चय ही यह अपने प्रिय से बहुत समय से नहीं मिली थी क्या ? ।३९। मानियों में जो भी मान हो, मेघध्वनि समाप्त कर देती है। वर्षा इस समय प्रेमीजनों के मनमें अनुरागिता पैदा करती है ।।४०।।

व्यपगते जलदे क्षितिसंस्थितो जलधरं समवाप्य पुनर्भवः
प्लवगणः कुरुते स्वरवं तथा श्रुतिवचांसि रटन्ति यथार्भकाः ।४१।
सपदि पीडयितुं प्रमदाजनं सुरभिरेव गतः स्मरमित्रताम्
ऋतुरयं पुरुषं परिबाधितुं प्रकुरुते किमनन्यजमित्रताम् ।४२।
सरजसं रजसा विधुतं द्रुतं सतमसं तमसा च परिप्लुतम्
किमिह कर्तुमयं नवनीरदः क्रमत आशु सतोऽप्यसतो भुवि ।४३।
स्मरजयं कथयन्ति शिखीबलाः प्रकटयन्ति मुदं बकुलादयः
अपि दधाति निजायतिमप्तृणं जलधरे नियतं परिमूर्च्छति ।४४।
सरति वायुरसौ परिदीपयन् किमनलं सुहृदं परिरक्षितुम्
प्रतिदिशं जलवर्षणलेपितं विरहिमानससम्पुटनिह्नुतम् ।४५।
ऋतुरयं जयताल्लभतां श्रियं दिशति योऽसुमते सकलंशिवम्
अभिनवं समवाप्य सुखं जना अविरतं निरता निजकर्मसु ।४६।

बादल के चले जाने पर धरती में रहने वाला फिर वर्षा में पुनः मेघ को प्राप्त पुन र्जन्म युक्त मेढकगण इस प्रकार अपनी टर्र-टर कर रहे हैं जैसे बच्चे वेदमन्त्रों को रटते हैं। ॥४१॥ प्रमदाजनों को शीघ्र प्रपीडित करने के लिये वसन्त ही काम मित्रता को प्राप्त हुआ। यह पावस ऋतु मानो पुरूषों की पीड़ित करने के लिये काममैत्री कर रही है ॥४२॥ लगता है इस धरती पर यह नयामेघ सरजस को रजोविहीन सतमस् को तमोविहीन तथा सत् को असत् करने के लिये मानो तेजी से पदक्रम कर रहा है ॥४३॥ निश्चय ही बादल के परितः फैलने पर मयूर कामजय को कहते हैं, वकुल आदि हर्ष प्रकट करते हैं और वर्षा जल में घासे अपनी वृद्धि को धारण करती है ॥४४॥ प्रतिदिशा में जलवर्षा से लेपित, विरही के मन सम्पुट में छिपे मित्र अग्नि की रक्षा के लिये उसे परिदीप्त करता हुआसा यह वायु प्रवहित हो रहा है क्या? ॥४५॥ यह ऋतु शोभा धारणकरे, जो सारे प्राणियों को समस्त कल्याण देती है। लोग अभिनव सुख संप्राप्त कर निरन्तर अपने कार्यों में लग गये हैं ॥४६॥

वर्षर्तुं वर्णयन्नेवं भावैश्च मानसोत्थितैः
निनाय चतुरो मासान् पञ्चवट्यां स राघवः ।४७।
ततः परं वीक्ष्य समागतां नवां वधूमिवान्यां शरदं स राघवः
अलं विसस्मार समुत्सुकेक्षणश्चिरोपभुक्तर्तुवियोगजां शुचम् ।४८।
सितांशुकैः पोटगलैः सुगुण्ठिता बिसप्रसूनाननमुद्वहन्ती
सनूपुरा हंसरवैरियं शरद् बिभर्ति शोभां नवशालिगात्रा ।४९।
गतं सुधांशुं शरदोऽधिवेश्म सा निरीक्ष्य सम्यग् विजहाति तं प्रियम्
पयोधरभ्रंशनिरस्तसौभगा वर्षा जहद्विद्युदपाङ्गदर्शना ।५०।
निरीक्ष्य चन्द्रं स्वधवं निजाङ्गने समागतं वर्षमनुप्रवासतः
मुहुर्मुहुः हंसगतिस्तमीक्षते शरत्प्रवत्स्यत्पतिका कुमुद्वती ।५१।
स्मृतिः सपत्न्या उदियान्न मानसे कदापि भर्तुः परिवीक्ष्य तत्स्थलम्
धियाऽनया किं परिधाव्यतेऽनया वियन्निरभ्रं सितचन्द्रिकाचयैः।५२

इस प्रकार मानसोत्पन्न भावों से वर्षा का वर्णन करते हुए उन राघव-राम-ने पञ्चवटी में चारमास विताये ।।४७।। इसके बाद वह राघव-राम-मानो दूसरी अभिनववधू सी आई हुई शरद् को देखकर समुत्सुक नयन वह बहुत दिनों से उपभुक्त ऋतुके वियोगजन्य शोक को पूरी तरह भूल गये ।।४८।। कास कुसुमरुपी शुभ्रांशुक से विधिवत् अवगुण्ठित, कमलपुष्प वदन धारण करने वाली, हसध्वनियों से सनूपुर, अभिनव शालिशरीर वाली यह शरद्-वधू की शोभा धारण कर रही है ।।४९।। पयोधरच्युति (मेघराहित्य से सौभाग्य शून्य, परित्यक्त विद्युत् अपाङ्ग-नयना वह वर्षा चन्द्रमा को शरत् भवन गया देखकर उस प्रिय को सम्यक् छोड़ दे रही है ।।५०।। हंसगमनवती, कुमुद्वतीं, प्रोषितभर्तृका शरत् वर्ष (वर्षा भर) के बाद प्रवास से अपने आँगन में आये निजपति चन्द्र को देखकर बार-बार उसे निहारती है ।।५१।। मानो इस विचार से कि भर्त्ता (चन्द्र के मनमें सपत्नी की स्मृति कभी भी न पैदा हो अतएव उसके स्थान निरभ्र आकाश को वह शुभ्र चन्द्रिका निचय से धुलवा दे रही है । ।।५२।।

दिवा दिवानाथमुपेत्य सस्मितं सभाजयन्ती शरदम्बुजेक्षणा
प्रहर्षयन्ती च निशा निशापतिं द्विभर्तृ कानीतिमसौ सुशिक्षते।५३।
गतासु काष्ठासु विकासितामियं शरद्वधूर्दर्शयति स्वकौशलम्
गतिं रवं हंसगणेषु विभ्रमं सुमेषु सिन्धौ च निजाङ्गदर्शनम् ।५४।
वरानने पश्य शरद्विधोश्छटां कलङ्किनः प्राप्य वधूं मनोरमाम्
न शङ्खचूडो विजयेत निर्जरान् कथं तुलस्यङ्कविलासनिर्भरः ।५५।
द्विजानसौ प्रेरयति स्वभावतो जगद्विधात्र्याश्चरणानुसेवने
तथैव राजन्यगणान् जयश्रियं वपुःश्रिया प्राप्तुमसौ प्रचोदते ५६।
अथैकदा पञ्चवटीकुटीरे शनैः शनैर्वाति मृदौ समीरे
वनं सुमित्रातनये प्रयाते निद्राति रामे च कुशासनस्थे ।५७।
अशेषसौन्दर्यविनिर्मितात्मा श्रमश्लथेषद्परिदृष्टगात्रा
समाप्य कार्याणि विरन्तुमासीत् सीता निषण्णा शिशिरापराह्णे ।।

लगता ऐसा है मानो यह कमल नयना शरद् दिन में हंसती हुई दिनपति को प्राप्त कर उसका स्वागत करती हुई और रात में निशानाथ को प्रसन्न करती हुई द्विभर्तृका नीति की सुशिक्षा ले रही है ।।५३।। चरमसीमा तक (दिशाओं में) विकासिता को प्राप्त (दिशाओं के विकसित हो जाने पर) यह शरद्वधू गति और ध्वन को हंसों में, विभ्रमों को पुष्पों में और विजाङ्गदर्शन को सिन्धु (नदी समुद्र)में इस प्रकार) अपने कौशल को दिखा रही है ।।५४।। सुवदने, मनोरम शरद्वधू को प्राप्त कलङ्की चन्द्रमा की शोभा देखो (कितनी सुन्दर है), फिर तो तुलसी की अङ्कालीके विलासमुख से भरपूर शङ्खचूड देवताओं को क्यों न जीते? ।। यह शरद् स्वभावतः ब्राह्मणों को जगद्विधात्री माँ की चरण सेवा के लिये प्रेरितकरती है उसी प्रकार यह शरीर श्री से राजाओं को विजयश्री प्राप्ति के लये प्रेरित करती है । ५६ एक बार पञ्चवटी की कुटियां में जब धीरे धीरे मन्द वायु चल रही थी, सुमित्रानन्दन वन में गये हुए थे और राम कुशासन पर निद्रित थे ।।५७।। समस्त सौन्दर्य से बनायी गयी, थकान से कुछ शिथिल शरीर दिख रही शिशिरकाल के अपराह्न में कार्यों को समाप्त कर सीता बैठी विश्राम कर रही थी ।।५८।।

पितुश्च सङ्क्रान्तगुणो विलज्जो जयन्तनामाऽथ महेन्द्रसूनुः
आदर्श आस्ते धनिकात्मजानामटन् निरर्थं समुपागतः सः ।५९।
ईषद्विवृत्तां श्रममीलिताक्षीं पतिप्रभावाच्च निरस्तशङ्काम्
स प्राश्वतिक्रान्तपुलोमजां तां सीतां निरीक्ष्यैव गतः स्मरत्वम् ।६०
जानन् विनिन्द्यं परवान् जयन्तो रामप्रभावञ्च भृशं विजानन्
आस्तेस्म दूरात्तु निरीक्षमाणः सीतामनिन्द्यां धृतकाकरूपः ।६१
तस्मिन्क्षणे पार्श्वविवर्तनार्थं रामोऽर्द्धनिद्रः सहसा ददर्श
दूरस्थमेकं शकुनिं विचित्रं रूपेण काकं वकवत्सचेष्टम् ६२।
काकः सदा चञ्चल एव दृष्टो वकः सदा ध्यायति बद्धलक्ष्यः
अतो न काकः न च वा वकोऽयं वितर्कयन्नेवमसौ प्रबुद्धः ।६३।
असावधानः स तु राघवेन्द्रात् सीतां समुद्दिश्य गतः स्वभावात्
उरोविदारं स्वनखैश्चिकीर्षुर्ज्वलन्तमायान्तमिषुं ददर्श ६४

प्रतिबिम्बित पितृगुण, निर्लज्ज, इन्द्रपुत्र जयन्त जो धनिकपुत्रों का आदर्श था, टहलता हुआ अनावश्यक वहाँ पहुँच गया ॥५९॥ थोड़ा सा तिरछी घूमी हुई, परिश्रम से मीलित नयनों वाली, पति के प्रभाव से निःशङ्क बैठी हुई, पुलोमजा से भी सुन्दर उस सीता को देखकर ही वह तुरन्त कामवश हो गया ॥६०॥ निन्दित कर्म को जानते हुये भी परवश तथा राम के प्रभाव को खूब जानते हुये कौएँ का रूप धारण कर दूर से ही सुन्दरी सीता को देखते हुये खड़ा रहा ।६१॥ करवट बदलने के लिये उस समय अर्धनिद्रित राम ने सहसा दूरवर्ती, स्वरूप से काक तथा बगुले की सी चेष्टा से युक्त एक विचित्र पक्षी को देखा ॥६२॥ कौआ सदा चञ्चल ही देखा गया है, बद्धलक्ष्य बगुला सदा ध्यान ही किये रहता है । इसलिये यह न तो कौआ है न बगुला ऐसा सोचते हुये वह जाग गये ॥६३॥ राघवेन्द्र से असावधान वह स्वभाववश सीता को उद्देश्य कर उनके पास गया और अपने नखों से वक्ष विदीर्ण करना ही चाह रहा था कि आते हुये जलते वाण को देखा ॥६ ॥

पलायमानः स विनाशहेतोर्जगाम देवान् जनकप्रधानान्
परं निराशः परितः क्षमार्थी जवेन रामस्य पदोः पपात ।६५।
महेन्द्रपुत्रो धृतकाकरूपः स्वभावतः कुत्सिततामुपेतः
एवं परिज्ञाय मनुष्यरूपो विधाय चक्षाम तमेकनेत्रम् ।६६।
विबोध्य सीतां घटनां निवेद्य कर्तुं पुनस्तामतिसावधानाम्
स पातयामास मुहुर्जयन्तं सीतांघ्रिपद्मादतिविप्रकृष्टम् ।६७।
गते जयन्ते कृतनित्यकृत्यो विविक्तमासाद्य नवं चिकीर्षुः
साम्राज्यनीतेः परिपारदृश्वा स चिन्तयामास धनुर्धरोत्तमः ।६८।
असुरोन्मूलनार्थैव वने वासं प्रकुर्वतः
दर्शं दर्शं समा अत्र व्यतीता द्वादशाञ्जसा ।६९।
मत्वागस्त्यपरामर्शं न क्षेपः प्रथमं कृतः
परं किमपि कर्त्तव्यं कालोऽयं समुपागतः ।७०।

विनाश से रक्षा के लिये भागता हुआ वह इन्द्रप्रधान देवों के पास गया पर चारों ओर से निराश होकर क्षमा की याचना हेतु शीघ्रतापूर्वक राम के पैरों पर गिर पड़ा ॥६५॥ इन्द्रपुत्र ने काकरूप धारण कर स्वभावतः निन्दितकर्म किया है, इसे समझकर मनुष्यरुपधारी राम ने उसे एक नेत्र कर क्षमा कर दिया ।६६। सीता को जगाकर, घटना को बताकर फिर से उन्हें अतिसावधान करने के लिये जयन्त का फिर सीता के चरणकमल से बहुत दूर फेंक दिया ॥६७॥ जयन्त के चले जाने पर, नित्य विधि समाप्त कर, एकान्त प्राप्तकर कुछ नया करने की इच्छा से राजनीति के पारदृश्वा, धनुर्धरोत्तम उन राम ने सोचा ॥६८॥ राक्षसों के उन्मूलन के लिये ही वनवास करते हुये देखते-देखते यहाँ मेरे बारह वर्ष तेजी से बीतगये ॥६९॥ अगस्त्य की सलाह को मानकर पहले कहीं भी पहल नहीं की। फिर भी कुछ करना चाहिये, उसका यह समय आ गया है ॥७०॥

घटनेयं जयन्तस्य दिष्ट्याऽद्य घटिता नवा
तस्मान्नूनं ग्रहीतव्या शिक्षा काप्यनया मया ७१।

अस्ति मैत्रो महेन्द्रेण पूर्वतः रघुवंशिनाम्
मानवतामुपाश्रित्याक्षंस्ये तं पाकशासनिम् ।७२।

यदि क्रतुभुजोऽप्येव परादाराभिमर्षकाः
का कथा दानवेन्द्राणां प्रकृत्यैव तमोजुषाम् ।७३।

अस्मद्वैवस्वते वंशे पूज्या वंशप्रवर्तिका
आत्मसंगोपनायैव छायां स्वामकरोत् पुरा ।७४।

रक्षितव्या भृशं सीता दनुजैः सहसङ्गरे
स्वजन्महेतवे नूनं प्रदातव्यैव वह्नये ।७५।

छायारूपा नवा सीता भविष्यति सहायिका
अत आपत्स्वनिर्विण्णः करिष्ये सकलं महत् ।७६।

सौभाग्य से जयन्त की यह आज एक नयी घटना घट गई । इसलिये निश्चय ही इससे मुझे कुछ शिक्षा लेनी चाहिये ।७?। इन्द्र से रघुवंशयों की पहले से ही मित्रता है । मानवता के कारण ही मैंने इन्द्रपुत्र को क्षमा कर दिया है ॥७२॥ यदि देवगण भी इस प्रकार परदाराभिमर्षण करते हैं तो फिर स्वभाव से ही तमोनुरक्त राक्षसों की तो बात ही क्या है ॥७३॥ हमारे वैवस्वतवंश में वंश प्रवर्तिका पूज्या छायाने अपने स्वरूप को छिपाने के लिये ही पहले अपने को छायारूप में परिवर्तित कर लिया था ॥७४॥ दानवों से युद्ध होने पर सीता की पूर्ण रक्षा करनी है, निश्चय ही अपने जन्म के लिये इसे अग्नि को समर्पित कर ही देना चाहिये ।७५। छायारूपी नयी सीता सहायक होगी, इसलिये विपत्तियों से निश्चिन्त होकर महान कार्य करूँगा ॥७६॥

एवं विचिन्त्य कालज्ञो द्वितीयेऽह्नि विचक्षणः
राघवः सत्यसङ्कल्पो ददौ सीतां कृशानवे ।७७।
रवौप्रयातेऽथ दिशामुदीचीं हिमात्यये भात्सु जनस्थलेषु
रसालपुष्पं परिचुम्बितेऽलौ पुंस्कोकिले कूजति मन्दमन्दम् ।७८।
पलाशपर्णेषु गतेषु रागं सुमानि सूते च बहून्यशोके
मृगीं मृगे शृङ्गमुखेन कृष्टे द्विरेफवृन्देषु कलंगदत्सु ।७९।
शनैः शनैर्गन्धवहे प्रवाति प्रसादितेष्वम्बुरुहैः सरःसु
कामंगता शूर्पणखा प्रकाम ददर्श रामं नयनाभिरामम् ।८०।
सृष्टौ विधातुर्न कदापि दृष्टं निःशेषसौन्दर्यनिधिं विलोक्य
वामभ्रुवां स्वैरपरम्परायां काष्ठां गता शूर्पणखाऽचिचिन्तत् ।८१।
अप्राप्य पुंसामतिकामरूप लब्धो मया किं निजजन्मलाभः
सान्या न गण्या प्रमदासमाजे यंकेन बद्धा स्वमनो निहन्ति ८२।

कालज्ञ, सत्यसंकल्प, विलक्षण राम ने ऐसा सोचकर दूसरे दिन सीता को अग्नि को प्रदान कर दिया ।।७७।। इसके बाद सूर्य के उत्तर दिशा की ओर चले जाने पर, शीत बीत जाने से जनस्थान के सुशोभित हो जाने पर भ्रमर से आम्रमञ्जरियाँ जब परिचुम्बित की जाने लगीं, और जब कोयल मन्द-मन्द कूकने लगी ।।७८।। पलाश पत्ते जब लाल हो गये, अशोक में जब फूल खिल गये, मृग जब मृगी को सींग की कोर से कुरदने लगे और जब भ्रमरवृन्द मधुर झङ्कार करने लगे ।७९। मन्द-मन्द समीर बहने लगा, सरोवरों में कमल खिल गये, बसन्त आ गया, तो स्वैरविहारिणी कामवशङ्गता शूर्पणखा ने अत्यन्त नयनाभिराम राम को देखा ।।८०।। विधाता की सृष्टि में कभी भी न देखे गये सकल सौन्दर्य निधान रामको देखकर स्त्रियों में स्वैरविहार परम्परा की सीमा शूर्पणखा ने सोचा ।।८१। पुरुषों में कामाग्निरूप इसको न प्राप्तकर मैंने क्या अपने जन्म का लाभ प्राप्त कर लिया ? स्त्री समाज में नगण्य वह और ही होती हैं जो एक पुरुष से बाँधकर अपने मन को मारती हैं ।।८२।।

अहो नु चित्तोन्मथने समर्थः कोऽयं युवा न्यक्कृतमीननेत्रः
हिमांशुवल्लोचनशर्मदायी कुतो जनस्थानमितः किमर्थः ।८३।

यः कोऽप्ययं स्यादमरो नरो वा मया हिलम्यो रतिकर्मयोग्यः
विचिन्त्य सैवं परिवृत्य रूपं स्वमायया तं समुपाससाद ।८४।

सा मीननेत्रा धृतकीरनासा चन्द्रानना बिम्बफलाधरोष्ठा
विल्वस्तना हंसगतिः सुकेशी शनैः शनैः राममियाय मुग्धा ।८५।

राजीवनेत्रं तरुणं सुरूपं पद्मासनेनैव कुशोपविष्टम्
एकेन पुंसा सहितं सभार्यं प्रोवाच सा वीक्ष्य मनोऽनुकूलम् ।८६।

कस्त्वं युवन् का युवतिः समीपे कोऽयं युवाऽन्यः कथमागतोऽत्र
नायं प्रदेशस्तव वासभूमिस्तद् ब्रूहि सर्वं यदि तेऽनुकूलम् ।८७।

श्रुत्वाऽदसीयानि वचांसि रामो जगाद तां स्वं युवतीमुदन्तम्
सा शृण्वती कामवशं प्रयाता निमील्य नेत्रेऽर्द्धमिदं जगाद ।८८।

अरे, चित्तोन्माथ में समर्थ, तिरस्कृत मत्स्य नयन यह नौजवान कौन है? चन्द्र के समान आँखों को सुख देने वाला इस जनस्थान में कहाँ और कैसे ? ।।८३।। यह देव-मनुष्य जो कोई भी हो, रतिकर्म-योग्य इसे मुझे प्राप्त करना ही है। ऐसा सोचकर अपनी माया से अपना रूप बदलकर उन राम के पास पहुँची ।।८४।। मीननेत्र शुकनासा, चन्द्रवदनी, बिम्ब-फलाधरोष्ठी, बिल्वस्तनी, हंसगमनी, सुकेशिनी, मुग्धा रूप धारे वह धीरे-धीरे राम के पास पहुँची ।।८५।। कमलनयन, युवा सुन्दर रूप पद्मासन से ही कुशासन पर बैठे हुए भार्यासमेत मनोऽनुकूल एक पुरुष राम को देखकर उनसे बोली ।।८६।। नौजवान तुम कौन हो ? तुम्हारे समीप यह युवती कौन है ? यह दूसरा नौजवान कौन है ? यहाँ कैसे आये हो ? यह प्रदेश तुम्हारी निवास भूमि नहीं है. तो यदि अनुकूल हो तो सब कुछ बताओ ।।८७।। उसके वचनों को सुनकर राम ने उस युवती से अपना वृत्तान्त सुना दिया, सुनते ही वह कामवश हो गयी, अधमुँदे आखों वह यह बकबकायी ।।८८।।

निशम्य वृत्तान्तमिमं त्वदोयं ज्ञात्वा च दुःखानि तवागतानि
सर्वाण्यपाकर्तुमहं समर्था यदि त्वयैवाशु वृता भवेयम् ।८६।

तां वोक्ष्य कामाग्निदिधक्षितान्तां ज्ञात्वाऽपि भावं वचसाऽनुचेष्टम्
रामोऽपि कर्तुञ्च किमप्यपूर्वं हसंस्तदोचे परिहासवाणीम् ।६०।

शुभे सभार्योऽहमतस्त्वयाऽयं युवानुजो मे वरणीय एव
वृत्वा पुनर्माञ्च भविष्यति त्वं सापत्न्यदोषोपहता कदाचित् ।।६१

बुभुक्षितः किं न करोति पापं गतत्रपः किं निदधाति शीलम्
कः कामिनीं वारयितुं समर्थः सा लक्ष्मणं शूर्पणखाऽभिपेदे ।६२।

दासोऽस्मि भद्रे परवानवेहि दासी कथं त्वं भवितुं प्रवृत्ता
मत्स्वामिनं पूर्ववृतं नितान्तं बृणुष्व शीघ्रं निजकमयोग्यम् ।६३।

श्रुत्वा ततो लक्ष्मणवाचमेनां सा स्वैरिणी राममनुप्रयाता
अनन्तरं लक्ष्मणमेवमेवं दोलायमाना मनसा बभूव ।६४।

तुम्हारे इस बृत्तान्त को सुनकर और तुझे प्राप्त दुःखों को जानकर मैं इन सबको शीघ्र दूर करने में समर्थ हूँ यदि तुम मुझे अभी वरण करलो ।८६। कामाग्निक्षुधान्वित नेत्रों वाली उसे देखकर तथा चेष्टानुकूल वाणी से भावों को जानकर भी कुछ अपूर्व करने के लिये राम ने भी हंसते हुए तब परिहास वचन बोले ।।६०।। शुभे ! मैं सपत्नीक हूँ। इसलिए तुम्हें इस मेरे नौजवान अनुज का ही वरण करना चाहिए और कदाचित् मेरा वरण करलो तो तुम सौतिया डाह से पीड़ित होओगी ।।६२।। भूखा कौन पाप नहीं करता ? निर्लज्ज क्या शील की रक्षा करता है ? कामिनी को कौन रोक सकता है ? तो वह शूर्पणखा लक्ष्मण के पास पहुँची ।।६२।। भद्रे, मैं दास हूँ, पराधीन हूँ। तो तुम क्यों दासी होना चाह रही हो ? प्रथम वृत, अपने कर्म के नितान्त योग्य मेरे स्वामी का ही शीघ्र वरण करलो ।।६३।। फिर लक्ष्मण के इस कथन को सुनकर वह स्वैरिणी राम के पास पहुँची, फिर लक्ष्मण के पास और इस प्रकार मन से दोलायमान हो गयी ।।६४।।

परं स्मरावेगविलुप्तचित्ता वचोऽवगन्तुं परिहासपूर्वम्
क्वचित् समर्था न भवन्ति लोके गतागताऽतोऽलमितस्ततः सा ।९५

यथा न सिंही क्षुधिता मृगव्यं स्वतो जहाति प्रतिरोधिताऽपि
क्षुब्धा तथा सा कुलटाऽपकर्तुं स्वरूपमास्थाय पुनर्जगाद ।९६।

विलज्जसे न स्वयमागतां मां प्रतारयत् त्वं परिहासपूर्वम्
उक्त्वैवमाशु प्रतिहन्तुमेषा सीतां तदीयाभिमुखं प्रपन्ना ।९७।

तदेङ्गितज्ञस्त्वरितानुकर्म्मा स लक्ष्मणः क्रोधवशंगतायाः
सीतां विभीतां परिसान्त्वनाय श्रुती च नासामसिना विभेद।९८।

चीत्कारपूर्वं स्वगृहं गतायां तस्यामसत्यां समुवाच रामः
प्राग्वर्षमेनां समवेहि वात्यां भ्रातर्विरोधाय कटिं बधान ।९९।

ततो भयविसंत्रस्ता विह्वला कामरूपिणी
नासाकर्णविहीना सा गतोचे दण्डकेश्वरम् ।।१००।।

किन्तु काम के आवेग से चित्त शून्यलोग इस संसार में परिहास-पूर्वक बातों को भी कहीं समझने में समर्थ नहीं होते। अतः वह भी यहाँ से वहाँ इस प्रकार उत्पन्न गतागत करती रही ।।९५।। भूखी सिंहिनी जैसे रोकी जाने पर भी पशुको स्वयं नहीं छोड़ती, उसी प्रकार क्षुब्ध वह कुलटा रामादि का अहित करने के लिये अपने स्वरूप को धारण कर पुनः बोली ।।९६।। स्वयं आयी हुई मुझे परिहासपूर्वक वञ्चित करते हुए तुम लज्जित नहीं होते ? ऐसा कह कर ही वह सीता को मारने के लिये तुरन्त उनके सम्मुख पहुँच गयी ।।९७।। तब इङ्गितज्ञ, क्षिप्रानुकारी उन लक्ष्मण ने डरी हुई सीता को ढाढस दिलानेके लिये क्रोधवश हुई शूर्पणखा की नाक और कान तलवार से काट दी ।।९८।। चीत्कार पूर्वक अपने निवास को उसके चले जाने पर उसकी अनुपस्थितिमें राम ने कहा भाई! इसे वर्षापूर्व की आंधी समझो, विरोध के लिये कमर कसलो ।।९९।। इसके बाद भयसे काँपती, विह्वल, कामरूपिणी शूर्पणखा, नाक-कान हीन जाकर दण्डकाधिपति से बोली ।।१००।।

दण्डकाधिप मे भ्रातः शृणु मे वचनं खर
रूपं पश्य तथेदं मे यल्लब्धं त्वयि जीवति ।१०१।

भ्रमन्त्या दण्डकारण्ये दृष्टौ दशरथात्मजौ
ताभ्यामासोत्सहैकास्त्री पद्मिनी पद्मलोचना ।१०२।

दृष्ट्वा मां विरूपाक्षीं विरूपां भैरवस्वनाम्
दुर्मुखीं दारुणां वृद्धां सा जहास गतत्रपा ।१०३

त्वद्रक्षणसमाश्वस्ता यदाहं सन्न्यवारयम्
एकस्तदिङ्गितेनैव कृतवान् निर्नासिकाञ्च माम् ।१०४।

एतस्मात्त्वं महाबाहो हत्वा दशरथात्मजौ
अङ्कस्थां कुरुताद् भ्रातर्वनितां रूपगर्विताम् ।१०५।

एवमुक्त्वा स्ववृत्तान्तं पुंश्चली कुलपांसुला
खरमुद्बोधयामास प्रतीकारसमुत्सुका ।१०६।

हे दण्डकाधिप भाई खर, मेरी बात सुनो। मेरे उस प्रकार के इस रूप को देखो जो तुम्हारे जीते मैंने पाया है ॥१०१॥ दण्डकारण्य में घूमती हुई मैंने दशरथ पुत्रों को देखा। उनके साथ कमलनेत्री एक पद्मिनी स्त्री थी ॥१०२॥ घिनौने रूप, आँख, घोर ध्वनि, कुमुखी, भयंकार बूढ़ी मुझे देखकर निर्लज्ज वह हँस पड़ी ॥१०३॥ तुम्हारी रक्षा से आश्वस्त जब मैंने उसे रोका तो उसके संकेत पर ही एक ने मुझे नासाहीन कर दिया ॥१०४॥ इसलिये हे महाबाहु! तुम दशरथ पुत्रों को मारकर, भाई उस रूपगर्वित नारी को हस्तगत करो ॥१०५॥ इस प्रकार अपने वृत्तान्त को कहकर पुंश्चली कुलकलङ्क उसने प्रतीकार करने के लिये खर को उत्तेजित किया ॥१०६॥

खरेण प्रेषितास्तत्र राक्षसाश्च चतुर्दश
रामेण पञ्चतां नीता अनायासं धनुर्भृता ।१०७।

खरो निशम्य वृत्तान्तं वाहिन्या सुविशालया
सदूषणो विवेष्टैं तं रामं त्रिशिरसा सह ।१०८।

संवेष्टनं चतुर्दिग्भ्यः दृष्ट्वा युद्धविशारदः
राघवः प्रेषयामास गुहां सीतां सलक्ष्मणाम् ।१०९।

खड्गैः शूलैः शिलावर्षैराशुगैः पट्टिशैस्तथा
गदाभिरसिभिश्चैव तत्र संख्यं प्रवर्द्धितम् ।११०।

तत्र वीरेण रामेण केवलं धनुषाऽऽहवे
हतः खरो महावीर्यो दूषणस्त्रिशिरास्तथा ।१११।

चतुर्दशसहस्राणि रक्षसां क्रूरकर्मणाम्
हतान्येकेन रामेण शूरेणाध्यवसायिना ।११२।

खर ने वहाँ चौदह राक्षस भेजे। धनुर्धारी राम ने बिना प्रयास के ही सबों को मार डाला ।।१०७।। इस वृत्तान्त को सुनकर खर ने दूषण, त्रिशिरा तथा भारी सेना के साथ उन्हें घेर लिया ।१०८। युद्ध विशारद राम ने चारों ओर से घिरा देखकर सीता को लक्ष्मण समेत गुफा में भेज दिया ।१०९। खड्ग, शूल, बाण, पट्टिश, गदा तलवारों तथा शिलावर्षों से वहाँ भयङ्कर युद्ध हुआ ।।११०।। उस युद्ध में मात्र धनुष से वीर रामने ही महापराक्रमी खर, दूषण, त्रिशिरा को मारा ।।१११।। बहादुर, परिश्रमी एक अकेले राम ने घोरकर्म करने वाले चौदह हजार राक्षसों को मार डाला ।।११२।।

अनाहतावशिष्टेन रक्षसांभिह पुंश्चली
अकम्पनेन साकं सा लङ्कां शूर्पणखा ययौ ।११३।

सम्मुखं राक्षसेन्द्रस्य रावणस्य दुरात्मनः
बहुधा बहुशश्चैव दीनवद् विललाप सा ।११४।

राक्षसेन्द्र महाबाहो जित्वा त्वं भुवनत्रयम्
अत्र तिष्ठसि लङ्कायामज्ञात्वा राज्यसंस्थितिम् ।११५।

कीदृशोऽयं प्रवन्धस्ते चाराणां दनुजाधिप
न येन त्वं विजानासि षड्यन्त्रं निजवैरिणाम् ।११६।

भूपाश्चारदृशः सन्ति चारहीना अलोचनाः
दृष्टिहीनास्तु राजानः न क्षमा राज्यकर्मणि ।११७।

युद्धे त्रिशिरसा साकं निहतौ खरदूषणौ
चतुर्दशसहस्राणि रक्षसां निहतानि च ।११८।

अहत, अवशिष्ट राक्षसों तथा अकम्पन के साथ वह पुंश्चली शूर्पणखा लङ्का पहुँच गई ।।११३।। राक्षसराज, दुरात्मा रावण के समक्ष उसने दुःखी के समान अनेक प्रकार से बहुत विलाप किया ।११४। हे महाबाहु राक्षसेन्द्र ! तीनों लोकों को जीतकर तुम राज्य की स्थिति को न जानकर यहाँ लङ्का में पड़े हो ।।११५।। हे राक्षस नरेश तुम्हारा दूतों का यह कैसा प्रबन्ध है कि तुम अपने शत्रुओं के षड्यन्त्र को भी नहीं जानते ।।११६।। राजा दूतनेत्र होते हैं, दूतविहीन वे नेत्रविहीन हैं। नेत्रहीन राजा राज्य कार्य के योग्य नहीं होते ।।११७। युद्ध में त्रिशिरा समेत खर-दूषण मारे गये साथ ही चौदह हजार राक्षस भी मारे गये ।।११८।।

न श्रुतं चेत्त्वया वृत्तं जनस्थानीयमद्भुतम्
गुप्तप्रणिधयो नूनमकर्मण्या मतास्तव ।११९।
भ्रमन्ती चैकदाऽरण्ये दृष्ट्वा हर्षयुतान् मुनीन्
पुनरारब्धयज्ञांस्तान् प्रावृतम् हेतुबोधने ।१२०।
तत्राऽपश्यम् युवानौ द्वौ मुनिवेषधरावुभौ
एकया जोषया साकं पञ्चवटीमुपाश्रितौ ।१२१।
प्रायशो मुनयस्तत्र जनस्थाननिवासिनः
क्वचिद् गत्वा प्रकुर्वन्ति काश्चिद् गुप्तां विचारणाम् ।१२२।
खराय प्रान्तपालाय भूपम्मन्याय तत्क्षणम्
सर्वमावेदितं वृत्तं श्रुतं तेन न मे वचः ।१२३।
रहस्ये हन्त विज्ञाते सद्यः स्याच्चेत्प्रतिक्रिया
नागता स्यादवस्थेयं रक्षसामपमानदा ।१२४।

यदि तुमने जनस्थान में हुए इस अद्भुत समाचार को नहीं सुना है तो निश्चय ही तुम्हारे गुप्तचर अकर्मण्य हैं ॥११९॥ एक बार वन में घूमती हुई, प्रसन्न तथा पुनः यज्ञकर्म प्रारम्भ कर रहे मुनियों को देखकर मैं कारण जानने को प्रवृत्त हुई ॥१२०॥ वहाँ मैंने पञ्चवटी में रहने वाले एक पत्नी समेत, तपस्वीवेषधारी दो नौजवानों देखा ॥१२१॥ वहाँ दण्डकारण्यवासी मुनिजन प्रायः कहीं जाकर कोई गुप्तमन्त्रणा करते हैं ॥१२२॥ अपने को राजा मानने वाले प्रान्तपाल खर से मैंने तत्काल सारा वृत्तान्त सुनाया, पर उसने मेरी बात नहीं सुनी ।१२३। रहस्य ज्ञात हो जाने पर यदि तुरन्त प्रतीकार हो गया होता तो अपमान दायिनी यह अवस्था राक्षसों की न होती ॥१२४॥

अशुभानि निमित्तानि दृष्ट्वा कातरतां गता
अगमच्च पुनस्तत्र परिवर्तितविग्रहा ।१२५।

दृष्ट्वा मां यौवनोद्दीप्तां वनमेकाकिनीं गताम्
गत्वा कामयमानेन गौरेणाऽऽकारिताऽभवम् ।१२६।

नीत्वा च तं स्वविश्वासे यद्ज्ञातं राक्षसेश्वर
सर्वं ब्रवीमि तत्सत्यं सावधानतया शृणु ।१२७।

अयोध्याधिपतेः राज्ञो नाम्ना दशरथस्य च
चत्वारस्तनया जातास्त्रिभार्याभ्यः प्रयत्नतः ।१२८।

यौवराज्येन संयोक्तुमैच्छज्ज्येष्ठं महीपतिः
परं विवासयामास मध्यभार्याप्रचोदितः ।१२९।

स रामो भार्यया साकं साहाय्येनासुरद्विषाम्
दक्षिणापथमायातः राज्यं संस्थापयितुं नवम् ।१३०।

अशुभ निमित्तों को देखकर मैं घबड़ा-गयी कातर हो गयी। फिर रूप बदलकर वहाँ गयी ।।१२५।। वन में एकाकिनी गयी हुई, यौवनोदीप्त मुझे देखकर चाहने वाले गौर नौजवान ने मुझे बुलाया ।१२६। हे राक्षसाधिप उसे अपने विश्वास में लेकर जो वृत्तान्त मैंने जाना, उस सबको मैं सच बता रही हूँ, सावधानी पूर्वक सुनो ।१२७। अयोध्या नरेश, नामसे राजा दशरथ को, तीन पत्नियों से प्रयास पूर्वक चार पुत्र पैदा हुए हैं ।१२८। राजा ने ज्येष्ठ पुत्र को युवराज पद पर अधिष्ठित करना चाहा, किन्तु मध्यम पत्नी से प्रेरित होकर उसे वनवास दे दिया ।२९। देवताओं की सहायता से नया राज्य स्थापित करने के लिये वह राम पत्नी समेत दक्षिणापथ में आया है ।१३०।

तत्र येनाहमाहूता गुप्तहेतोःस लक्ष्मणः
सहास्त उभयोरेव सेवकत्वं प्रदर्शयन् ।१३१।
एवम्विज्ञाय तद्भावं त्वत्प्रीतिवशतां गता
निजंरूपं समास्थाय गत्वा राममगादिषम् ।१३२।
अध्वनीन इदं राज्यं रावणस्य महात्मनः
परिगृह्य तदाज्ञां त्वं ससुखं वससीह किम् ।१३३।
एवमुक्तो जगादासौ नाज्ञा सुभ्रू वरीयसी
वसति क्षत्रियो यत्र राज्यं तस्य स्वतो भवेत् ।१३४।
अनाज्ञप्तोऽसि भार्यां स्वामविलम्बेन देहि मे
सा शोभा राक्षसेन्द्रस्य न ते मूलफलाशिनः ।१३५।
शैवालसंवृता किंस्वित्पद्मिनी शोभते क्वचित्
शोभते वा क्वचिद् ब्रूहि ज्योत्स्ना धाराधरावृता ।१३६।

वहाँ गुह्य कारण से जिसके द्वारा मैं बुलाई गई थीं वह लक्ष्मण है, उन दोनों के सेवक के रूप में वह अपने को दिखाते हुये, रहता है ।१३ । इस प्रकार उसके भाव को जानकर, तुम्हारे प्रेमवश हुई मैंने अपना रूप प्रकट कर जाकर राम से यह कहा ।१३२। यह राज्य महात्मा रावण का है। क्या तुम उनकी आज्ञा लेकर यहाँ सुखपूर्वक निवास कर रहे हो ।१३३।। ऐसा कहे जाने पर वह बोला, सुभ्रु ! आज्ञा बड़ी नहीं है। क्षत्रिय जहाँ रहता है, वहाँ उसका राज्य स्वतः बन जाता है ।१३४। तुमने आज्ञा नहीं ली है तो अपनी पत्नी को तुरन्त मुझे दे दो वह राक्षस नरेश की शोभा है तपस्वी तुम्हारा नहीं ।१३५। अरे क्या कहीं शैवाल से घिरी कमलिनी अच्छी लगती है ? अथवा बताओं कि मेघाच्छन्न चाँदनी कहीं अच्छी लगती है ।।१३६।।

एवं मे कथिते तूर्णं श्यामाज्ञां परिपालयन्
अच्छिनत् श्रुतिनासे मे गौरो भग्नमनोरथः ।१३७।

विलपन्तीं च मां दृष्ट्वा कुररीमिव मे खरः
युद्धोद्योगे गतोनाशं स्वकीर्तिं स्थापयन् भुवि ।१३८।

पश्य मां कृत्तनासाग्रां छिन्नकर्णपरम्पराम्
भगिनीं ते दानवेन्द्रस्य जेतुर्वाष्तोष्पतेरपि ।१३९।

त्रैलोक्यविजयी त्वञ्चेत् कैलासोत्थापयिता यदि
वंशापमानहर्तासि प्रतीकारपरो भव ।।१४०।

एवं निर्वासितं रामं नवराज्याभिकांक्षिणम्
हत्वा सीतां समादाय भुङ्क्ष्व भोगमशत्रुकम् ।१४१।

अथवा कथमायासो युद्धेन किं प्रयोजनम्
भवेद् यदि हृता सीता स प्राणांस्त्यक्ष्यति स्वयम् ।१४२।

मेरे ऐसा कहते ही श्याम-राम की आज्ञा का पालन करते हुए हताश गौर लक्ष्मण ने मेरे कान-नाक काट लिये ।१३७। कुररी की भाँति विलाप करते हुए मुझे देखकर युद्ध प्रयास में निरत, धरती पर अपनी कीर्ति स्थापितकर खर समाप्त हो गया ।१३८ कटी नाक तथा कटी कानों वाली वरुणजयी राक्षसेन्द्र रावण की अपनी बहन मुझे देखो ।१३९। यदि तुम त्रैलोक्य विजयी हो या यदि तुम कैलास को उठाने वाले हो, वंश के अपमान का हरण कर सकते हो तो प्रतीकार करो ।१४०। इस प्रकार से निर्वासित तथा नये राज्य के अभिलाषी राम को मारकर, सीता को लेकर निःशत्रु राज्य का भोग करो ।१४१। अथवा कष्ट क्यों ? युद्ध का प्रयोजन क्या ? यदि सीता हर ली जाय तो वह अपने प्राण स्वयं छोड़ देगा ।।१४२।।

श्रुत्वा शूर्पणखावाक्यं बहुमानं निवर्त्य ताम्
रावणश्चिन्तयामास कर्त्तव्यं भाविचोदितः ।१४३।
यदुद्देश्यं समाश्रित्य विद्युज्जिह्वो मया हतः
तत्तु पूर्णं स्वयं जातं हतेऽस्मिन् खरसंज्ञके ।१४४।
इयं शूर्पणखा नूनमसती कुलनाशिनी
मृषावादरता नित्यं सर्वथा कलहप्रिया ।१४५।
नासाकर्तनबीजं स्यात् काममुक्तं मृषाऽनया
परं दाशरथी राम आगतो नात्र संशयः ।१४६।
एकेनैव हि रामेण खरो रक्षोगणैः सह
हतो यदि भवेन्नूनं बलवान् स रिपुर्मम ।१४७।
परमेतेन कार्येण मत्तः स बलवान् नरः
कदाप्येतन्न मन्तव्यं विजेतुस्त्रिदिवौकसाम् ।१४८।

शूर्पणखा का वाक्य सुनकर उसे बहुमान पूर्वक लौटाकर, भावी से प्रेरित रावण ने करणीय कार्य सोच लिया ।।१४३।। जिस उद्देश्य को लेकर मैंने विद्युज्जिह्व को मारा था इस खर के मरने पर वह तो स्वयं पूरा हो गया ।।१४४।। यह शूर्पणखा निश्चय ही दुश्चरित्रा और कुल विनाशक है, सदा झूठ बोलती है, झगड़ा इसे अच्छा लगता है ।।१४५। नासिका छेदन तो बीज है, इसने पूरा झूठ कहा है किन्तु दशरथ पुत्र द्वयी आ गए हैं, इसमें सन्देह नहीं है ।।१४६।। अकेले ही राम ने यदि राक्षसों समेत खर को मार डाला तो निश्चय वह मेरा बलवान् शत्रु है ।।१४७।। किन्तु इस कार्य से यह कभी भी नहीं मानना चाहिये कि देवों के भी विजेता मुझसे वह अधिक बलवान् है ।।१४८।।

छिद्रमेकं तु मत्पक्षे विधिनैव विनिश्चितम्
शुक्रशिष्यैर्गुरोः शिष्यैर्यदवध्योऽस्मि केवलम् ।१४६।
समापद्धन्त सङ्ग्रामः खरेण सम्प्रवर्तितः
तदर्थमेव कर्त्तव्यः प्रयत्नोऽभिनवः पुनः ।१५०।
अस्ति रामप्रिया सीता लक्ष्मणेनाभिरक्षिता
हर्त्तव्या सा मया नूनं पुनर्युद्धाभिकांक्षिणा ।१५१।
शुभं शीघ्रं प्रकर्त्तव्यं दोषाय दीर्घसूत्रता
विलम्बे स बली शत्रुः कामं स्यात् प्रबलः पुनः ।१५२।
जनस्थानेभवेद् युद्धं न तत् श्रेयस्करं मतम्
दूरे तदाहवस्थानमगस्त्यपरिरक्षितम् ।१५३।
आहृता यदि सीता स्याल्लङ्कायामभि गोपिता
युद्धस्थली भवेल्लङ्का दुर्लंघ्या या सुरक्षिता ।१५४।

किन्तु मेरे पक्ष में एक दोष विधाता ने ही बनाया है जो मैं केवल देवों और दानवों से ही अवध्य हूँ ।।१४६।। खर से प्रारम्भ किया गया युद्ध आ ही गया । इस लिये उसी के लिये अब फिर से नया प्रयास करना चाहिये ।।१५०।। रामप्रिया सीता लक्ष्मण से अभिरक्षित है । फिर से युद्धाभिलाषी मुझे उसका हरण करना ही चाहिए ।।१५१।। शुभ कार्य शीघ्र करना चाहिए, दीर्घसूत्रता दोषावह होती है । देर होने पर बलवान् शत्रु वह और भी अधिक प्रबल हो जायेगा ।।१५२।। जनस्थान में युद्ध हो तो वह श्रेयस्कर नहीं होगा । वह युद्ध स्थान दूर होगा, अगस्त्य से परिरक्षित भी है ।।१५३।। यदि सीता अपहृत कर ली जाय और लङ्का में छिपा दी जाय तो लङ्का युद्धभूमि होगी जो दुर्लङ्घ्य और सुरक्षित भी है ।।५४।।

मानुषादस्ति मे शङ्का लङ्कायां कुर्वतः कलिम्
समर्थः कः परं वक्तुं मानुषो राम एव सः ।१५५।

असमर्थः स्वयं त्रातुं यो भार्यां स्वां मनोहराम्
कः करिष्यति साहाय्यं तस्य वा हृतचेतसः ।१५६।

अन्ये वा हृतभार्याका राज्यान्निष्कासिताः पुनः
समेत्य किं करिष्यन्ति दुर्बला नष्टसाधनाः ।१५७।

अथवा परिखीभूतो दुर्लंघ्योऽयं सरित्पतिः
तत्कृतायोजने नूनं व्यवधानं भविष्यति ।१५८।

तस्मात् सीता नु हर्त्तव्या मानुषीयं मनोरमा
नास्ति मेऽन्तःपुरे रम्ये प्रमदा मानुषी यतः ।१५९।

प्रायः स्त्रियः प्रसीदन्ति पुमांसं प्राप्यजित्वरम्
सीताऽपि भवेद् हृष्टा दृष्ट्वा मां राक्षसाधिपम् ।१६०।

लङ्का में युद्ध करते हुए मुझे मनुष्य से ही भय है, किन्तु यह बतानेमें कौन समर्थ है कि वह राम मनुष्य ही है ॥१५५॥ जो अपने सुन्दर पत्नी की रक्षा करने में स्वयं असमर्थ है, उस हतबुद्धि की सहायता भला कौन करेगा ॥१५६॥ अथवा राज्य से निष्कासित, अपहृत पत्नीवाले अन्य सुग्रीवादि साधनहीन, दुर्बल मिलकर भी क्या करेंगे ॥१५७॥ अथवा परिखाभूत यह नदीपति समुद्र दुर्लङ्घ्य है इसलिये किसी भी शत्रु प्रयास में व्यवधान होगा ॥१५८॥ इसलिये इस मनोहर मानुषी सीता का हरण करना ही चाहिये क्योंकि मेरे रमणीय अन्तःपुर में कोई मानुषी नारी नहीं है ॥१५९॥ विजयी पुरुष को प्राप्तकर स्त्रियाँ प्रायः प्रसन्न होती हैं, सीता भी मुझ राक्षसपति को देखकर प्रसन्न होगी ।१६०।

प्रकामं प्रकृतौ भेदो रामस्य रावणस्य च
तुष्टा कालेन सीता स्यात् कालः सर्वस्य कारणम् ।१६१।

बलादधिगृहीता वा रम्भावृत्तादनन्तरम्
नानुरक्ता स्वतः किंस्वित्काचिद् योषा प्रधर्षिता ।१६२।

यद्येषा नानुरक्ता स्यात् कृतरामपरिग्रहा
वदन्ती रामरामेति प्राणत्यागं करिष्यति ।१६३।

विरक्तस्तु परं रामो भविता गतजीवनः
आयास्यति स लङ्कायां दिवास्वप्न इतिध्रुवम् ।१६४।

अपि खाद् यदि लङ्कायां प्रवेष्टुं यततां क्वचित्
यास्यति पञ्चतां नूनं छायाग्राहिव्यवस्थया ।१६५।

न कश्चिन्मम लङ्कायामुपजाप्यो न वा रिपुः
भेदं चालभमानः सः स्वयं नष्टो भविष्यति ।१६६।

राम और रावण के स्वभाव में पर्याप्त अन्तर है। समयानुसार सीता प्रसन्न हो जायेगी, काल सभी का कारण है ॥१६१॥ अथवा बलपूर्वक अपहृत की गई रम्भा के वृत्तान्त के बाद मैंने स्वयं अननुरक्त किसी स्त्री से कभी भी बलात्हरण किया है क्या ? ॥१६२। राम से परिणीता यह यदि अनुरक्त नहीं होगी तो राम-राम कहती हुई प्राण छोड़ देगी ।१६३॥ इसके बाद विरक्त राम प्राणहीन हो जायेगा। वह लङ्का में आयेगा यह दिवास्वप्न ही होगा ।१६४। अथवा यदि कहीं आकाश से लङ्का में प्रवेश-प्रयास करे तो निश्चय ही मेरी छायाग्राही व्यवस्था से मृत्यु को प्राप्त होगा ॥१६५॥ अथवा मेरी लङ्का में न कोई भेद है न कोई शत्रु और भेद को प्राप्त न कर वह स्वयं नष्ट हो जायेगा ॥१६६॥

कामं संशयदं युद्धं प्रकर्त्तव्यं तथापि तत्
हतो लप्स्ये पुनः स्वर्गं जित्वा भोक्ष्ये महीमिमाम् ।१६७।

एकस्यां मेखलायां द्वौ न स्तः कौक्षेयकौ यतः
अमुष्यां मेखलायाञ्च प्रभुरेको भविष्यति ।१६८।

अतः सीतैव हर्त्तव्या कयाचिन्मायया मया
दूरं कृत्वा युवानौ द्वौ विख्यातौ रामलक्ष्मणौ ।१६९।

एवं विनिश्चित्य रिपुः सुराणामग्रेसरो नीतिधुरन्धराणाम्
लङ्कापतिर्निर्जितविष्टपोऽसौ जगाम मारीचनिवासभूमिम् ।१७०

अथप्रभातेऽनुदितेऽर्कविम्बे स्वयं समायान्तमदत्तसूचनम्
प्रकम्पमाणस्तमवेक्ष्य रावणं मारीच आकुञ्च्य करौ बभाषे ।१७१

अवन्ध्यकोपाऽसुरमण्डलेश लङ्कापते पूजितवामदेव
पुराकृतायां तपसां प्रभावात् समागतो द्वारि ममाधमस्य १७२

युद्ध पर्याप्त मात्रा में संशयास्पद होता है। फिर भी उसे करना ही है। मारे जानेपर स्वर्ग पाऊँगा, जीत लेनेसे इस धरा का भोग करूँगा।१६७ क्योंकि एक ही म्यान में दो तलवारें नहीं हो सकती और इस मेखला (पृथ्वी) पर एक ही राजा होगा ॥१६८॥ इसलिये प्रसिद्ध दोनों युवा राम-लक्ष्मण को किसी माया से दूर करके सीता मुझे हरनी ही है।१६९। ऐसा निश्चय करके देवशत्रु, नीतिविशारदों में अग्रणी, त्रिभुवनजयी लङ्केश मारीच के निवास स्थान पर गया। १७०॥ अब सूर्य के उदय न होने पर ही प्रभात वेला में, बिना सूचना दिये स्वयं चले आ रहे रावण को देखकर कांपता हुआ मारीच दोनों हाथ जोड़कर बोला ॥१७१॥ अबन्ध्यकोप, राक्षसमण्डलाधिप, पूजित वामदेव, लङ्कापति ! मेरे अधम के पूर्वकृत तपो के प्रभाव से मेरे दरवाजे पर पधारे हो ॥१७२॥

भवादृशां दर्शनमेव तूर्णं बन्धप्रहाणाय भवत्यपूर्वम्
ब्रवीतु तद् यच्च विशेषकृत्यम् पूर्णं भवेन्मे वपुषोऽर्पणेन ।१७३

निशम्य मारीचवचोऽदसीयं कालानुरूपं स्वमनोनुकूलम्
स रावणो हृष्टमनास्तदानीमुवाच तं दर्शितवश्यरूपम् ।१७४।

मारीच त्वं विजानासि रामो दशरथात्मजः
जनस्थानं वसन्नास्ते स्वभ्रात्रा भार्यया सह ।१७५।

कच्चित् त्वं विजानासि निहतः खरसंज्ञकः
प्रान्तपालो मम भ्राता दूषणस्त्रिशिरा अपि ।१७६।

यद्येवं तर्हि चिन्त्योऽयं विषयः रक्षसामिह
अत्र किन्नु प्रकर्त्तव्यं स्पष्टं वद समाग्रतः ।१७७।

श्रुत्वेदं मौनमास्थाय किञ्चित्कालादनन्तरम्
उवाच चिन्तया युक्तो मारीचो रक्षसां सुहृत् ।१७८।

आप जैसों का दर्शन ही तुरन्त अपूर्व बन्ध-प्रहाण के लिये होता है। जो भी विशेष काम हो बतायें जो मेरे शरीरार्पण से भी सिद्ध होता हो ॥१७३॥ कालानुकूल और अपने मनोनुरूप मारीच के इस कथन को सुनकर प्रसन्न मन वह रावण उस समय वश्यरूप दिखाने वाले (मारीच) से बोला ॥१७४॥ मारीच तुम जानते हो कि दशरथपुत्र राम भाई और पत्नी के साथ जनस्थान में रह रहे हैं ॥१७५॥ क्या तुम यह जानते हो कि उसने मेरे भाई प्रान्तपाल खर-दूषण और त्रिशिरा को मार डाला है ॥१७६॥ यदि ऐसा है तो यह विषय राक्षसों के लिए सोचनीय है। यहाँ क्या करना चाहिए? मेरे सामने स्पष्ट बताओ ॥१७७॥ इसे सुनकर, चुप रहकर, राक्षसों का मित्र मारीच चिन्तायुक्त बोला ॥१७८॥

नियुक्तो भवता पूर्वं चारत्वेनोत्तरापथे
यदप्यन्वभवम् तत्र तच्छृणोतु समासतः ॥१७९॥

अनेनैव हि रामेण कुमारेण बलीयसा
विश्वामित्रादयस्तत्र मुनयो निर्भयीकृताः ॥१८०॥

ताडका च हता तत्र सुबाहुर्निधनं गतः
अहश्चापि परिक्षिप्त इहागत्य वसाम्यतः ॥१८१॥

पत्न्या समं सह भ्रात्रा पित्रादेशप्रचोदितम्
वनवासविधानेन ज्ञात्वा राममिहागतम् ॥१८२॥

रक्षोभ्यां सहद्वाभ्यां गतस्तत्र परीक्षितुम्
परमन्वभवम् तात बले बुद्धौ स पूर्ववत् ॥१८३॥

खरेण प्रेषिता पूर्वं यातुधानाश्चतुर्दश
हता रामेण विज्ञाय प्रागच्छम् खरमन्दिरम् ॥१८४॥

पहले मैं उत्तरापथ में आपके द्वारा गुप्तचर नियुक्त किया गया था। वहाँ मैंने जो भी अनुभव किया संक्षेप में उसे सुनें ॥१७९॥ इसी अत्यन्त बलशाली बालक राम ने वहाँ विश्वामित्र आदि मुनियों को निर्भय बना दिया था ॥१८०॥ वहाँ इसी के द्वारा ताड़का मारी गयी, सुबाहु मृत्यु को प्राप्त हुआ, और मैं भी फेंका गया, इसलिये आकर यहाँ रह रहा हूँ ॥१८१॥ पिता के आदेश से प्रेरित वनवास विधान से भाई और पत्नी समेत राम को यहाँ आया जानकर ॥१८२॥ दो राक्षसों के साथ परीक्षा करने के लिये वहाँ गया था किन्तु मैंने अनुभव किया तात ! बल और बुद्धि में वह पूर्व जैसा ही है ॥१८३॥ खर ने पहले चौदह राक्षस भेजे, राम ने मार डाला, यह जानकर मैं खर के घर गया था ॥१८४॥

मामवज्ञाय मूढेन न ज्ञात्वा शत्रुसम्पदम्
पृतनादुर्मदान्धेन रामो व्यर्थमरुध्यत ।१८५।

द्वन्द्वयुद्धप्रसङ्गे तु चमूयोगः कथं वरम्
प्रायशः स्वायुधैरेव ससैन्यो निहतः खरः ।१८६।

सुस्पष्टं मे मतिस्तात विषयेऽस्मिन् नीतिसङ्कुले
कथमपि न योद्धव्यं तूष्णीम्भावः परं वरम् ।१८७।

न जातु प्रथमं रामः प्रकरोति कलिं क्वचित्
कृते प्रतिकृतिं कुर्वन्नास्ते स विगतस्मयः ।१८८।

शूर्पणखाश्रुती नासां कर्तयामास सोऽव्यथः
इत्येव प्रथमो दोषस्तत्पक्षे परिदृश्यते ।१८९।

द्वितीय एवमायाति यत्तेन निहतः खरः
परं वदतु दैत्येन्द्र पूर्वं केन कलिः कृतः ।१९०।

उस मूर्ख ने मेरा तिरस्कार कर, शत्रुशक्ति को न जानकर, सेना से दुर्मदान्ध उसने राम को व्यर्थ ही घेर लिया ॥१८५॥ द्वन्द्वयुद्ध के प्रसङ्ग में सेना प्रयोग कहाँ तक अच्छा है ? ससैन्य वह प्रायः अपने शस्त्रों से ही मारा गया ॥१८६॥ महाराज नीतिपूर्ण इस विषय में मेरी सुस्पष्ट राय है, किसी भी प्रकार से युद्ध नहीं करना है प्रत्युत चुप रहना अच्छा है ।१८७। राम कहीं भी पहले लड़ाई नहीं करता किन्तु कलह किये जाने पर प्रतीकार करते हुए निरहङ्कार रहता है ।१८८। शूर्पणखा के नाक और कान को उसने अनायास काट डाला, उसके पक्ष में यही पहला दोष दिखाई पड़ता है ।१८९। दूसरा यह है कि उसने खर को मारा है, पर, राक्षसेन्द्र! यह बताओ कि पहले तकरार किसने की ।१९०।

अनारब्धकली रामो युद्धे जयति निश्चितम्
कलहो भविता नूनं रक्षसामन्तकृत्सदा ।१६१।

अनुद्वेजित एवासौ गन्ता शीघ्रं गृहं प्रति
एवमेव हितं राजन् भवतो मम रक्षसाम् ।१६२।

मारीचवचनं श्रुत्वा रावणो रक्तलोचनः
सीतानिग्रहणव्यग्रो जगाद प्रहसन्निव ।१६३।

नाशं करोति युद्धं किं सर्वेषां प्राणिनमिह
काले तु सर्वथा प्राप्ते प्राणिनो यान्ति नाशताम् ।१६४।

युद्धं वीराय शूराय कृतहस्तासवे तथा
वरं नैतद्धि दीनाय कृपणाय हतात्मने ।१६५।

राक्षसास्तु पराभूताः कैश्चिन्न कलहः कृतः
रक्षसां श्रेयसे किंस्वित् किंवदन्ती प्रचारिता ।१६६।

युद्ध प्रारम्भ न करने वाला राम युद्ध में निश्चित जीतेगा और विग्रह निश्चय ही राक्षसों का विनाशकारी होगा ।१६१। छेड़े न जाने पर वह शीघ्र ही घर लौट जायेगा। हे राजन् इसी प्रकार आपका, मेरा और राक्षसों का भला है ।१६२। मारीच के कथन को सुनकर क्रुद्ध रावण सीता हरण के लिये व्यग्र हंसता हुआ सा बोला १६३।। युद्ध क्या ससार में यहाँ सारे प्राणियों का नाश कर देता है ? समय आने पर तो प्राणी सर्वथा मृत्यु प्राप्त करते हैं ही ।१६४। प्राणों को हथेली पर रखे रहने वाले शूर-वीर के लिये ही युद्ध वरदान होता है किन्तु हतात्मा, कायर और अशक्त के लिए नहीं ।१६५। राक्षस तो पराजित हो गये किसी ने कलह नहीं किया राक्षसों के कल्याण के लिये कुछ ऐसी किंवदन्ती फैला दी जा सकती है ।।१६६।।

अहं क्व कथयाम्यत्र युद्धं भवतु निश्चितम्
विचार्या स्वस्थितिर्नूनमित्येषैव मतिर्मम ।१९७।

मनस्यन्यत् कथं कृत्वा मायाविन् राक्षसप्रिय
वचसाऽऽयव्यये कृत्वा कामं लोभयसीव मे ।१९८।

क्वचिन्न भवतात् संख्यं सख्यं वा न भवेदिह
नाथवा प्रसरेदत्र किंवदन्ती च कश्मला ।१९९।

एवं यतस्व मारीच वर्द्धन्तां येन राक्षसाः
प्रवर्ततां तथा लोके रामबुद्धिदरिद्रता ।२००।

निशम्येत्थं वचश्चित्रं रावणेनाभ्युदीरितम्
तूष्णींस्थितः स मारीचः पश्यन् रावणाननम् ।२०१।

माऽस्तु संख्यं न वा सख्यं मा भवेत् किंवदन्त्यपि
अपेक्ष्यते च किं मत्त इति चिन्तातुरोऽभवत् ।२०२।

मैं कहाँ कह रहा हूँ कि युद्ध निश्चितरूप से हो ही। अपनी स्थिति विचार करनी चाहिए मेरा मात्र यही इतना विचार है ।१९७। हे राक्षस प्रिय मायावी मारीच क्यों मन में कुछ और रखकर, वचन से आय-व्यय (लाभ-हानि) विचारकर मुझे अति प्रलुब्ध कर रहे हो? ।१९८। कहीं युद्ध न हो, अथवा मैत्री न हो अथवा इस विषय पर कोई काली किंवदन्ती न फैले ।१९९। मारीच ऐसा प्रयास करो जिससे राक्षस बढ़ें और संसार में राम की मूर्खता फैले ।२००। रावण से कही गयी ऐसी आश्चर्यमयी वाणी सुनकर वह मारीच रावण का मुख देखते हुए चुप रहा ।२०१। युद्ध न हो, मैत्री न हो, किंवदन्ती भी न हो किन्तु मुझसे क्या अपेक्षा है, यह सोचकर चिन्ताकुल हो गया ॥२०२॥

हृतप्रभं च निश्चेष्टं विवर्णं विकृताननम्
उवाच रावणो दृष्ट्वा मारीचं मूकतां गतम् ।२०३।

किं चिन्तयसि मारीच विषमे समुपस्थिते
प्राप्तुं तवैव साहाय्यमत्राऽहं समुपस्थितः ।२०४।

माऽस्तु केनाप्युपायेन राक्षसानां पराभव.
इदमेव विचार्यं स्यादिदानीं रक्षसां हितैः ।२०५।

त्वया परीक्षितो रामः कामं स्याद् बलवानपि
इति ज्ञात्वाऽपि मारीच परीक्ष्यः स पुना रिपुः ।२०६।

सर्वथा यो हि निर्दुष्टः संदृष्टो जगतीतले
सोऽपि युक्तो भवेन्नूनं दोषेणैकेन केनचित् ।२०७।

अपि चेत् क्षत्रियो रामः शस्त्रप्रहरणे पटुः
राज्यं त्यक्त्वा वनं यातो मृगयाव्यसनी भवेत् ।२०८।

हतप्रभ, निश्चेष्ट, विवर्ण, विकृत मुख और चुप हो गये मारीच को देखकर रावण बोला ।२०३। मारीच ! तुम क्या सोच रहे हो ? विषम परिस्थिति आने पर तुम्हारी ही सहायता लेने मैं उपस्थित हुआ हूँ २०४ राक्षसों के लाभ हेतु इस समय यही विचारणीय है कि राक्षसों का किसी भी प्रकार से पराजय न हो ।२०५। राम तुमसे परीक्षित है, काफी बलवान् भी हो सकता है यह जानकर भी तुम्हें शत्रु की पुनः परीक्षा करनी ही चाहिए ।२०६। संसार में जो सर्वथा निर्दुष्ट हो देखा जाता है वह भी निश्चय ही किसी एक दोष से युक्त हो ही सकता है ।२०७।यदि क्षत्रिय राम शस्त्र प्रहारमें पटु है तो राज्य छोड़कर, वन जाकर उसे मृगया व्यसनी होना चाहिए ।।२०८।।

परिवृत्य निजं रूपं धृत्वा रूपं मृगस्य च
लोभयन्नय तं रामं प्रकामं विप्रकृष्टकम् ।२०६।

ततो लक्ष्मण हा सीते वदैवं विकृतं वचः
यच्छ्रुत्वा लक्ष्मणो नूनं विप्रकृष्टं प्रयास्यति ।२१०।

एवमेकाकिनीं सीतामुद्विग्नां स्वकुटीं श्रिताम्
बलान्नेष्यामि लङ्कायां कामं रामं परीक्षितुम् ।२११।

अत उत्तिष्ठ मारीच मायाविन् वीर साम्प्रतम्
इष्टचिन्ता प्रकर्त्तव्या सर्वमन्यदसाम्प्रतम् । २१२

ततः प्रोवाच मारीचो ज्ञात्वा रावणयोजनाम्
दुःखदां परिणामे च वर्तमानेऽपि दुःखदाम् ।२१३।

कः क्षमः साम्प्रतं लोके शिक्षयेद् यो भवादृशम्
वार्हस्पत्येऽथवा शौक्रे नये सुज्ञं विचक्षणम् ।२१४।

तुम अपना रूप छोड़कर, मृगरूप को धारण कर, उस राम को लुभाते हुए काफी दूर ले जाओ ।२०६। इसके बाद हा लक्ष्मण ! हा सीते ऐसी विकृत वाणी बोलना जिसे सुनकर निश्चय ही लक्ष्मण दूर चला जायेगा ।२१०। इस प्रकार अपनी कुटिया में वर्तमान, उद्विग्न एकाकिनी सीता को मैं जबरन लङ्का में राम की पूर्ण परीक्षा हेतु ले जाऊँगा ।२११। इसलिए हे वीर, मायावी मारीच इस समय उठो । केवल इष्ट चिन्ता ही करनी है शेष सब इस समय व्यर्थ है ।२१२। इसके बाद रावण की योजना को वर्तमान और परिणाम दोनों में दुःखद जानकर मारीच बोला ।२१३। बृहस्पति अथ शुक्रनीति में निष्णात, कौन विद्वान् आप जैसे को उपदेश देने में समर्थ है ।२१४।

नाहं सहस्रबुद्धिश्च शतबुद्धिर्नवा क्वचित्
एकबुद्धिरहं तात तथापि शृणुताद् भवान् ।२१५।

भवता चिन्त्यमानेऽस्मिन् नये यात्यपि पूर्णताम्
न लाभो रक्षसां कोऽपि ममापि मरणं ध्रुवम् ।२१६।

कामं हृतमना रामो नष्टोत्साहो भविष्यति
परं नैतेन सिद्धं स्याद् यन्नोद्योगं करिष्यति ।२१७।

अहं मन्ये स निःसैन्यः केवलं लक्ष्मणान्वितः
परं जयति नो सैन्यं जेता नेतैव केवलम् ।२१८।

लोकत्रयविजेताऽपि किं भवान् सङ्गरे सदा
ससैन्यः सर्वथाऽगच्छत् चिन्तयतान्महामते ॥२१९॥

कैलासोत्तोलने वीर कृता केन सहायता
एवङ्कृत्य महाराज निश्चिनोत्वपरं विधिम् ॥२२०॥

न मैं सहस्रबुद्धि हूँ और नहीं शतबुद्धि, तात ! मैं एक बुद्धि हूँ फिर भी आप सुनें ।२१५। आपके द्वारा सोची गई इस नीति के सफल हो जाने पर भी राक्षसों का कोई लाभ नहीं है और मेरा भी मरण निश्चित है ।२१६। राम काफी नष्टमन और हतोत्साह हो जायेगा ? पर इससे यह सिद्ध नहीं होता कि वह उद्योग नहीं करेगा ।२१७। मैं यह मानता हूँ कि वह सेना रहित है, मात्र लक्ष्मण सहाय है किन्तु सेना नहीं जीतती केवल नायक ही विजेता होता है । १८। महामति ! विचार करें कि तीनों लोकों के विजेता भी आप क्या युद्ध में सदा सेना समेत ही जाते थे ।२१९। हे वीर ! कैलास के उठाने में तुम्हारी सहायता किसने की थी ? इसलिये हे महाराज कोई दूसरा उपाय सोचें ।२२०।

मारीचस्य वचः श्रुत्वा स्वनीतेः परिभञ्जकम्
क्षिपन् पादं पृथिव्यां स उवाच राक्षसाधिपः ।२२१।

अलं मारीच एतेन वाक्छलेनापकारिणा
योगक्षेमम्य दायित्वं रक्षसां मयि न त्वयि ।२२२।

अपि चेत्त्वं बिभेषीह मृत्योः पाकदारुणात्
स तु ते निश्चितप्रायो रामात्स्यादुत रावणात् ।२२३।

तस्यादुत्तिष्ठ मारीच मायायां कृतनिश्चय
सम्भावनाऽस्ति पक्षऽस्मिन् कामं स्यात्त्वं सुरक्षितः ।२२४।

श्रुत्वा वचो रावणसम्प्रयुक्तं ज्ञात्वाऽन्तकालं समुपस्थितं सः
श्रेयस्करं हेतुतर विवृण्वन् रामं चिनोतिस्म न राक्षसेशम् २२५

ततो विनिर्माय मृगस्वरूपं स्वर्णप्रभं राजतविन्दुयुक्तम्
प्रसारिशृङ्गं लघुकृष्णपुच्छं सितासितोद्भासिसुरम्यतुन्दम् ।२२६

अपनी नीति के विघातक मारीच के कथन को सुनकर पृथ्वी पर पैरों को पटकता हुआ वह राक्षसेश्वर बोला ।।२२१।। मारीच ! अपकारी यह वाक्छल रहने दो। राक्षसों के योगक्षेम का दायित्व मुझपर है तुमपर नहीं ।।२२२।। यदि तुम परिणामदारुण मृत्यु से डर रहे हो तो वह तो तुम्हारा नियतप्राय है, राम से हो या रावण से ।।२२३। इसलिये माया के लिये निश्चय कर मारीच ! तुम उठो, इसी पक्ष में सम्भावना है तुम पर्याप्त सुरक्षित भी हो सकते हो ।।२२४। रावण से कहे गये बचन सुनकर वह अपना अन्तकाल उपस्थित जानकर श्रेयस्कर अच्छा कारण विचारता हुआ राम को ही चुना राक्षसेश्वर को नहीं ।।२२५।। इसके बाद उसने सुवर्णकान्ति, चाँदी की बुनकियों से युक्त, लम्बी सींगों से युक्त छोटी काली पूँछ, श्वेत-कृष्ण सुन्दर उदर युक्त मृग रूप बनाकर ।।२२६।।

सुचिक्कणैर्नीलशफैः सुरम्यं प्रकामविस्तारिदृशं मनोज्ञम्
गतः स मारीच उषा प्रकामं रामाश्रमं रम्यपद मनोज्ञम् २२७

तस्मिन्क्षणे पुष्पचयावलग्ना प्रातः समीराहृतगात्रखेदा
श्रोतुं प्रवृत्ता कलकूजितानि सीता विचित्रं हरिणं ददर्श ।२२८

प्रकूर्दमाणो वियति प्रकामं समाश्रयन् मन्दगतिं क्वचिच्च
दूर्वाङ्कुरान् पर्णतृणानि कृन्तन् विलोभमानः स मृगः समास्त ॥

स्वर्णत्वचं श्वेतपृषल्ललामं गृहाङ्गणे पालनकर्मयोग्यम्
अदृष्टपूर्वं नयनप्रियं तं दृष्ट्वाऽभवत्सा नितरां प्रलुब्धा ।२३०

अभ्याशमायाति मृगः कदाचिद् दूरं कदाचित्तरसा प्रयाति
समास्त सीतामुखमेव पश्यन् उद्ग्रीव एषोऽभ्रतलं क्वचिच्च ।

शृङ्गद्वयोरेव विरूढशृङ्गैर्बहूनि शृङ्गाणि दधन्मृगः सः
नूनं स्वशृङ्गैश्च विधाय रन्ध्रं सीताहृदभ्यन्तरतामुपेतः ।२३२

अत्यन्त चिकने नीले खुरों से रमणीय, लम्बी मनोहारी आँखों से युक्त मृगरूपधारी वह मारीच प्रातःकाल रमणीय स्थान, मनोहारी राम के आश्रम में गया ॥२२७॥ उस समय प्रभात वायु से अपहृत शरीरक्लान्ति पुष्पचयन में लगी हुई सीता पक्षियों का कलरव सुनने में लगी थी कि उसने विचित्र मृग देखा ॥२२८॥ कभी आकाश में छलांग लगाता तो कभी मन्दगति ले लेता, दूब की अङ्कुरों, पत्तों, घासों को कुतरता, सीता को लुभाता वह मृग खड़ा रहा ॥२२९॥ सोने की खाल, सुन्दर श्वेत चकत्ते, घर के आंगन में पालने योग्य अदृष्टपूर्व, नेत्रप्रिय उस मृग को देखकर वह अत्यन्त लोभित हो गयी ॥२३०॥ वह मृग कभी समीप आ जाता इ तो कभी तेजी से दूर भाग जाता है, और कभी आकाश की ओर ऊपर ग्रीवा उठाये सीता के मुख को ही देखता खड़ा रह जाता ॥२३१॥ दोनों सीगों में ही निकली हुई अनेक सीगों को धारण करता हुआ वह मृग मानों अपनी सीगों से ही छिद्र बनाकर सीता के हृदय में अन्दर प्रविष्ट हो गया ॥२३२॥

अवाप्तुमेनं कृतनिश्चया सा सीताऽपि गत्वा स्वपतेः समीपम्
प्रदर्शयन्ती हरिणं विचित्रं प्रोवाच लोभेन विलुप्तबोधा ।२३३
विलोकतां स्वर्णकुरङ्गमेनं विचित्ररूपं न कदापि दृष्टम्
स्वभावतश्चञ्चलमार्यपुत्र सम्प्राप्तये चास्य ममाभिलाषः २३४
निवर्तितारः प्रति राजधानीं वयं यदा स्वर्णमृगेण साकम्
कुतूहलं संजनयन् प्रकामं करिष्यतीत्थं स मुदं जनानाम् ।२३५
जीवन्नसौ चेन्न भवेद्गृहीतः मृतं समानीय तु मे ददातु
भवन्तमस्यां च कुरङ्गकृत्तौ दृष्ट्वा वसानं खलु मोदिताहे ।२३६
तदानुजेन प्रतिषेधितः सन् जगाम रामोऽपि कुरङ्गमाप्तुम्
विधिर्हि नूनं विदधाति काञ्चिन् नवामचिन्त्यां सरणिं कदाचित् ।।
न प्रार्थितः क्वापनया कदाचित् सीतेप्सितं पूरयितुं व्रजामि
अतोऽनुरक्ष्या सततं त्वयैषा गच्छन्नसौ लक्ष्मणमादिदेश ।२३८

इसे प्राप्त करने का निश्चय करके वह सीता भी अपने पति के समीप जाकर विचित्र हरिण को दिखाती हुई लोभ से विलुप्त ज्ञान बोली ।२३३। अदृष्टपूर्व, विचित्ररूप, इस स्वर्ण हरिण को देखो आर्यपुत्र ! यह स्वभाव से चञ्चल है और इसे प्राप्त करने की मेरी इच्छा है ।।२३४।। जब हम स्वर्णमृग के साथ राजधानी लौटेंगे तो लोगों में खूब कौतूहल पैदा करता हुआ वह लोगों को आनन्द प्रदान करेगा ।।२३५।। यदि यह जीते नहीं पकड़ा जाता इसे मृत ही लाकर मुझे देवें। इस मृगचर्म पर बैठे हुए आपको देखकर मैं प्रसन्न होऊँगी ।।२३६।। तब छोटे भाई के मना करने पर भी मृग प्राप्त करने को राम चले ही गये, कभी किसी अचिन्त्य नयी पद्धति को विधि स्वयं बना देता है ।।२३७।। जाते हुए उन्होंने लक्ष्मण से कहा इस सीता ने कभी कुछ नहीं मांगा इसलिये सीता की इच्छापूर्ति के लिए जा रहा हूँ। इसलिये मेरे बाद तुम्हें इसकी सतत रक्षा करनी है ।।२३८।।

दृष्ट्वा राघवमायान्तं मृगरूपधरोऽसुरः
गृहीत इव केशेषु मृत्युना स्म पलायते ।२३६।

विप्रकृष्टं क्वचिद् यातः सन्निकृष्टं स्थितः क्वचित्
अदृश्यश्च क्वचिद्भूत्वा रामं लोभयतिस्म सः ।२४०।

ग्रीवाभङ्गाभिरामं स पश्यन्रामं धनुर्धरम्
उदग्रप्लुतिहेतोश्च रवे यातो बहु न क्षितौ ।२४१।

लतापुञ्जं समाश्रित्य निह्नुतो रामदृष्टितः
रामरूपं पिबन्नक्ष्णा प्रकामं स पुनर्ययौ ।२४२।

स्वरूपेण मनो हृत्वा रामस्य स विशेषतः
न ददौ शरसन्धाने कालं च यदपेक्षितम् ।२४३।

एवं दूरं समानीतश्चिन्तयामास राघवः
नाऽसौ मृगस्तु सामान्यः स्यादसुरो मृगरूपधृक् ।२४४।

राम को आते देखकर हरिणरूपधारी राक्षस मृत्युगृहीत सा भागने लगा। २३६।। वह कहीं दूर चला जाता था तो कहीं समीपस्थ और कहीं अदृश्य होकर राम को लुभाता रहा ।।२४०।। ग्रीवाभङ्गाभिराम, वह धनुर्धर राम को, देखता हुआ, ऊपर लम्बी छलांग लगाने के कारण आकाश में अधिक और धरती पर कम ही चलता था ।।२४१।। प्रथम वह लता समूह में राम की आँखों से छिपा हुआ, आँखों से राम के रूप का पान करता फिर तेजी से भाग जाता ।।२४२।। स्वरूप से वह राम के हृदय को विशेषरूप से आकृष्ट करके शरसन्धान का वह अवसर ही ही नहीं देता था जो अपेक्षित था ।।२४३।। इस प्रकार दूर खींच लाये गये राम ने सोचा, यह सामान्य मृग नहीं, मृगरूपधारी राक्षस है ।।२४४।।

गतिः प्लुतिस्तथा चेष्टा मृगाणां बहुधा मया
दृष्टा पूर्वं परं हन्त चित्रोऽसौ दृष्टपूर्वतः ।२४५।

नूनमेषोऽस्ति दैतेयो धृत्वा रूपं मनोहरम्
विलोभयंश्च मां दूरमानैषीद् यन्ममाश्रमात् ।२४६।

अतोऽयं न ग्रहीतव्यो मारयितव्य एव च
एवं निश्चित्य रामोऽसौ धनुषेषुमयोजयत् ।२४७।

संदृश्य मारीच इषुं धनुःस्थं पश्यंश्च रामाननपद्मकान्तिम्
ब्रुवन्स सीते क्व च लक्ष्मणेति गतोऽन्तकं रामशराभिविद्धः ।२४८

प्राणेषु मायाविवपुःस्थितेषु शरीरमुत्क्षिप्य दिवं गतेषु
ददर्श रामो विनिवृत्तमायं वपुस्तदीयं भयदं जनेभ्यः ।२४९।

स्मृतौ ततस्तस्य समुत्थितं तत् सम्बोधनं तेन तथा प्रयुक्तम्
निवर्तयामास ततः स केवलं वपुर्न चित्तं स्वजनानुलग्नम् ।२५०

मैंने मृगों की गति, कूर्दन, तथा चेष्टायें पहले भी अनेकधा देखी है किन्तु यह तो पूर्वदृष्ट से विचित्र है ॥२४५॥ मनोहररूप धारण कर मुझे लुभाता हुआ यह मेरे आश्रम से मुझे जो दूर तक ले आया, निश्चय ही यह दैत्य है ॥२४६॥ इसलिये इसे पकड़ना नहीं मारना ही चाहिए। इस प्रकार निश्चय कर उन राम ने धनुष पर बाण चढ़ाया ॥२४७॥ मारीच ने धनुष पर अवस्थित बाण देखकर, राममुखकमल कान्ति को देखता हुआ, रामबाण से विद्ध, सीते कहाँ हो ? लक्ष्मण कहाँ हो ? कहता हुआ वह मृत्यु को प्राप्त हुआ ॥२४८। मायावी मृग शरीर में वर्तमान प्राणों के शरीर छोड़कर स्वर्ग चले जाने पर राम ने लोगों को भयप्रद मायारहित उसके शरीर को देखा ॥२४९॥ इसके बाद उनकी स्मृति में उस राक्षस द्वारा इस प्रकार प्रयुक्त वह सम्बोधन उत्पन्न हुआ जिससे उन्होंने उस मृग से अपना शरीर ही लौटाया अपने सीता लक्ष्मण में लगे मन को नहीं लौटाया ॥२५०॥

निशम्य सीताऽपि वचस्तदानीं सम्बोधनं राक्षससम्प्रयुक्तम्
विबुध्य रामं विषमस्थितं च सा सत्वरं लक्ष्मणमादिदेश ।२५१

गच्छ गच्छ महाभाग सौमित्रे कुलनन्दन
भ्राता ते कष्टमापन्नः कुरु तस्य सहायताम् ।२५२।

हन्त स्फुरति मे नेत्रं सव्यं कामं न शोभनम्
वेपथुश्च शरीरे मे लोमहर्षोऽपि जायते ।२५३।

किं करवाणि सौमित्रे विषमं समुपस्थितम्
उद्विग्ना हन्त जाताऽस्मि शीघ्रं भ्रातृप्रिय व्रज ।२५४।

श्रुत्वेदं जानकीवाक्यं भयचिन्तासमन्वितम्
उवाच लक्ष्मणो धीमानाश्वस्तो रामविक्रमे ।२५५।

मा भैषीद् भ्रातृजायेऽस्मिन्वने राक्षससङ्कुले
वेत्तु मायामिमां नूनं प्रयुक्तां राक्षसैरिह ।२५६।

सीता भी उस समय राक्षस द्वारा प्रयुक्त सम्बोधन को सुनकर राम को विपत्ति में फंसा समझकर लक्ष्मण को उन्होंने शीघ्र ही आदेश दिया २५१ हे महाभाग, कुल नन्दन, सौमित्रि, जाओ-जाओ, तुम्हारे भाई कष्ट में पड़ गये हैं, उनकी सहायता करो ॥२५२॥ ओह ! मेरा दायाँ नेत्र फड़क रहा है, बहुत अच्छा नहीं है, मेरे शरीर में कम्पन और रोमोद्गम हो रहा है।२५३। हे लक्ष्मण विपत्ति आ पड़ी है, क्या करूँ? मैं बहुत घबरा गई हूँ। हे भ्रातृप्रिय, शीघ्र जाओ ॥२५४॥ भय और चिन्ता से युक्त सीता के इस कथन को सुनकर, राम के पराक्रम के प्रति आश्वस्त बुद्धिमान् लक्ष्मण बोले ॥२५५॥ भाभी ! राक्षसों से भरे इस वन में डरो नहीं। इसे निश्चय ही राक्षसों द्वारा की गई माया ही जानो।२५६।

अपकर्तुं समर्थः को राघवं भुवनत्रये
समाश्वसितु भद्रेऽत आशु भ्राताऽऽगमिष्यति ।२५७।

श्रुत्वा लक्ष्मणवाक्यं सा सीता चिन्तातुरा सती
पुनर्निवेदयामास गन्तुं रामं च लक्ष्मणम् ।२५८।

महावीर त्वया नूनं सेवितास्मि पदे पदे
हन्ताद्य विषमे जाते कुरु मामनुपद्रुताम् ।२५९।

भ्रातरि कष्टमापन्ने रक्षया किं ममानघ
न तज्जीवति किं भद्र जीवितास्मीति मां वद ।२६०।

न भ्राता न च वाऽहं स्याम् कस्य सेवां करिष्यसि
अत उत्तिष्ठ शीघ्रं मे देवर त्वं कृपां कुरु ।२६१।

आदेशानन्तरं श्रुत्वा वाचमावेदनात्मिकाम्
सीतायाः स्वपतिप्रेम जानन्सम्यग्जगाद सः ।२६२।

तीनों लोको में राम का अहित करने में कौन समर्थ है ? इसलिये हे भद्रे आश्वस्त हो, भइया शीघ्र ही आ जायेंगे ॥२५७॥ लक्ष्मण की बात सुनकर चिन्ताग्रस्त सीता ने लक्ष्मण को राम के पास जाने का पुनः निवेदन किया ॥२५८॥ महावीर ! निश्चय ही तुमने पद-पद पर मेरी सेवा की है। आज विपत्ति आने पर मुझे चिन्तारहित करो ॥२५९॥ भाई के कष्ट में पड़ने पर हे अनघ ! मेरी रक्षा से क्या लाभ ? भद्र बताओ कि उनके जीवित न रहने पर मैं जीवित रहूँगी ॥२६०॥ न भाई रहेगा न मैं रहूँगी, किसकी सेवा करोगे ? हे देवर ! इसलिये शीघ्र उठो, तुम दया करो ॥२६१॥ आदेश के बाद आवेदनात्मक वाणी को सुनकर सीता के अपने पतिप्रेम को जानते हुए, वह सही-सही बोले ॥२६२॥

मा भवेत्कातरा देवी भवेन्न भयविह्वला
भ्राता मे सत्यसङ्कल्पः शीघ्रमेवागमिष्यति ।२६३।

गच्छता तेन वीरेण धीरेण बलशालिना
भवतीं रक्षितुं नूनमादिष्टोऽस्मि सदा वने ।२६४।

अतएव परित्यज्य देवीं गन्तास्मि न क्वचित्
स्वभ्रातुराज्ञया बद्धः पितृतुल्यस्य मेऽनघे ।२६५।

श्रुत्वेदं दृढवाक्यं सा लक्ष्मणस्य महात्मनः
क्रुद्धा सीताऽब्रवीद् वाक्यं योषिद्भाववशंगता ।२६६।

नानुयासि प्रियं रामं प्रार्थ्यमानो मुहुर्मुहुः
हृते रामेऽप्यभीप्सा ते पूर्णा नैव भविष्यति ।२६७।

पश्य मां दह्यमानां त्वं कृशानुं समुपाश्रिताम्
मृतायां मयि जातायां कस्याः रक्षां करिष्यसि ।२६८।

देवी कातरा न हो, भयविह्वल भी नहों। सत्यसङ्कल्प मेरे भाई शीघ्र ही आयेंगे ।।२६३।। जाते हुये उन धीर, वीर, बलशाली ने, वन में सदा तुम्हारी रक्षा के लिये मुझे आदेश दिया है ।।२६४। इसलिये देवी को छोड़कर मैं कहीं नहीं जाऊँगा। हे अनघे ! पिता सदृश अपने भाई की आज्ञा से मैं बधा हूँ ।।२६५।। महात्मा लक्ष्मण के इस दृढ़वचन को सुन कर स्त्रीपन के वश में हुई वह क्रुद्ध सीता बोली ।।२६६।। बार-बार प्रार्थना किये जाने पर भी प्रिय राम के पास नहीं जा रहे हो। राम के मर जाने पर भी तुम्हारी इच्छा पूर्ण नहीं ही होगी ।।२६७।। अग्नि का सहारा लिये जलती हुई मुझे देखो। मेरे मर जाने पर किसकी रक्षा करोगे? ।।२६८।।

ज्ञात्वेदं दृढसङ्कल्पं वचः श्रुत्वाप्यरुन्तुदाम्
भ्रातृनिक्षेपरक्षार्थं कुटीं संवृत्य रेखया ।२६९।

अन्तर्ज्वलन् बहिः शान्तो लक्ष्मणो शुभलक्षणः
ऊचे गद्गदया वाचा सीताव्याचसाऽऽहृतः ।२७०।

चिरञ्जीवतु भद्रं स्याद् गच्छामि भ्रातरं प्रियम्
नोल्लङ्घतु परं मातः रेखामेनां मया कृताम् ।२७१।

अवज्ञाय परं वाक्यं हन्त मे कुत्सितस्य च
तत्फलं तु स्वयं भुङ्क्ताद् देव्यायास्यति चेद् बहिः ।२७२।

प्रायो मनोरमा रामा गृहसंरक्षिका अपि
प्रतिपर्दाशिनी भूत्वा गेहं भङ्क्त्वा विनश्यति ।२७३।

एवमुक्त्वा गते तत्र लक्ष्मणे रामसन्निधिम्
इयाय भिक्षुवेषेण रावणः कालचोदितः ।२७४।

इस दृढ़ सङ्कल्प को देखकर और मर्मभेदी वाणी सुनकर भाई के धरोहर की रक्षा के लिये कुटिया को रेखा से घेरकर ।।२६९।। सीता के कथन से आहत, अन्दर से जलते हुये, बाहर से शान्त शुभ लक्ष्मण गद्गद् वाणी बोले ।।२७०।। चिरञ्जीवी हों, कल्याण हो, प्रिय भाई के पास जा रहा हूँ किन्तु माता ! मेरे द्वारा खींची गयी इस रेखा को नहीं लाँघे! ।।२७१।। पर हन्त मेरी बात का तिरस्कार कर यदि देवी बाहर आयेगी तो उसका फल स्वयं भोगेंगी ।।२७२।। स्त्रियाँ प्रायः मनोरम होती हैं, घर की संरक्षिका भी किन्तु इसके विपरीत दिखने पर घर को तोड़कर स्वयं नष्ट हो जाती हैं ।।२७३।। ऐसा कहकर लक्ष्मण के राम के पास चले जाने पर काल प्रेरित रावण वहाँ भिक्षुवेष में आया ।।२७४।।

दृष्ट्वा कुटीं मण्डलितां समन्तादाथर्वमन्त्रान्वितरेखया सः
बहिश्च तस्याः स्थित एव दैत्यो भिक्षां प्रदेहीति वचो जगाद ।।
निशम्य सीतापि वचस्तदानीं गार्हस्थ्यधर्माननुपालयन्ती
अन्यस्य कस्याप्यनुपस्थितौ सा भिक्षाप्रदानाय बहिर्गताऽभूत् ।।
आबद्धभिक्षाग्रहणासमर्थं विज्ञाय भिक्षुं निजधर्मबद्धा
सङ्क्रम्य रेखां बहिरागतैव यदा तदा तेन दृढं गृहीता ।२७७
विलोक्य सीता स्वदशां तदानीं विचिन्तयन्ती निजपूर्ववृत्तम्
वनाभिकृष्टा हरिणीव तत्र पत्युर्वियोगादिह कम्पिताऽभूत् ।।
तां राम रामेति मुहुर्वदन्तीं मत्स्यादबद्धां शफरीमिवार्द्राम्
बलादसौ त्यक्ततपस्विरूपः उत्थाप्य याने समपातयच्च ।२७९।
यानप्रकोष्ठे प्रतिरोधिता सा यातं स्वमार्गेण विलोक्य यानम्
चक्रन्द तारध्वनिना तदानीं हा राम हा लक्ष्मण हा जटायुः ।२८०

उसने कुटिया को चारो ओर से अथर्वमन्त्र प्रयुक्त रेखा से मण्डलित देखकर राक्षस ने कहा कि बाहर आकर हो भिक्षा दो ।।२७५।। सीता भी उस समय उसकी बात को सुनकर गृहस्थ धर्म का अनुपालन करती हुई किसी और की अनुपस्थिति में भिक्षा देने के लिये बाहर आई ।।२७६।। रेखाबद्ध भिक्षा को लेने असमर्थ भिक्षु को जानकर अपने धर्म से बंधी सीता जब रेखा को पारकर बाहर आई ही थी कि उसने कसकर पकड़ लिया ।।२७७।। उस समय सीता अपनी दशा देखकर अपने पहले के व्यवहार को सोचती हुई वन से बाहर खिंची हरिणी के समान, पति वियोग से काँप गयी ।२७८। मत्स्यभक्षी से बँधी हुई आर्द्र मछली के समान बारम्बार राम ! राम ऐसा कहती हुई उस सीता को, तपस्वीरूप त्यागकर वह रावण उठाकर जबरन यान पर पटक दिया ।।२७९।। यान के प्रकोष्ठ में अवरूद्ध वह यान को आकाश मार्ग से जाते देखकर उस समय जोर शब्दों में हा राम, हा लक्ष्मण, हा जटायु, चिल्लाई ।।२८०।।

तस्मिन्क्षणे रामकुटीरपार्श्वे चरन् बुभुक्षावशगः पतत्रिः
सीताप्रयुक्तं करुणं विलापं श्रुत्वा जटायुर्दनुजं रुरोध ।२८१।

यानप्रकोष्ठान्तनिरुद्धसीतां विलोक्य कोकीमिव पञ्जरस्थाम्
सद्यः समुत्पन्नमतिर्जटायुस्तुण्डेन तूर्णं प्रजघान याने ।२८२।

निरुद्धवेगं परितः पतन्तं व्योम्नश्च यानं समवेक्ष्य गृध्रः
उद्धर्तुमस्माज्जनकात्मजां स बिभेहि मा पुत्रि वदन्प्रपेदे ।२८३

यावद् जटायुः परिरक्षितुं तां प्रभ्रंशमाने समवैति याने
तावद् भुजाभ्यां परिगृह्य सीतां यानात् स दैत्यः सहसा चुकूर्दे ॥

प्रवर्तितेऽनन्तरमेव युद्धे गृध्रेण साकं दनुजस्य तत्र
सिद्धोऽभवद् यद् बलवत्तरोऽयं पक्षी न दैत्यः क्षतजाभिमृष्टः ॥

पलायिता स्यान्न कदादिदेषा धियाऽनया सोऽपि गृहीतसीतः
क्वचिन्न रामः समुपस्थितः स्यादतः पतत्रिं गदया जघान ।२८६

उस समय राम की कुटी के पास भूख के वश चरता हुआ पक्षी जटायु ने सीता के करुण विलाप को सुनकर उस राक्षस को रोका ॥२८१॥ पञ्जर अवरुद्ध मयूरी के समान यान के प्रकोष्ठ में अवरुद्ध सीता को देखकर, तुरन्त समुत्पन्नमति जटायु अपनी चोंच से यान पर वेगपूर्वक प्रहार किया ॥२८२॥ अवरुद्ध वेग वाले यान को आकाश से चारों ओर से गिरते हुए देखकर पक्षी ने उस दुष्ट से सीता का उद्धार करने की इच्छा से, पुत्रि ! डरो नहीं कहते हुए पहुँच गया ॥२८३॥ सीता की रक्षा करने के लिये जब तक जटायु उस टूटते हुए यान पर पहुँचे कि तब तक सीता को बाहों में लेकर वह दैत्य सहसा यान से नीचे कूद गया ।२८४। इसी बीच बिधें गृध्र से रावण का युद्ध प्रवर्तित हो जाने पर पक्षिराज अधिक बलवान् है यह प्रमाणित हो गया किन्तु घावों से भरा रावण नहीं ॥२८५। कहीं यह सीता भाग न जाय इस बुद्धि से उसने भी सीता को पकड़े हुए ही, कहीं राम उपस्थित न हो जाय यह सोचकर जटायु को गदा से मारा ॥२८६॥

गृध्रोऽपि घातादभितः प्ररक्षन् स्वीयं वपुर्दर्शितलाघवोऽसौ
गृहीतमीतेतरबाहुमूले तुण्डेन तूर्णं रभसा तुतोद ।२८७।
कालातिपातेन विवृद्धमन्युर्दृष्ट्वा नवं विघ्नमिवागत तम्
दाक्षाय्यमारादभिबद्धुकामो द्राक्प्राक्षिपत् पाशमनिष्टभीतः ।।
वियद्गतः पाशनिरोधपूर्वं व्यर्थं प्रकुर्वन् दनुजाभिलाषम्
स रावणं धिग्धिगिति प्रकथ्य पतत्पतङ्गप्रतिमोऽवतस्थे ।२८९
कर्त्तव्यमूढः प्रकरोतु किञ्चिन् निशाचरोऽसावत एव पूर्वम्
उचे जटायुर्दनुजं विनिन्दन् वृद्धेन गृध्रेण समं युयुत्सम् ।२९०।
कृत्या प्रकृत्या तव वेद्मि नूनं त्वं रावणो दण्डकमागतोऽसि
विनाशकाले विपरीतबुद्धिः स्वयं कृतान्तं कथमाह्वयेस्त्वम् ।।
अजातशत्रोः प्रकृतिप्रियस्य रामस्य भार्यां त्यज राक्षसेश
निन्द्यः प्रयत्नस्तव नाशकृच्च न वा खरस्य प्रतिकार एषः ।।

गृध्र भी प्रहार से अपने शरीर की रक्षा करता हुआ, क्षिप्रता दिखाकर, सीता को जिस हाथ में पकड़े था उससे भिन्न बाहुमूल में तेजी से वेग-पूर्वक अपनी चोंच से प्रहार किया ।।२८७।। समय बीतते जाने के कारण क्रोध के बढ़ जाने से नई विपत्ति सा आया हुआ उसे जानकर, जटायु को समीप से बाँध देने की इच्छा से अनिष्ट से घबराया शीघ्र ही उसपर पाश फेंक दिया ।।२८८।। रावण की इच्छा को व्यर्थ बनाता हुआ, पास से बंधने के पूर्व ही वह आकाश में पहुँच गया । धिक् है, धिक् है ऐसा रावण को कहते हुए जटायु आकाश से ऐसा झपटा मानों गिरता हुआ सूर्य हो ।।२८९।। कर्त्तव्यमूढ निशाचर कुछ करे इसके पहले ही जटायु राक्षस की निन्दा करते हुए, वृद्ध गृद्ध से युद्ध करने की इच्छा रखने वाले दानव से बोले ।।२९०।। तुम्हारे कार्य और स्वभाव से जानता हूँ कि तुम रावण हो, दण्डकारण्य आये हो । विनाश के समय बुद्धि बदल जाती है अन्यथा तुम कैसे यमराज को स्वयं बुलाते ।।२९१।। हे राक्षसाधिप ! प्रकृति प्रिय, अजात शत्रु राम की पत्नी को छोड़ दो । तुम्हारा प्रयास निन्दनीय और विनाशकारी है और खर विनाश का यह प्रतीकार भी नहीं है ।।२९२।।

किमुत्तरेणास्य विलम्बहेतोर्गृध्रस्य रामेप्सितपूरकस्य
मत्त्वाऽग्रणीर्निन्द्यकृतामकस्मात् चिच्छेद पक्षावसिना पतत्रेः ॥

निर्व्याजमित्रं धरणौ लुठन्तं दृष्ट्वा श्लथां तां कुररीमिवार्याम्
आकृष्य हस्तेन जगाम लङ्काम् विनापि यानं प्रतिहारकेशः ।२६४

विकीर्णकेशा स्वभुजौ क्षिपन्ती सा रावणाङ्के विधृता प्रसह्य
धाराधराङ्कप्रगृहीतकाया सौदामिनीवोच्चतरं रुरोद ।२६५।

नीयमाना तु सा सीता रावणेन दुरात्मना
क्रोशन्ती राम रामेति यतमाना स्वमुक्तये ।२६६।

अपश्यन्ती पतिं रामं लक्ष्मणं वा स्वदेवरम्
ऊचे सम्बोधयन्ती सा वनस्थान् मित्रसन्निभान् ।२६७।

खगा मृगा लता गुल्मा वृक्षा वीरुधस्तथा
अलं पश्यत मां नीतां दुष्टेनानेन रक्षसा ।२६८।

राम की इच्छापूर्ति करने वाले, विलम्ब के कारणभूत इस गृध्र को उत्तर देने से क्या लाभ ? ऐसा मानकर गलत कार्य करने वालों में अग्रणी रावण ने अकस्मात् तलवार से उसके पंख काट दिये ॥२६३॥ अकारण मित्र गृध्रराज को धरती पर तड़पते हुए देखकर, दुःखी कुररी जैसी शिथिल सीता को यान के अभाव में हाँथों से ही खींचता हुआ चौराधिप रावण लङ्का की ओर चल पड़ा ॥२६४॥ बादलों में बिजली जैसी जबर-दस्ती रावण के अङ्क में पड़ी वह, विखरे बालोंवाली, हाँथों को झटकती हुई अत्यन्त जोरों से रो पड़ी ॥२६५॥ दुरात्मा रावण से ले जायी जाती हुई, अपनी मुक्ति के लिये प्रयास करती हुई, राम-राम चिल्लाती हुई ॥२६६॥ अपने पति राम अथवा देवर लक्ष्मण को न देखती हुई वह मित्र सदृश वनवासियों से बोली ॥२६७॥ हे खग, मृग, लता, गुल्म, वृक्ष लतायें इस दुष्ट राक्षस से अपह्रियमाण मुझे अच्छी तरह देख लो ।१६८।

आयाते राघवे भद्रे कुटीं शून्यां मया विना
सूचयेत समं वृत्तं रामायाक्लिष्टकर्मणे ।२९९।

पश्यतेदं तु मे वृत्तं युष्माकं नेत्रगोचरम्
यदहं नीयमानाऽस्मि बलादेतेन रक्षसा ।३००।

एकाकिनीं च मां दृष्ट्वा नीचेन हतचेतसा
प्रतार्य भिक्षुरूपेण निगृहीता बलादहम् ।३०१।

अनेन भ्रष्टवृत्तेन गृहीता भिक्षुरूपिणा
प्राप्य वास्तविकं भिक्षुं कः श्रद्दध्यादतः परम् ।३०२।

राघवं मम सन्देशं कथयेतापरं पुनः
मां पत्युर्दर्शनाकाङ्क्षा केवलं जीवयिष्यति ।३०३।

अन्यथा मां न शङ्केथा जानकीं पतिवर्त्मगाम्
किं करवाणि नीचेन नीयमानाऽस्मि साम्प्रतम् ।३०४।

मेरे विना शून्य कुटिया पर रामभद्र के आने पर इस दुष्कर्मी के साथ इस वृत्तान्त को सूचित कर देना ॥२९९॥ आप लोगों के समक्ष मेरा यह वृत्तान्त आप सब देख रहें हैं कि इस राक्षस के द्वारा मैं जबरदस्ती हरण की जा रही हूँ ॥३००॥ मुझे अकेले देखकर हतबुद्धि नीच ने भिक्षुरूप से मुझे ठगकर. बलपूर्वक पकड़ लिया ॥३०१॥ भ्रष्टाचरण इस भिक्षुरूप धारी से मैं हर ली गई। अब वास्तविक भिक्षु को भी प्राप्त कर इसके बाद कौन उसपर श्रद्धा करेगा ॥३०२॥ और फिर राम से मेरा यह सन्देश भी कहना कि पति के दर्शन की आकांक्षा ही मुझे जिलायेगी ३०३ पतिपथानुगामिनी मेरे प्रति आप अन्यथा सन्देह नहीं करेंगे, क्या करूँ इस समय इस नीच से लेजायी जा रही हूँ ॥३०४॥

एवं बहुविधं दीना वदन्ती करुणं वचः
प्रारप्सीष्ठ स्वयं क्षेप्तुमलङ्कारान् शनैः शनैः ।३०५।

ततो निहीनो वनवासिनीं तां वन्यं सुखं दातुमितीच्छयैव
स्वस्मिंश्च कालेन तदीयकामं विबर्द्धनेच्छुः स जुगोप वाट्याम् ।।

इतः स रामोऽपि निवर्तमानः व्यापाद्य शत्रुं स्वगृहाय सद्यः
मध्येपथं वीक्ष्य प्रियानुजं स्वं पप्रच्छ चिन्तावशतामुपेतः ।३०७

परित्यज्य कुटीं कस्माल्लक्ष्मण त्वमिहागतः
कुशलं वद सीतायाः यैकाकिनी त्वया कृता ३०८।

राक्षसैर्व्याप्ते घोरे वनेऽस्मिन्नतिदारुणे
कथमाज्ञां समुल्लंघ्य समत्याक्षीत् प्रियां मम ।३०९।

हन्त स्फुरति मे नेत्रं वामं यन्नास्ति शोभनम्
न जाने कथमायाति विचारः कुत्सितो हृदि ।३१०।

इस प्रकार दीन सीता अनेक प्रकार से करुण कथन कहती हुई, अपने आभूषणों को धीरे-धीरे स्वयं फेकना प्रारम्भ कर दिया ।।३०५।। इसके बाद उस अतिनीच रावण ने वनवासिनी उस सीता को आरण्यक सुख देने की इच्छा से है, समय से अपने प्रति सीता के काम को बढ़ाने की इच्छा वाला अशोकवाटिका में उसे सुरक्षित किया ।३०६। इधर राम शत्रु को मारकर अपने घर की ओर शीघ्र लौटते हुए बीच रास्ते में अपने प्रियभाई को देखकर चिन्ताकुल हो यह पूछा ।३०७।। हे लक्ष्मण कुटिया को छोड़कर तुम यहाँ क्यों आये हो ? सीता का कुशल सुनाओ, तुमने उसे अकेला क्यों किया ? ।।३०८।। राक्षसों से भरे हुए इस अत्यन्त भयङ्कर घोर जंगल में मेरी आज्ञा का उल्लंघन कर मेरी प्रिया को क्यों छोड़ा? ।।३०९।। ओह! मेरा बॉया नयन फड़क रहा है जो शुभावह नहीं है, न जाने क्यों मन में बुरा बिचार आ रहा है ।।३१०।।

उपेक्ष्य ते परामर्शमन्वसार्षं तु यं मृगम्
अह्वद् यो म्रियमाणोऽपि वामासीत् स तु राक्षसः ।३११

रामवाक्यमिदं श्रुत्वा दृष्ट्वा तं खिन्नमानसम्
शुष्कतालुर्लिहन्नोष्ठं लक्ष्मणः समुवाच तम् ।३१२।

रक्षसो वचनं श्रुत्वा ज्ञात्वा तच्च भवद्वचः
प्रेषयामास मां गन्तुं भ्रातृजायाऽटवीं प्रति ।३१३।

नोत्सुके मयि सञ्जाते यदुक्तं दुर्वचस्तया
भृशं मर्माहतस्तेन सम्प्राप्तो भवदन्तिकम् ।३१४।

कृतं नात्र समीचीनं क्षुब्धेन वचसा स्त्रियाः
जानताऽपि त्वयाभद्र नारीणां क्षिप्रकारिताम् ।३१५।

यदस्तु साम्प्रतं तात गन्तव्यः शीघ्रमाश्रमः
कच्चित् सीता भवेत्तत्र न भवेदिति संशयः ।३१६।

तुम्हारे सलाह पर जिस मृग का मैंने अनुसरण किया था, मरते हुए जिसने पुकारा था वह तो शत्रु राक्षस था ।।३११।। राम के इस कथन को सुनकर, दुःखी मन उन्हें देखकर, लक्ष्मण की तालु सूख गयी, ओष्ठ चाटते हुए राम से बोले ।३१२।। राक्षस की वाणी सुनकर और उसे भी आपकी बात समझकर, भाभी ने अनिष्ट की आशंका से मुझे वन में भेजा ।।३१३।। आने के प्रति मेरे उत्सुक न होने पर उन्होंने जो कटुवचन कहे, उससे अति मर्माहत मैं आपके पास आया हूँ ।।३१४।। भद्र ! स्त्रियों की जल्दबाजी को जानते हुए भी तुमने, सीता की बात से क्षुब्ध होकर इसमें अच्छा नहीं किया ।।३१५।। जो भी हो भाई, अब शीघ्र आश्रम चलना चाहिए, सीता वहाँ होगी या नहीं ? सन्देह है ।३१६।।

एवमुक्त्वा व्रजन्शीघ्रं राघवो लब्धसंशयः
अलब्धाश्रममागत्य निःसीतं निष्प्रभं च तम् ।३१७।

धीराणामग्रणीः रामः समो दुःखे सुखेऽपि च
अलब्ध्वा जानकीं तत्र जातः सामान्यमानवः ।३१८।

विवर्णः कातरः साश्रु ऊर्ध्वदृष्टिर्हतप्रभः
विचेतुं तरसा सीतामन्वधावदितस्ततः ।३१९।

क्वासि सीते वचो देहि कथं मौनमवस्थिता
ईदृशी व्यवहृतिः क्वापि प्रागितो न त्वया कृता ।३२०।

हा सीते हा प्रिये सीते जानकि प्राणवल्लभे
वैदेहि मैथिलि क्वासि नेत्रज्योत्स्ने गतासि क्व ।३२१।

अयमस्मि प्रियोभर्ता रामो दशरथात्मजः
यमेव सेवितुं नित्यं विपिनं त्वं समागता ।३२२।

ऐसा कह-कह सन्देहप्राप्त राम शीघ्रता पूर्वक जाते हुए आश्रम पर आकर उसे सीताविहीन, निष्प्रभ पाया ॥३१७॥ दुःख और सुख में समान तथा धीरों में अग्रणी राम वहाँ जानकी को न प्राप्तकर सामान्य मानव हो गये ॥३१८॥ विवर्ण दीन, साश्रु, ऊर्ध्वनेत्र, हतप्रभ, तेजी से सीता को खोजने के लिए इधर-उधर दौड़ने लगे ॥३१९॥ सीते कहाँ हो ? उत्तर दो, क्यों मौन हो गई हो ! इससे पूर्व तुमने कभी भी ऐसा व्यवहार नहीं किया ॥३२०॥ हा सीते, हा प्रिये सीते, जानकि, प्राण प्रिये, विदेह पुत्रि, मैथिलि, आँखों की चन्द्रिका, कहाँ हो? कहाँ गई? ॥३२१॥ दशरथ का पुत्र तुम्हारा प्रियपति मैं यह राम हूँ जिसकी नित्य सेवा के लिए ही तुम वन में आई थी ॥३२२॥

वद केनापराधेन नोत्तरं प्रददासि मे
इतः पूर्वं त्वमासीः क्व कठोरा वद साम्प्रतम् ।३२३।

मन्ये कृतापराधोऽस्मि सेवमानोऽपि नित्यशः
क्षन्तुमर्हसि सीते त्वं क्षमा ते प्रकृतिर्यतः ।३२४।

मा क्षमिष्ठाः परं भद्रे द्रुतमायाहि साम्प्रतम्
अनागत्य ददेथाः किं दण्डं यदपि रोचते ।३२५।

क्व चन्द्रश्चन्द्रिकाहीनः पद्मं पद्मश्रियं विना
शोभते किं प्रिये ब्रूहि रामः सीतां विना क्वचित् ।३२६।

जाता हन्त दिशः शून्याः शून्या मे विदिशस्तथा
नहि शक्नोम्यवस्थातुं क्षणं भद्रे विना त्वया ।३२७।

इयं कुटी वनञ्चेदं न रम्यं मे प्रतीयते
मृगये त्वां क्व वामोरु वद मां करवाणि किम् ।३२८।

बताओ, किस अपराध से मुझे उत्तर नहीं दे रही हो ? बताओ कि इससे पूर्व तुम कब निष्ठुर हुई थी ।।३२३।। निरन्तर सेवा करते हुए भी संभव है अपराध किया होऊँ। हे सीते उसे तुम क्षमा करो क्योंकि क्षमा ही तुम्हारी प्रकृति (कारण-माता) है ।।३२४।। भद्रे ! क्षमा न करो किन्तु अब शीघ्र आ जाओ। बिना आये अपना इच्छित दण्ड कैसे दोगी ? ।।३२५।। चन्द्र चन्द्रिका हीन कहाँ ? पद्म पद्मश्री बिना कहाँ ? और प्रिये, बताओ राम सीता के बिना कहीं अच्छा लगता है ।।३२६।। आह, मेरे लिए दिशायें शून्य हो गई, विदिशायें भी शून्य हो गई, भद्रे ! तुम्हारे बिना मैं क्षण भर नहीं रह सकता ।।३२७।। यह कुटी और यह वन मुझे अच्छा नहीं लग रहा है। वामोरु! तुम्हें कहाँ खोजूँ ? बताओ क्या करूँ? ।३२८।

नाहमस्मि परित्यक्तः कदाचित्कुत्रचित्त्वया
प्रच्छन्ना किं स्वयं शुभ्रे केनचिद्वाऽपवारिता ।३२९।

एवं बहुविधं जल्पन् अनल्पं राघवः पुनः
लग्नस्तामनुसन्धातुं क्षुपे गुल्मे लतास्वपि ।३३०।

विक्षिप्तमिव संदृश्य राघवं लक्ष्मणस्तदा
कैकेयीं जानकीं स्वञ्च मेने दुःखस्य कारणम् ।३३१।

भ्रातृसेवासु संलग्नः पूर्वतः कृतनिश्चयः
बभूव लक्ष्मणो धीमान् रामच्छाया ततः परम् ।३३१।

जानकीविचयव्यग्रः रामश्च तदनन्तरम्
प्रारेभे च स्वयं प्रष्टुं जानकीं वनवासिनः ।३३३।

हे खगा हे मृगाः कच्चित् दृष्टा सीता प्रिया मम
व्यापादिता हृता किंस्विद् गोपितात्मानमात्मना ।३३४।

तुमसे मैं कहीं भी, कभी भी छोड़ा नहीं गया। निष्कलङ्क! स्वयं छिप गयी हो? या किसी ने छिपा रखा है? ॥३२९॥ ऐसे ही अनेकों प्रकार से बहु प्रलाप करते हुए राम झाड़ियों, लताओं, गुल्मों में भी सीता को खोजने में लग गये ।३३०॥ उस समय राम को विक्षिप्त सा देखकर लक्ष्मण ने कैकेयी, जानकी और अपने को इस कष्ट का कारण माना।३३१। पहले से ही निश्चय किये हुए भाई की सेवा में लगे हुए बुद्धिमान् लक्ष्मण उसके बाद से राम की छाया बन गये ॥३३२॥ इसके बाद जानकी के खोजने में व्यग्र राम वनवासियों से सीता को स्वयं पूछना प्रारम्भ किया।३३३। हे पक्षिगण, हे मृगों क्या तुमने कहीं मेरी प्रियतमा सीता को देखा है? मार डाली गई या हरण कर ली गयी? अथवा स्वयं अपने को छिपा ली है? ।।३३४॥

मतिर्यस्याः क्वचिन्नासीदनुरक्ताऽन्यभर्तरि
कां दिशं विदिशं वापि गता सा ब्रूत मामिह ।३३५।

मा मां वदत हे वन्या राममप्रियकारिणम्
त्वत्प्रियां मैथिलीं यस्तु रक्षितुं नहि शक्नुतात् ।३३६।

एवं प्रलपता वाक्यमनवस्थितचेतसा
दृष्टो रामेण वातायुरेकः प्रकृतिचञ्चलः ।३३७।

रामपार्श्वं समागत्य पुनर्दूरं स गच्छति
पुनरागत्य रामं स मुहुः शृङ्गेण विध्यति ।३३८।

असकृद् व्यवहारोऽयं दृष्टो रामेण धीमता
निरचायि ततस्तेन कुरङ्गस्यानुवर्तनम् ।३३९।

ईषद्दूरं गतो रामः संददर्श जटायुषम्
निष्पक्षं रक्तदिग्धाङ्गं लुठन्तं भुवि विक्लवम् ।३४०।

जिसकी बुद्धि कभी भी मेरे से भिन्न में अनुरक्त नहीं हुई। क्या वह दिशाओं में चली, या विदिशाओं में ? मुझे बताओ ।।३३५।। हे वन-वासियों अप्रियकारी मुझ राम से न कहो न कहो क्यों कि तुम्हारी प्रिय जानकी की रक्षा करने में जो वह समर्थ नहीं हुआ ।।३३६।। इस प्रकार की बातों से प्रलाप करते हुए अव्यवस्थित चित्त राम ने स्वभाव से चञ्चल एक हरिण को देखा ।।३३७।। राम के पास आकर वह पुनः दूर चला जाता, फिर राम के पास आकर उन्हें बार-बार सींग से कुरेदता है ।।३३८।। धीमान् राम ने उसके इस व्यवहार को अनेक बार देखा. फिर उन्होंने हरिण को अनुगमन करने का निश्चय किया ।।३३९।। थोड़ी ही दूर गये हुए राम ने पक्षविहीन, रक्तसने शरीर, विह्वल, धरती पर लोटते हुए जटायु को देखा ।।३४०।।

प्रधावन् राघवस्तत्र पितृमित्रं जटायुषम्
स्वाङ्क उत्थाप्य तं शीघ्रमतृप्यन्नेत्रवारिणा ।३४१।

तित्यक्षुश्च निजान् प्राणानसौ रामोपकारकृत्
रामानने ददद् दृष्टिमुवाच स्खलिताक्षरम् ।३४२।

राघवाहं न शक्येय रक्षितुं ते प्रियामिह
रावणेन हृता पुत्री कृत्वा मां कृत्तपक्षकम् ।३४३।

वदन्नेवं महात्मा विः कृच्छ्रं धारितजीवनः
रामाङ्कस्थो जटायुः स गतायुः सन् दिवं गतः ।३४४।

बलान्निरुद्धान्यपि शोकमूलान्यश्रूणि मुञ्चन् विवशं स रामः
पितुर्वियोगोत्थमसीमदुःखं तस्मिन्क्षणे वास्तविकं व्यजानात् ।३४५

स्वधर्मभार्यां सततानुरक्तं पितुः समानञ्च जटायुषं सः
हित्वा कथञ्चिद् युगपतशशाक दुःखद्वयं सोढुमभूतपूर्वम् ।३४६।

वहाँ दौड़ते हुए राम ने पिता के मित्र जटायु को शीघ्र ही अपनी गोद में उठाकर आँसुओं से उन्हें सींचा ।।३४१।। रामोपकारी जटायु अपने प्राणों को छोड़ने की इच्छावाला, राम के मुख पर आँख लगाते हुए अस्फुटाक्षर वाणी में बोला ।।३४२।। राम ! मैं तुम्हारी प्रिया की रक्षा नहीं कर सका मेरे पंखों को काटकर रावण ने पुत्री सीता का हरण कर लिया ।।३४३।। किसी प्रकार से कष्ट पूर्वक प्राण धारण किये हुए ऐसा कहते ही महात्मा पक्षी जटायु राम की गोद में ही प्राण त्याग कर स्वर्ग सिधारे ।।३४४।। बलात् रोके गये भी शोक जनित आँसुओं को बहाते हुए विवश श्रीराम पिता के वियोग से पैदा हुए असीम वास्तविक दुःख को उसी समय जाना ।३४५। वह राम सतत अनुरक्त अपनी धर्मपत्नी और पिता के समान जटायु को खोकर अभूतपूर्व दोनों दुःखों को एक साथ किसी प्रकार सहने में समर्थ हो सके ।।३४६।।

अङ्के निधायैव शवं पतत्रेर्द्विषं विहन्तुञ्च कृतप्रतिज्ञः
श्राद्धं तदीयं कृतवान् स पूर्वं पश्चादकार्षीत् सदयोऽग्निकृत्यम् ।।

हृदैव नुर्मानवतां प्रकाममुपास्यमानस्य चिरं सहिष्णोः
कथं सहाया न भवन्ति लोके खगा मृगा निम्नपदाभिबुद्धाः ।।

रामे दुखं स्वपत्नीजं पक्षिदुःखाधरीकृतम्
प्रलापाय पुनर्जातं द्विरावृत्तोज्वरो यथा ।३४९।

दत्त्वाऽग्नये गृध्रशवं तदानीं जलाञ्जलिश्चापि विधाय तस्मै
शोकाभितप्तो विकलेन्द्रियश्च स राघवो लक्ष्मणमेवमूचे ।३५०।

अहो कियानस्मि विहीनभाग्यो जाने न वा दैवगतिं विचित्राम्
काङ्क्षामि यं यं मनसा प्रकामं त्यजत्यलं मां स स एव नूनम् ।।

सीता प्रदत्ता जनकेन मह्यम् न रक्षितुं तां प्रभवामि हन्त
किं हा प्रवक्ष्यामि च तेन पृष्टो न रक्षिताऽसौ मम भाग्यदोषात् ।।

जटायु के शव को अङ्क में रखकर ही शत्रु को मारने की प्रतिज्ञा करके उन्होंने पहले ही उनका श्राद्ध कर दिया और सदय बाद में अग्निकार्य किया ।।३४७।। हृदय से मानवता की सेवा करने वाले तथा अति सहिष्णु मनुष्य के सहायक संसार में अधमपदों से व्यवहृत खग मृग क्यों न हो ? ।।३४८।। जटायु दुःख से तिरस्कृत अपनी पत्नी से उत्पन्न दुःख राम के पुनः प्रलाप के लिये वैसे ही बन गया जैसे ज्वर दोहरा दे ।।३४९।। उस समय गृध्रशव को अग्निसात् कर उसे तर्पणाञ्जलि भी देकर, शोकाभिसंतप्त तथा विकलेन्द्रिय वह राम लक्ष्मण से इस प्रकार बोले ।।३५०।। मैं कितना अभागा हूँ, भाग्य की विचित्र गति भी नहीं जानता । जिस जिस को मैं मन से अधिक चाहता हूँ वहीं वहीं मुझे एकदम छोड़ दे रहा है ।३५१।। जनक ने मुझे सीता प्रदान की थी किन्तु उसकी रक्षा करने समर्थ नहीं हो सका । उनके पूंछने पर क्या यह कहूँगा कि अतने दुर्भाग्य से मैंने उसकी रक्षा नहीं की ।।३५२।।

पुराकृतानामघसां विपाकः फलोन्मुखः किं युगपद् विरूढः
एकं ततश्चैकमिति क्रमेण दुःखं ददन्मे न करोति भद्रम् ।३५३
क्व पूरयोध्या मम जन्मभूमिः पुराभ्यनन्दन्ननु मां ससीतम्
हित्वाऽद्य सीतां खलु रिक्तहस्तो द्रष्टास्मि तां हा जननीमिव स्वाम्
क्व मे प्रिया पद्मपलाशनेत्रा क्व राक्षसाः शीलजलेन हीनाः
म्लानाऽथवा नाशमिता न जाने लभे न शान्तिं विकलेन्द्रियोऽहम् ॥
एकाकिनी या परिहाय रामं न क्वाप्यगच्छन्मनसापि कामम्
सैवाद्य मद्दूरमिता न जाने कां कां विपन्नस्थितिमीक्षमाणा ३५६
गच्छामि कुत्र प्रकरोमि किं वा जानाम्युपायं च कुतो विचेतुम्
सा जीविता स्यादथवा मृता स्यादित्येव वृत्तं कथमभ्युपेयम् ।३५७
निश्चन्द्रिकं कः प्रकरोति चन्द्रं सा जीवितैवेति दृढा मतिर्मे
सतां हि सन्देहपदेषु वस्तु प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः ।३५८।

मेरे पूर्वजन्मों में किये गये पापों का फलोन्मुख परिणाम क्या एक साथ बढ़ गया है? एक के बाद क्रमशः एक दुःख देता हुआ, मेरा भला नहीं कर रहा है ॥३५३॥ कहाँ मेरी जन्मभूमि अयोध्या ने पहले सीता समेत मेरा अभिनन्दन किया था। और आज सीता को गँवाकर खाली हाथ मैं कैसे अपनी माता कौशल्या को देखूँगा ॥३५४॥ कमलपत्रनयना मेरी प्रिया कहाँ? और कहाँ शील जल से रहित राक्षस? वह दुःखी है या मर गई? नहीं जानता। कथितेन्द्रिय मुझे शान्ति नहीं मिल रही है ॥३५५॥ जो राम को छोड़कर मन से भी अकेले कहीं नहीं गयी वहीं आज मुझसे दूर गई पता नहीं कौन कौन सी दुःखद परिस्थितियों को देख रही होगी ॥३५६॥ कहाँ जाऊँ अथवा क्या करूँ? खोजने का उपाय कहाँ से जानूँ वह जीवित है अथवा मर गई, इतना ही वृतान्त कहाँ से कैसे प्राप्त हो? ॥३५७॥ चन्द्रमा को कौन चन्द्रविहीन करता है? मेरा दृढ़ विचार है, वह जीवित ही है सन्देहास्पद स्थानोंमें सत्पुरुषों का मन ही प्रमाण होता है ॥ ३५८॥

भूत्वा न तूष्णीमहमत्र वर्ते युक्ता क्वचिन्नापकृतिक्षमा वा
व्यापादयिष्यामि कथं स्वशत्रुमन्तर्ज्वलामि प्रतिकारबुद्धे ।३५९

सीते प्रिये क्वासि विदेहपुत्रि न त्वां विना स्थातुमहं समर्थः
आयाहि शीघ्रं प्रतिवक्तुमेनं रामं विपन्नं तव विप्रयोगे ।६६०

तं रामभद्रं विकलं विलोक्य धृतिं कथञ्चित् प्रणिधाय स्वस्मिन्
कर्तुञ्च रामं प्रकृतिस्थमारात् सुलक्षणो वाचमुवाच लक्ष्मणः ।३६१

जातं च यत् तत् खलु जातमेव गतं न शोचन्ति जनाः प्रबुद्धाः
अलं शुचा दाशरथे न युक्ता कार्पण्यदोषोपहता मनीषा ।३६२।

न चेद् विपत्तिर्यदि जीवनेऽस्मिन् परीक्षितं स्यात्कथमत्र धैर्यम्
विहीनधैर्योऽपि पुमान्पुमान् किं नायं प्रलापः समयानुकूलः ।।

तस्मादिहोत्तिष्ठतु सर्वजिष्णो कोऽयं रिपुर्यो स्वयमेव चौरः
धनुर्भृतं वीक्ष्य जनो भवन्तं जीवत्यहो किं विपरीतबुद्धिः ।३६४

मैं यहाँ चुप होकर भी नहीं रह सकता अथवा कहीं अपकार की क्षमा भी संभव नहीं। अपने शत्रु को कैसे मारूँ, इस प्रतीकार बुद्धि से मन ही मन जल रहा हूँ ।।३५९।। प्रिये ! विदेहजन्दिनि, सीते कहाँ हो ? तुम्हारे बिना मैं रह नहीं सकता तुम्हारे वियोग में दुःखी इस राम को उत्तर देने शीघ्र आओ ।३६०। उन राम को व्यथित देखकर किसी प्रकार अपने धैर्य धारण कर, राम को शीघ्र प्रकृतिस्थ करने के लिये, शोभन लक्ष्मण ने यह बात कही ।३६१। जो हुआ वह तो हो ही गया, बुद्धिमान् लोग व्यतीत को नहीं सोचते। हे दाशरथे शोक न करें, आपकी बुद्धि कातर्यदोष दिग्ध नहीं होनी चाहिए ।३६२। यदि इस जीवन में विपत्ति न हो तो यहाँ धैर्य की परीक्षा कैसे हो? धैर्यरहित पुरुष कोई पुरुष है ? यह प्रलाप समय के अनुरूप नहीं है ।।३६३।। इसलिए हे सर्वजयी उठो यह कौन व्यक्ति आपका शत्रु है जो स्वयं चोर है ? धनुर्धारी आपको देखकर विपरीत बुद्धि जीवित रह सकेगा ? ।।३६४।।

समूलघातं विनिहत्य शत्रुं नेया पुनः संयुगलब्धसीता
पुराऽपि लब्धा जनकाङ्गने या विधाय नीचैर्द्विषदाननानि ।३६५

श्रुत्वा वाचमनिन्दितां जनकजादुःखाभितप्तो युवा
प्राप्तुं तां कृतनिश्चयो दृढमतिर्भ्रात्रा समं राघवः
काष्ठां रावणपालितां परिययौ पश्यन्नकिञ्चित्करान्
मेघालम्बितमौलिनीलशिखरान् क्षोणीभृतो दाक्षिणान् ।३६६।

श्रीश्यामान्वितसुन्दरोऽस्ति जनको माता च यस्याम्बिका
यः श्रीराजकिशोर आप्तचरितः शाण्डिल्यवंशोद्भवः
तस्य श्रीयुतविश्वनाथगुरुतो लब्धाशिषोऽस्मिन् महा-
काव्ये चारुणि राघवेन्द्रचरिते सर्गश्च दशमो गतः ।३६७।

शत्रु को समूलघात मारकर, युद्धप्राप्त सीता पुनः लानी है पहले भी जो जनक के आँगन में शत्रुओं के मुख को नीचा करके प्राप्त हुई ।।३६५।।
प्रशस्त वाणी को सुनकर सीता के दुःख से अभितप्त, दृढ़बुद्धि राम उन्हें प्राप्त करने के लिए दृढ़ निश्चय करके अकिम्चित्कर अवरोध करने में असमर्थ, मेघावलम्बित उच्च नील शिखरोंवाले दक्षिणात्थ पर्वतों को देखते हुए भाई समेत रावण पालित दिशा दक्षिणको चले-चल पड़े ३६६
जिनके पिता श्री श्यामसुन्दर और माता अम्बिका देवी हैं स्वयं जो आप्तचरित शाण्डिल्य गोत्रोत्पन्न, श्रीराजकिशोर हैं, गुरु विश्वनाथ का आशीर्वाद प्राप्त उनके द्वारा रचित सुन्दर राघवेन्द्रचरित महाकाव्य में यह दशम सर्ग पूर्ण हुआ ।।३६७।

एकादशः सर्गः

एनं वनं बहुवनं विचरन्स रामस्
तेपे विदीर्णहृदयो युगपन्निभाल्य
सीतावियोगजनरुन्तुदमामनस्य
स्वच्छन्दवृत्तिपरत्र मृगाण्डजानाम् ।१।

जीवन्श्वसन्परिचलन्प्रकृतींश्च पश्यन्
शृण्वन्वचांसि वयसां कुसुमानि जिघ्रन्
रेमे क्वचिन्न विषयेषु जडीभवन्स
नासीद्धि कर्मसु च राममनःप्रवृत्तिः ।२।

तस्मै सुमानि हुतभुक्सदृशानि भान्ति
फुल्लं वनं ज्वलनमन्दिरतानुकारि
ग्राव्णः स्खलन्श्रुतिसखः सरितां निनादो
झञ्झास्वरूपतुलनां प्रकटीचकार ।३।

इस प्रकार जलबहुल वन प्रदेश में घूमते हुए विदीर्ण हृदय रामने सीता वियोग से उत्पन्न दुःख तथा पशु-पक्षियों के स्वयं प्राप्त स्वच्छन्दवृत्ति दो प्रकारों को एक साथ देखकर अतिशय वेदना प्राप्त की ॥१॥ जीते, श्वाँस लेते, चलते, प्रकृतियों को देखते, पक्षियों के शब्दों को सुनते, फूलों को सूंघते हुए (चले जा रहे राम) जड हुए वह किन्हीं भी विषयों में प्रसन्न नहीं हुए और न ही किसी कर्म में राम की मनःप्रवृत्ति हुई ।२॥ पुष्प उन्हें अग्निसदृश लगते थे, पुष्पित वन अग्निमन्दिर लग रहा था, पर्वतों से गिरता श्रुतिसुखद नदियों का निनाद झञ्झारूप का सादृश्य प्राप्त कर रहा था ॥ ॥

मोदाय तस्य न कदापि निदाघ सायं
नो वा क्षपा तुहिनदीधितिरश्मिरम्या
कादम्बिनी न जलमुक्स्तनितं न वृष्टिः
प्रावृट्पयोदपरिलग्नवपुर्न वायुः ।४।

व्यर्थं बिभर्ति कदलीतरुखण्ड एषः
सीतोरुसाम्यमनुयास्यति किं कुतश्चित्
किं वा तदाननतुलामपि याति चन्द्रो
रामो वदन्ननुपलं नहि शातमाप ।५।

मध्याह्नकालमनुवीक्ष्य कृताह्निकः स
कुर्वन्सदा समशनाय व्रती फलेभ्यः
मिष्टं फलं जनकजोपनतं च काङ्क्षन्
दृष्ट्वानुजं सलिलमेव पपौ खनेत्रः ।६।

सीतैव सम्प्रति गता ननु कन्दराया-
मित्थं विभाव्य वितथानतदृष्टिदोषात्
गत्वा च तामनधिगम्य विदेहजां स
दृष्टिभ्रमं न गणयन् समवाप दुःखम् ।७।

ग्रीष्म की सायंवेला कभी कभी उन्हें हर्षद नहीं हुई और न ही चन्द्र-किरणों से रमणीय रात ही भायी। न मेघमाला न मेघध्वनि, न वर्षा, न वर्षाकालीन बादलों से सुसेवित पवन ही (उन्हें कभी तृप्ति दे पाया) ॥४॥ यह कदली वन व्यर्थ है क्या यह सीता उरुओं की तुलना कहीं प्राप्त कर सकता है ? अथवा चन्द्रमा भी क्या उनके मुख की तुलना प्राप्त कर सकेगा ? ऐसा प्रतिपल बकते हुए राम ने, सुख नहीं पाया ॥५। सदा ही वह दोपहर देखकर आह्निक कृत्य करके तपस्वी फल भोग के लिये सदा जानकी से प्राप्त होते रहे मीठे फलों की आकाङ्क्षा करते हुए, अनुज को देखकर, आकाश में आँखे कर केवल जल ही पीकर रह जाते ॥६॥ जडीभूत-विनत दृष्टि दोषवश सीता अभी गुफा में गयी है ऐसा समझकर वहाँ जाते, उसे न प्राप्त कर, वह दृष्टिदोष समझ नहीं पाते और दुःखी हो जाते ।७॥

कुर्वन् दिवा जनकजातुलनां सुमेषु
दृष्टिं गतेषु सकलेषु वनोद्भवेषु
मोघा निशा प्रतिचकार विनिद्ररामः
सीतास्मृतिप्रतिहतेन्द्रियवृत्तिरेषः ।८।

व्यर्थं गतानि सकलान्यनुरञ्जितानि
व्यर्थाः क्रियास्तु सकला अपरस्पराश्च
तस्मै बभूव नियतं प्रतिशर्मदं तत्
यत्केवलं जनकजास्मरणं तदानीम् ।९।

आसीच्च यत् प्रियतमासविधे मनोज्ञं
दिष्ट्या तदेव विपरीततरन्नु जातम्
सांसारिकेषु विषयेषु गतस्पृहः स
सीतां स्मरन्बहुतरं दिवसं निनाय ।१०।

सीतासमन्वेषणे दत्तचित्तो धृत्वा कथञ्चिद् धृतिं मानसे स्वे
क्षोणीभृतां गुह्यभागान् स राम उत्सान् दरींश्चाभिपश्यन् जगाम ।।

जंगल में उत्पन्न सभी दिखने वाले फूलों से जानकी की तुलना करते हुए दिन और सीता स्मरण से विकलेन्द्रिय-वृत्ति राम ने रातें बिता दी ।।८।। सारे आनन्द के विषय व्यर्थ हो गये परस्पर असम्बद्ध सारी क्रियायें व्यर्थ हो गईं। उस समय सुखप्रद केवल वे ही पदार्थ हुए जो जानकी मात्र की स्मृति प्रदान करते थे ।९। प्रिया के समीप रहने से जो वस्तुयें मनोज्ञ थीं, विधिवश वे सभी अत्यन्त विपरीत हो गयीं, सांसारिक विषयों से निरपेक्ष वह बार-बार सीता को स्मरण करते हुए दिन बिताते थे ।१०। सीता की खोज में लगे हुए राम किसी प्रकार से अपने मन में धैर्य धारण कर पर्वतों के गहन प्रदेशों, झरनों, गुफाओं को देखते हुए चले जा रहे थे ।।११।

तत्रातिघोराटवीमध्य एका
दृष्टाऽभवद् राक्षसी भ्रष्टवृत्ता
साऽयोमुखी लक्ष्मणं बाहुमूले
बद्ध्वा रतिं प्रार्थयामास सद्यः ॥१२॥

नासास्तनौ कर्णयुग्मं विभिद्य दूरीकृतायां कथञ्चिच्च तस्याम्
उक्त्वा प्रशंसावचो लक्ष्मणाय रामो दिशं दक्षिणां सम्प्रतस्थे ।१३

चित्रं परं भाग्यचक्रं तदानीं त्यक्त्वा सृतिं गर्तमाशु प्रपेदे
रामः स्वयं लक्ष्मणेनापि साकं बद्धो भुजाभ्यामकस्माद् दृढाभ्याम् ।

कस्य प्रवेष्टाविमौ द्वौ विचित्रौ सालद्रुवद् दैर्घ्यभावं प्रपन्नौ
याभ्यामकस्मात् पुरो नष्टभाग्यावावां स्व इत्थं सुदूराद् गृहीतौ ॥

एवं तदा राघवौ चिन्तयन्तौ दृष्ट्वा विदूरे स्थितं दैत्यमेकम्
तस्मात्स्वमुक्तिं परामीहमानौ छिन्तःस्म सद्यो भुजौ तौ तदीयौ ॥

वहाँ अतिगहन वन में एक कामचारिणी राक्षसी दिखाई पड़ी, लौहमुखी उसने लक्ष्मण को भुजाओं में बाँधकर तुरन्त रति की प्राथना की ॥ १२॥ नाक, दोनों स्तन और कानों को काटकर किसी प्रकार उसके दूर कर दिये जाने पर, लक्ष्मण की प्रशंसा कर राम दक्षिण दिशा की ओर चल दिये ॥१३॥ आश्चर्य कि उस समय भाग्यचक्र राह छोड़कर शीघ्र ही गढें में पहुँच गया । राम ने लक्ष्मण समेत स्वयं को सहसा दृढ भुजाओं में बंधा पाया ॥१४॥ सालवृक्ष के समान लम्बी विचित्र ये दोनों भुजायें किसकी हैं? जिनसे अभागे हम दोनों सहसा दूरसे सामने से पकड़ लिए गये हैं ॥१५॥ इस प्रकार उस समय सोचते हुए दोनों रघुवंशियों ने दूर खड़े एक राक्षस को देखकर उससे अपनी मुक्ति चाहने वाले दोनों ने उसकी दोनों भुजायें काट डाली ॥१६॥

रुण्डस्थमुण्डः कबन्धाभिधेयो वक्तिस्म रामं परां प्रीतिमाप्तः
पार्श्वस्थगर्ते द्रुतं मां निपात्य त्वं दाहयाऽतः प्रवक्ष्यामि किञ्चित् ॥

एवङ्कृते तदा वह्नेरुदियाय नरोऽपरः
दिव्याम्बरधरः श्रीमान् दीप्तिमान् शुभलक्षणः ।१८।

प्रोवाच प्रणमन्नेष इदानीमस्मि निर्भयः
स स्थूलशिरसा दत्तः शापो मे पूर्णतां गतः ।१९।

जानामि भद्र वृत्तं ते पूर्णतस्ते पराक्रमम्
कालदोषेण सम्प्राता त्वयैषा कष्टदा दशा ।२०।

क्रोशन्ती राम रामेति क्षिपन्ती भूषणानि च
नीता सीता बलादेषा रावणेन विहायसा ।२१।

इतः पूर्वं महानेकऋष्यमूकोऽस्ति पर्वतः
निष्कासितो बलाद् गेहात सुग्रीवो श्रयते च यम् ।२२।

कबन्धमुण्ड, कबन्ध नामक वह दैत्य परम प्रसन्न होकर राम से बोला, मुझे शीघ्र ही समीपवर्ती गढे में डालकर जला दीजिये, फिर मैं कुछ बताऊँगा ॥१७॥ राम के ऐसा करने पर अग्नि से एक दूसरा ही, दिव्य वस्त्रधारी, कान्ति-दीप्तिमान, शुभलक्षण व्यक्ति प्रकट हुआ ॥१८॥ प्रणाम करते हुए उसने कहा अब मैं निर्भय हो गया। स्थूलशिरा मुनि से दिया गया वह मेरा शाप अब समाप्त हो गया ॥१९॥ हे भद्र ! मैं तुम्हारे पराक्रम और वृत्तान्त को पूरी तरह जानता हूँ। कालदोष से तुमने यह दुःखद अवस्था पायी है ॥२०॥ राम, राम चिल्लाती हुई आभूषणों को फेंकती हुई वह बेचारी सीता, जबरदस्ती रावण द्वारा आकाश मार्ग से ले जायी गई ॥२१॥ यहाँ से पूरब, ऋष्यमूक नाम का एक महान पर्वत है जिस पर घर से बलात् निकाला गया सुग्रीव आश्रम लिये हुए है ।२२।

भास्करस्यौरसः पुत्रः साहाय्यं ते करिष्यति
राघव मत्परामर्शाद् द्रुतं गच्छ तदन्तिकम् ।२३।
तत्रैकोऽस्ति महावीरो हनुमद्व्यपदेशभाक्
शुचिः शूरः कृती विद्वान् सुग्रीवसचिवेषु सः ।२४।
तस्य साहाय्यमाश्रित्य सीतां त्वं प्राप्स्यसि ध्रुवम्
एवमुक्त्वा कबन्धोऽपि तूर्णमन्तर्हितोऽभवत् ।२५।
ततो राघवस्तां प्रियां मैथिलीं स्वां हृदा चिन्तयन् बाह्यसंज्ञाभिशून्यः
मतङ्गाश्रमं प्राप्तहस्तावलम्बो ययौ लक्ष्मणेनाशु साकं रुदन्सः ॥
विनिर्माय चित्रं कुटीरं मनोज्ञं क्षुपैःफुल्लपुष्पैर्लसन्तं समन्तात्
मुदा रामरामेति नित्यं जपन्तीं ददर्शैकवृद्धां वसन्तीं स तत्र ।२७।
वदन्तीं स्वनामेति काञ्चिद् विलोक्य
कथं मामियं वेत्ति साध्वी पलिक्नी
गतस्तां निराकर्तुमेनां स्वशङ्कां
भृशं विस्मितो रामभद्रस्तदानीम् ।।२८।।

हे राघव ! सूर्य का वह औरस पुत्र तुम्हारी सहायता करेगा। मेरी सलाह से आप शीघ्र उसके पास जाँय ।।२३।। वहाँ सुग्रीव के मन्त्रियों में हनुमान नाम का एक महावीर, पवित्र, पराक्रमी, कृती, विद्वान है ।।२४। उसका सहयोग प्राप्तकर आप निश्चय ही सीता को प्राप्त कर लेंगे ऐसा कहकर कबन्ध भी शीघ्र ही अन्तर्ध्यान हो गया ।।२५।। इस प्रकार अपनी प्रियतमा जनकनन्दिनी को हृदय से सोचते हुए, बाह्यसंज्ञाशून्य, लक्ष्मण के हाँथों का सहारा थामे, रोते हुए शीघ्र हो मतङ्गाश्रम की ओर गये ।२६। वहाँ चारों ओर से झाड़ियों, कुसुमित पुष्पों से शोभायमान एक मनोहारी सुन्दर कुटिया बनाकर, नित्य ही राम, राम प्रसन्नता पूर्वक जपती निवास कर रही एक वृद्धा को देखा ।२७। अपने नाम लेती किसी को देखकर, यह पके बालों वाली साध्वी मुझे कैसे जानती है ? इस अपनी शङ्का का निराकरण करने के लिए उसके पास पहुँचे हुए राम उस समय बहुत चकित हुए ।।२८।।

आसीद् वनं क्रूरविचेष्टितानां सुरद्विषां शोभनवासभूमिः
पञ्चास्यभल्लूकवराहकोकैर्व्याप्तश्च मांसादनपक्षिसङ्घैः ।२६।

दीर्घद्रुमाणां पृथुलैः प्रकाण्डैः परस्परं संग्रथितैर्लताभिः
दिवोष्णरश्मेर्निशि शीतरश्मेः रुग्भिर्न तत्र स्वपदं न्यधायि ।३०

विशङ्कटैरर्जुनकैरगम्यं पालघ्नशष्पैरपि दुष्प्रवेश्यम्
सरीसृपादिध्वनितैर्नितान्तं भयप्रदं साहसिकादिहृत्सु ।३१।

तस्यैकभागे नितरां सुरम्यं सहस्रवीर्याप्रसरैर्मनोज्ञम्
आसीत्स्थलं चारुसुमादियुक्त फलप्रदानोऽकहवाररम्यम् ।३२।

निर्माय तस्मिन्नुटजं वसन्ती जैवात्रिकी काचन भीतिहीना
दृष्ट्वाभिरामं कमनीयवेशं बद्धाञ्जलिस्तं समुवाच रामम् ।३३।

आयोध्यको दाशरथिर्भवान् किं सर्वान्तरात्मा मुनिभिः प्रणम्यः
नाम्नास्ति रामो वपुषाऽभिरामः प्रतीक्षमाणामिह मां ब्रवीतु ।३४

क्रूरकर्मा राक्षसों का वह सुन्दर निवास प्रदेश था। सिंह, भालू, सुअर, कोक तथा मांसभक्षी पक्षियों से परिव्याप्त था ॥२६॥ लताओं से परस्पर गुँथे, भारी शाखाओं वाले लम्बे-लम्बे वृक्ष थे, जहाँ दिन में सूर्यकिरणें तथा रात में चन्द्रमा की किरणें नीचे नहीं पहुँच पाती थीं ॥३०॥ घने अर्जुन वृक्षों से जो अगम्य था तथा कुकुरमुत्तों से दुष्प्रवेश्य था। सांपों आदि की ध्वनियों से जो वनप्रदेश अत्यन्त साहसीजनों को भी भयप्रद था ॥३१॥ उसके एक ओर अत्यन्त सुरमणीय दूर्बा आदि से घिरा मनोहर स्थान था। फलदायी वृक्षों से परिवेष्टित रमणीय तथा सुन्दर वृक्षों से वह रमणीय था ॥३२॥ वहाँ एक कुटी बनाकर रहती हुई, निर्भय कोई एक दीर्घजीवी महिला ने कमनीयवेश, अभिराम राम को देखकर हाथ बाँधकर उनसे बोली ।३३। मुनियों से प्रणम्य, सर्वान्तवर्ती आप क्या अयोध्यानिवासी दशरथ पुत्र, शरीर से सुन्दर, रामनाम हैं ? (उन्हीं की) प्रतीक्षारत मुझसे आप बतायें ॥३४॥

श्रुत्वा वचः स श्रवसे सुधावद् दृष्ट्वाऽऽकृतिं स्नेहमयीञ्च तस्याः
केनाप्यदृश्येन वराटकेन हार्दोद्भवेनैवमुवाच बद्धः ।३५।

सत्यं ब्रवीति भवती मम नाम रामः
जानाति मां वदतु केन कथं कदा च
धात्रीभृतामनुचरो मुनिभिः प्रणम्यो
रामः कथञ्च भविता सकलान्तरात्मा ।३६।

अयं राम इति ज्ञात्वा श्रद्धया विवशा सती
आनिनाय कुटीं रम्यां रामं राजीवलोचनम् ।३७।

सानुजं रामभद्रं तमुपविश्यासने शुभे
रामायैव स्वहस्तेन कुशैः पूर्वं विनिर्मिते ।३८।

ततो हर्षातिरेकेण सुतीयन्ती सदाशया
प्रयोगं सुष्ठु विस्मृत्य भवद्युष्मद्विवेकजम् ।३९।

प्रसन्ना शवरी वृद्धा रामध्यानपरायणा
ऊचे गद्गदया वाचा हर्षस्तम्भितलोचना ।४०।

कानों को अमृत तुल्य कथन सुनकर और स्नेहमयी उसकी आकृति देखकर, अन्तर्जनित किसी अदृश्य रस्सी से बंधे हुए से राम उससे यूँ बोले ।।३५।। आप सच कहती हैं, मेरा नाम राम है । आप बतायें कि किसके माध्यम से, कैसे और कबसे मुझे जानती है ? ।।३६।। लोगों का सेवक गिरिचर राम मुनियों से, प्रणम्य और समस्त की अन्तरात्मा कैसे हो सकता है? यह राम हैं, ऐसा जानकर, श्रद्धा विवश वह राजीव-नयन राम को अपने रमणीय कुटिया में ले आयी ।।३७।। भ्राता समेत राम को राम के लिये ही पहले से ही अपने हाथों कुशनिर्मित पवित्रासन पर बैठाकर ।।३८।। हर्षातिरेक में, सद्बुद्धि पूर्वक, पुत्रवत् प्यार करती हुई, तुम-आप के विवेक से उत्पन्न सही प्रयोग को भूलकर ।।३९।। राम ध्यान में लगी हुई, प्रसन्न, वृद्धा शबरी, प्रसन्नता से अपलक नेत्र, गद्गद वाणी में बोली ।।४०।।

इतः पूर्वमहं किञ्चिद् वदेयं त्वां प्रियातिथिम्
युवाभ्यामेव नीतानि भुञ्जीयाथां फलानि मे ।४१।

फलं भुङ्क्त्वा जलं पीत्वा विश्रम्य तदनन्तरम्
यदा स्वस्थोऽसि हे राम आख्याताहेऽखिलं तदा ।४२।

संलभ्य जननीस्नेहं बह्वोः कालादनन्तरम्
शवर्या वीजितो रामोऽकार्षीत् सर्वं तदीप्सितम् ।४३।

ततो विज्ञाय रामं स्वं विरामं निजजन्मनः
स्वस्थं गतश्रमं शान्तं प्रोवाच शबरी मुदा ।४४।

एतस्मिन्घोरकान्तारे दृश्यते रुचिरं स्थलम्
पयःपुष्पफलैर्युक्तं यत्तन्मे गुरुणा कृतम् ।४५।

मतङ्गो मे गुरुः श्रीमान् शिखावानिव पावनः
न्यवात्सीदत्र पूर्तर्षिर्ब्रह्मध्यानपरायणः ।४६।

प्रिय अतिथि तुमसे मैं कुछ कहूँ इससे पूर्व तुम दोनों के लिये ही लाये गये मेरे फल तुम दोनों खाओ ।।४१।। फल खाकर, जल पीकर फिर विश्राम कर, हे राम जब तुम स्वस्थ हो जाओगे तो मैं सबकुछ तुम्हें बताऊँगी ।।४२।। बहुत दिनों के बाद माता का स्नेह पाकर, शबरी से वीजित राम ने उसकी सभी इच्छाओं की पूर्ति की ।।४३।। इसके बाद अपने जन्म के अवसान अपने राम को स्वस्थ, गतश्रम, शान्त जानकर प्रसन्न शबरी बोली ।।४४।। इस घोर जंगल में जल, फूल, फल से युक्त जो सुन्दर स्थान दिख रहा है, उसे मेरे गुरु ने बनाया है ।।४५।। अग्नि के समान पवित्र मेरे गुरु श्रीमान् मतङ्ग-पवित्र ऋषि, ब्रह्मध्यानलीन-यहाँ रहा करते थे ।।४ ।।

प्रभावात्तपसस्तस्य नास्ति किञ्चद् भयप्रदम्
अत्राऽकिञ्चित्कराः सर्वे दैत्या वा हिंस्रजन्तवः ।४७।

अद्यापि पश्य ता वेद्यो गुरुणा समुपासिताः
पुण्यास्तथैव दृश्यन्ते यथा पूर्वमवस्थिताः ।४८।

आश्रमस्था इमे वृक्षाः पूर्वं कालेऽभिसिञ्चिताः
अद्यापि पश्य ते हृष्टा अनपेक्षितसेचना. ।४९।

स्वीयोग्रतपसा यान्तं ब्रह्मलोकं सनातनम्
गन्तुं सहैव तल्लोकं यदाऽहं संन्यवीविदे ।५०।

प्रत्याख्यातैवमुक्ताऽहं न ते काल उपागतः
उपास्य रामभद्रं त्वमागमिष्यसि निश्चितम् ।५१।

तदा प्रभृति हे राम वसन्त्यस्मिन् शुभाश्रमे
नित्यं प्रतीक्षमाणा त्वां कृच्छ्रं जीवामि साम्प्रतम् ।५२।

उनकी तपस्या के प्रभाव से यहाँ कुछ भी भयप्रद नहीं है। राक्षस या हिंसक जीव सभी यहाँ कुछ भी नहीं कर सकते ।।४७।। देखो गुरु से पूर्व सेवित वे पुण्य वेदियाँ वैसी ही दीख रही है जैसी पहले थीं ।।४८।। पूर्वसिञ्चित आश्रमवर्ती ये वृक्ष देखो आज भी सेचन की अपेक्षा के बिना भी प्रसन्न हैं ।।४९।। अपनी उग्र तपस्या सनातन, ब्रह्मलोक को जाते हुए जब मैंने उस लोक को उनके साथ ही जाने का निवेदन किया ।५०। मनाकर उन्होंने मुझसे कहा था अभी तुम्हारा समय नहीं आया है। रामभद्र की सेवा कर तुम निश्चय ही आओगी ।।५१।। हे राम ! तब से लेकर इस पवित्र आश्रम में रहती हुई नित्य तुम्हारी प्रतीक्षा करती हुई मैं इस समय कष्ट से जी रही हूँ ।।५२।।

मदर्थं त्वं महाभाग सर्वमेवासि राघव
माता पिता सखा भ्राता पतिर्द्रव्यं सुतस्तथा ।५३।

उक्त्वैवं शवरी सिद्धा मतङ्गपरिचारिका
चक्षुर्भ्यां रामरूपं सा पिबन्ती जडतां गता ।५४।

सद्यो रामकरस्पर्शात् पुनर्लोकमिवागता
र्निनिमेषं जगन्मित्रं पश्यन्ती राममब्रवीत् ।५५।

रामेतिद्व्यक्षरं नाम निशम्य गुरुणेरितम्
आकारं त अजानत्या मया त्वं समुपासितः ।५६।

अविज्ञाय च ते रूपं नाम्नोऽभ्यासात्तु केवलम्
प्रत्यक्षं त्वामनुप्राप्य परां शान्तिमुपैम्यहम् ।५७।

गुरोरेव मया ज्ञातं नामरूपात्मकं जगत्
यच्चापि दृश्यते लोके तन्नाम्ना समलङ्कृतम् ।५८।

हे राघव! मेरे लिये आप हे महाभाग, सब कुछ हैं माता, पिता, सखा, भाई, पति, पुत्र धन सभी ।।५३।। ऐसा कहकर मतङ्ग की सेविका सिद्धा शबरी आँखों से राम के रूप का पान करती हुई निश्चल हो गई, जडवत् गयी ।।५४।। राम के हाथ के स्पर्श से तुरन्त पुनः इस लोक में लौटी हुई सी जगन्मित्र राम को अपलक पीती हुई बोली ।५५। गुरु से कहे गये राम इस दो अक्षर के नाम को सुनकर तुम्हारे स्वरूप को न जानती भी मैं तुम्हारी उपासना करती रही ।५६। तुम्हारे रूप को न जानकर केवल नाम के अभ्यास से जपती हुई आज तुम्हें प्रत्यक्ष प्राप्तकर परम शान्ति को प्राप्त कर रही हूं ।।५७।। गुरु से ही मैंने जाना था कि जगत् नाम रूपात्मक है संसार में जो भी दिख रहा है वह नाम से विभूषित है ।५८।

कृतिधर्माः समायान्ति सकाशात् कर्तुरेव हि
कृतिकर्त्रोरभेदोऽतो मुनिना प्रतिपादितः ।५६।

अलब्ध्वा बुद्धिवैशद्यं केवलं कर्मतत्परा
मादृशी नहि जानाति ज्ञानगम्यं वपुस्तव ।६०।

नामवाच्यः सदाऽलभ्यो नाम लभ्यं तु सर्वदा
अतएवाहमुक्ताऽस्मि कर्तुं नाम्नश्च कीर्तनम् ।६१।

नाम्न एव प्रभावेण दृष्टं रूपं तवानघ
गुरोर्वाक्याद् विजानामि रामः सर्वगुहाशयः ।६२।

इदानीं मे समे पङ्का नैकजन्मनि सञ्चिताः
उन्मूलिता यतस्तेऽतो लोकं जिगमिषाम्यहम् ।६३।

तत्स्नेहादतितुष्टेन रामेणोमिति भाषिते
वह्नि प्रविश्य सा सिद्धा विष्णुलोकं गता मुदा ।६४।

कर्ता से ही कृतिधर्मा कार्यधर्म जीव आते हैं। इसलिये कृति और कर्ता में अभेद सम्बन्ध है, ऐसा मुनि ने प्रतिपादित किया है ॥५६॥ बुद्धि की विशदता को अप्राप्त कर केवल कर्मलीन मुझ जैसी तुम्हारे ज्ञानगम्य स्वरूप को नहीं जानती ॥६०॥ नामी सदा प्राप्य नहीं है किन्तु नाम तो सदैव लभ्य है, इसीलिये मुझसे नामकीर्तन के लिये कहा गया है ॥६१॥ हे निष्कलुष ! नाम के ही प्रभाव से मैंने तुम्हारा रूप देखा है। गुरु वाक्य से जानती हूँ कि राम सबकी गुहारूप बुद्धि में अवस्थित हैं ॥६२॥ अनेकों जन्मों से सञ्चित मेरे सारे पाप इस समय उन्मूलित हो गये हैं, अत. मैं अब तुम्हारे लोक को जाना चाहती हूँ ॥६३॥ उसके स्नेह से अति प्रसन्न राम के द्वारा ठीक है ऐसा कहने पर वह सिद्धा शबरी योगाग्नि में प्रवेश कर प्रसन्न ब्रह्मलोक चली गई ॥६४॥

ततः स रामः सह लक्ष्मणेन गतो मतङ्गाश्रमसन्निकृष्टम्
सर्वर्तुशोभि प्रकृतावतुल्यं पम्पासरःस्थानमुपर्ष्यमूकम् ।६५।

अपां निधानं प्रतिमाविहीनं शीतोदकं छन्नमनोकहैश्च
कादम्बकारण्डवसेव्यमानं कूलद्रुपुष्पाश्रितपांशुपूर्णम् ।६६।

सुशोभितं पद्मपलाशवृन्दैरुत्फुल्लपद्मैः सुरभीकृतञ्च
झषादिसञ्चारजवीचिलोलं मतङ्गजाक्रीडनकाक्षिरम्यम् ।६७।

अगाधमेकान्तनिधिं प्रकृत्याः स्नानप्रयुक्तं शवरीवधूनाम्
अब्धिप्रतिच्छायमपूर्वशोभं तृण्याप्रसारैरुपवद्धतीरम् ६८।

विहङ्गसंरावयुतं मनोज्ञं कर्णप्रियं पुष्पलिहां रुतैश्च
तुष्टिप्रदं रम्यतमं समन्तात् पम्पाभिधानं सर एतदासीत् ।६९

दृष्ट्वा पम्पासरो रामः पुनरुद्विग्नमानसः
हित्वा साम्यामवस्थां स्वां विललाप सुदुःखितः ।७०।

इसके बाद लक्ष्मण के साथ राम मतङ्गाश्रम के समीपवर्ती, ऋष्यमूक पर्वत के समीप, प्रकृति में अपूर्व सभी ऋतुओं में शोभायमान पम्पासर स्थान को गये ॥६५॥ वह पम्पासर ऐसा था अतुल जल निधान, शीत जल, वृक्षों से घिरा हुआ, हंसों-बतखों से सेवित, तटवर्ती वृक्षों के फूलों की धूलियों से परिपूर्ण ६६॥ कमलपत्रों से सुशोभित तथा पुष्पित कमलों से सुगन्धित, मछलियों आदि के चलने से चञ्चल लहरों वाले तथा आखों को अच्छे लगने वाले हाथियों की किलोलों से युक्त ॥६७॥ अगाध प्रकृति के एकमात्र खजाने, शबरियों के स्नान में आने वाले समुद्र की प्रतिच्छाया, अपूर्व शोभायुक्त, घास पुञ्ज से अवरूद्ध तट ।६८। पक्षियों के कलरव से युक्त, मनोहारी, श्रुतिसुखद भ्रमरों की झङ्कार से युक्त, तुष्टिप्रद, चारों ओर से अत्यन्त रमणीय था ॥६९॥ पम्पासर को देखकर राम पुनः उद्विग्नमन हो गये। अपनी स्वस्थ दशा का परित्याग कर अति दुःखित वह बार-बार विलाप करते ।७०॥

अहो वत महत्कष्टं लब्धं भाग्यविपर्ययात्
अतिरम्यं सरो द्रष्टुं नास्ति सीता मया सह ।७१

क्व गता किमवस्था सा किं कर्त्री सा मया विना
केनोपायेन वा सीतां विन्देयं सर्वतः प्रियाम् ।७२।

सर्वे प्रमुदिता अस्मिन् काले द्रुमलतादयः
हृल्लता मामिका नूनं केवलं शुष्कतां गता ।७३।

प्रसन्नाः षट्पदा दृष्ट्वा पुष्पभारनतांस्तरून्
केवलं द्विपदो रामो विवशो दुर्मनायते ।७४।

अतनुर्मातरिश्वाऽयं वहन्नतनुं प्रसन्नताम्
अतनुश्चापि कन्दर्पो दर्पं मे समपोहत: ।७५।

क्रीडन्ति कान्तया सार्द्धं जलस्थाः पक्षिणः समे
विहीनः कान्तया रामो लोक एकोऽस्ति केवलम् ७६।

भाग्य के विपरीत होने के कारण मैंने महान् कष्ट पाया है। अत्यन्त मनोहारी इस सरोवर को देखने के लिए मेरे साथ सीता नहीं है ।।७१।। वह कहाँ गई ? क्या दशा होगी ? मेरे बिना वह क्या करती होगी ? अथवा सब प्रकार से प्रियतमा सीता को मैं किस उपाय से प्राप्त करूँ ।।७२।। इस समय सभी वृक्ष-लतायें प्रसन्न हैं, मात्र मेरी हृदयलता ही सूख गयी है ।।६३।। पुष्पभरावनत वृक्षों को देखकर (षट्पद) भौरे प्रसन्न हैं, द्विपद, विवश, केवल राम ही दुःखी है ।।७४।। यह अतनु (शरीर रहित-प्रभूत वायु अतनु (अत्यन्त) प्रसन्नता को प्राप्त हो रहा है और अतनु (तनु रहित-प्रभूत) काम मेरा दर्प समाप्त कर रहा है ।७५। मेरे सामने प्यारे जलचर पक्षी अपनी प्रियाओं के साथ विहार कर रहे हैं। संसार में एक राम मात्र ही पत्नी से वियुक्त है ।।७६।।

प्रसन्नसलिलां पम्पां फुल्लपद्मैः सुशोभिताम्
दृष्ट्वा तामेव पद्माक्षीं सुप्रसन्नां स्मराम्यहम् ।७७।

कुर्वन्तं करिणीं सिक्तां प्रभिन्नं करशीकरैः
दृष्ट्वैव दूयते मे हृत् जलक्रीडासमुत्सुकम् ।७८।

नाभिपश्यति वैदेही यदीमां सरसीच्छटाम्
कस्यार्थेऽयं महान्यत्नः कृतो विश्वसृजा पुनः ।७९।

भ्रमरावर्तपद्मैश्च पम्पेयं तिलकायते
किं पक्ष्मनाभिनेत्रीया सीताशोभाऽनयाऽऽप्यते ।८०।

क्व मे सीता वरारोहा सचक्रा सरसी च क्व
किं नूपुरध्वनिस्तस्या जेयोऽस्या हंसनिःस्वनैः ।८१।

तां मञ्जुभाषिणीं बालां सकामां हतकिल्बिषाम्
स्मारं स्मारं मनोऽद्यापि तामेव परिकाङ्क्षति ८२।

प्रसन्न जलवाली तथा खिले कमलों से सुशोभित पम्पा को देखकर उस प्रसन्न कमनयना सीता का ही मैं स्मरण कर रहा हूँ ।।७७। शुण्डादण्ड की जलधारा से हथिनी को आर्द्र करते हुए जलक्रीडासमुत्सुक गज को देखकर ही मेरा चूर-चूर हुआ हृदय दुःखी हो जाता है ।।७८।। सरोवर की इस शोभा को यदि जनकनन्दिनी नहीं देख रही है तो फिर विधाता ने किसके लिये इतना भारी कष्ट उठाया है ? ।।७९।। भ्रमर मण्डली युक्त कमलों से यह पम्पा तिलक लगाये हुई सी लग रही है मानों सुन्दर पक्ष्म-नाभि-नेत्रवती सीता से इसने शोभा पाई हो ।।८० । कहाँ सचक्रा, सरसी, वरारोहा मेरी सीता और कहाँ चक्रवती यह सरोवर पम्पा ? इसकी हंसध्वनियों से उसकी नूपुरध्वनि जीती जा सकती है क्या ? ।८ । निष्कलुष, मृदुभाषिणी, सकामा उस मुग्धा का बार-बार स्मरण कर मेरा मन आज भी उसी की कामना कर रहा हूँ ।।८२।।

पुष्पैर्मही वारि सहस्रपत्रैर्वह्निर्मदन्तर्ज्वलनेन तुष्टः
खं पक्षिरावैरनिलः सुगन्धैः प्रीतोऽस्त्यहं केवलमस्मि दुःखी ।८३

दिशः प्रसन्ना विदिशः प्रसन्ना द्यौः शोभना शोभनमन्तरिक्षम्
सन्तीह सर्वे सुखिनो जगत्यां रामोऽस्ति दुःखी न तु भूतसङ्घः ।८४

इत्येवं विलपन्तं तं सीतासंस्मृतिदुःखितम्
धैर्योत्साहप्रदैर्वाक्यैः सान्त्वयामास लक्ष्मणः ।८५।

गच्छन्तावृष्यमूकं द्वौ युवानौ धृतकार्मुकौ
दृष्ट्वा चारा द्रुतं गत्वा सुग्रीवं सन्न्यवेदयन् ।८६।

सुग्रीवस्तावभिज्ञातुं सचिवान्यतमं प्रियम्
सद्योमतिं हनूमन्तं प्रेषयामास तत्क्षणम् ।८७।

धृतब्राह्मणरूपोऽसौ हनूमान् पवनात्मजः
अञ्जनीसूनुरेकाकी गतस्तौ रामलक्ष्मणौ ।८८।

फूलों से धरणी, कमलों से जल और मेरी अन्तर्ज्वाला से अग्नि सन्तुष्ट है। आकाश पक्षियों के कलकूजन से, वायु सुगन्धों से प्रसन्न है, मात्र मैं ही दुःखी हूँ ॥८३॥ दिशायें प्रसन्न हैं, विदिशायें प्रसन्न हैं, अन्तरिक्ष सुन्दर है, आकाश सुन्दर है, इस संसार में सभी सुखी हैं किन्तु राम दुःखी है, अन्य प्राणीवर्ग नहीं ॥८४॥ सीता की स्मृति से दुःखी यूं विलाप कर रहे उन्हें लक्ष्मण ने धैर्य उत्साहप्रद वाक्यों से सान्त्वना प्रदान की ॥८५॥ धनुर्धारी दो तरुणों को ऋष्यमूक की ओर जाते हुए देखकर गुप्तचरों ने सुग्रीव से शीघ्र जाकर निवेदन किया ॥८६॥ उन दोनों को पहचानने के लिये सुग्रीव ने सचिवों में श्रेष्ठ, प्रत्युत्पन्नमति, प्रिय हनुमान् को तुरन्त भेजा ॥८७॥ पवनपुत्र, अञ्जनीनन्दन उन हनुमान् ने ब्राह्मण का रूप धारण कर अकेले उन राम-लक्ष्मण के पास गये ॥८८॥

अपृच्छत् छद्मवेशः स शिष्टाचारादनन्तरम्
कौ तौ कथमिहायातौ केन वा तत्प्रयोजनम् ।८९।

विज्ञायायोध्यकावेतौ नाम्ना स्तो रामलक्ष्मणौ
दाशरथी वनं प्राप्तौ पितुरादेशपालकौ ।९०।

रामभार्या हृता सीता केनचिद् रक्षसा वने
तामन्वेष्टुं भ्रमन्तौ द्वावृष्यमूकं समागतौ ।९१।

उवाच तत्क्षणं धीमान् हनूमान् नतमस्तकः
वेशाकृतिवचोभङ्ग्या ज्ञात्वा तौ सत्यभाषिणौ ।९२।

राम राम महाबाहो लज्जेऽहं निजकर्मणा
छद्मवेशेन यत्प्राप्तो भवन्तं स्पष्टवादिनम् ।९३।

श्रुतं मया यशस्तात भवदीयं तदद्भुतम्
दृष्टोऽस्ति मया भद्र बालरूपे यदा स्थितः ।९४।

प्रच्छन्न वेश उन्होंने शिष्टाचार के बाद उनसे पूंछा वे दोनों कौन हैं ? यहाँ क्यों आये हैं ? अथवा किनसे उनका कार्य है ? ॥८९॥ यह जान-कर कि ये दोनों अयोध्यावासी हैं, दशरथ के पुत्र पिता की आज्ञा के पालनकर्ता राम लक्ष्मण हैं, वन में आये हैं ॥९०॥ वन में किसी राक्षस द्वारा राम की पत्नी सीता हर ली गई है। उसको खोजने के लिये घूमते हुए दोनों ऋष्यमूक आ गये हैं ॥९१॥ वेश आकार और वचोभङ्गी से उन दोनों को सत्यभाषी जानकर नतमस्तक, बुद्धिमान् हनुमान् तत्क्षण बोले ॥९२॥ हे राम, राम महाबाहु, मैं अपने कर्म से लज्जित हूँ जो स्पष्टवादी आपके पास मैं छद्म वेष में आया ॥९३॥ हे तात ! मैंने आपकी वह अद्भुत कीर्ति सुनी है। जब आप बालरूप में थे तब वह देखी भी गयी थी ॥९४॥

दर्शितवानद्य चाञ्चल्यं कपीनां सुलभं च यत्
ब्राह्मणों किं नरोनाऽहं हनूमानस्मि वानरः ।९५।

एवमुक्त्वा हनूमान्सः पतितो रामपादयोः
न्यवेदात्सकलं वृत्तं सुग्रीवस्य महात्मनः ।९६।

सुग्रीवस्याग्रजो वाली विख्यातो बलवान् परम्
किष्किन्धायां वसन्राज्यमिदानीं प्रकरोति सः ।९७।

अर्द्धं वालिनि बलं तस्य यः प्रतिद्वन्द्वितामियात्
देवाद् वरमवाप्यैवं वाल्यमर्मादितां गतः ।९८

गेहान्निष्कासितस्तेन सुग्रीवः स्वानुजः प्रियः
गृहीता तेन भार्याऽपि रुमा च बलशालिना ।९९

मतङ्गशापाद्भीतोऽसौ नात्रायाति यतः क्वचित्
सुग्रीवोऽत्राद्रिमध्यास्ते चतुर्भिः साचवैः सह ।१००।

आज मैंने वह चपलता दिखाई है जो कपियों के लिये सहज है, प्राप्त है। ब्राह्मण क्या ? मैं तो मनुष्य भी नहीं हूँ, हनुमान वानर हूँ ।।९५।। ऐसा कहकर वह हनुमान राम के पैरों पर गिर पड़े और महात्मा सुग्रीव का सारा वृत्तान्त सुना डाला ।९६। महाबली, प्रसिद्ध, बाली सुग्रीव का बड़ा भाई है। इस समय वह किष्किन्धा में रहता हुआ राज्य कर रहा है ९७ जो प्रतिद्वन्द्विता प्राप्त करेगा उसका आधा बल बालि को मिल जायगा इस प्रकार देववर प्राप्तकर बाली अमर्यादित हो गया है ।९८। उसने अपने छोटे भाई प्रिय सुग्रीव को घर से निकाल दिया है। बलशाली उसने सुग्रीव की पत्नी रुमा को भी ले लिया है ।९९। मतङ्ग के शाप से डरकर वह यहाँ क्योंकि कभी भी नहीं आता। अतः सुग्रीव अपने चार मन्त्रियों के साथ यहाँ रहते हैं ।१००।

तेन सख्यं भृशं कृत्वा राज्यं तस्मै प्रदाप्य च
भार्यामन्वेष्य साहाय्यात् हन्तु शत्रूनरिन्दम ।१०१।

ततो दृष्ट्वा हनूमन्तं स्वरूपे समवस्थितम्
ज्ञात्वा तञ्च विकुर्वाणमन्तर्वाणिं प्लवङ्गमम् १०२।

उवाच प्रहसन्रामो हनूमान् किं त्वमेव सः
यश्चास्त्यभिविनिर्दिष्टः कबन्धेन महात्मना ।१०३।

नूनं त्वामनुप्राप्य गता स्यात् कष्टदा दशा
शूरोऽसि कृतविद्योऽसि तथा जानासि सेवितुम् ।१०४।

तथा सुग्रीवचारः सन्नात्मानं परिगोपयन्
बहुशो व्याहरन्नत्राऽशुद्धिं न पर्यकल्पयः ।१०५।

यथा विज्ञायते तात त्वत्साहाय्यमपेक्षितम्
अतस्तवानुरोधेन सुग्रीवं द्रष्टुमुत्सुकः ।१०६।

उससे गाढ़ी मित्रता कर उसे राज्य दिलाकर, अरिन्दम! उसकी सहायता से सीता की खोजकर, शत्रुओं का बध करें ।१०१। हनुमान को अपने रूप में अवस्थित देखकर और अन्तर्वचन कपि को कुछ विशेष कार्य कर रहा जानकर ।१०२। हंसते हुए राम बोले कि क्या तुम वही हनुमान हो जिसे महात्मा कबन्ध ने बताया था ।१०३। तुम्हें प्राप्तकर निश्चय ही मेरी दुःखद अवस्थ समाप्त हो जायेगी। तुम बहादुर हो, विद्यावान् हो, तथा सेवा करना जानते हो ।१०४। सुग्रीव के गुप्तचर होते हुए तुमने जिस प्रकार से अपने को छिपाते हुए, अनेकधा बात करते समय अशुद्धि नहीं की ।१०५। हे तात! इससे प्रतीत होता है कि तुम्हारी सहायता अपेक्षित है। इसलिये तुम्हारे अनुरोध से मैं सुग्रीव को देखने के लिए उत्सुक हूँ ।।१०६।।

एवमुक्त्वाऽऽञ्जनेयेन साकं रामो गतस्तदा
सुग्रीवं रक्षितुं त्रस्तं क्षात्रं समनुपालयन् ।१०७।

निशामतिक्रम्य यथा प्रभाते उषामनुप्राप्य रविर्विभाति
अपास्य तद्वत् करुणां हृदिस्थां स वीरतां प्रेत्य भृशं विरेजे ।१०८

विलोक्य सुग्रीवमसौ विराज्यं कीशाधिपेत्थं समबोधयत् तम्
तथा हनूमान् ज्वलनं प्रणीय मैत्र्यामुभौ तत्सविधे बबन्ध ।१०९

अनन्तरं वालिपराक्रमीयां कथां समस्तां खलु दुन्दुभीयाम्
प्रकम्प्य तालं गतपत्रमेनं करोति वालीत्यबुधत् च रामः ।११०

निशम्य सुग्रीवभयस्य हेतुं सद्यस्तमुन्मूलयितुं स शूरः
विश्वासहेतोरिह दुन्दुभेश्च कुल्यानि चिक्षेप पदङ्गुलीभिः ११११

क्व शुष्ककुल्यानि निरार्द्रतानि मांसास्थिमज्जायुतदुन्दुभिः क्व
छेत्तुं ततश्चाप्यदसीयशङ्कामुत्थापयामास धनुः स वीरः ।११२।

ऐसा कहकर राम तब हनुमान के साथ क्षात्रधर्म का पालन करते हुए त्रस्त सुग्रीव की रक्षा के लिये गये ।१०७। निशा रात्रि को छोड़कर जैसे उषा को प्राप्तकर प्रभातकाल में सूर्य सुशोभित होता है, उसी प्रकार हृदयस्थ शोक को त्याग कर वीरता को प्राप्त कर राम अतिशोभित हुए ।१०८। सुग्रीव को राज्यहीन देखकर उन्होंने वानरेन्द्र ऐसा सम्बोधन किया। और हनुमान ने अग्नि पैदाकर, उसके समक्ष दोनों को मैत्री में बाँध दिया ।१०९। इसके बाद बालि के पराक्रम से सम्बन्धित दुन्दुभि आदि की कथा की। बालि इस ताल को हिलाकर पत्रहीन कर देता है यह सब राम ने जाना ।११०। सुग्रीव के भय का कारण सुनकर उसे उन्मूलित करने के लिये शूर उन राम ने तुरन्त विश्वास पैदा करने के लिये दुन्दुभि की अस्थियों को पैर की अंगुलियों से गर्त में फेंक दिया ।१११। कहाँ निरार्द्र शुष्क कुल्यायें और कहाँ मांस अस्थि मज्जा युक्त दुन्दुभि। इसके बाद भी सुग्रीव की शङ्का को समाप्त करने के लिये वीर राम ने धनुष उठाया ।११२।

एकेन वाणेन स सप्ततालान् निपात्य रामो युगपत् तदानीम्
बभूव विश्वासनिवासभूमिः प्लवङ्गमस्यास्य भयद्रुतस्य ।११३।

सम्प्राप्तधैर्यः प्रकृतिङ्गतः स कर्तुञ्च रामस्य हितं कपीशः
विहायसैवाभरणानि कस्याः क्षिप्तान्युपस्थाप्य जगाद रामम् । ११४

स्वमन्त्रिमुख्यैरिह शैलकूटे वसन्नपश्यं रुदतीमनन्ते
काञ्चित् स्त्रियं रावणनीयमानामलङ्कृतीः स्वाः परितः क्षिपन्तीम्

इमानि चेदाभरणानि तस्याः भवत्प्रियाया विकलेन्द्रियायाः
नूनं तदा सापहृतैव सीता नीता च लङ्कां खलु रावणेन ।११६

सीताशरीरे परिशोभितानि स्थितानि भूमौ रजसाप्लुतानि
निरीक्ष्य तान्याभरणानि रामः सद्यो विसस्मार स्ववर्तमानम् ।।

स वाष्पनेत्रः प्रतिरुद्धकण्ठः प्रस्विन्नगात्रो विवशः खनेत्रः
जगाद सुग्रीवमलं सुहृन्मे प्रदर्शनेनात्र विभूषणानाम् ।११८।

उस समय राम ने एक ही बाण से सात तालों को एक साथ गिराकर बालि के डर से भागे उस वानर सुग्रीव के विश्वासभाजन बन गये ।११३। धैर्यप्राप्त प्रकृतिस्थ कपीश सुग्रीव राम की भलाई करने के लिये आकाश से ही फेंके गये आभूषणों को सामने रखकर, ये किसके हैं ? ऐसा राम से बोले ।११४। अपने मन्त्रि प्रमुखों समेत इस पर्वत शिखर पर रहते हुए मैंने रावण से ले जायी जा रही, अपने आभूषणों को चारों ओर फेंकती हुई आकाश में रोती हुई किसी स्त्री को देखा था ।११५। यदि ये अलङ्कार, संतप्तेन्द्रिय आपकी प्रियतमा सीता के हैं तो निश्चय ही वह रावण से हरी गयी है और लंका ले जायी गई है ।११६। पहले सीता के शरीर पर शोभायमान होने वाले इस समय धूलि-धूसरित धरती पर पड़े उन आभूषणों को देखकर राम ने तुरन्त अपनी सुध खो दी, अपनी अवस्था को भूल गये ।११७। आँखों में आँसू, कण्ठावरूद्ध, शरीर से पसीने युक्त, विवश, आकाश की ओर ताकते हुए राम सुग्रीव से बोले अलङ्कारों के प्रदर्शन से तुम निश्चय ही मेरे महान् मित्र हो ११८।

रारक्ष्यतां त्वं खलु मण्डनानि यावत्प्रयुक्तानि न सन्त्विमानि
क्षते यथा क्षारविलेपनं स्यात् तथैव सीताऽऽभरणावलोकः ।११९

अहं नु सोता क्व गता न जाने तां चिन्तयन् खिन्नमनाः प्रकामम्
भार्या पुनश्चास्य कपेरिहैव परं न तां प्राप्य कथ ससंज्ञः ।१२०

अस्यास्ति कष्टं प्रबलं नु मत्तः पूर्वं सुखी स्यादयमेव कीशः
इत्थं विचिन्त्याखिललोकबन्धुर्युद्धाय रामस्तमुपादिदेश ।१२१।

भेत्तुं यथाऽन्धः प्रसरान् विवस्वानुदेति ताम्रः प्रसृतस्वरश्मिः
तथार्कपुत्रः स्फुटरक्तनेत्रो गतः स्वशत्रुं गदयाऽभियोद्धुम् ।१२२

श्रुत्वा तदावाह्नयुक्तवाणीं वज्रोपमां स्वाञ्च गदां प्रगृह्य
विना विलम्बेन विना सहायं स इन्द्रपुत्रस्तरसा जगाम ।१२३।

जाते तयोस्तत्र गदासमीके द्रुतं स शाक्रिः प्रजहार शत्रुम्
तडिद्धतः प्रावृषि मेघ एवमुच्चैः रसन्सूर्यसुतो निवृत्तः ।१२४

इन आभरणों का जब तक प्रयोग न हो तब तक रक्षा करो। जैसे घाव पर नमक लेप वैसा ही है, सीता के आभूषणों का दर्शन ।११९। सीता कहाँ चली गई, मैं नहीं जानता उसे सोचते हुए अति दुःखित मन वाला हो गया हूँ। किन्तु इस कपिराज की पत्नी तो यही है फिर भी उसे न प्राप्तकर वह चैतन्य कैसे हैं ? ।१२०। इनका कष्ट मुझसे कहीं अधिक है इसलिये यह कपीश ही पहले सुखी हो। ऐसा सोचकर समस्त जगत् के बन्धु राम ने उन्हें युद्ध का उपदेश दिया-प्रेरणा दी ।१२१। जैसे अन्धकार समूह का नाश करने के लिये विततरश्मि, सूर्य रक्त होकर उदित होता है उसी प्रकार सूर्यपुत्र स्पष्ट रक्तनेत्र सुग्रीव गदायुद्ध के लिए अपने शत्रु बालि के पास गया ।१२२। सुग्रीव की ललकार युक्त वाणी को सुनकर इन्द्रपुत्र बालि वज्रोपम अपनी गदा लेकर, बिना किसी सहायक के अविलम्ब वेग से चला ।१२३। वहाँ उन दोनों के गदायुद्ध होने पर शक्रसुत बालि ने अपने शत्रु सुग्रीव को तुरन्त हरा दिया, वर्षाकाल में विद्युदाहत मेघ की भाँति जोरों से गरजता-चिल्लाता सूर्यपुत्र सुग्रीव भाग आया ।१२४।

द्वयोः समानाकृतिरस्ति मित्र मुक्तः भ्रमादेष इति प्रगदय्य
सौरे कथञ्चित् प्रणिधाय धैर्यमप्रेषयद्दाशरथिः समालम् ।१२५

आह्वानवाणीमसकृन् निशम्य वाली यदा गन्तुमियेष शत्रुम्
तदाऽभवत्स प्रतिषिद्ध आराद् भार्यावचोभिः समयोचितैश्च ।१२६

स्वामिन् हतो यो गतवान् पुनः स आयात आह्वानवचो ब्रवीति
किं नात्र हेतुः पुनरत्र पश्य मा याहि वाक्यान्मम गेह आस्व ।१२७

आरक्तनेत्रः कुपितः स वाली तारामुवाच प्रतिषेधितः सन्
वामोरु किं युक्तमिदं वचो मे पत्न्याः स्वकुक्षीकृतरावणस्य ।१२८

जानीहि शत्रुं समरेऽस्मि जेता वाक्यप्रबन्धाभिविधौ प्रणेता
शास्त्रेऽथवा शस्त्रविधौ कदाचिल् लोके मम ब्रूहि समोऽस्ति कश्चित्

मन्येऽपि सुग्रीवसहायकोऽस्ति परं मया किं परिघातितोऽस्ति
अन्योऽस्ति नीचादनुजादृते को योद्धुं पुरस्ताद् य इहागमिष्यति ।।

हे मित्र दोनों की आकृति समान है, इस भ्रम से मैंने नहीं मारा ऐसा कहकर, समझाकर, किसी प्रकार सुग्रीव को धैर्य बंधाकर राम ने उसे पुनः युद्ध के लिये भेजा ।१२५। शत्रु सुग्रीव की बार-बार ललकार युक्त वाणी को सुनकर जब बालि उसके पास जाना चाहा तो समीप ही समयोचित पत्नी के कथनों से रोका गया ।१२६। हे स्वामिन् जो मारा गया, भाग गया, वह पुनः आया है, और ललकार रहा है, सोचो क्या यहाँ कोई कारण नहीं है ? मेरी बात से युद्ध में न जाओ, घर में ही रहो ।१२७। लाल आंखें क्रुद्ध बाली रोके जाने पर तारा से बोला-वामोरु अपनी कॉख में रावण को रखने वाले मेरे लिये क्या यह उचित है कि पत्नी की बात माने ।१२८। यह जान लो कि मैं युद्ध में विजेता और वाक्य प्रबन्ध सम्पदा का निर्माता हूँ। बताओ शास्त्र अथवा शस्त्र प्रयोग में मेरे समान संसार में कहीं कोई है ? ।१२९। माना सुग्रीव सहायक समेत है पर क्या मैंने उसे (पहले) मारा है ? मेरे अनुज से नीच कोई और है क्या ? जो सामने यहाँ लड़ने को आयेगा ।१३०।

श्रेयस्तरं मे मरणं समीके गेहस्थितेः शत्रुवचो निशम्य
मा भूः प्रिये त्वं प्रतिरोधिकाऽत्र द्विषां समुन्मूलननिर्गतस्य ।१३१
इत्येवमुक्त्वा तरसा स शाक्रिर्गेहाद् विनिर्गत्य जघान सौरिम्
तस्मिन्क्षणे तीक्ष्णतराऽऽशुगेन बिद्धोऽभवत्सौरनृपेरितेन ।१३२।
स्वमृत्युकालं सहसा समागतं समीक्षमाणः स्वमतीतजीवनम्
तृणाय मन्वान उपस्थितानुजं गभीरवाचा विलपन् जगाद सः ।।
अहो केन कस्मात्कृतोऽयं प्रहारो व्यतिक्रम्य धर्मं सदाचारताञ्च
अधीता न किं तेन सङ्ग्रामनीतिर्निरस्त्रे न शस्तोऽस्ति शस्त्रावघातः
प्रवृत्तोऽस्मि सुग्रीव रे द्वन्द्वयुद्धे कुतश्चागतो नूतनस्ते सहायः
विनाशेऽग्रजस्यानुजस्य प्रयोगः समारप्स्यते भारते किं त्वयेतः ।।
विनष्टुं स्ववंश्यानुदासीनसेवा त्रुटीः स्वाः परेभ्यः प्रवक्तुं न लज्जा
भवेद्वा क्वचिद् ब्रूहि सुग्रीव युक्तं कृतं यत्त्वयैतद् विहाय स्वधर्मम्

शत्रु का आह्वान सुनकर घर में रहने की अपेक्षा युद्ध में मेरा मरना अधिक श्रेयस्कर है। हे प्रिये शत्रुओं के उन्मूलन के लिये निकले हुये मुझे तुम रोको नहीं ।१३१। ऐसा कहकर वह बालि तेजी से घर से निकल कर सुग्रीव को जोरों से मारा, उसी समय अतितीक्ष्ण बाण से, जो सूर्यवंशी नृपति राम से चलाया गया था, मारा गया।१३२। सहसा संप्राप्त अपने मृत्युकाल तथा अपने अतीत जीवन को देखता हुआ वह उपस्थित अपने अनुज को तुच्छ समझता हुआ गंभीर वाणी में विलाप करता हुआ बोला।१३ । अरे किसने और क्यों ? धर्म तथा सदाचारता का परित्याग कर यह प्रहार किया है। क्या उसने यह संग्राम नीति नहीं पढ़ी है कि निःशस्त्र पर शस्त्र प्रहार ठीक नहीं है।१३४। अरे सुग्रीव हम द्वन्द्वयुद्ध में प्रवृत्त थे बीचमें तुम्हारा नया सहायक कहाँ से आ गया? भारत में तुम्हारे द्वारा आज से बड़े भाई के विनाश में छोटे भाई का प्रयोग प्रारम्भ किया जायेगा क्या? ।१३५। अपने वंश के लोगों का विनाश करने के लिए सन्यासी की सेवा? अपनी गलतियाँ दूसरों से कहने में लज्जा नहीं क्या ? सुग्रीव बताओ तुमने अपने धर्म को छोड़कर जो यह किया है, कहीं ठीक है ? ।१३६।

अरे दृश्यते को नरश्चापहस्तः प्रशस्ताकृतिर्निन्द्यकर्मानुरक्तः
पिपृच्छामि हेतुं विनाशे ममैनं कृतान्तस्वरूपं नरं छद्मवेशम् ।१३७

अरे नायमेकः परोऽप्यस्य पृष्ठे समायाति रक्षन् सितः श्यामरूपम्
विभिन्नाकृतौ चानयोरस्ति मैत्री समानाकृतौ नावयोरस्ति मैत्री ।

अनिन्द्यं विधृत्यापि राजर्षिवेषं कुकृत्येन निश्चीयतेऽसौ विहर्तुम्
अपास्तप्रयासेन छन्नस्थितेन कृतो मे विघातः कथं वानरस्य ।१३९

मनुष्याग्रणीः शीघ्रमेह्येहि पार्श्वं दिदृक्षेऽपि रूपं प्रयाणाच्च पूर्वम्
निरूप्योऽपराधो वधे योऽस्ति हेतुः स मे शौर्यतारापथे धूमकेतुः ।

वधे ते सुखं नैव मे वीर वालिन्
श्रुतं ते यशो भूरिशो व्यापि दिक्षु
परं स्वापराधः कृतः प्रज्ञया यः
स्वयं प्रज्ञया चात्र निश्चेय एव ।१४१।

अरे धनुर्धारी, सुन्दराकृति किन्तु निन्दित कार्य में अनुरक्त यह कौन आदमी दिखाई दे रहा है ? कृतान्तस्वरूप छद्मवेष इस मानव से मैं पूछना चाहता हूँ कि मेरे विनाश का कारण क्या है ? ।१३७। अरे यह एक ही नहीं है, इसके पीछे श्यामरूप की रक्षा करता हुआ एक दूसरा गौर व्यक्ति भी चला आ रहा है। भिन्न आकृति वाले भी इन दोनों में सख्य है किन्तु समान आकार होने पर भी हम दोनों में मित्रता नहीं है ।१३८ सुन्दर राजर्षि वेश धारण किये भी, इसके कुकृत्य से लगता है मृगया विहार करने निकला है अन्यथा छिपकर बिना प्रयास के यह मुझ वानर को क्यों मारता ? ।१३९। हे मनुष्यों में श्रेष्ठ, शीघ्र ही मेरे पास आओ आओ, प्रयाण से पहले आपका रूप देखना चाहता हूँ। मेरे शौर्याकाश में धूमकेतु स्वरूप मेरे वध में जो हेतुभूत अपराध है, वह विचारणीय है वह क्या है ?। ४०। हे वीर, वाली, तुम्हारे वध से मुझे कोई सुख नहीं है। दिशाओं में फैले हुए तुम्हारे यश को मैंने भूरिशः सुना है। किन्तु जो स्वयं अपनी बुद्धि से अपराध किया जाता है उसका निर्णय स्वयं अपनी प्रज्ञा से ही करना चाहिए ।१४१।

विपक्षार्द्धशक्तिस्तु वै क्रंस्यस्ते ते
शरीरे समालभ्य चित्रं वरं त्वम्
स्वयं मन्यमानोऽप्यजेयो विपक्षै-
र्विहर्तुं प्रवृत्तोऽभिमानेन युक्तः ।१४२।

वचांसि श्रुतानि क्वचित्स्वानुजस्य
प्रसिद्ध्येदसौ स्वीयनिर्दोषितां यैः
कृतो वा विचारोऽनुजो दुर्बलस्ते
कथं योद्धुमायात आशु त्वदग्रे ।१४३।

ग्रहीतुं परेषां न राज्यं कदाचित्
प्रशस्तं भवत्यार्यनीतौ समीकम्
हतो वीर मैत्रीजुषा तेऽनुजस्य
क्वदर्पावसिक्तो वचः सच्छृणोति ।१४४।

शत्रु की आधी शक्ति तुम्हारे शरीर में सङ्क्रान्त हो जायेगी ऐसे विचित्र वरदान को प्राप्तकर तुम शत्रुओं से स्वयं को अजेय मानते हुये अहंकार युक्त होकर विहार करने में प्रवृत्त हो गये।१४२। तुमने अपने छोटे भाई की बात कभी सुनी ? जिनसे स्वनिर्दोषिता वह सिद्ध कर पाता ? अथवा तुमने विचार किया कि तुम्हारा भाई कमजोर है फिर क्यों तेज़ी से तुम्हारे समक्ष लड़ने आ गया ? ।१४३। दूसरे का राज्य ग्रहण कर लेना आर्यनीति में कहीं भी प्रशस्त नीति नहीं है। हे वीर तुम्हारे भाई के मित्र होने के नाते मैंने तुम्हें मारा, दर्पावसिक्त व्यक्ति कहीं अच्छी बात (पत्नी की सलाह) सुनता है ? ।१४४।

कृतं यच्च सख्यं मया तेऽनुजेन
सुसाध्यं सदासीत् त्वया तत्क्षणेन
स गन्ता विनाशं ध्रुवं योऽस्ति जातः
सुखं याहि वीराभिमानञ्च मुक्त्वा ।१४५।

स्वकालं मनुष्याकृतिं वीक्ष्य वाली
विगर्वोऽचिचिन्तत् पुराजातवृत्तम्
स्वचित्तं समाधाय शुद्धे स्वरूपे
स्वनेत्रातिथिं रामभद्रं जगाद ।१४६।

सत्यं ब्रवीति भगवन् न परस्य दोषः
कृत्यं सदा फलति पूर्वकृतं नराणाम्
मन्ये कदाचिदपि नात्मकृतं समीक्ष्या-
रब्धं मया क्वचिदपि स्वनियोगजातम् ।१४७।

तुष्टो निजे निजकृतौ प्रकृतौ निजाया-
मन्यान् क्वचिन्न गणयन् गणयन्सुखं स्वम्
कालोऽतिवाहित इहाभ्यनुपेत्य धर्मं
धर्मस्वरूपमथवा भगवन्तमीशम् ।१४८।

मैंने तुम्हारे छोटे भाई के साथ जो मित्रता की वह तुम्हारे साथ तत्काल सदा सुसाध्य थी। जो उत्पन्न हो गया वह जाने वाला है ही इसलिये वीरता के अभिमान को (वीरता-अभिमान) छोड़कर सुखपूर्वक प्रयाण करो।१४५। वाली ने अपने कालस्वरूप मनुष्य की आकृति देखकर अहंकार शून्य होकर अपने पूर्वकृत कार्यों को सोचा, शुद्ध स्वरूप परमात्मा में अपने चित्त को लगाकर नयनगोचर रामभद्र से बोला १४६ भगवन्, आप सच कहते हैं कि किसी और का दोष नहीं, व्यक्ति के अपने पुराकृत कर्म ही सदा फलित होते हैं। लगता है कि मैंने कहीं भी कभी भी अपने द्वारा किये गये कर्मों की समीक्षा किये बिना ही उन्हें प्रारम्भ किया।१४७। अपने में, अपने कार्यों में, अपनी प्रकृति में संतुष्ट, अन्य किन्हीं को कहीं भी न गिनता हुआ केवल अपना सुख ही गिनता हुआ मैंने धर्म अथवा धर्मस्वरूप भगवान् परमात्मा को न प्राप्तकर व्यर्थ ही अपना समय गँवाया है॥१४८॥

चारैः श्रुतं यदिह दक्षिणादिग्विभागे
रक्षोगणा यमगृहातिथितां प्रयान्ति
हेतुश्च तत्र नियतो नियतिप्रसादा-
दायोध्यको दशरथात्मजरामभद्रः ।१४६।

भूभागमेनमधिकृत्य वसन्ति नित्यं
येऽपि द्विजाः परमतत्त्वनिविष्टचित्ताः
तेषामपापमनसाञ्च धिया तदेव
ब्रह्मस्वरूपमिह मानवतामुपेतम् ।१५०।

मन्ये त्वमेव भगवन्नखिलान्तरात्मा
चित्तं भृशं मम दिदृक्षति ते स्वरूपम्
कर्तुं पवित्रममलञ्च वपुर्यशो मे
भाग्यतस्त्वयं मम गृहातिथितामुपेतः ।१५१।

गुप्तचरों से सुना था कि देश के इस दक्षिणादिक् प्रान्त में राक्षस लोग यमसदन के अतिथि हो रहे हैं। उसमें भी दैवयोग से अयोध्या निवासी दशरथनन्दन रामभद्र कारण हैं ।१४६। इस भूभाग में नित्य परमतत्व में चित्त लगाने वाले जो भी ब्राह्मण रहते हैं निष्पाप मन उनकी बुद्धि से विचार से, वहीं ब्रह्मस्वरूप यहाँ आपके रूप में मानव रूप धारण किये हुए हैं ।१५०। हे भगवन, आपही अखिल विश्व की अन्तरात्मा है, ऐसा मानता हूँ, मेरा मन तुम्हारे स्वरूप को खूब देखना चाहता है, मेरे शरीर और यश को पवित्र और विमल करने के लिये मेरे भाग्य से आप मेरे गृह अतिथि हुये हैं ।१५१।

लब्धं मया स्वजनुषः सकलं फलं यत्
पूर्वं प्रयाणसमयात् पुरतो दृशोर्मे
संसारतापविनिवारणसिद्धहस्तो
नीलोत्पलद्युतिरसौ समुपस्थितोऽस्ति ।१५२।

यद् दुष्कृतं यदपि वा सुकृतं कृतं मे
तच्चार्प्यते प्रणतरक्षकपादपद्मे
नान्या स्पृहास्ति भगवन्नपहाय चैकां
रक्ष्यं त्वयाङ्गदवपुर्मम नामशेषम् ।१५३।

एवं वदत्यहह वालिनि वानरेन्द्रे
यावद् विचिन्तयति तत्र स राघवेन्द्रः
रामेति शब्दमसकृत् कथयन् स वाली
तत्याज भौतिकवपुः स्वमिहात्मदर्शी ।१५४।

मैंने अपने जन्म का सम्पूर्ण फल प्राप्तकर लिया जो प्रयाण समय के (मृत्यु के) पहले मेरी आँखों के सामने संसार ताप शमन में दक्ष, नीलो-उत्पल श्यामकान्ति आप उपस्थित हैं ।१५२। मैंने जो भी पाप या पुण्य किया है वह सब प्रणत लोगों के रक्षक तुम्हारे चरणकमलों में अर्पितकर रहा हूँ। भगवन् केवल इस अभिलाषा के अतिरिक्त और कुछ भी चाह नहीं है कि नाम शेष मेरे इस अङ्गदरूपकी रक्षा करियेगा ।१५३। ओह ! वानरेन्द्र बाली के ऐसा कहने पर जब तक राघवेन्द्र कुछ सोच ही रहे थे कि वह आत्मदर्शी बालि बार-बार राम-राम कहता हुआ अपने भौतिक शरीर का परित्याग कर दिया ।१५४।

अनुद्विग्नमना रामः सत्युद्विग्नत्वकारणे
लक्ष्मणं प्रेषयामास किष्किन्धां कर्तुमव्यथाम् ।१५५।

अम्राक्षीच्च स सुग्रीवं तेन राज्यं प्रशासिते
यौवराज्येऽङ्गदः स्थाप्यस्तारारक्षापुरस्सरम् ।१५६।

गिरौ प्रस्रवणे रम्ये लक्ष्मणेन सजूः स्वयम्
रामो वत्स्यति वर्षान्तं यावद् यात्राऽस्ति कष्टदा ।१५७।

परमेतस्य कालस्य मध्य एव विचक्षणैः
चारैः राजाऽपि सुग्रीवः सीतामन्वेषयिष्यति ।१५८।

अहार्षीद् रावणः सीतां यद्यप्येतत्सुनिश्चितम्
तथाप्यसौ कथं कुत्र तां जुगोपेति न ध्रुवम् ।१५९।

अनन्तरं महातेजा रामः प्रस्रवणे गिरौ
शमीवृक्ष इव श्रीमान् विरेजेऽन्तर्ज्वलन्नपि ।१६०।

उद्विग्नता के कारण रहने पर भी अनुद्विग्नमन राम ने लोगों को शोक रहित करने के लिये लक्ष्मण को किष्किन्धा भेजा ।१५५। और लक्ष्मण ने अभिषेक के अन्तर सुग्रीव को निर्देश दिया कि उससे शासित राज्य में अङ्गद को युवराज पद पर स्थापित करना है तथा तारा की रक्षा करनी है ।१५६। यह भी कि पूरी बरसात भर जब यात्रा कष्टकर है राम स्वयं लक्ष्मण के साथ प्रस्रवण पर्वत पर निवास करेंगे ।१५७। किन्तु इस बरसात के अन्दर ही राजा सुग्रीव चतुर गुप्तचरों द्वारा सीता की खोज करायेंगे ।१५८। यद्यपि यह सुनिश्चित है कि रावण ने सीता का अपहरण किया है फिर उसने उन्हें कहाँ और कैसे छिपाया है निश्चित नहीं है ॥१५९॥ इसके बाद महातेजस्वी राम शमीवृक्ष के समान अन्दर ही अन्दरजलतेहुये भी, शोभावान् वह प्रस्रवण पर्वत पर शोभित हुए ।१६०।

सायाह्ने प्रावृषिजसुषमामेकदा रामभद्रः
पश्यन्जातो जनकदुहितुः संस्मृतौ मग्नचित्तः
वैदेहीं तां प्रणयकृपणश्चिन्तयन्शोकतप्तो
ऽद्राक्षीन्मेघं तरलगतिना वायुना नीयमानम् ।१६१।

मेघैश्छन्ने वियति ललना भर्तृभिः शं लभन्ते
प्राणान्प्रायो विजहति निजान्भर्तृहीना रमण्यः
कान्तोदन्तं सुहृदुपनतं प्राप्य सीता कथञ्चिज्
जीवेदित्थं रघुकुलपतिश्चेतसा सोऽचिचिन्तत् ।१६२।

ग्रीष्मार्कस्योग्रकरनिकरैः पीडितां भूमिमेनां
कर्तुं शान्तां जलधरमिमं प्रापयन्नस्ति वायुः
नूनं लोकोपकृतिविषये चेष्टितं व्याजहीनं
बिभ्रद्वातः क्षितिदुहितरञ्चापि कुर्यात्प्रशान्ताम् ।१६३।

एक बार रामचन्द्रजी सायाह्न में वर्षाजनित शोभा को देखते हुए जनकजा सीता की स्मृति में मगन थे, शोक सन्तप्त, प्रेमकृपण वह जनक दुलारी का चिन्तन करते हुए चञ्चल पवन से भगाये जा रहे मेघ को देखा ।१६१। आकाश के बादलों से घिर जाने पर प्रायः युवतियाँ पतियों के साथ ही सुख पाती हैं किन्तु अपने पति से विहीन रमणियाँ प्रायः प्राण त्याग देती हैं। सीता कदाचित् मित्र से प्राप्त प्रिय के समाचार से जीवन धारण कर सकेगी, ऐसा रघुकुलनाथ ने मन में सोचा ।१६२। ग्रीष्म-सूर्य की प्रचण्ड किरणों से पीड़ित इस धरती को शान्त करने के लिये वायु इस जलधर मेघ को ला रहा है। संसार के उपकार में निर्व्याज सेवा करने वाला वायु निश्चय ही धरती की पुत्री सीता को भी शान्त करेगा ।१६३।

सञ्चिन्त्यैवं जनकतनया विप्रयोगेण दग्धो
रामो दौत्ये मलयपवनं सर्वगं योक्तुमैच्छत्
निश्चित्यैवं दयितविरही राघवः किं ससाध
व्यक्तिर्मित्रं कमपि मनुते योऽस्ति साक्षी स्वदुःखे ।१६४।

प्रत्यासन्नैः कुटजकुसुमैः कल्पयन्नर्घ्यमस्मै
सद्यो रामः प्रमुदितमनाः मातरिश्वानमूचे
बन्धो स्थित्वा क्षणमपि च मां विप्रयुक्तं निरीक्ष्य
भार्यायै मे नयतु वचनं यत्रकुत्रस्थितायै ।१६५।

सुग्रीवं तं कपिकुलपतिं सेवमानः सुतस्ते
प्रेम्णेदानीं दयितविधुरं सेवते माञ्च नित्यम्
तस्माद्धेतोस्त्वमसि नियतं मेऽपि बन्धुः प्रकृत्या
पाल्यं नूनं जलधरसखे बन्धुभिः बन्धुकृत्यम् ।१६६।

ऐसा सोचकर जनकसुता के वियोग से जले राम ने सर्वगामी मलयमरुत् को दूतकर्म में लगाने की इच्छा की। ऐसा निश्चय कर प्रियावियोगी राम ने क्या ठीक किया ? अपने दुःख का जो साक्षी हो व्यक्ति उस जिस किसी को भी अपना मित्र मान लेता है।१६४। समीपवर्ती कुटज के फूलों से वायु के लिये अर्घ्य अर्पित करते हुये प्रसन्न मन राम ने तत्क्षण वायु से कहा हे बन्धु, क्षणभर रुककर वियोगी मुझे देखकर, जहाँ कहीं भी स्थित मेरी प्रियतमा के पास मेरा सन्देश ले जाओ।१६५। कपिकुल स्वामी सुग्रीव की सेवा कर रहा तुम्हारा पुत्र, हनुमान, प्रेमवश अब प्रियाविधुर मेरी सेवा कर रहा है। इसलिये स्वभावतः तुम भी निश्चय ही मेरे भी बन्धु हो, मेघ मित्र! बन्धुओं को बन्धुओं का कार्य करना ही चाहिये।१६६।

जाता वंशे निमिनरपतेः कोशलेन्द्रस्नुषा या
प्रामाण्यञ्चाऽभजत नितरां सुष्ठु प्रातिव्रतस्य
सा मे जाया क्वचिदपहृता भाग्यदोषाद् वनेऽस्मिन्
बन्धो सैषा सपदि भवता नूनमन्वेषणीया ।१६७।

रम्यां काञ्चिच्छविमनुपमां बिभ्रतीं देहयष्टौ
दीव्यन्तीं स्वाभिमुखमभितो दृष्टिमात्रेण हृद्याम्
त्रस्तां म्लानां मलिनवसनं धारयन्तीं कृशाङ्गीं
भर्तुर्नामाक्षरमनुपलं सावधानं वदन्तीम् ।१६८।

श्वासोच्छ्वासैर्विरहजनितैर्म्लापयन्तीं मुखेन्दुं
शोकाश्रूणां सततपतनादार्द्रगण्डं वहन्तीम्
स्नेहाभावाद् विततचिकुरां पाण्डुरां सौम्यमूर्तिं
जानीयात्तां परिणतधियं जानकीं बल्लभां मे ।१६९।

राजा निमि के कुल में पैदा हुई और कोशल नरेश की जो कुलवधू थी, सम्यक् पातिव्रत धर्म का बड़ा प्रमाण रही, वह मेरी पत्नी सीता भाग्य-दोष से इस वन में कहीं चुरा ली गई है, हे बन्धु, इसे तुम्हें शीघ्र ही खोजना है ।१६७। शरीर से वह कुछ अपूर्व अनुपम रमणीय कान्ति धारण करती है, दृष्टिमात्र से सभी को सर्वतः अपने ओर अभिमुख करने वाली हृदय दुःखी, मुरझाई हुई, मलिन वस्त्र पहने, दुबली पतली जो अनुक्षण सावधानी से पति के नाम अक्षर को जप रही होगी। ६८। विरह से पैदा होने वाले श्वासोच्छ्वास से मुखचन्द्र को मलिन करती हुई, शोक जनित आँसुओं के निरन्तर गिरते रहने से गीले कपोलों को धारण करती हुई, तैलादि के अभाव में बिखरे केशवाली, जो पीली, सौम्य-मूर्ति है, मेरे में मन लगाई हुई उस मेरी प्रियतमा को पहचानना ।१६९।

तामन्वेष्य प्रियवर मरुत् प्राणतोऽपि प्रियांमे
मन्दं मन्दं सरतु सविधे शङ्कितायाश्च तस्याः
दृष्ट्वा किंस्वित्परनरधिया लज्जितायाा भवन्तं
ध्यायन्त्या मां कथमपि भवेन्नावरोधः कदाचित् ।१७०।

कालं दृष्ट्वा कृतपरिचयो वल्लभां तद् ब्रवीतु
स्याद् येनासाववहितमतिर्वक्तरि श्रोतुकामा
साफल्यञ्च ध्रुवमिह सखे दूतकृत्यस्यनोचेत्
सन्देशं मे सुहृदि भवतादूषरे बीजवापः ।१७१।

उक्त्वा पूर्वं प्रणयिकुशलं प्रत्ययादाश्वसत्यै
सन्देशो मे तदनु भवता धीरवाचा निवेद्यः
श्रोतुं प्रायः प्रियमपि वचो धैर्यवृत्तिः प्रशस्ता
स्पर्शेनैव प्रपतति पुनः पक्वपुष्पं स्ववृन्तात् ।१७२।

हे प्रियवर! पवन मेरे प्राणों से भी अधिक प्यारी मेरी उस प्रियतमा को खोजकर, शङ्कित उसके पास धीरे-धीरे जाना जिससे तुम्हें देखकर पर पुरुष के विचार से कहीं वह लज्जित न हो जाय और कदाचिद् किसी भी प्रकार से मेरा ध्यान कर रही उसे बाधा न पड़े ।१७०। इसलिये समय देखकर, परिचय देकर मेरी प्रिया से बात करना जिससे वह वक्त के प्रति ध्यान दे और बातों को सुनने की इच्छा करे। प्रिय मित्र ऐसा होने पर निश्चय ही मित्र द्वारा दिये गये मेरे सन्देश में दौत्यकर्म की सफलता मिलेगी, अन्यथा ऊषर में बीज बोने जैसा होगा ।१७१। प्रणयी मेरा (सीता का) कुशल कहकर (पूंछकर), विश्वास होने पर जब वह आश्वस्त हो जाय तभी आपको धीरवाणी में मेरा सन्देश बताना है। प्रियवाणी भी सुनने में प्रायः धैर्यवृत्ति ही अच्छी होती है, पका हुआ फूल स्पर्श मात्र से ही अपने वृन्त से टूटकर गिर जाता है ।१७२।

रामो हत्वा कनकहरिणं वीक्ष्य रिक्तां कुटीं ते
जातोऽकस्माद्दलितहृदयस्त्वद्वियोगेन तप्तः
तस्मादद्यप्रभृति मनसि त्वामहं शोचमानः
कुञ्जात्कुञ्जं प्रतिपलमटन् स्वं विभर्मि त्वदर्थम् ।१७३।

वृक्षं वृक्षं सुतनु विपिनं त्वामहं पर्यपृच्छम्
नासीत्काचिद् व्रततिरपि या तन्वि पृष्टा मया न
नावोचत्साऽभिनवलतिका या त्वयारोपितासीद्
योक्तुं यां त्वं सततमबलां चूतवृक्षेण चैच्छत् ।१७४।

अज्ञात्वा त्वामभवदपि सा रुद्धकण्ठा नु तूष्णी-
माहोस्विन्मामकुशलजनं वीक्ष्य साऽभूद् विरक्ता
किं वा ब्रूयामसफलमलं रक्षणे ते विलोक्य
भद्रे सर्वा विपिनलतिका मामदुर्नोत्तराणि ।१७५

स्वर्णमृग को मारकर लौटने पर खाली कुटिया देखकर, सहसा उत्पन्न तुम्हारे वियोग से दग्ध राम का हृदय चूर-चूर हो गया। इसलिये आजतक मनसे तुम्हारा ही चिन्तन करते हुये मैं शोभने, एक वन से दूसरे वन तुम्हें खोजता हुआ तुम्हारे लिये ही शरीर धारण किये हुए हूँ।१७३। शोभनाङ्गि वन में मैंने प्रत्येक वृक्ष से तुम्हारे विषय में पूछा, ऐसी कोई लता नहीं रही जिससे कृशाङ्गि! मैंने पूंछा न हो। तुमने जो नयी लता लगाई थी और जिस अबला लता को तुमने निरन्तर आम्रवृक्ष से संयुक्त करना चाहा था, वह भी नहीं बोली।१७४। लगता है तुम्हारी जानकारी न होने से रुद्धकण्ठ वह चुप हो गयी, अथवा मुझ अयोग्य व्यक्ति को देखकर वह विमुख हो गयी? अथवा भद्रे क्या कहूँ लगता है तुम्हारी रक्षा में मुझे अति असमर्थ जानकर ही सारी वनलताओं ने मुझे कोई उत्तर नहीं दिया।१७५।

त्वत्साजात्याज्जनकदुहितः मामवेक्ष्यापि रुष्टा
किञ्चिद्रक्तैः सुभगकुसुमैः कन्दली स्वैरपाङ्गैः
तूष्णीं जाता यदिह सुभगे श्रेयसे तन्नमेऽभू-
दन्तःक्षोभादरुणितदृशो ध्यायतस्ते कृशाङ्गि ।१७६।

भद्रे प्रेम्णा स्वकरकलितैः सल्लकीपल्लवाग्रै-
रग्रे लोलः करिकलभको यस्त्वया पालितोऽभूत्
पृष्टः सोऽपि प्रणयिविरहादश्रुविन्दून् विमुञ्चन्
दूरं गच्छन्मम मृदु हृदं किन्त्वभैत्सीत्प्रकामम् १७७।

रे बातायोर्जनन वचनं श्रूयतां सावधानं
किं दृष्टा सा मम सहचरी याऽदिशत्ते तृणानि
श्रुत्वैतन्मे गलपितयशसो बाचमेणीसुतोऽपि
सार्द्धं बद्ध्वाऽपहृतललनाद् विप्रकृष्टं प्रयातः ।१७८।

अयि जनकनन्दिनि ! कुछ कुछ रक्त सुभग कुसुमों रूप अपाङ्गों के द्वारा तुम्हारी सजाति होने के कारण कन्दली ने मुझे देखकर जो चुप लगा लिया, हे सुभगे! हृदय क्षोभसे तुम्हारी अरुणिम आँखों का ध्यान करने वाले मेरे लिये, हे तन्वङ्गि! वह अच्छा नहीं हुआ।१७६। कल्याणि! पहले तुमने प्रेम के कारण अपने हाँथों से जुटाये गये सल्लकी के कोमल पल्लवों से जिस नट-खट हाथी के बच्चे को पाला था, पूँछने पर, वह भी अपने स्नेही के वियोग से आँसू गिराता, दूर चला गया क्या वह मेरे कोमल हृदय कोएक दम तोड़ नहीं दिया? ।१७७। अरे हिरन के बच्चे! मेरी बात सावधानी से सुनो। क्या तुमसे मेरी सहचारिणी देखी गई है, जो तुम्हें तृण खिलाया करती थी। मुझ क्षीणयश की इस बात को सुनकर वह हिरन का बच्चा भी अपनी बधू के साथ मुझ अपहृतभार्य से दूर चला गया ॥१७८॥

दुःखं जायाविरहजनितं लक्षयन् चक्रवाकः
कुर्वन्क्रेङ्कारवमनुभवन् से न दुःखञ्च डिङ्ये
मत्सम्पर्कात्कमपि करुणं चिन्तयन्नेष पक्षी
कर्तुं स्वीयं द्विगुणिततरं वा न कृच्छ्रं चकाङ्क्ष ।१७९।

हित्वा सीतां मृगमनुसरन् नाचिचिन्तो विकारं
वैधेय त्वं विलपसि कथं क्व प्रिया क्व प्रियेति
अश्रौषं वाचमसकृदहं क्षुद्रपुंस्कोकिलस्य
प्राप्यापन्नं खलु परभृतो व्यर्थमुद्वेजयन्ति ।१८०।

गोदावर्याः पुलिनमभितो नीपवृक्षेषु नृत्य-
न्नास्ते यस्ते खगकुलमणिर्नीलकण्ठः शिखण्डो
सोऽपोर्ष्यां मे मनसि जनयन्केकया मामुवाच
व्यालान्खण्डं कलयति पुनर्मेघनादानुलासी ।१८१।

पत्नी वियोग से उत्पन्न मेरे दुःख को समझता हुआ चकवा क्रें-क्रे की ध्वनि करता हुआ भी मानो मेरे दुःख का अनुभव करने के कारण उड़ा नहीं। लगता है मेरे सम्पर्क से यह पक्षी भी अपूर्व दु ख-करूणा-शोक, का चिन्तन करता हुआ अथवा अपने दुःख को और अधिक दुगुना करना नहींचाहता।१७९। छुद्र कोयल की बात मैंने बार-बार सुनी कि हे मूर्ख ! सीता को छोड़कर हरिण का पोछा करते हुए तुमने परिणाम को नहीं सोचा तो अब क्यों रो रहे हो प्रिये कहाँ? प्रिये कहाँ हो ? दुःखी जनको प्राप्तकर परपुष्ट उद्विग्न करते हैं ॥१८०॥ गोदावरी के पुलिन में नोप वृक्ष के नीचे पक्षि कुलशिरोमणि तुम्हारा जो शिखण्डी-मयूर मेघध्वनि पर चारों ओर नाचा करता था, वह भी मेरे मन में ईर्ष्या पैदा करता हुआ-के?-का? वाणी में मुझसे बोला मेघध्वनि का अनुसरण करने वाले भी साँपों को खण्डों में कर देते हैं ॥१८१।

पूज्यात्तातात् विमलयशसः श्रीजटायोः सकाशाद्
ज्ञातं पश्चादिह बलवता त्वं खमार्गेण नीता
अज्ञात्वा त्वां क्षितितलचरा मामनिन्दन् रुदन्तो
मह्यं यत्र प्रचुकुपुरलं भर्त्सयित्वा वयांसि ।१८२।

नित्यं वाष्पं गलदविरलं धारयन्ती निजास्यं
साकं पत्याऽपि मिमिलिषया बिभ्रति क्षीणजीवम्
जाये दुःखं यदपरिमितं साम्प्रतं त्वं वहन्ती
भोक्ता कालं दहति नितरां तत्तु मेऽलं मनांसि ।१८३।

आत्मानं या कठिनचरणां कर्तुमीषन्न तप्ता
सूर्यम्पश्याऽप्यभवदिह या कारणात्सौहृदस्य
तां त्वां हृद्यां सरलहृदयामैशि गोपायितुं न
प्रत्युज्जाता मम च विषये कश्मला किंवदन्तीं ।१८४।

पूज्य तात, विमल कीर्ति, श्री जटायु से बाद में मैंने जाना कि तुम बली रावण द्वारा आकाश मार्ग से ले जायी गयी। भूतलचारी जीवों ने तुम्हें न जानकर रोते हुए मेरी निन्दा की और मेरी भर्त्सना सा करते हुए पक्षिगणों ने भारी क्रोश किया चहचहाये ॥१८२॥ आर्य पत्नि! नित्य निरन्तर गिरते आँसुओं से भरे मुख को ढोती हुई, पति से मिलने की चाह से क्षीण जीवाशा को संजोये तुम इस समय जो अपरिमित दुःख वहन करती हुई समय भोग रही होगी वह मेरे मन को अतिदग्ध कर रहा है ॥१८३॥ मृदु चरण भी जो तुम यहाँ आकर पैरों को कठोर बनाने में कुछ भी दुःखी नहीं हुई और प्रेम के कारण ही (असूर्यम्पश्या होने पर भी) सूर्यपश्या बनी उस सरल हृदया और कमनीया तुम्हारी रक्षा करने में मैं समर्थ नहीं हुआ, प्रत्युत मेरे विषय में यह मलिन प्रवाद भी पैदा हो गया कि राम अपनी पत्नी की रक्षा भी नहीं कर सकता ॥१८४॥

अम्भोवाहो भवति न यथा विद्युता विप्रयुक्तो
ज्योत्स्नाहीनस्तुहिनकिरणो वा क्वचिन्नापि दृष्टः
तद्वत् सुभ्रूः मदपि निधनस्त्वां वियोक्तुं प्रभुर्न
स्थायी नायं भवति ललने जीवने ह्यन्तरायः ।१८५।

जानीहि त्वं ललितजघने राघवस्त्वां विचिन्वन्
लब्धाऽवश्यं सुमुखि नहि मे सङ्गमाशां जहीहि
आशाबन्धः कुसुमसदृशं प्रायशो ह्यङ्गनानां
सद्यःपाति प्रणयिहृदयं विप्रयोगे रुणद्धि ।१८६।

कालो नूनं पुनरपि शुभे शीघ्रमागम्यमानो
यस्मिन् नक्तं किमपि वदतोरावयोर्वै विरन्ता
दृष्ट्वोदन्तं नभसि तपनं प्रीतिदं राहुमुक्तं
ग्लानिग्रस्ता सरसि भविता पद्मिनी च प्रफुल्ला ।१८७।

मेघ जैसे बिजली से रहित नहीं होता है, जैसे चन्द्रमा कभी चाँदनी से कहीं वियुक्त नहीं देखा जाता, हे सुभ्रु ! वैसे ही मृत्यु भी तुम्हें मुझसे अलग करने में समर्थ नहीं है, प्रिये! जीवन में बाधायें कभो स्थायी नहीं होतीं ।।१८५।। अयि शोभनाङ्गि! तुम्हें खोजता हुआ राम निश्चित रूप से तुम्हें पायेगा, वराङ्गि ! जोवन की आशा नहीं छोड़ना । सुन्दरियों के कुसुम समान कोमल तुरन्त विदीर्ण होने वाले प्रेमी हृदय को प्रायः वियोग में आशा बन्धन ही रोके रखता है ।।१८६।। भद्रे ! शीघ्र ही वह समय निश्चित ही आने वाला ; जिसमें कुछ बतियाते हुए हम दोनों की रातें बीतेंगी । आकाश में राहुमुक्त सुखदायी सूर्य के वृत्तान्त को देखकर (जानो कि) दुःखसंतप्त कमलिनी सरोवर में अवश्य खिलेगी ।१८७

सम्पाद्यैवं प्रियमिह भृशं दुःखितायै प्रियायै
गन्तासि त्वं वियति कमपि स्वेष्टदेशं सुहृन्मे
कृत्यं सर्वं भवति सुखदं प्राणिना प्रीतये यद्
भोक्ता भूया अमलयशसस्त्वं सजूरात्मजेन ।१८८।

प्राणिभिः प्रापणीयाः क्व सन्देशार्थाः स्फिराशयाः
क्व वायुर्यस्य नास्त्येव वपुर्दृश्यं कदाचन ।१८९।

दौत्ये नियोजयन् वायुं रामो राजीवलोचनः
मीलिताक्षमिवात्मानं निःसीतं प्रत्यपीपदत् ।१९०।

जडे चेतनवद् दृष्ट्वा व्यापारं स्वाग्रजस्य च
आकलय्य स्थितिं भ्रातुरातुरो लक्ष्मणोऽभवत् ।१९१।

प्रियामुखोपमेयस्य हिमांशोरप्यदर्शनात्
चन्द्रादर्शनहेतुं स वर्षर्तुं निन्दति क्वचित् ।१९२।

तथा निन्दति चन्द्रं च पद्ममुद्रणकारिणम्
कुत्र रामः समीक्षेत सीतानेत्रसमां छटाम् ।१९३।

अन्त में राम पवन को सम्बोधित करते हैं हे मित्र, अत्यन्त दुःखी मेरी प्रिया के लिए इस प्रकार मेरे इस सन्देश रूप प्रिय कार्य को सम्पन्न कर तुम भी जिस किसी भी अपने अभीष्ट स्थान को चले जाना। प्राणियों के हित के लिये सुखकर जो भी समस्त कार्य होता है वह समस्त विमल यश, तुम अपने पुत्र-हनुमान के साथ, भोग करो ॥१८८॥ प्राणियों से ले जाने योग्य विपुलाशय सन्देश का कार्य कहाँ? और कहाँ प्राण वायु) जिसका शरीर कभी दिखता ही नहीं ॥१८९॥ कमल लोचन राम ने दूत-कर्म में वायु को नियुक्त करते हुए सीता विहीन स्वयं को मीलित नयन मृतवत्) सा माना ॥१९०॥ जड के प्रति अपने भाई के व्यापार-व्यवहार को चेतन तुल्य करते देखकर, भाई की स्थिति को समझकर लक्ष्मण घबड़ा गये ॥१९१॥ प्रियामुख सदृश चन्द्रमा के भी दिखाई न पड़ने पर वह चन्द्र के अदर्शन का कारण कभी वर्षा ऋतु को मानकर उसकी निन्दा करते हैं ॥१९२॥ इसी प्रकार कमल को बन्द करने वाले भी चन्द्र की निन्दा करते हैं, राम सीता के नयन सदृश शोभा को कहाँ देखें ॥१९३॥

खं वायुरनलः पृथ्वी जलञ्चापि महात्मनः
तस्य द्वेषाय सञ्जाताः समुपप्लुतचेतसः ।१६४।

क्वचित्साम्याच्च वैषम्याद् द्वेष्याद्वा प्रियसङ्गमात्
निर्भत्सर्यन् समान् रामः सम्प्राप्तो विषमां दशाम् ।१६५।

वर्षर्तुच्छटां दिव्यां सर्वमानसहारिणीम्
निर्भत्संयति रामोऽसौ मानसोद्वेगकारिणीम् ।१६६।

इन्द्रगोपा धनुश्चैन्द्रं मेघ इन्द्रसुहृत्तथा
विपरीतं गताः सर्वे रामायैवेन्द्रिघातिने ।१६७।

कथञ्चिज्जीवितोरामः सीताप्राप्त्याशया पुनः
प्रावृड्वार्धक्यमद्राक्षीत् कासैः केशस्वरूपकैः ।१६८।

अकिञ्चिदपि कुर्वाणं सुग्रीवं वानराधिपम्
बोधयितुं वधूरक्तं प्रेषयामास लक्ष्मणम् ।१६९।

आकाश, वायु, अग्नि, पृथ्वी और जल ये सभी, दुःखी मन महात्मा राम के द्वेष-दुःख के लिए ही बने ।।१६४।। कही समानता के कारण, कहीं विषमता के कारण, द्वेष अथा प्रिया संयोग के कारण सभी की भर्त्सना करते हुए राम ने विषमावस्था प्राप्त कर ली ।।१६५।। सभी के मन को हरण करने वाली, अलौकिक, वर्षा ऋतु की, शोभा का राम मन में उद्वेग पैदा करने वाली होने के कारण उसकी भर्त्सना करते ।।१६६।। इन्द्र-गोपियाँ (वीर वधूटियाँ), इन्द्रधनुष तथा इन्द्रमित्र मेघ ये सभी बालिनिषूदन (इन्द्रसुतघाती) राम के लिये विपरीत ही सिद्ध हुए ।१६७। सीता की पुनः प्राप्ति आशा से किसी प्रकार जीवित राम ने केशरूप कासफूलों से वर्षा की बुढ़ाई देखी ।।१६८।। कुछ भी न करने वाले, पत्नी में लीन सुग्रीव को चेताने के लिए राम ने लक्ष्मण को भेजा ।।१६९।।

तारावोधनशान्तेन सुमित्रातनयेन सः
निर्भर्त्सितोऽपि सुग्रीवोऽन्येद्यू राममुपागतः ।२००।

सर्वगा बुद्धिमन्तश्च विज्ञाः स्वपरवेदिनः
नियुक्ता वानराश्चाराः सीताऽन्वेषणकर्मणि ।२०१।

अङ्गदस्य च नेतृत्वे धीराः प्रत्यवमर्शिनः
जाम्बवत्प्रमुखाः कीशा अगमन् दक्षिणां दिशम् ।२०२।

तेषामन्यतमं रामो हनूमन्तं विचक्षणम्
प्रोवाच रह आहूय दत्वाऽस्य स्वाङ्गुलीयकम् ।२०३।

किं कथयामि ते भद्र हनूमन् बुद्धिमानसि
इदं ते प्रत्यभिज्ञानं सीता विश्वसिताद् यथा ।२०४।

बाह्यतोऽभिहृता सीता मानसान्मे कदापि न
तदेव कुरुतात्तात यथा जीवतु भामिनी ।२०५।

तारा के समझाने से शान्त, सुमित्रानन्दन से निर्भर्त्सित भी वह सुग्रीव दूसरे दिन राम के पास आया ॥२००॥ उसने सीता की खोज करने वाले सर्वगामी, बुद्धिमान, विशेषज्ञ स्वपर के जानकार वानर दूतों को नियुक्त किया ॥२०१॥ अङ्गद के नेतृत्व में धीर, विचारशील, जाम्बवान् प्रमुख बन्दर दक्षिण दिशा की ओर गये ॥२०२॥ उनमें श्रेष्ठ, विद्वान् हनुमान को एकान्त में बुलाकर, उन्हें अपनी अंगूठी प्रदान कर राम ने कहा ॥२०३॥ भद्र ! हनुमान तुम बुद्धिमान् हो, तुमसे कहूँ क्या ? यह तुम्हारे लिये प्रत्यभिज्ञान (पहचान) है जिससे सीता विश्वास कर ले ॥२०४॥ सीता मेरे बाहर से तो हर ली गई है पर मेरे चित्त से कभी भी नहीं । इसलिये वह करो, जिससे मेरी पत्नी जीवित रहे ॥२०५॥

एवङ्गते वानरचारवृन्दे सीतासमन्वेषणदत्तचित्ते
रामो विरामं समवाप कामं तथापि कामोऽव्ययत प्रकामम् ।२०६

सीतावियोगेन सुपीडितस्य रामस्य चित्तं सुखमेवमिच्छत्
आशानिराशोभयकीलबद्धां दोलां समाश्रित्य न सौख्यमाप ।२०७

अप्राप्य सीतां करणीयमत्र किं वाऽस्ति कर्त्तव्यमथापि लाभे
विचिन्तयन्नेवमसौ मनस्वी मनः समाधत्त जयोपपत्तौ ।२०८।

एवं व्यतीतेषु दिनेषु रामोऽद्राक्षीत्प्रसन्नांश्च निवर्तमानान्
सीतासमन्वेषणलब्धसिद्धीन् प्लवङ्गमान् दक्षिणदिग्विभागात् ।।

स जाम्बवन्तं वयसातिवृद्धं पप्रच्छ यात्राफलमेव लब्धम्
प्रणम्य तं जाम्बवता प्रयुक्तं वचो हनूमद्गुणकीर्तनात्मकम् ।२१०

प्रभो हनूमानयमस्ति संस्थितः स्वयं भवन्तं कथयिष्यसीह सः
वृत्तं समस्तं खलु येन जीविता वयं भवत्सम्मुखमागताश्च .२११

इस प्रकार सीता की खोज में दत्तचित्त वानर दूत समूह के चले जाने पर राम ने पर्याप्त विश्रान्ति पाई फिर भी काम ने उन्हें काफी व्यथित किया ।।२०६।। इस प्रकार सीता वियोग से नितरां पीडित राम का चित्त सुख चाह रहा था, आशा-निराशा दोनों के खम्भों पर बंधी दोला पर आरुढ उन्हें सुख नहीं मिला ।।२०७।। सीता के न मिलने पर क्या करना चाहिए ? अथवा मिल जाने पर क्या करना है ? इस प्रकार सोचते हुए उन मनस्वी ने विजय की प्राप्ति में मन समाहित किया ।।२०८।। इस प्रकार बहुत दिनों के बीत जाने पर राम ने सीता की खोज में सिद्धि प्राप्त, प्रसन्न वानरों को दक्षिण दिशा से लौटते हुए देखा ।।२०९।। इसके बाद उन्होंने उपलब्ध यात्रा के परिणाम को अवस्था में अतिवृद्ध जाम्बवान् से पूछा। जाम्बवान् ने राम को प्रणाम कर हनुमान के गुणों की प्रशंसारूप वाणी का प्रयोग किया ।।२१०।। भगवन् यह हनुमान स्वयं उपस्थित हैं। यह आपसे स्वयं वह समस्त वृत्तान्त कहेंगे जिससे हम जीवित हैं और आपके समक्ष आ सके हैं ।।२११।।

अवश्यमस्माभिरलङ्कृतानि पुण्यान्यतीते बहुशोभनानि
यतो निमित्तानि भवेम कार्ये भवादृशां चारुविचेष्टितानाम् ।।

ततो हनूमान् कृतमस्तकाञ्जलिर्निपत्य रामप्रपदीनभूमौ
सीतामविज्ञाय भवत्स्वरूपं ज्ञातुं न शक्यं दृढमित्युवाच ।२१३।

महतामनुभावेन कार्यं सर्वं सुसिद्ध्यति
वस्तुतः साधकस्तत्र केवलं साधनायते ।२१४।

भवता वयमाज्ञप्ता अयाम दक्षिणां दिशम्
अन्वेषणं परं तात दुष्करं सूचनां विना ।२१५।

क्षुत्पिपासायुताः सर्वे मत्वात्मनोगतायुषः
प्रविष्टाश्च गुहामेकां वानरा भयविह्वलाः ।२१६।

तत्र स्वयंप्रभानाम्नी तापसी काचिदद्भुता
साहाय्य कुर्वती तात गुहाया अकरोद् बहिः ।२१७।

निश्चय ही पूर्वजन्म में हम लोगों ने अनेक अच्छे पुण्य अर्जित किये है जिनके कारण आप जैसे सद्वृत्तों के कार्य में हम निमित्त बने हैं ।।२१२।। इसके बाद हनुमान ने सिर पर अञ्जलि रखकर धरती पर साष्टाङ्ग राम के पैरों में प्रणाम कर बोले निश्चय ही, सीता के स्वरूप को बिना जाने आप को जानना सम्भव नहीं है ।।२१३।। बड़े लोगों के प्रभाव से ही सारे कार्य सुसम्पन्न हो जाते हैं वस्तुतः साधक तो वहाँ साधन सा आचरण मात्र करता है ।।२१४।। आपसे हमें आज्ञा मिली थी कि हम दक्षिण दिशा में जायें, किन्तु तात ! सूचना के बिना खोज करना अति दुष्कर है ।।२१५।। भूख-प्यास से युक्त सभी बानरों ने अपने को गतायु मानकर, भयविह्वल होकर एक गुफा में प्रवेश किया ।।२१६।। वहाँ स्वयं प्रभा नाम की कोई अद्भुत तपस्विनी थी, जिसने सहायता करते हुए हम सभी को गुफा से बाहर किया ।।२१७।।

स्वकार्यं दुष्करं दृष्ट्वा भयदं च निवर्तनम्
प्रायोपवेशने जाता वानराः कृतनिश्चयाः ।२१८।

तत्क्षणे गृध्रवर्येण चाग्रजेन जटायुषः
उपकृता वयं तात प्रकामं दीर्घदर्शिना ।२१९।

लब्ध्वा तत्कृतसाहाय्यं प्राप्य कूलं महोदधेः
जाता वयं हतोत्साहाः पश्यन्तोऽब्धेर्विशालताम् ।२२०।

शिरस्याज्ञां समाधाय जाम्बवतोऽस्य महात्मनः
गन्तुमैच्छम् महाभाग पारं तस्य सरस्वतः ।२२१।

उदधिः क्वातिगम्भीरः क्वाहं शाखामृगः पुनः
अनुभावं परं तात विमृशन् भवतोऽगमम् ।२२२।

परीक्षणे समुत्तीर्य नागमातृकृते परम्
मैनाकीयार्थनां गृह्णन्नन्वभूवम् भवत्कृपाम् ।२२३।

अपने कार्य को दुष्कर तथा लौटना भयप्रद देखकर निश्चय करके सभी वानर अनशन पर बैठ गये ॥२१८॥ उस समय जटायु के बड़े भाई, दूरदर्शी, गृध्रराज संपाती ने हम लोगों की पूरी सहायता की ॥२१९॥ उसकी सहायता प्राप्तकर, समुद्रतट पहुँच कर हम लोग समुद्र की विशालता को देखते हुये हतोत्साह हो गये ॥२२०॥ इन महात्मा जाम्बवान की आज्ञा शिरोधार्य कर, हे महाभाग मैं उस समुद्र के पार जाना चाहा ॥२२१॥ कहाँ अति गम्भीर समुद्र ? और कहाँ वानर मैं ? किन्तु हे तात ! आपके प्रभाव को सोचता हुआ पार गया ॥२२२॥ नागों की माता सुरसा से ली गई परीक्षा में उत्तीर्ण होकर, तदनन्तर, मैनाक की प्रार्थना को स्वीकार करते हुए, आपकी कृपा का मैंने अनुभव किया ॥२२३॥

तत उत्साहसंवृत्तः कूर्दमानोऽर्णवोपरि
हन्ताकस्माद् गृहीतोऽहं छायाग्राहिव्यवस्थया ।२२४।
अनुभावेन चात्रापि भवतस्तत्क्षणं कृतम्
साहाय्यं येन जातोऽहं व्यवस्थाभञ्जने प्रभुः ।२२५।
निपात्य लङ्किनीं घोरां पुनर्धृत्वा वपुर्लघु
रजन्यां प्राविशम् लङ्कां वञ्चयित्वैव रक्षकान् ।२२६।
अवाच्यां भारतस्येयं सर्वतः सागरावृता
अस्ति लङ्कापुरी रम्या रावणेनाभिपालिता ।२२७।
ललनामिव तां लङ्कां यथा रक्षति रावणः
प्रभुर्न रक्षणे तद्वत् कच्चिदिन्द्रोऽमरावतीम् ।२२८।
परिखाभिश्चतुर्दिक्षु प्राकारैस्तदनन्तरम्
आरक्षिणां निवेशेन दुष्प्रवेश्यास्ति भूतले ।२२९।

फिर उत्साह से भरा समुद्र पर छलांग लगाता हुआ मैं कष्ट है कि अकस्मात् छायाग्राही व्यवस्था से पकड़ लिया गया ॥२२४॥ यहाँ भी तत्काल आपके प्रभाव ने सहायता की जिससे मैं व्यवस्था तोड़ने में समर्थ हो गया ॥२२५॥ भयङ्कर लङ्किनी राक्षसी को मारकर फिर लघुरूप धारण कर रक्षकों को वञ्चित कर रात में लङ्का में प्रवेश किया ।२२६॥ भारत के दक्षिण में, चारों ओर समुद्र से घिरी, रावण पालित यह लङ्कापुरी बड़ी सुन्दर है ॥२२७॥ जिस प्रकार रावण रमणी के समान लङ्का की रक्षा करता है उस प्रकार तो इन्द्र भी कदाचित् अमरावती की रक्षा करने में समर्थ नहीं हैं ? ॥२२८॥ चारों ओर से खाई तत्पश्चात् चारदीवारियों से घिरी फिर तत्तत् स्थानों पर पहरेदारों की नियुक्ति से लङ्का भूतल पर दुष्प्रवेश्य है ॥२२९॥

निर्मितास्तत्र पन्थानः रथानां हस्तिनां तथा
रथ्याभिश्च समे युक्ता राजमार्गेण योजिताः ।२३०।

उदङ्मुखी प्रशस्तेयं लङ्काऽकूपारमध्यगा
आवसन्ति सुखं यत्र पौरा विगतसाध्वसाः ।२३१।

मन्त्रज्ञा उत्तरे यत्र पूर्वस्मिंश्च बलप्रियाः
वाणिजा दक्षिणेभागे कारवः पश्चिमे स्थिताः ।२३२।

ऐशान्यां सचिवास्तस्यामाग्नेय्यां कोशरक्षिणः
नैऋत्य आयुधागारो वायव्य आतुरालयः ।२३३।

तडागारामकूपैश्च यथास्थानं निवेशितैः
भ्राजते सा पुरी लङ्का स्वर्णेनावृतमन्दिरा ।२३४।

बहुशो मन्दिराण्यस्यामुमाया धूर्जटेस्तथा
क्रीडास्थानानि सन्त्यस्यां मदिरायतनानि च ।२३५।

वहाँ पर पैदल, रथ और हाथियों के रास्ते बने हुए हैं और सीधे चौराहों से युक्त सड़के बनायी गई हैं ।।२३०।। समुद्र के बीच बसी हुई उत्तरमुखी लङ्का नगरी अत्यन्त सुन्दर है । जहाँ पुरवासी भयरहित होकर सुखपूर्वक निवास करते हैं ।।२३१।। जहाँ उत्तर में मन्त्रीगण (मन्त्रज्ञ), पूर्व में सैनिक 'बलप्रिय), दक्षिण भाग में व्यापारी और पश्चिम में शिल्पी निवास करते हैं ।।२३२।। ईशान भाग में सचिवगण, अग्नि दिशा में खजाने के प्रहरी, नैऋत्य में शस्त्रागार और वायव्य दिशा में वहाँ औषधालय हैं ।।२३३।। यथा स्थान बनवाये गये तडाग, बगीचे तथा कुओं से युक्त स्वर्णआवृत भवनों से युक्त वह लङ्कापुरी अति शोभायमान है ।।२३४।। इस लङ्का में शिव-पार्वती के बहुत से मन्दिर हैं । यहाँ क्रीडा क्षेत्र, तथा मदिरागृह भी अनेक हैं ।।२३५।।

प्रासादो यातुधानस्य तन्मध्येऽतीवशोभनः
कुप्यकोष्ठायुधागारैर्बन्धनकोशगृहैर्युतः ।२३६।

अस्ति तस्य चतुर्दिक्षु शोभनं प्रमदावनम्
लतापुष्पादिसंयुक्तं धारायन्त्रसमन्वितम् ।२३७।

तस्यां सततसन्नद्धैः रक्षिभिः भृशमावृता
कस्मिंश्चिद्भवने सीता स्थापिता स्यात् सुरक्षिता ।२३८।

इति मत्वा निशान्तानि सर्वाण्यपि द्रुतं मया
निरीक्षितानि काकुत्स्थ सीता दृष्ट्वा क्वचिन्नहि ।२३९।

खिन्नो रुरुदिषुश्चाहं यदैवमभवम्प्रभो
भवतश्चानुभावेन कृतातत्र सहायता ।२४०।

भाग्याद् विलोकितं तस्यामेकं वैष्ववसादनम्
यत्राध्युपवनं दृष्टा बहुशस्तुलसीक्षुपाः ।२४१।

उस नगरी के बीच में राक्षस रावण का अतिसुन्दर महल है जो स्वर्णागार, शस्त्रागार और कारागारों से युक्त है ॥२३६॥ उसके चारों ओर अतिशोभन प्रमदोद्यान हैं जो लताओं, फूलों तथा फव्वारों से युक्त हैं ॥२३७॥ उसमें सतत सन्नद्ध पहरेदारों से अत्यन्त घिरी हुई किसी भवन में सुरक्षित सीता रखी गयी होगी ॥२३८॥ ऐसा मानकर शीघ्रता पूर्वक मैंने सारे भवनों को देख डाला पर सीता कहीं नहीं दिखी ।२३९। हे प्रभो ! दुःखी मैं जब रोना ही चाह रहा था वहाँ आपके प्रभाव ने मेरी सहायता कर दी ॥२४०॥ सौभाग्य से मैंने वहाँ एक विष्णु भक्त का घर देखा जहाँ उपवन में अनेक तुलसी के पौधे भी देखे ॥२४१॥

नूनं भिन्नरुचिः स्वामी गृहस्यास्य भविष्यति
गतस्तं चिन्तयन्नेवं कथयन् विष्णवे नमः ।२४२।

भवतः कृपया जातं मृषा मे नानुमानितम्
विभीषणो गृहस्वामी ध्रुवमासीत्स वैष्णवः ।२४३।

अहं वैदेशिकस्तात लङ्कां द्रष्टुमिहागतः
ब्रुवन्नेवमहं वार्तामकार्षञ्च नवां नवाम् ।२४४।

वार्ताक्रमे मया ज्ञातः पुरुषोऽयं महामतिः
सिद्धान्तेऽस्य महान्भेदो रावणेन दुरात्मना ।२४५।

उद्दीप्य भावनां तस्य वर्णितश्च भवद्यशः
तदाकर्णनतृप्तोऽसावब्रवीन्निजभावनाम् ।२४६।

ब्रह्मन् किं कथयाम्यत्र लङ्कायां संस्थितिं निजाम्
भीतियुक्तो वसाम्यत्र दन्तेषु रसना यथा ।२४७।

इस घर का मालिक निश्चय ही औरों से भिन्न रुचि का होगा ऐसा सोचता हुआ 'विष्णवे नमः' कहता हुआ उसके पास गया ।।२४२।। आपकी कृपा से मेरी सोच झूठी नहीं हुई, उस घर का स्वामी विभीषण निश्चय ही वैष्णव था ।।२४३।। हे तात! मैं विदेशी हूँ, यहाँ लङ्का देखने आया हूँ, ऐसा कहता हुआ मैं नयी-नयी बातें करने लगा ।।२४४।। वार्ताक्रम में मैंने जाना कि यह आदमी महान बुद्धिमान है, सिद्धान्त में इसका दुरात्मा रावण से महान अन्तर है ।।२४५।। उसकी भावनाओं को उभार कर मैंने आपका कीर्तिगान किया। उसके श्रवण से सन्तुष्ट उसने अपनी भावना को बताया ।।२४६।। हे ब्राह्मण इस लङ्का में अपनी अवस्था का मैं क्या वर्णन करूँ? दाँतों के बीच जीभ की तरह मैं डर समेत यहाँ रहता हूँ ।।२४७।।

स्वं स्वोद्देश्यं तदा तात तदग्रे प्रत्यपीपदम्
भीतोऽपि स तदोवाच करिष्येऽहं सहायताम् ।२४८।

सङ्केतं ते प्रदास्यामि सीताया निश्चितं कपे
एकया संविदा साकं तच्छृणु त्वं महामते ।२४९।

लङ्कानिवासिनः प्रायस्तुष्टा नैतेन कर्मणा
रावणेन हृता सीता नित्यं रामाभिकाङ्क्षिणी ।२५०।

प्रसरेत् किंवदन्ती न लङ्काया अयशस्करी
सीता गच्छेत् प्रियं रामं मन्तव्यमिदमस्ति मे ।२५१।

परं ममाग्रजो भ्राता रावणो रक्षसां पतिः
मत्कृते पितृतुल्योऽसौ नावसीदतु कर्हिचित् ।२५२।

श्रुत्वेदं तद्वचस्तात मयापि भणितं तदा
दूतोऽहं कोशलेन्द्रस्य मा भैषीस्त्वं विभीषण ।२५३।

हे तात! तब मैंने उसके सामने अपने महान उद्देश्य का प्रतिपादन किया, उस समय डरा हुआ भी वह बोला मैं तुम्हारी सहायता करूँगा ॥२४८॥ हे वानर! मैं तुम्हें निश्चय ही एक शर्त के साथ सीता का पता बताऊँगा, हे महामति उसे सुनें ॥२४९॥ सतत रामाभिलाषिणी सीता का अपहरण रावण ने कर लिया है, लङ्का के लोग इस कार्य से प्रायः सन्तुष्ट नहीं हैं ॥२५०॥ लङ्का का अपकीर्तिकर प्रवाद न फैले, सीता प्रिय राम के पास चली जाय, यही मेरा विचार है ॥२५१॥ किन्तु मेरा बड़ा भाई राक्षसराज रावण मेरे लिये पिता तुल्य है किसी भी प्रकार दुःखी न हो ॥२५२॥ उसके इस कथन को सुनकर तब मैंने भी कहा, मैं राम का दूत हूँ, विभीषण तुम डरो नहीं ॥२५३॥

क्षन्तव्यो भविता नूनं सापराधोऽपि रावणः
अपि दास्यति सीताञ्चेद् भूत्वा च शरणागतः ।२५४।

न जानास्यनुभावं वा प्रभावं स्वामिनो मम
मित्रकार्यं पुरस्कृत्य सुग्रीवः कपिपः कृतः ।२५५।

कोऽन्वस्मिन्साम्प्रतं लोके रामतुल्यो महामनाः
येन राज्यं परित्यक्तं मध्यमाम्बेच्छया सुखम् ।२५६।

विभीषणप्रदत्तेन सङ्केतेन गतस्तदा
अशोकाधः स्थितां देवीमपश्यम् दीनचेष्टिताम् ।२५७।

कृशाङ्गीं रुदतीं नित्यं वदन्तीमस्फुटाक्षरम्
आर्द्रगण्डस्थलीं रिक्तां मग्नां चिन्तापयोनिधौ ।२५८।

अनेकाभिः सशस्त्राभिः राक्षसीभिः समावृताम्
अनुभावावशेषां तां दृष्ट्वाहं विकलोऽभवम् ।२५९।

अपराध युक्त भी रावण यदि राम का शरणागत होकर सीता को प्रदान कर देगा तो निश्चय ही क्षमा प्राप्त कर लेगा ।।२५४।। मेरे स्वामी का अनुभाव या प्रभाव तुम नहीं जानते । मित्रकार्य को आगे करके सुग्रीव को उन्होने वानरराज बना दिया ।।२५५।। इस जगत् में इस समय राम के समान कौन महामना आदमी है, जिसने मध्यमाम्बा कैकेयी की इच्छा से राज्य सुख का परित्याग कर दिया ।२५६। विभीषण के द्वारा दिये गये सङ्केत पते पर मैं गया । मैंने अशोक वृक्ष के नीचे बैठी हुई करुण कथा वाली देवी को देखा ।२५७। दुबली, निरन्तर रोती हुई, गीले कपोलमण्डल वालीअव्यक्त अक्षरों में कुछ बुदबुदाती हुई, खाली, चिन्ता समुद्र में डूबी हुई ।।२५८।। अनेक सशस्त्र राक्षसियों से घिरी, अनुभाव मात्र अवशिष्ट, तेजोऽवशिष्ट, उन्हें देखकर मैं व्यथित हो गया ।।२५९।।

तस्मिन्नवसरे तत्र रावणो रक्षसां पतिः
बहुस्त्रीसैनिकैः साकं द्रष्टुं देवीं समागतः ।२६०।
अवस्थादेशकालानां स्वशक्त्याश्चापि वर्णनात्
आत्मानं च वरीतुं स कृतो यत्नः सहस्रधा ।२६१।
तृणमेकं पुरस्कृत्य तद्व्याजेनैव जानकी
बहुशो भर्त्सयन्ती तं निनिन्द रक्षसां पतिम् ।२६२।
चौरोऽसि नष्टवीर्योऽसि धूर्तः कापुरुषोऽपि च
परस्त्रियं हरन्दुष्टः कथं त्वं नाभिलज्जसे ।२६३।
गुणवान् वीर्यवान् दान्तः सत्यवाक्यो दृढव्रतः
चारित्र्येण समायुक्तः क्व रामः शीलसंयुतः ।२६४।
क्वाधमो हीनचारित्र्यः परस्त्रीपांशुलोऽशुचिः
वैधेयो हीनसत्त्वस्त्वं रावणो राक्षसाधमः ।२६५।

उसी समय वहाँ राक्षसराज रावण बहुत सी स्त्री सैनिकों के साथ देवी को देखने आया ॥२६०॥ अवस्था, देश काल तथा अपनी शक्ति के वर्णन से उसने अपने वरण के लिये हजारों यत्न किये ॥२६१॥ जनक दुलारी ने एक तृण को आगे रखकर उसके ही बहाने से अनेक प्रकार से भर्त्सना करती हुई राक्षसराज की भूरि निन्दा की ॥२६२॥ दुष्ट ! तुम चोर हो, नष्टवीर्य हो, वञ्चक और कायर भी हो, दूसरे की नारी का अपहरण करते तुम क्यों लज्जित नहीं होते ॥२६३॥ गुणवान्, वीर्यवान्, दान्त, सत्यवचन, दृढव्रत, चरित्रभाव से युक्त शील समेत कहाँ राम ? ॥२६४॥ कहाँ अधम, चरित्रहीन, परस्त्री संपर्क से कलङ्कित, अपवित्र, मूर्ख, सत्त्वशून्य राक्षसाधम रावण तुम ? ॥२६५॥

देव्याश्चेदं बचः श्रुत्वा रावणः क्रोधमूर्च्छितः
निववृतेऽवधि दत्त्वा भीतिमुत्पादयन्तदा ।२६६।
भाययित्वा तदा देवीं कर्तुञ्च रावणोन्मुखीम्
गतासु यातुधानीषु त्रिजटा केवलं स्थिता ।२६७।
सत्यपि राक्षसी जात्या बुद्ध्या मानवतामयी
सान्त्वयामास देवीं सा वाक्यैस्तत्समयोचितैः ।२६८।
गतायां त्रिजटायाञ्च स्थाने निर्णिक्ततां गते
आयातः स स्वयं कालो य आसीन्मे प्रतीक्षितः ।२६९।
दृष्ट्वा मां न बिभीयात्सा मनुतां वा न राक्षसम्
अदृश्योऽशोकसंछन्नोऽवादिषम् लोकभाषया ।२७०।
कीर्तनं प्रथमं तात गुणानां भवतः कृतम्
नाहासीत् परं भीतिं प्रेम्णा श्रुत्वाऽपितत्कथाम् ।२७१।

देवी सीता के इस कथन को सुनकर क्रोधसंतप्त रावण उस समय अनुकूल होने की अवधि देकर, भय उत्पन्न करते हुए लौट गया ॥२६६॥ रावण के अनुकूल करने के लिये तब देवी को डराकर राक्षसियों के चले जाने पर वहाँ केवल त्रिजटा रह गई ॥२६७॥ जाति से राक्षसी होने पर भी बुद्धि से मानवता मयी वह देवी को उसने उस समय समयोचित वचनों से सान्त्वना प्रदान की ॥२६८॥ और त्रिजटा के भी चले जाने पर, स्थान के शून्य हो जाने पर वह समय आया जिसकी मैं प्रतीक्षा कर रहा था ॥२६९॥ मुझे देखकर वह डर न जाँय या राक्षस न मान लें, इसलिये अशोक वृक्ष में छिपकर मैंने लोकभाषा में बोलना प्रारम्भ कया ॥२७०॥ हे तात ! पहले मैंने आपके गुणों का वर्णन किया फिर भी उस कथा को प्रेमपूर्वक सुनकर भी उन्होंने भय नहीं छोड़ा ॥२७१॥

संत्रस्ता सा भृशं देवी ततो बद्ध्वा निजाञ्जलिम्
अशोकं प्रार्थयामास मामशोकां करोतु सः ।२७२।

तत्क्षणं भवता दत्तमञ्जलावङ्गुलीयकम्
निपात्य प्रारभे द्रष्टुं परिणामं समुत्सुकः ।२७३।

विवर्णा विवशा देवी तत्क्षणं परमोत्सुका
प्राचिक्षेप यदा दृष्टिं नेतारं द्रष्टुमुत्सुका ।२७४।

तदाहं पुरतस्तस्या आगतो वचनं ब्रुवन्
दासोऽहं कोसलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः ।२७५।

मा भैषीद् देवि दृष्ट्वा मां वानरं विकृताननम्
शङ्कतां नासुरो वा मां दूतं पत्युरुपस्थितम् ।२७६।

एवमुक्त्वा शनैर्वृत्तं कथितं भवतोऽखिलम्
तच्छ्रुतं तु महादेव्या मत्वा कर्णामृतं नवम् ।२७७।

तब अतिशय डरी हुई देवी ने अपने हाँथ जोड़कर अशोक से प्रार्थना की कि वह उसे अशोक करे ।।२७२।। तत्क्षण मैंने आपसे दी गई अंगूठी अञ्जलि में गिराकर परिणाम देखने को समुत्सुक प्रतीक्षा करने लगा ।२७३ विवर्ण, विवश, अति उत्सुक उस समय देवी ने अंगूठी लाने वाले को देखने के लिए दृष्टि उठायी ।।२७४।। तब मैं यह कहता हुआ देवी के समक्ष आ गया कि मैं शुभकर्मकारी, कौशलाधीश राम का सेवक हूँ ।।२७५।। हे देवि ! विकृतमुख मुख वानर को देखकर न डरें, न ही अपने पति के उपस्थित दूत को राक्षस समझें ।।२७६।। ऐसा कहकर मैंने आपका सारा वृत्तान्त सुनाया, महादेवी ने उसे नया श्रवणामृत मानकर सुना भी ।।२७७।

ज्वलन्ती विरहाग्नौ सा कामं त्रातारमद्भुतम्
दृष्ट्वा मां पुत्रशब्देन प्रहृष्टा समबोधयत् ।२७८।

न जाने केन भावेन सम्बद्धोऽहं च तत्क्षणम्
अभवम् कृतसङ्कल्पस्तामानेतुमिहाचले ।२७९।

परन्तु भवताज्ञप्तो नासं नाङ्गीकरोतु सा
बुद्ध्याऽनया निरुद्धः सन्नियेष कर्तुमद्भुतम् ।२८०।

अस्मिन्नवसरे तात मनसा व्याकुलोऽभवम्
यदर्थमागतश्चात्र न पूर्णः सेति चिन्तयन् ।२८१।

सन्देशो भवतो देयः मात्रे पुत्रेण वा कथम्
कथं वा न स देयः स्याद् विषमाऽभूत् परिस्थितिः ।२८२।

कृतवान्निर्णयं तत्र दौत्यकर्मानुचिन्तयन्
देयो नेयश्च सन्देशः सन्देशप्रतिहारकैः ।२८३।

वियोगाग्नि में तपती हुई वह, अद्भुत रक्षक मुझे देखकर, प्रसन्न, पुत्र शब्द से उन्होंने सम्बोधित किया ॥२७८॥ न जाने किस भाव से युक्त मैंने उसी समय उन्हें यहाँ पर्वत पर लाने का विचार कर लिया ॥२७९॥ किन्तु आपसे आज्ञा नहीं प्राप्त थी, और कही वह भी स्वीकार न करें इस विचार से रोका गया मैं कुछ अद्भुत करना चाहा ॥२८०॥ हे तात! उस समय मैं यह सोचते हुये मन से परेशान महसूस किया, कि जिसके लिये मैं आया था, वह भी पूरा नहीं हुआ है ॥२८१। विषम परिस्थिति बन गयी कि आप से दिया गया सन्देश मां को कैसे दिया जाय या कैसे न दिया जाय ॥२८२॥ तब दूतकर्म का चिन्तन करते हुए मैंने निर्णय लिया कि सन्देश वाहक को सन्देश ले जाना और देना ही चाहिये ॥२८३॥

इत्थं विचिन्तयन् तात नत्वा मत्वा स्वमातरम्
अब्रवम् परितो दृष्ट्वा ज्ञात्वा च निर्जनं स्थलम् ।२८४।
मातस्त्वद्वियोगेन तप्तो मे रघुनन्दनः
कथञ्चिज्जीवितः कालं नयति त्वां च चिन्तयन् ।२८५।
अज्ञात्वा तव सङ्केतस्थानं स विवशो भवन्
दुःखं यच्च समाप्नोति तद्धृत् तद् वेत्ति केवलम् ।२८६।
नाहं वर्णयितुं शक्तो ददता स्वाङ्गुलीयकम्
उद्धृतं स्वकटेरेतन्नाङ्गुलेरिति दर्शनात् ।२८७।
एतन्निष्कासितं नूनं कामं पतनशङ्कया
लब्धवच्च निजं स्थानं कटौ न पुनरङ्गुलौ ।२८८।
निन्दन्निशा मृगाङ्कं स दिवा निन्दन् कुशेशयम्
आत्मानं सततं निन्दन् कालं यापयति प्रभुः। २८९।

हे तात ! ऐसा सोचता हुआ मैं अपनी माता जानकी को प्रणाम कर, चारों ओर देखकर, स्थान को समझकर बोला ।।२८४।। हे मां, तुम्हारे वियोग से सन्तप्त मेरे राम, तुम्हारा चिन्तन करते हुए किसी प्रकार जीवित हैं और समय बिता रहे हैं ।।२८५।। तुम्हारे स्थान की जानकारी न प्राप्तकर विवश हो रहे वह जो दुःख प्राप्त कर रहे हैं उसे केवल उनका हृदय ही जानता है ।।२८६।। मैं वर्णन करने में असमर्थ हूँ, अपनी अंगूठी को देते हुए उन्होंने इसे अपनी कमर से निकाला, अंगुली से नहीं। इसे देखकर ।।२८७। लगता है कि उन्होंने गिरने के डर से इसे अंगुली से निकाल लिया था और उसने अपना स्थान अंगुली में नहीं कटि में प्राप्त किया ।।२८८।। रात वह मृगलाञ्छन की निन्दा करते हुए और दिन में कमल की निन्दा करते हुए, इस प्रकार अपनी सतत् निन्दा करते हुए भगवान अपना समय कथञ्चित् काट रहे हैं ।।२८९।।

मुदिरो रोचते नास्मै केका न क्वापि रोचते
विप्रुषो घननिर्मुक्ताः रोचन्ते न क्वचित्पुनः ।२६०।

कदाचिद् व्योम्नि संदृश्य क्षणदायां क्षणप्रभाम्
प्रसन्नो भवति स्वामी प्राप्य ते समतां क्षणम् ।२६१।

नैराश्यमेघवान् रामश्चिन्तावात्यासमन्वितः
स्मृतिशम्पाहतो जातो वर्षर्तुः प्ररुदन् स्वयम् ।२६२।

विषादवारिसम्प्लावैर्निमग्ने वसतिस्थले
लक्ष्मणो दृश्यते प्रायो ब्रुडंश्च पुनरुद्ब्रुडन् ।२६३।

न तस्य नियतः कालो भोक्तुं मूलफलान्यपि
अनुभावावशेषः सन् कामं जागर्त्यहर्निशम् ।२६४।

कामं रामो विजानीयात् मातस्त्वमिह संस्थिताम्
निःशङ्कं रक्षसां लङ्का सातङ्का प्रागितो भवेत् ।२६५।

बादल इन्हें अच्छे नहीं लगते, मयूरध्वनि भी नहीं सुहाती और बादलों से मुक्त जल की बौछार भी कहीं नहीं रुचती ।।२६०।। रात को आकाश में कभी बिजली को देखकर मेरे स्वामी आपकी कुछ समानता प्राप्त कर क्षण भर के लिए प्रसन्न हो जाते हैं ।।२६१।। रोते हुए राम स्वयं वर्षा ऋतु बन गये हैं. निराशा ही मेघ है, चिन्तारूप आंधी से युक्त है और स्मरण रूपवज्राघात से वे पीड़ित है ।२६२। विषादरूपी जल की बाढ़ में डूबे हुए वह धरती पर रहते हैं और लक्ष्मण प्रायः उसमें डूबते. उतराते रहते हैं ।।२६३।। फल मूल खाने का भी उनका समय कोई नियत नहीं है, तेजोमात्रावशेष वह रात दिन जागते रहते हैं ।।२६४।। माँ यदि राम यहाँ तुम्हारी स्थिति को जानते, तुम यहाँ हो ऐसा पता होता तो निश्चय ही इससे पहले ही राक्षसों की लङ्का प्रपीडित हो गई होती ।।२६५।।

यदैवातः परावृत्य गत्वा तं कथयाम्यहम्
सुग्रीवेण ससैन्येन राघवोऽत्रागमिष्यति ।२६६।

अर्दयित्वा पुरीं लङ्कां मर्दयित्वा च राक्षसान्
राघवस्त्वां समानैता मा शोचीः हतकल्मषे ।२६७।

विमुच्य दीर्घनिःश्वासान् हन्त दुःखेनधर्षिता
अवोचन्मैथिली मां सा दधत्यप्रत्ययं पुनः ।२६८।

यूयं तू वानराः सर्वे नरौ द्वौ पतिदेवरौ
रावणप्रमुखान् दैत्यान् जेतारौ समरेकथम् ।२६९।

मातृवाक्यमिदं श्रुत्वा ततः प्रत्ययकारितत्
अदर्शयं निजं रूपं सद्यो विस्मयकारि यत् ।३००।

विस्मयोत्फुल्लनेत्रायां गतायां मातरि प्रभो
अब्रवम् नाहमेकोस्मि सन्त्यन्ये बहवः प्लवाः ।३०१।

इसलिये यहाँ से जाकर ज्यों ही समाचार बताऊँगा, रामचन्द्रजी ससैन्य सुग्रीव के साथ यहाँ आयेंगे ॥२६६॥ माँ आप पापी रावण की चिन्ता न करें, राम लङ्कापुरी को मर्दितकर, राक्षसों को रौंदकर, तुम्हें ले जायेंगे ॥२६७॥ आह ! दुःख प्रपीडित जनक दुलारी ने लम्बी आहें भरकर, अविश्वास लिये मुझसे बोली ॥२६८॥ तुम सभी बानर हो, मेरे पति और देवर दो नर हैं फिर रावण प्रमुख दैत्यों को युद्ध में कैसे जीतोगे ।२६९॥ माता के इस कथन को सुनकर मैंने विश्वासकारी और आश्चर्यकारी उस महान रूप को दिखाया ॥३००॥ हे प्रभो ! माँ के आश्चर्य प्रसन्न नेत्र से युक्त हो जाने पर मैं बोला मैं अकेला नही हूँ, मेरे जैसे अन्य अनेक बानर हैं ॥३०१॥

प्राणान् कृत्वा कराङ्के ये रामार्थेत्यक्तजीवनाः
प्रास्थानिकं प्रतीक्षन्त उद्धर्तुं त्वां कृताशयाः ।३०२।

अलं शोकेन दुःखेन प्रलापेन च शङ्कया
गतेयं भीतिदा वर्षा शरदत्र समागता ।३०३।

शोकपङ्कं तमोमेघं चिन्तावात्यामतीत्य च
स्या ऋतौ शरदिप्रीता धरणीव धरात्मजे ।३०४।

एवं बहुश आलाप्य दुःखे न्यूनीकृते सति
आनेतुं दृढविश्वासं पुनर्यत्नो मया कृतः ।३०५।

मा चिन्तयान्यथा मातः स्वामी मे नेष्यति ध्रुवम्
शोभिता स त्वया साकं चन्द्रश्चन्द्रिकया यथा ।३०६।

विज्ञाय मां प्रभू रामस्तदान्वेषणतत्परम्
कथयामास सन्देशं ददन्मे स्वाङ्गुलीयकम् ।३०७।

जो प्राणों को कराग्र में करकर, राम के लिये जीवन उत्सर्ग करने वाले तुम्हारे उद्धार का निश्चय कर केवल प्रस्थान की आज्ञा की प्रतीक्षा कर रहे हैं ।।३०२।। शोक, दुःख, प्रलाप और सन्देह त्यागें, अब भयप्रदायिनी वर्षा जा चुकी है, शरत् आ गयी है ।।३०३।। हे धरापुत्रि, धरती की तरह आप भी इस शरत् में शोकपङ्क, तमोमेघ, चिन्ता आँधी को छोड़कर प्रसन्न हो जाओ ।।३०४।। इस प्रकार अनेक पकार की बातें करके दुःख के कम हो जाने पर दृढ़ विश्वास पैदा करने के लिए मैंने पुनः प्रयास किया ।।३०५।। माता, आप अन्यथा न सोचें, मेरे प्रभु अवश्य ही ले जायेंगे। वह तुम्हारे साथ चन्द्रिका समेत चन्द्रमा के समान शोभित होंगे ।।३०६।। आपकी खोज के लिये तत्पर मुझे पहचान कर स्वामी राम ने अपनी अंगूठी देते हुए मुझसे सन्देश कहा ।।३०७।।

सीते स्मर पुरावृत्तं जातं जायन्तिकं च यद्
स रामोऽहमिति ज्ञात्वा धैर्यं त्वं धेहि साम्प्रतम् ।३०८।

बाह्यतोऽभिहृता सीते मानसान्मे कदापि न
समाश्वसिहि भद्रेऽहं नेता त्वामचिरादिह ।३०९।

एतस्मिन्कथिते तात दृष्ट्वाऽऽयान्त्यश्च रक्षिकाः
तिरोभवमशोकस्य पल्लवेषु समन्ततः ।३१०।

गृहीत्वा प्रतिसन्देशं मातुश्च भवते प्रियम्
युक्तं निवर्तनं नूनमिति मत्वा व्यचारयम् ३११।

उपस्थाता हि कालोऽयं रात्रावेव दिवा नहि
तस्मात् किमपि कर्त्तव्यं मया दूतेन साम्प्रतम् ।३१२।

कश्चित् प्रतिष्ठितो राजा सप्ताङ्गं समपेक्षते
तत्र त्रुटौ विनाश्योऽसौ सच्छिद्रा नौर्यथाम्भसि ।३१३।

हे सीते ! जयन्त के साथ पहले हुई घटना का स्मरण करो, मैं वही राम हूँ, यह जानकर इस समय तुम धीरज रखो ॥३०८॥ सीते ! तुम मुझसे बाहर से ही हरी गई हो, मेरे मन से कभी नहीं । कल्याणि ! आश्वस्त हो मैं तुम्हें शीघ्र लाऊँगा ॥३०९॥ हे तात ऐसा कहते ही, आती हुई रक्षिकाओं को देखकर सामने अशोक पल्लवों में मैं छिप गया ॥३१०॥ आपके लिये माता से प्रिय प्रतिसन्देश लेकर मेरा लौटना ही अच्छा है ऐसा मानकर मैंने विचार किया ।३११। यह समय तो रात में ही आयेगा, दिन में नहीं तो इस समय मुझ दूत को कुछ करना चाहिये ॥३१२॥ कोई भी प्रतिष्ठित राजा सप्ताङ्ग की अपेक्षा करता है, उसमें त्रुटि होने पर जल में छेदयुक्त नाव के समान वह नष्ट करने योग्य होता है ॥३१३॥

लब्ध्वावसरमात्मानं दृष्ट्वा ज्ञातुं रिपोर्बलम्
विचारेऽपि कृते तात मन्दधी: शङ्कितोऽभवम् ।३१४।

प्रगल्भ: स्मृतिमान् वाग्मी शस्त्रे शास्त्रे च निष्ठित:
क्व दूतो नृपतेर्युक्त: क्व चाहं वानराधम: ।३१५।

तरणिं परमारुह्य भवत: करुणात्मिकाम्
तितीर्षुर्दुस्तरं जातो रावणस्य नयाम्बुधिम् ।३१६।

नाविज्ञात: पुरं शत्रो: प्रविशेच्चन संसदि
कालमीक्षेत कार्यार्थमनुज्ञातश्च निष्पतेत् ।३१७।

स्मारं स्मारं नयज्ञानां वाक्यमेनं मया तदा
पुरावलोकने बुद्धिर्नितरां सुदृढीकृता ।३१८।

तत: शनैर्विनिगत्य ज्ञातुं शत्रोर्बलाबलम्
लङ्कापुरी मया दृष्टा सर्वत: राक्षसावृता ।३१९।

अवसर प्राप्तकर, अपने को देखकर, शत्रु की शक्ति जानने के लिए, विचार करने पर भी, हे तात मन्द बुद्धि मैं शङ्कित हो गया ॥३१४॥ प्रगल्भ, स्मृतिमान्, वाक टु, शस्त्र और शास्त्र का ज्ञाता कहाँ राजा का दूत और कहाँ वानराधम मैं ? ॥३१५॥ फिर भी आपकी करुणामयी नाव पर आरूढ़ होकर मैं रावण की नीति-समुद्र को पार करने की इच्छा वाला हुआ ॥३१६। शत्रु के नगर को बिना जाने सभा में प्रवेश न करे इस कार्य के लिये समय को देखे और ज्ञान प्राप्तकर ही पैठे ॥३१७॥ नीति विशारदों के इस वाक्य का बार-बार स्मरण कर उस समय मैं नगर को देखने के लिए विचार को अत्यन्त दृढ़ किया ॥३१८॥ इसके बाद शत्रु के वलाबल को जानने के लिये चुपके से निकल कर मैंने लङ्का नगरी को चारों ओर से राक्षसों से घिरी देखा ॥३१९॥

दुर्गकोशबलानाञ्च राष्ट्रस्य सुहृदस्तथा
दृष्टचा सुसज्जितः श्रीमान् रावणो राक्षसाधिपः ।३२०।

अभेद्यत्वमजाप्यत्वं दृष्ट्वा रावणस्य च
तत्क्षण विन्तितं तात कर्तुं कार्यद्वयं मया ।३२१।

द्रष्टव्योऽयं सहामात्यैः संसद्येवासुरो महान्
समन्ताद् भीतिरुत्पाद्या प्रकृतावस्य पुनर्मया ।३२२।

तदानीं पश्चिमे भागे कारूणां यत्र संस्थितिः
तन्निकटस्थसुद्यानं गत्वाऽकार्षमुपद्रवम् ।३२३।

आनीय दूरतस्तत्र यत्नता वर्धितान् द्रुमान्
उत्पाटयाकरोम् सर्वमुद्यानं हतसौभगम् ।३२४।

पक्वानामर्द्धपक्वानां फलानाञ्च निपातनम्
फुल्लानामप्यफुल्लानां प्रसूनानाञ्च शातनम् ।३२५।

दुर्ग, कोष, बल तथा राष्ट्र के मित्रों से राक्षसेश्वर श्रीमान् रावण भाग्य से सुसज्जित है ।३२०। हे तात रावण की अभेद्यता और अनुजाप्यता (एकता) को देखकर उस समय मैंने दो कार्य करने की सोची ।३२१। मन्त्रियों समेत इस महान् दैत्य को मुझे राजसभा में ही देखना चाहिए और फिर इसकी प्रजाओं में सर्वत्र भय पैदा करना चाहिये ।३२२। उस पश्चिम भाग में जहाँ शिल्पियों की स्थिति थी उनके आवास थे उसके समीपवर्ती उद्यान में जाकर मैंने उपद्रव किया ।३२३। यत्न पूर्वक बढ़ाये गये वृक्षों को उखाड़ कर वहाँ से दूर ले जाकर मैंने सारे उपवन को निःश्रीक कर दिया ।३२४। पके अधपके फलों को गिरा दिया और फूले तथा अनफूले पुष्प वृक्षों को तोड़ डाला ।३२५।

कुर्वन्तं मां कपिं दृष्ट्वा रक्षकाः सायुधास्तदा
प्रहरन्तः स्वयं नष्टा द्रुमाणां सन्निपातनात् ।३२६।

बहवोऽन्ये पुनः शूराः पासप्रहरणैर्युताः
समागता विनष्टाश्च स्वस्वाम्यारब्धदुष्कृतात् ।३२७।

गतोऽहं दक्षिणोद्यानं यावदायान्तु सैनिकाः
तत्रापि भञ्जयामास सपुष्पांश्च फलद्रुमान् ।३२८।

तत्रत्याः रक्षका भीता अगमन्स्वामिनं स्वकम्
प्रेषितस्तेन मां बद्धुं कुमारश्चाक्षनामकः ।३२९।

कृपया भवतस्तूर्णमल्पायासेन सोऽसुरः
परित्यज्य वपुः स्वीयं जगामान्तकमन्दिरम् ।३३०।

निशम्य दुःखदं वृत्तं रावणः क्रोधमूर्च्छितः
प्रेषयामास मां बद्धुं मेघनादं प्रियात्मजम् ।३३१।

ऐसा करते हुए मुझ वानर को देखकर सशस्त्र वनरक्षक मुझ पर प्रहार करते हुये पेड़ों के गिराने से स्वयं नष्ट हो गये ।३२६। पाश प्रहरणों से युक्त और अन्य सारे बहादुर भी आये और अपने राजा के पाप से नष्ट हो गये ।३२७। जब तक सैनिक आयें, मैं दक्षिण के उपवन में जा पहुँचा, वहाँ भी पुष्प फल से युक्त वृक्षों को धराशायी किया ।३२८। वहाँ के रक्षक डरकर अपने स्वामी के पास भाग गये। उसने मुझे बांधने के लिये अक्ष नामक कुमार को भेजा ।३२९। आपकी कृपा से मेरे स्वल्प प्रयास से ही वह राक्षस अपने शरीर को त्याग कर शीघ्र ही यम भवन चला गया ।३३०। इस दुःखद वृत्तान्त को सुनकर क्रोधोन्मत्त रावण ने मुझे बाँधने के लिये अपने प्रियपुत्र मेघनाद को भेजा ।३३१।

अभिलक्ष्योचितं कालं द्रष्टुं रावणमुत्सुकः
बद्धो भूत्वा गतस्तात राक्षसाधिपसंसदम् ।३३२।

अकृताचारनिर्वाहं दृष्ट्वा मां राजसंसदि
रावणोऽप्रच्छ्यद् वृत्तं मन्त्रिणा मे समासतः ।३३३।

श्रुत्वाऽपि मौनमास्थाय बन्धक्लेशेन पीडितम्
क्रुद्धं स्वं दर्शयामास जगाद रावणस्तदा ।३३४।

कस्त्वं हरेऽहरः प्राणान् कथमुद्यानरक्षिणाम्
लङ्कायां ते किमुद्देश्यं केन वा विधिनाऽऽगतः ।३३५।

नैवं रूपेण शक्नोति प्रवेष्टुं छद्मवानर
निरूपय द्रुतं तथ्यं यदीच्छस्यात्मनो हितम् ।३३६।

क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ।३३७।

उचित समय देखकर, रावण को देखने को उत्सुक, बँधकर मैं राक्षसेश की सभा में गया ।३३२। राजसभा में मुझे आचार निर्वाह न करता हुआ देखकर रावण ने संक्षेप में मन्त्री से मेरा वृत्तान्त पूछा ।३३३। सुनकर भी चुप रहकर, बन्धन दुःख से पीडित सा अपने को प्रदर्शित करने पर क्रुद्ध रावण स्वयं बोला ।३३४। वानर तुम कौन हो ? उद्यान रक्षकों के प्राण तुमने क्यों लिये ? लङ्का में तुम्हारा क्या उद्देश्य है ? तुम किस प्रकार आये ? ।३३५। कपट वानर इस रूप से तुम लङ्का में प्रवेश नहीं कर सकते हो, यदि अपना कल्याण चाहते हो तो तथ्य को शीघ्र बताओ ।३३६। क्रोध से मोह होता है, मोह से स्मृतिनाश, स्मृतिनाश से बुद्धिविनाश और बुद्धिविनाश से व्यक्ति नष्ट हो जाता है ।३३७।

विचिन्त्येदं वचस्तत्र पूर्वसिद्धं मनोविदाम्
कर्तुं क्रोधपरीतं तं प्रावोचमहमनाकुलः ।३३८।

अविज्ञाय कथं केन व्यवहर्त्तव्यमागते
मयि कुर्वन्नधिक्षेपं राजाचारं विलोपयेः ।३३९।

लङ्कात उत्तरे भागें किष्किन्धाख्यं मनोरमम्
अस्ति राज्यं कपीन्द्राणामासीद् वाली च शासकः ।३४०।

तस्मिन् यमगृहं याते भ्रातृदारापकर्षके
महीक्षिता नवेनाऽहं सुग्रीवेणास्मि प्रेषितः ।३४१।

निर्वर्त्य दैनिकं कृत्यं भवेयं समुपस्थितः
मत्वैवमशने रक्तस्ताडितस्तेऽभिरक्षकैः ।३४२।

कस्मिंश्चिदपि देशेऽयं विधिर्न राजसम्मतः
वानराश्च फलं भोक्तुं गृह्णीयू राजशासनम् ।३४३।

मनोवैज्ञानिकों के पूर्वसिद्ध इस कथन को सोचकर उसे क्रोधान्वित करने के लिए निर्भय मैं बोला ।३३८। आने पर किससे कैसा व्यवहार करना चाहिये यह न जानकर मेरे ऊपर आरोप करते हुए तुमने राजाचार का लोप किया है ।३३९। लङ्का से उत्तर किष्किन्धा नाम का वानरों का सुन्दर राज्य है, जहाँ बाली राजा था ।३४०। भाई की पत्नी के अपहर्ता उसके यमगृह चले जाने पर नये राजा सुग्रीव द्वारा मैं भेजा गया हूँ ।३४१। दैनिक कार्य समाप्त कर आपके पास उपस्थित होऊँ ऐसा मानकर खाने में लगा था कि तुम्हारे रक्षकों ने मुझे मारा ।३४२। वानर फल खाने की राजाज्ञा लें किसी भी देश में ऐसा राजसम्मत कानून नहीं है ।३४३।

कृते प्रतिकृतिं कुर्याद् हिंसिते प्रतिहिंसनम्
एतन्नयानुसारेण रक्षकास्ताडिता मया ।३४४।

ममोद्देश्यं तु लङ्कायां ज्ञातुं काङ्क्षसि चेच्छृणु
सन्देशं वानरेन्द्रस्य सुग्रीवस्य महात्मनः ।३४५।

राक्षसेन्द्र महाबाहो लङ्काया अधिनायक
लङ्काकिष्किन्धयोर्मैत्री वर्द्धतां या पुरा कृता ।३४६।

परदारापहारेण मेऽग्रजो निधनं गतः
अकरोस्त्वञ्च तत्पापं प्रायश्चित्तं तदाचर ।३४७।

कुकर्मोन्मूलनायैव रामो दाशरथिर्नृपः
दक्षिणं भारतं नूनमयोध्यातः समागतः ।३४८।

यस्य भार्या रहो नीता मायामाश्रित्य राक्षसीम्
सादरं सा पुनर्देया त्वया रक्षोहितैषिणा ।३४९।

किया पर प्रतिकार और घात पर प्रतिघात करना चाहिए इस नीति के अनुसार मैंने रक्षकों को मारा ।३४४। लङ्का में मेरे उद्देश्य को यदि सुनना चाहते हो तो वानरराज सुग्रीव का सन्देश सुनो ।३४५। हे लङ्का के अधिनायक, महाबाहु, राक्षसराज रावण, लङ्का और किष्किन्धा की मित्रता, जो पहले की गई थी, बढ़े ।३४६। परदारा का अपहरण करने के कारण मेरा बड़ा भाई बाली मृत्यु को प्राप्त हुआ । तुमने भी वह पाप किया है, प्रायश्चित्त करो ।३४७। दशरथ पुत्र राजा राम निश्चय ही कुकर्मों के उन्मूलन करने के लिये अयोध्या से दक्षिण भारत आये हैं ।३४८। राक्षसी माया का सहारा लेकर एकान्त में तुमने जिसकी पत्नी का अपहरण किया, राक्षस हितैषी तुम्हें उसे सादर पुनः लौटा देनी चाहिये ।३४९।

अयमेवास्ति सन्देशो यदर्थमहमागतः
दुष्प्रवेश्यां पुरीं लङ्कां कल्पनायां तवस्थिताम् ।३५०।

दूतोऽहं वानरेशस्य राक्षसेशं समागतः
कुरुतात् समुदाचारं दृष्ट्वा मां बन्धनेस्थितम् ।३५१।

श्रुत्वेदं मे वचस्तूर्णं सर्पिषोषर्बुधो यथा
प्रज्वलनन्समुवाचेत्थं रावणः क्रोधमूर्च्छितः ।३५२।

नालं यो रक्षितुं भार्यां मतिर्यस्य पलायने
परामृशति सुग्रीवो हन्तैषा मे विडम्बना ।३५३।

दारा राज्यं धनं मित्रं राष्ट्रं कोशो बलं तथा
वीरार्थं नित्यमेतानि वीरभोग्या वसुन्धरा ।३५४।

श्रुतं रामस्य साहाय्यात् भार्यार्थं रुदतो बहु
घातयित्वा च मे मित्रं सुग्रीवः प्रभुतां गतः ।३५५।

यही सन्देश है जिसके लिये तुम्हारी कल्पना में ही दुष्प्रवेश्य लङ्का में मैं आया हूँ ।३५ । मैं वानरेन्द्र का दूत हूँ, राक्षसेन्द्र के पास आया हूँ, मुझे बन्धन में देख उचित आचार का पालन करो ।३५१। मेरे इस कथन को सुनकर घी से अग्नि के समान जलता हुआ क्रोधपरीत रावण शीघ्र मुझसे इस प्रकार बोला ।३५२। जो पत्नी की रक्षा नहीं कर सकता, भागने में ही जिसकी बुद्धि है ऐसा सुग्रीव मुझे सलाह दे रहा है, यह विडम्बना ही है ।३५३। दारा, राज्य, धन, मित्र, राष्ट्र, खजाना और सेना ये सब सदा वीरों के लिये है, वसुन्धरा वीरभोग्या है ।३५४। पत्नी के लिये खूब रो रहे राम की सहायता से, मैंने सुना, मेरे मित्र बाली को मरवा कर सुग्रीव राजा बन गया ।३५५।

परं स्मरतु सुग्रीवः शून्यं शून्येन योजितम्
शून्यमेव भवेत्तद्वत् मैत्री सुग्रीवरामयोः ।३५६।
निशम्येत्थं वचस्तस्य दर्पेण हतचेतसः
धिक्कुर्वन्नब्रुवं तञ्च क्रोधमोहसमन्वितम् ।३५७।
कच्चिद् रावण जानासि रामं सद्धर्मसेविनम्
श्रुतं वा किं त्वया कच्चिद् यतोधर्मस्ततोजयः ।३५८।
एवं बहुविधैर्वाक्यैर्जाते निर्भर्सिते तदा
निर्घृणेन मदान्धेन ख्यापितं स्वयशो बहु ।३५९।
यक्षगन्धर्वनागानां जेता विबुधरक्षसाम्
कैलासोत्थापकश्चास्ति बहुधा तेन वर्णितम् ।३६०।
अस्मिन्क्रमे यदा तेन निन्दितं भवतां बलम्
तदैवाज्ञासिषम् तात जातोऽस्मिन् स्मृतिविभ्रमः ।३६१।

किन्तु सुग्रीव सोचे कि शून्य को शून्य से जोड़ने पर जैसे शून्य ही होता है, वैसे ही राम-सुग्रीव की मित्रता होगी ॥३५६॥ अहंकार से हत बुद्धि उसकी इस बात को सुनकर, क्रोध-मोह युक्त उसको धिक्कारता हुआ मैं बोला ॥३५७॥ हे रावण सद्धर्म सेवक राम को क्या तुम जानते हो ? और तुमने कहीं सुना है क्या ? कि जहाँ धर्म है वही विजय है ॥३५८॥ इस प्रकार की अनेकों बातों के होने तथा उसकी भर्त्सना होने पर भी उस मदान्ध ने अपने यश का अनेकधा बखान किया ॥३५९॥ उसने बहुधा बताया कि वह यक्ष, गन्धर्व, नागों का विजेता है, देवों-दानवों का जेता है, और उसने कैलास उठाया है ॥३६०॥ इसी क्रम में जब उसने आपकी शक्ति की निन्दा की तभी मैंने जान लिया कि इसमें स्मृति लोप हो गया है ॥३६१॥

सहासं तत आरब्धं मया ते गुणकीर्तनम्
कथितश्च पुनस्तत्र रावणो लोकरावणः ।३६२।

मिथिलामभिजानासि किं वा शाङ्करं धनुः
किं वा त्रिशिरसा साकं जानासि खरदूषणौ ।३६३।

अरे वाचाल मायाविन् ख्यापयन् स्वगुणान् बहु
कथं रामप्रतापाग्नौ व्यर्थं त्वं शलभायसे ।३६४।

कर्तुमिच्छसि किं लङ्कां पाप पापाविलां पुरीम्
विरमैतेन कृत्येन निन्द्यनात्मयश:प्रिय ।३६५।

देहि रामाय तद्भार्यां भूत्वा च शरणागतः
अन्यथा नास्ति कल्याणं लङ्कायास्तव दुर्मते ।३६६।

श्रुत्वा वचो भयोक्तं स बुद्धिभ्रष्टो व्यजायत
आज्ञापयद् वधार्थं मे राक्षसान् क्रूरकर्मणः ।३६७।

तब हँसते हुये मैंने आपके गुणों का वर्णन प्रारम्भ किया और लोक को रुलाने वाले रावण से कहा ॥३६२॥ क्या मिथिला को जानते हो अथवा शङ्कर की धनुष को जानते हो? अथवा त्रिशिरा के साथ खर-दूषण को जानते हो ? ॥३६३॥ अपने गुणों को अतिख्यापित करने वाले अरे मायावी, वाचाल राम को प्रतापरूपी आग में तुम क्यों पतङ्गा बन रहे हो ॥३६४॥ अरे पापी ! तुम लङ्का को क्यों पाप से मलिन करना चाहते हो ? हे स्वयशःप्रिय रावण इस निन्दनीय कार्य से विरत होवो ।३६५। शरणागत होकर राम को उनकी पत्नी लौटा दो, अन्यथा हे दुर्बुद्धि ! तुम्हारी लङ्का का कल्याण नहीं है ॥३६६॥ मेरी इस बात को सुनकर वह बुद्धिभ्रष्ट हो गया और क्रूरकर्मी राक्षसों को मेरा बध करने के लिये आज्ञा दे दी ॥३६७॥

तस्मिन्क्षणे समुत्थाय बुद्धियुक्तो विभीषणः
अवध्योऽस्ति सदा दूत इत्युक्त्वा सन्न्यरोधयत् ।३६८।

आवेष्टय शणवस्त्रैर्मे पुच्छं स्यादग्नियोजितम्
कृतवान्निर्णयं तत्र बुद्धिभ्रष्टेन तत्क्षणम् ।३६९।

विनाशस्यास्त्ययं कालो बुद्धिभ्रष्टस्य दुर्मतेः
चिन्तयन्नसुरस्यैवं निपुणं तं निरैक्षिषि ।३७०।

नूनमेष महासत्त्वः प्राज्ञो वाग्मी विचक्षणः
सोत्साहश्च प्रगल्भश्च शस्त्रे शास्त्रेऽपि निष्ठितः ।३७१।

नूनमस्मिन् विराजन्ते धीरता धारयिष्णुता
दृढता बुद्धिवैशद्यमापत्क्लेशसहिष्णुता ।३७२।

विजेतेन्द्रस्य योद्धाऽयं शम्भवे दत्तमस्तकः
युगपद् बहुनारीणामयमस्ति प्रियङ्करः ।३७३।

उस समय उठकर सुबुद्ध विभीषण दूत सदा अवध्य होता है, ऐसा कहकर निवारित किया ।।३६८।। बुद्धिभ्रष्ट उसने निर्णय किया, इसकी पूछ सन और कपड़े से वेस्ष्टित कर उसमें आग लगा देनी चाहिए ।३६६। नष्टप्रज्ञ इस दुर्बुद्धि के विनाश का यह समय आ गया है, ऐसा सोचता हुआ मैंने उसे भलीभांति देखा ।।३७०।। निश्चय ही यह महासत्त्व, प्राज्ञ वाक्पटु, विद्वान, उत्साह सम्पन्न, ढीठ, शस्त्र और शास्त्र में पारङ्गत है ।।३७१।। इसमें निश्चय ही धैर्य, सहनशक्ति, दृढ़ता, बुद्धि की विशदता आपत्ति-क्लेश को सहिष्णुता भी विद्यमान है ।।३७२।। यह योद्धा इन्द्र का विजेता, है इसने शिव को मस्तक चढ़ाया है, यह एक साथ अनेक सुन्दरियों का प्रिय करने वाला है ।।३७३।।

गुणाः सर्वे विराजन्ते रावणेऽस्मिन् महीक्षिताम्
क्वचिदस्मिन् विनम्रत्वं स्याद् वा स्वेन्द्रियनिग्रहः ।३७४।
दम्भमानमदैर्युक्तो भविताऽयं विनाशकः
स्वकीर्तेः स्वकुलस्यापि लङ्कायाश्च विशेषतः ।३७५।
ब्रह्मक्षत्रसमायोग एकस्मिन् दुर्लभो भुवि
तस्याप्यादर्शरूपोऽयं हन्त शीघ्रं विनंक्ष्यति ।३७६।
एवञ्चिन्तयतः पुच्छे राक्षसा मेऽभिवर्द्धिते
आवेष्टय स्निग्धकार्पासैरग्निना समयोजयन् ।३७७।
ज्वलन्तं मां निरीक्ष्यैवं यदा हृष्टाः सुरद्विषः
विमुक्तबन्धनो भूत्वा गतोऽहं भवनोपरि ।३७८।
तदानीं किन्नु वक्तव्या राक्षसानां मनःस्थितिः
चीत्कारं कुर्वतां तत्र दर्शं दर्शं शिखिच्छटाम् ।३७९।

इस रावण में राजाओं के सारे गुण विद्यमान है । यदि इसमें कहीं विनम्रता और स्वात्म इन्द्रिय निग्रह होता तो क्या बात थी ।३७४। दम्भ, मान और मद से युक्त यह अपने यश, अपने वंश और विशेषकर लङ्का का विनाशक होगा ।।३७५।। एक ही व्यक्ति में ब्रह्म-क्षत्र का संयोग संसार में दुर्लभ है, उसका भी यह आदर्श रूप है, कष्ट है शीघ्र ही नष्ट हो जायेगा ।।३७६।। ऐसा सोचते रहते ही बढ़ी हुई मेरी पूछ में राक्षसों ने कपड़े-घी-तेल आदि लपेट कर आग लगा दी ।।३७७।। इस प्रकार जलते हुए मुझे देखकर जब राक्षस प्रसन्न हो रहे थे, बन्धन मुक्त होकर मैं भवनों पर चढ़ गया ।।३७८।। उस समय राक्षसों की मनः स्थिति को क्या कहना चाहिए, जो अग्नि की शोभा देख-देखकर चीत्कार कर रहे थे ।।३७९।।

दग्धमेतन्नव हर्म्यं दग्धश्च मदिरालयः
दग्धं च विपणिस्थानं हन्त दग्धं च मे गृहम् ।३८०।
गुप्तप्रणिधिरेवाऽयमादित्यानां न वानरः
अस्माद् वायुसखो नूनं भस्मसात्कुरुते पुरम् ।३८१।
अलमस्तु विचारेण केनाप्यन्येन वा मुधा
नूनं राजकृतैः पापैर्ज्वलिता पूर्मुहुर्मुहुः ।३८२।
शृण्वन्नुत्साहसम्पन्नो वचो लङ्कानिवासिनाम्
नूनं माता भवेद्दग्धा विवर्णश्चिन्तयाऽनया ।३८३।
तत्क्षणं चिन्तयामास न दग्धोऽहं शिखावता
यस्माद्धेतोरयं जातस्तस्मान्माता सुरक्षिता ।३८४।
भवतोऽत्र प्रसादेन कृत्वा प्रज्वलितां पुरीम्
वगाह्याब्धौ गतो मातुः स्थानं विगतरक्षकम् ।३८५।

इस नये भवन को जला दिया, मदिरालय को जला दिया, बाजार के स्थान भी जला दिया, आह मेरा घर जला दिया ।।३८०।। निश्चय ही यह देवों का गुप्तचर है, वानर नहीं, इसलिये वायुमित्र (वायु की सहायता से) अग्नि नगर को जला रहा है ।।३८१।। कोई अन्य विचार करना व्यर्थ है, निश्चय ही राजकृत पाप से नगरी निरन्तर जलती जा रही है। नगरी एकदम जल गई ।।३८२।। लङ्का निवासियों के इन कथनों को को सुनता हुआ उत्साह सम्पन्न मैं इस चिन्ता से हतप्रभ हो गया कि माता जानकी भी जल जायेंगी ।३८३।। फिर मैंने तत्काल सोचा कि अग्नि ने मुझे नहीं जलाया, जिस कारण यह हुआ, उसी से माता भी सुरक्षित होंगी ।।३८४।। आपकी कृपा से नगरी को जलाकर, समुद्र में अवगाहन कर रक्षकशून्य माँ के स्थान पर गया ।।३८५।।

सन्देशं प्रत्यभिज्ञानं मातर्मे देहि सत्वरम्
इत्युक्ते मयि सा देवी कातरा खं निरैक्षत ।३८६।

दत्त्वा चूडामणिं मह्यं समदिक्षत् रुजातुरा
दर्शनाकाङ्क्षया पत्युर्जीवन्त्यस्मि रिपोर्गृहे ।३८७।

मासद्वयान्तरे कच्चिद् रामो राजीवलोचनः
आयास्यदिह लङ्कायां प्राप्स्यन्मां स च जीविताम् ।।३८८।।

ओमित्यतः शमित्यन्तं वृत्तं भवत्पुरःसरम्
निवेदितं प्रगृह्णातु शिष्टां चूडामणिं प्रभो ३८९।

एवमुक्त्वा गते तूष्णीं हनूमति रघुनन्दनः
प्रगृह्णन् तदभिज्ञानमभवत्खोन्मुखलोचनः ।३९०।

हे माँ, शीघ्र ही मुझे सन्देश और दूसरा अभिज्ञान (अंगूठी आदि) दीजिये, मेरे ऐसा कहने पर कातर देवी आकाश की ओर देखने लगीं ।।३८६।। मुझे चूड़ामणि देकर दुःखपीड़ित उन्होंने सन्देश दिया कि पति के दर्शन की आकांक्षा से ही शत्रु के भवन में जीवित हूँ ।।३८७।। कमललोचन राम यदि कहीं दो मास के अन्दर इस लङ्का में आ जायेंगे तो मुझे जीवित पायेंगे ।।३८८।। इस प्रकार आदि से अन्त तक यह सब पूरा वृत्तान्त मैंने आपको निवेदित किया, हे भगवन शेष यह चूड़ामणि लीजिये ।।३८९।। ऐसा कहकर हनुमान के चुप हो जाने पर रघुनन्दन राम प्रत्यभिज्ञान चूड़ामणि लेकर आकाश की ओर देखने लगे ।।३९०।।

श्रुत्वा वृत्तमशेषतो हनुमता सञ्जातसीतास्मृतिः
रामस्तं पवनात्मजं निजहृदाश्लिष्यन्मुदाऽवोचत ।
जातोऽहं हनुमन्नृणी तव सदा काङ्क्षामि दातुञ्च न
विश्रामं लभतां कुरुष्व च ततो यात्रां विजेतुं रिपुम् ।।३६१

श्रीश्यामान्विसुन्दरोऽस्ति जनको माता च यस्याम्बिका
यः श्रीराजकिशोर आप्तचरितः शाण्डिल्यवंशोद्भवः
आचार्योदयराजशर्मविदुषः शिष्यस्तदीये महा–
काव्ये चारुणि राघवेन्द्रचरिते सर्गोऽयमेकादशः ।३६२।

हनुमान से इस सारे वृत्तान्त को सुनकर, सीता स्मरण से युक्त राम उन पवन पुत्र को अपने हृदय से आलिङ्गित करते हुए प्रेम से बोले हनुमान मैं तुम्हारा सदा के लिये ऋणी हो गया, कुछ देने की इच्छा भी नहीं है, विश्राम करो और फिर शत्रु को जीतने की यात्रा करो ।।३६ ।। जिनके पिता श्री श्यामसुन्दर और माता अम्बिका हैं, शाण्डिल्य गोत्रोत्पन्न, आप्तचरित जो श्री राजकिशोर हैं, विद्वान आचार्य उदयराज शर्मा के शिष्य उनसे रचित सुन्दर राघवेन्द्र चरित महाकाव्य में यह ग्यारहवां सर्ग पूर्ण हुआ ।।३६२।।

द्वादशः सर्गः

प्रसन्नचित्तः कृतदर्शकर्मा रघूत्तमः सानुशिलोपविष्टः
महोऽधिपूर्वं सहसा ददर्श गते विवस्वत्युपवारुणीदिशम् ।१।
अमा न शीतांशुमुपैति निश्चितं न भास्करः सम्प्रति याति पूर्वाम्
न वा ग्रहीयाकृतिरेव काचित् कुतः समायाति विसारि धाम ।२।
विचिन्तयन्नेवमसौ मनस्वी वितर्कदोलाश्रितबुद्धिवृत्तिः
विनिश्चयं कर्तुमियेष यावत् तावत् स्फुटं ज्ञातमिदं महोनरः ।३।
कर्पूरगौरे वपुषि प्रकामं संतप्तरुक्मं च विडम्बयन्तम्
शरद्घनान्तःस्थितविद्युदाभं धृत्वा समायान्तमथोपवीतम् ।४।
हस्तस्थकरतालरवावकीर्णं वीणास्वनापूरितमन्तरिक्षम्
कुर्वन्तमेतच्च जगत्पवित्रं नारायणायेति नमो गृणन्तम् ।५।

दर्शकर्म करके प्रसन्न मन राम पर्वतशिला पर बैठे हुए थे। भगवान सूर्य पश्चिम दिशा की ओर चले गये थे, सायंकाल, पूर्वदिशा में उन्होंने अकस्मात् एक तेज देखा ।१।। अमावस्या चन्द्रमा को नहीं प्राप्त करती, इस समय सूर्य भी पूर्व की ओर नहीं जा रहे हैं और न ही यह कोई ग्रह सम्बन्धित स्वरुप है, फिर यह फैलता हुआ तेज कहाँ से आ रहा है ।।२।। वितर्क के दोला पर आरूढ़ बुद्धि व्यापार मनस्वी राम ऐसा सोचते हुए निश्चय करना चाह रहे थे कि उन्होंने स्पष्ट जान लिया कि यह तेज तो मानव है ।।३। कर्पूर जैसे गौर शरीर पर तपाये हुये स्वर्ण सदृश, शरदकालीन मेघ में बिजली की चमक जैसे यज्ञोपवीत को धारण कर चले आ रहे ।।४।। हाथ में लिये करताल की ध्वनि से परिव्याप्त, वीणा की ध्वनि से अन्तरिक्ष को भरने वाले, इस संसार को पवित्र करते हुए, नारायण-नारायण इस नाम को जपते हुए ।।५।।

स्ववाग्विसर्गेन जनाघविप्लवं निजाकृतेः संसृतिदुःखनाशम्
कुर्वन्तमेवं च मुदंजनानां निरूपयामास मुनिं स नारदम् ।६।

अकारणं लोकसुखैक कारणं वियत्पथाक्रान्तममुं स राघवः
मुनिं समभ्यर्चयितुं प्रसन्नो जवेन पीठात्सहसोदतिष्ठत् ।७।

ध्वनिद्वयं प्रादुरभूत्तदानीं पूर्वापरीभावविशेषशून्यम्
नमोऽस्तु रामाय सलक्ष्मणाय नमाम्यहं ब्रह्मसुतं तपस्विनम् ।८।

आलिङ्गयामास मुनिः स रामं पादोन्मुखौ तस्य भुजौ निषिध्य
भुजान्तरश्लेषगतं द्वयोर्हृत् नाभूत्पृथक्स्थातुमलं कदाचित् ।९।

ततः कथञ्चित्प्रतिषिध्य नैजान्यश्रूणि रामः प्रमदोद्भवानि
मुनिं प्रतिष्ठाप्य पदौ विधूय जनिं स्वकीयं सफलीचकार ।१०।

अत्रान्तरे स्वागमनस्य हेतौ पृष्टेऽब्रवीद् राममुखाब्जदृष्टिः
निरुध्य भावान् सहसोद्भवान् मुनिः,
रामं विलोक्याखिललोकजिष्णुम् ।११।

अपनी वाणी के उच्चारण से लोगों ने पापों का शमन करने वाले, अपने स्वरूप से संसार के दुःख का नाश तथा लोगों में आनन्द पैदा करने वाले उन्हें राम ने 'नारद मुनि हैं' ऐसा समझा ॥६॥ संसार के सुख के एकमात्र कारण उन्हें आकाश से अकारण चले आते देख कर राघव राम मुनि की पूजा करने के लिये, प्रसन्न हो, शीघ्र ही सहसा अपने आसन से उठ खड़े हो गये ॥७॥ पूर्वापर भावविशेष से रहित उस समय दो ध्वनियाँ एक साथ उत्पन्न हुई लक्ष्मण समेत राम को नमस्कार है, ब्रह्मपुत्र तपस्वी को मैं प्रणाम करता हूँ ॥८॥ चरण छूने को बढ़े हुए राम के हाथों को रोककर उन मुनि ने राम को हृदय से आवेष्टित कर लिया, भुजाश्लिष्ट दोनों का हृदय कभी भी अलग होना नहीं चाह रहा था ।९। इसके बाद प्रमदोद्भव (पत्नि के वियोग से उत्पन्न-अतिशय आनन्द जनित) अपने आँसुओं को किसी प्रकार रोककर, मुनि को बैठाकर, पावों को धोकर अपने जन्म को राम ने सफल माना ॥१०॥ इसके बाद अपने आगमन का कारण पूछे जाने पर, राम-मुख-कमल को देखते हुए, सहसा उत्पन्न अपने भावों को रोककर, संसारजयी राम को देखकर नारद मुनि बोले ॥११॥

प्रभोऽदसीयां विसुखां दशां ते विलोक्य मे हृद् द्विदलं न जातम्
अतोऽत्रवक्तुं प्रयते कथञ्चित् मत्वा स्वयं तेऽन्वसुखस्य हेतुम् ।१२।

वचः प्रतिष्ठापयितुं मदीयं त्वया धृतं मानवरूपमेतत्
प्रियावियोगं सहमानमेवं दृष्ट्वा विलज्जेऽत्र कथं नराम ।१३।

सदाऽधिदुग्धोदधि योऽधितल्पे सुचिक्कणे शेषवपुःस्वरूपे
निद्राति लक्ष्म्या प्रतिसेव्यमानो दृषत्सु शेतेऽर्द्धवपुः कथं सः।१४।

ये ये त्वयैव प्रतिपालिताः स्युस्ते त्वामहो पीडयितुं प्रपन्नाः
विधेर्विधानं किमिदं विचित्रं भवान्यहं वा विजयो जयो वा ।१५।

स्वीयान् समुद्धारयितुं परेश त्वमागतोऽस्मिन् भुवि दीनबन्धो
सहैव संस्थापयितुं विलुप्तां पुनर्व्यवस्थां खलु मानवीयाम् ।१६।

उपक्रमो गाधिसुतस्य पूर्वं समुद्धृतिर्गौतमभामिनीया
श्रीजामदग्न्यस्य मदापहारो धरासुतोद्वाहविधिः समं ते ।१७।

हे प्रभो ! आपकी इस करण दशा को देखकर मेरा हृदय फट क्यों नहीं जाता ? आपके इस दुःख का कारण अपने को मानकर ही मैं यहाँ किसी प्रकार कुछ कहने का प्रयास कर रहा हूँ ॥१२॥ मेरे कथन की प्रतिष्ठा रखने के लिये तुमने यह मानव देह धारण किया है। इस प्रकार भार्या-वियोग सहते हुए तुम्हें देखकर, हे राम मैं क्यों न लज्जित हो रहा हूँ ॥१३॥ सदैव जो क्षीरसमुद्र में अतिचिकने शेषशरीर रूपी शैय्या पर लक्ष्मी से सेवित शयन करता है, वही पत्थरों पर अर्धशरीर (बिना पत्नी के अकेले) कैसे सो रहा है ॥१४। मैं विजय अथवा जय जो-जो तुमसे प्रतिपालित रहे वे ही तुम्हें पीड़ित करने के लिये तत्पर हो गये। भाग्य का यह विधान कितना विचित्र है ॥१५॥ हे दीनबन्धु, परमेश, अपने लोगों का उद्धार करने के लिये ही तुम इस धरती पर आये हो, साथ ही विलुप्त मनु की व्यवस्था को पुनः स्थापित करने के लिये भी (आये हो) ॥१६॥ हे भगवन् मैंने पहले से ही विश्वामित्र का प्रयास, गौतम पत्नी अहिल्या का उद्धार, परशुराम के मद का शमन, धरासुता जानकी का तुम्हारे साथ विवाह ॥१७॥

पितुर्निदेशाच्च वनेऽधिवासो जातस्ततः शूर्पणखाप्रसङ्गः
सीताहृतिर्हा मरणं पतत्रेरित्यादिवृत्तानि मयाश्रुतानि ।१८।
धरासुताया अनुसंविधित्साक्रमे च मैत्री कपिभिः समं ते
ज्ञातं नु सीरध्वजजां विचेतुं जग्मुश्च मे पूर्वमुखानुकारिणः ।१९।
ज्ञातं च तैर्ब्रह्मशिवप्रसादात् लब्धाशिषा दृप्तमनोरथेन
अपांसुलानां धुरिकीर्तनीया सीतापनीता खलु रावणेन ।२०।
अरुन्तुदा ते भृशमव्यवस्था समाप्तिमेष्यत्यचिरेण नव्याम्
परं विजेतुं विषमं स्वशत्रुं विधिर्विधेयो रघुनन्दनेन ।२१।
निशम्य वाचं समयानुकूलां सदर्थयुक्तामसदर्थशून्याम्
निगूढभावोपहितां मुनीरितामुवाच रामोऽर्थविदां वरेण्यः ।२२।
मुनेकृतार्थोऽस्मि तवानुकम्पावशंगतेनागमनेन नूनम्
भवादृशां भद्रकृतां वचांसि प्रसादचिह्नानि पुरः फलानि ।२३।

पिता के आदेश से वन में निवास, फिर हुए शूर्पणखा वृत्तान्त, सीताहरण गृध्रराज जटायु का वध ये सारे वृत्तान्त सुने हैं ॥१८॥ धरणीसुता के अनुसन्धान क्रम में वानरों से आपकी मैत्री तथा जनकनन्दिनी की खोज में जो मेरे पूर्वमुखानुकारी वानर गये हैं वह भी मैं जानता हूँ ॥ १९॥ मुझे यह भी ज्ञात है कि ब्रह्मा और शिव की प्रसन्नता वर प्राप्तकर उद्दाम मनोरथ रावण ने पुण्यात्माओं में अग्रणी सीता का हरण किया है ॥२०॥ तुम्हारी यह दशा मर्मभेदी है, किन्तु शीघ्र ही समाप्त होगी, परिणाम में भव्य होगी। और अपने विषम शत्रु को जीतने के लिये राम को व्यापार करना होगा ॥२१॥ मुनि से कही गयी, समयानुकूल, असद्भावशून्य और सदाशययुक्त, निगूढ भावों से भरी हुई बातों को सुनकर अर्थविदों में श्रेष्ठ राम बोले ॥२२॥ हे मुनि दया से परिपूर्ण आपके आगमन से मैं निश्चय ही कृतार्थ हो गया। आप जैसे कल्याणकारियों के वचन प्रसादयुक्त फल-पुरस्सर होते हैं ॥२३॥

गतानि मेऽघानि पुरार्जितानि यशोऽवरोधीनि च तापदानि
गतानि दूरं यदि कारणानि स्थास्यन्तिकार्याणि कियत्क्षणं हि २४।
अद्यप्रभृत्यापणिका अघानां समूलमेष्यन्ति विनाशभावम्
कर्मार्जितां दर्शयितुं स्वलेखां यास्यन्ति कीनाशपथातिथित्वम् ।२५
दृष्टेऽर्कबिम्बे तमसः स्थितिः क्व क्व चाभ्रमाला पवने प्रवाति
स्थाता दुराचारपरम्परा क्व प्रकर्षहेतौ भवतामुपस्थितौ ।२६।
अस्मिन्ननुक्रोशधिया यदुक्तं रघोरुदाराऽन्वयजे मयीत्थम्
स्वभाव एवैष भवादृशानां विपन्नशोकापनुदव्रतानाम् ।२७।
भवान् तदाज्ञापयितुं प्रकामं कार्यं मया सामयिकं यदस्ति
मत्प्रक्रमः स्याद् भवतोऽभिलाषादनन्तरं कृत्यविलास एव ।२८।
समीक्ष्य रामस्य वचोविदग्धतां निरीक्ष्य दुःखेऽपि च तत्सहिष्णुताम्
सीतापहर्तुर्निधनेच्छयाऽसावूचे मुनिर्दुःखनिराकरिष्णुः ।२९।

दुःखदायी, कीर्तिविरोधी मेरे पूर्वार्जित पाप नष्ट हो गये। यदि कारण दूर हो जाँय तो कार्य कितनी देर रुकेंगे ॥२४॥ आज से लेकर पापों के व्यापारी समूल नष्ट हो जायेंगे। कर्मोपार्जित अपनी रेखा दिखाने के लिये यमराज के पथ के अतिथि होंगे ॥२५॥ सूर्यमण्डल के दिखायी पड़ने पर अन्धकार की स्थिति कहाँ, वायु के बहने पर मेघमाला कहाँ उत्कर्ष के कारण आपकी उपस्थिति हो जाने पर दुराचार परम्परा कहाँ रुक सकती है ॥२६॥ रघु के उदार वश में पैदा हुए इस मेरे प्रति आपने जो करुणा बुद्धि से कहा है, दुःखी लोगों के नाश का व्रत रखने वाले आप जैसों का यह स्वभाव ही है ॥२७॥ अतः आप मुझे आज्ञा दें कि इस समय मेरे लिये क्या सामयिक है? आपकी इच्छा के बाद मेरा प्रयास कार्यविलास मात्र हो होगा ॥२८॥ राम की वाग्विदग्धता देखकर तथा दुःख में भी उनकी सहिष्णुता जानकर, सीताहारी रावण के संहार की इच्छा से, दुःख निराकरण चाहने वाले वह मुनि नारद बोले ॥२९॥

स्वाहास्वधारूपमयी सुधाया हिंकाररूपा प्रणवात्मिका वा
स्वरात्मिकोच्चारयितुं न शक्या या सैव सृष्टिस्थितिनाशहेतुः ३०
न सद् न वाऽसद् न च वोभयात्मा यतो मताऽनिर्वचनीयरूपा
संक्रीडितुं सा बहुधा बिभर्ति पुंसः स्वरूपं बहुशो नटीव ।३१।
निर्माय दैत्यान् मधुकैटभादीन् शुम्भं निशुम्भं महिषासुरं वा
क्वचित्स्वयं हन्ति क्वचित् परैः सा सर्गद्विषो घातयति प्रचण्डान्
उत्पाद्य तस्मिन् क्रम एव दैत्यौ विप्रात्मजौ रावणकुम्भकर्णौ
निमित्तरूपेण विधाय सीतां त्वयाऽऽत्मरूपां च जिघांसति द्वौ ३३
तस्माद् व्रज त्वं शरणं तदीयं या संस्थिता व्याप्य जगत् समस्तम्
सर्वस्य चाद्या त्रिगुणात्मिका सा क्वचिद् विलक्ष्या क्वचिदप्यलक्ष्या
या तप्तचामीकरवद् विभाति या मातुलिङ्गं सगदं बिभर्ति
दधाति खेटं शुभपानपात्रं चतुर्भुजा सा शरणं नरेन्द्र ।३५।

जो स्वाहा, स्वधामयी है, जो सुधा, हिंकाररूपा या प्रणवात्मिका है, जो स्वरात्मिका (व्यञ्जन के बिना) उच्चारण के योग्य नहीं है वही सृष्टि स्थिति और विनाश का कारण है ॥३०॥ क्योंकि न तो वह सत् है, न असत् और न उभयात्मिका, अतएव अनिर्वचनीया है, क्रीडा करने के लिये वही नटी के समान अनेकधा पुरुषों का रूप धारण करती है ।३१। सृष्टि के, संसार के द्रोही, मधु-कैटभ आदि अथवा शुम्भ, निशुम्भ, महिषासुर आदि दैत्यों का निर्माण कर वही कहीं स्वयं, कहीं दूसरों के द्वारा उन्हें मारती है. ऐसे प्रचण्डों का संहार करती है ॥३२॥ उसी क्रम में ब्राह्मपुत्र रावण और कुम्भकर्ण का निर्माण कर अपने ही स्वरूप निमित्तभूत सीता को बनाकर तुम्हारे माध्यम से उन दोनों को मारना चाहती है ॥३३॥ इसलिये तुम उसकी शरण में जाओ जो सारे जगत् को व्याप्त कर अवस्थित है । त्रिगुणात्मिका वह सबकी प्रथमा है, कहीं लक्ष्य है कहीं अलक्ष्य ॥३४॥ जो तप्तसुवर्ण के समान शोभित होती है, गदा समेत जो मातुलिङ्ग धारण करती है, खेट और शुभपानपात्र धारण करती है, जो चतुर्भुजा है, राजन् ! उसकी शरण में जाँय ॥३५॥

या मूर्ध्नि लिङ्गं फणिनं बिभर्ति योनिं तथा काञ्चनभूषणा या
या पूरयामास महेन शून्यं सा देवता राम तवास्तु लक्ष्यम् ।३६।
त्रिधा महाशब्दयुता च सैषा कालीति लक्ष्मीति सरस्वतीति
सैकाऽपि भिन्ना व्यपदेशभेदात् श्यामेति दुर्गेति च कौशिकीति ३७
व्रतं प्रसिद्धं नवरात्रसंज्ञं प्रारप्स्यते श्वो रघुवंशवीर
आराध्य तस्मिन् भुवनेश्वरीं तां हतार्दारं रावणसंज्ञकं तम् ।३८।
एतावदुक्त्वा विरतेऽजसूनौ वीरानुभावाश्रयरामभद्रः
तां सिद्धिदात्रीं मनसा प्रणम्य मुनिं व्रतोद्योगविधौ न्ययुङ्क्त ३९
कर्ता मनस्वी यदि रामभद्रः स्याच्चेत् सुमित्रातनयः सहायः
आचार्यता स्याद् यदि नारदस्य कथं न सिद्धिर्वशतामुपेयात् ।४०
विधाय मूर्तिं च पराम्बिकाया. प्राणान्प्रतिष्ठाप्य स राघवेन्द्रः
गन्धाक्षतैः कालभवैः प्रसूनैः शाण्डिल्यपत्रैर्विधिनाऽभ्यपूजयत् ।४१

जो सिरपर लिङ्ग, सर्प और योनि धारण करतीहै, जो स्वर्णाभूषण केसमान हैं,अपने तेज से जिसने आकाश को भर दिया है, हे राम ! वह देवता तुम्हारे लिये लक्ष्य-दृश्य हो ॥३६॥ महाशब्द से युक्त वह महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती है । एक भी वह नामभेद से भिन्न श्यामा, दुर्गा और कौशिकी है ॥३७॥ हे रघुवंशवीर कल से प्रसिद्ध नवरात्र नामक व्रत प्रारम्भ होगा, उसमें उस भुवनेश्वरी की आराधना कर शत्रु रावण का वध करो ॥३८॥ इतना मात्र कहकर ब्रह्मपुत्र नारद के चुप हो जाने पर, वीरतेजोयुक्त राम ने सिद्धिदायिनी देवी को मन से प्रणामकर व्रत की कार्यविधि केलिये मुनिको नियुक्त किया ।३९। यदि व्रत-कर्ता मनस्वी रामभद्र हों, सुमित्रानन्दन सहयोगी हो, और यदि नारद का आचार्यत्व रहे तो फिर सिद्धि क्यों वशवर्तिनी नहीं होगी ॥४०॥ उन रामभद्र ने पराम्बा की मूर्ति बनाकर, प्राणप्रतिष्ठा कर गन्ध, अक्षत, ऋतुजनित फूलों और बिल्वपत्रों से सविधि पूजा की ॥४१॥

आघ्राप्य धूपं परिदर्श्य दीपं नैवेद्यमेवं विनिवेद्य भक्त्या
विधाय तत्रापचितिं स रामो रक्तोत्पलैस्तां समतूतुषच्च ।४२।

एवं व्रतं धारयतो जयार्थं सप्त व्यतीयुश्च दिनानि तस्य
अन्येद्युरेवं परिलभ्य चाष्टमीमियेष तां पूजयितुं निशीथे ।४३।

सर्वात्मना मातृवशंगतेन श्रद्धातिरेकादवशं गतेन
नाम्नां सहस्रैश्च पराम्बिकायास्तामर्चितुं तेन समिष्यतेस्म ।४४

आदाय रक्तोत्पलपुष्पमेकं नमोऽस्तु देव्यायिति वाक्यरूपम्
उदीर्य तस्यै च समर्पयन् सः प्राप्नोत्तदेकोनसहस्रपुष्पम् ।४५।

क्रियाविघातं परिलक्ष्यरामः सस्मार बाल्ये बहुधा श्रुतं सः
राजीवनेत्रेति सरोरुहाक्ष सम्बोधनं तज्जननीप्रयुक्तम् ।४६।

राजीवनेत्रोहमतः स्वनेत्रं समर्पयिष्येऽथ विचिन्त्य सद्यः
तीक्ष्णाशुगेनाशु समुद्दिधीर्षुर्दुर्गां जयाख्यां पुरतो ददर्श ।४७।

धूप को आघ्रापित कर, दीप दिखाकर और इसी प्रकार भक्तिपूर्वक नैवेद्य निवेदित कर देवी की पूजा कर रामचन्द्र जी ने लालकमलों की (पुष्पाञ्जलि) से उन्हें प्रसन्न किया ।।४२।। इस प्रकार विजय के लिये व्रत धारण कर रहे उनके सात दिन बीत गये दूसरे दिन अष्टमी तिथि प्राप्तकर देवी की निशीथपूजा का यत्न किया ।।४३।। पूर्णतया माँ के वशगत श्रद्धातिरेक से अवश राम ने पराम्बा की सहस्रनामों से अर्चना का प्रयास किया ।।४४।। एक रक्तकमल फूल लेकर 'देव्यै नमः' इस वाक्य को कहकर देवी को समर्पित करते हुए उन्होंने देखा कि एक कम एक हजार पुष्प हैं ।।४५।। क्रिया में विघ्न देखकर राम ने स्मरण किया कि बाल्यकाल में उनकी माता ने उन्हें बार-बार राजीवनेत्र, सरोरुहाक्ष का सम्बोधन किया था, उन्होंने ऐसा बहुधा सुना भी था ।।४६।। मैं राजीवनेत्र हूँ, इसलिये अपना नेत्र ही माँ को अर्पित कर दूँगा, ऐसा सोचकर शीघ्र ही तीक्ष्ण बाण से आँख निकालने की इच्छा कर ही रहे थे कि जयानाम्नी दुर्गा को सामने देखा ।।४७।।

अलं श्रमेणालमलं श्रमेण समागता भक्तिमिमां निरीक्ष्य
परीक्षितुं धैर्यमथाशुबुद्धितां मयैकमम्भोरुहमुद्धृतं ते ।४८।
कृथा न खेदं समया च मां त्वं पूर्णा समज्या तव राघवेन्द्र
अभीप्सितं ब्रूहि विना विलम्बं संदर्शनं मेऽस्ति सदा ह्यमोघम् ४६
श्रुत्वा वचस्तां मनसाऽप्यगम्यां भक्तार्तिहन्त्रीं सदयां सुरूपाम्
स्वाभीष्टमूर्तिं सहसा निरीक्ष्य हर्षाश्रुभिः पूरितलोचनः सः ।५०
कालाभ्रकान्ति शतपत्रनेत्रां मौलीन्दुरेखां च मृगाशनस्थाम्
सशङ्खचक्रामसिवाणयुक्तां दुर्गां जयां वीक्ष्यननाम रामः ।५१।
निरुध्य कृच्छ्रेण हृदर्णवस्थां भावोर्मिराशिं खलु दर्शनोत्थाम्
सीतां विपन्नामनुचिन्तयन् सः कृताञ्जलिः कृत्यविदित्युवाच।५२
अनेकजन्मार्जितपुण्यराशेः समुच्चयाद् दृष्टिपथं गते मे
मातस्तवेयं करुणा प्रसह्य वाचंयमं मां सहसा विधत्ते ।५३।

अरे रुको, रुको, तुम्हारी इस भक्ति को देखकर मैं स्वयं आ गयी हूँ। तुम्हारे धैर्य और तात्कालिक बुद्धि की परीक्षा करने के लिये ही मैंने तुम्हारा एक कमल निकाल लिया था ॥४८॥ हे राघवेन्द्र ! मेरी आज्ञा है. खेद न करो, तुम्हारी क्रिया-कीर्तिपूर्ण हो गयी। अबिलम्ब अपनी अभीष्ट वस्तु माँग लो मेरा दर्शन सदा अमोघ है ॥४६ वाणी को सुन कर मनसा से भी अगम्य भक्तपीड़ाहारिणी, सदया, सुरूप, अपने अभीष्ट को साक्षात् मूर्ति माँ को देखकर राम हर्षाश्रु से नेत्रपूरित हो गये ॥५०॥ प्रलयकालीन मेघ के समान कालकान्ति कमल नेत्र, शिर पर चन्द्रलेखा धारण किये हुई, सिंहारूढ सशङ्खचक्रधारिणी खड्ग वाण युक्त जयाख्या दुर्गा को देखकर राम ने प्रणाम किया ॥५१॥ दर्शनजनित हृदयसमुद्र में उठ रही भावतरङ्गो को कठिनाई से रोककर, सीता की विपन्न दशा का स्मरण करते हुए, कार्यविद् राम ने हाथ जोड़ कर कहा ॥५२॥ अनेक जन्मो से अर्जित पुण्यराशि के योग से मेरी दृष्टिपथ में आई हुई जननि ! यह तुम्हारी करुणा मुझे सहसा बलात् मूक बना रही है ॥५३॥

अये समेषां हृदि संस्थिते त्वं जानासि भावं हृदि संस्थितं मे
तत् किं प्रवृत्तं कुरुषेऽम्ब वक्तुं शक्तो न वक्तुं निजभावनां यः ५४

पितुर्निदेशाद् वनमागतोऽहं मनुष्यताया अवने रतोऽहम्
सीता हृता राक्षसरावणेन सर्वेशि किं ते कथयानि वृत्तम् ।५५।

मातर्नियोगान्मुनिनारदस्य कृपाकृतो विश्वसृजः सुतस्य
तवांघ्रिपूजानिरतः सुतस्ते कृपां त्वदीयामधिगन्तुमीष्टे ।५६।

त्वमेव तच्चिन्तय मेऽनुकूलं यदस्ति योग्यं समयोपयुक्तम्
मातस्तवाज्ञैव वरं मदीयं सङ्कल्पितं मेऽपि न ते परोक्षम् ।५७

निशम्य वाचं रघुनन्दनस्य निसर्गतः सत्त्वगुणान्वितस्य
विज्ञाय भावं रघुपुङ्गवीयं शनैरगादीद् विजया विहस्य ।५८।

रूपस्य भावस्य च गोपने त्वं राम प्रकृत्या निपुणोऽसि नूनम्
त्वयाऽऽदृता हार्दवराटकेन बद्धा सती ते वचनं ददामि ।५९।

अयि सबके हृदय में रहने वाली माँ, मेरे हृदय में वर्तमान भाव को तुम जानती हो, माँ जो अपनी भावना को कहने में असमर्थ है उसे कहने के लिए क्यों प्रवृत्त कर रही हो ।।५४।। पिता की आज्ञा से मैं वन में आया हूँ, मनुष्यता की रक्षा में लगा हुआ हूँ। राक्षस रावण ने सीता का अपहरण कर लिया है, सर्वेश्वरि तुमसे क्या समाचार बताऊँ ।५५। अयि माँ! विधाता के पुत्र, कृपा करने वाले मुनि नारद के आदेश से तुम्हारा पुत्र तुम्हारी चरण पूजा में लगा है, तुम्हारी कृपा पाना चाहता है ।।५६।। हे माँ, समयोपयोगी मेरे अनुकूल जो भी हो उसे तुम्ही विचारो, हे माँ! तुम्हारी आज्ञा ही मेरा वर है और मेरी इच्छा भी तुमसे छिपी नहीं है ।।५७।। स्वभावतः सत्त्वगुणोपेत रघुनन्दन की वाणी सुनकर रघुश्रेष्ठ राम के भावों को जानकर, हँसकर धीरे से विजया देवी बोली ।।५८।। राम ! निश्चय ही तुम रूप और भाव को छिपाने में स्वभाव से निपुण है, तुमसे आदृत, भावरज्जु से बँधी मैं तुम्हें वचन देती हूँ ।।५९।।

उन्मूल्य शत्रुं विजयस्व युद्धे पुनः पवित्रामधिगम्य सीताम्
पुरीमयोध्यामनुजेन साकं गत्वा चिरं राज्यसुखं लभस्व ।६०।
प्रीतः स रामो वरदानलाभाद् यावद् विनम्रः प्रणनाम देवीम्
तावत् स्वभानिर्जितविद्युदाभा जया जवेनान्तरिता बभूव ।६१।
प्रतिविहितसपर्यो रामचन्द्रस्तदानीं
मुनिवरमपि नत्वा सादरं तं विसर्ज्य
असुरपतिजयार्थं सैन्यसम्प्रेषणाय
कपिपतिमपि तूर्णं लक्ष्मणेनादिदेश ।६२।
श्रीश्यामान्वितसुन्दरोऽस्ति जनको माता च यस्याम्बिका
यः श्रीराजकिशोर आप्तचरितः शाण्डिल्यवंशोद्भवः
यन्मित्रं ह्यवधेशनामकसुधीस्तस्य प्रकाण्डे महा–
काव्ये चारुणि राघवेन्द्रचरिते सर्गोऽगमद्द्वादशः ।६३।

युद्ध में शत्रु का नाश कर विजयी बनो, फिर से पवित्र सीता को प्राप्तकर लक्ष्मण समेत अयोध्या नगरी जाकर दीर्घकाल तक राजसुख का भोग करो ।।६०।। वरदान की प्राप्ति से प्रसन्न राम ने जब तक झुक कर देवी को प्रणाम किया तब तक अपनी कान्ति से विद्युत् कान्ति को तिरस्कृत करने वाली जया देवी अन्तर्धान हो गई ।।६१। देवी की पूजा कर उस समय रामभद्र ने सादर मुनिश्रेष्ठ को भी प्रणाम कर उन्हें विदा किया और दैत्याधिपति रावण पर विजय पाने के लिये सेना भेजने हेतु लक्ष्मण के द्वारा सुग्रीव को आदेश प्रदान किया ।।६२।। श्रीश्यामसुन्दर जिनके पिता तथा अम्बिका जिनकी माता थीं, जो शाण्डिल्य गोत्रोत्पन्न आप्तचरित्र श्री राजकिशोर हैं जो संस्कृत भाषा की प्रगति में लगे हुए हैं उनके द्वारा सत्कृत इस सुन्दर राघवेन्द्रचरित महाकाव्य में यह बारहवाँ सर्ग पूर्ण हुआ ।।६३।।

त्रयोदशः सर्गः

अन्येद्युरासाद्य शुभं मुहूर्तं श्रुत्यृक्षयोगां दशमीं जयाख्याम्
रामः प्लवङ्गाधिपतिं विधाय सेनापतिं याम्यदिशं प्रतस्थे ।१।
सुशिक्षिताऽलं न बभूव सङ्गरे दिवौकसां यैश्चतुरङ्गिणी चमूः
समं पुनस्तैरथ युद्धकर्मणि ययावसौ कीशपदातिसेनया ।२।
पुरोगमान्प्रेष्य नलेन साकं सम्प्रेष्य नीलञ्च सहायरूपम्
चतुर्षु भागेषु विभज्य सैन्यं सम्प्रस्थितो युद्धविदां वरेण्यः ।३।
गजं गवाक्षं गवयं ससैन्यं कृत्वाग्रभागे परियोद्धुकामम्
संरक्षितुं सव्यमथापि पार्श्वं न्ययुंक्त वीरं च स गन्धमादनम् ।४।
अथर्षभाख्यं प्लवगं न्ययुङ्क्त संरक्षकं दक्षिणपार्श्वगायाः
चम्वाः प्रकामं परिरक्षणाय सम्प्रस्थितायाः युधि रावणेन ।५।

दूसरे दिन प्रसिद्ध योग विजयादशमी का शुभ मुहूर्त प्राप्तकर राम ने कपीश्वर सुग्रीव को सेनापति बनाकर दक्षिण दिशा की ओर प्रस्थान किया ॥१॥ जिसके समक्ष युद्ध में सुशिक्षित भी देवताओं की चतुरङ्गिणी सेना असमर्थ रही उन्हीं से युद्ध के लिए राम वानरों की पैदल सेना के साथ चले ॥२॥ युद्ध विशारदों में श्रेष्ठ राम ने नल के साथ अग्रयायी (वानरों) को तथा सहायक के रूप में नील को भेजकर, सेना को चारों दिशाओं में विभक्त कर प्रस्थान किया ॥३॥ युद्धेच्छु गज, गवाक्ष और गवय को ससैन्य आगे करके, बायें भाग की रक्षा के लिए उन्होंने वीर गन्धमादन को नियुक्त किया ॥४॥ रावण से युद्ध करने के लिये चली सेना के दक्षिण भाग की पर्याप्त रक्षा के लिए ऋषभ नामक वानर को रक्षक के रूप में नियुक्त किया ॥५॥

सहाङ्गदं लक्ष्मणमेव मध्ये केन्द्रीयभागस्य निरीक्षकौ द्वौ
रामः सजूर्जाम्बवता सुषेणं न्ययुंक्त कुक्षेरपि रक्षकौ तौ ।६।

कृत्वा स्वपार्श्वस्थमिहाञ्जनेयं मध्येबलं शान्तमना मनस्वी
स्वयं ससुग्रीव इमां वनौकसां वरूथिनीं रक्षितुमन्वगाच्च ।७।

एकान्तशौर्यप्रतिरूपकाणां द्रुतङ्गमानां पृतनां कपीनां
विलोक्य पप्रच्छ मुदा स रामः सेनापतिं ज्ञातुमनाः स्वसेनाम् ।८

सेनापते किं पृतना मदीया योद्धुं समर्था खलु रावणेन
यश्चास्ति जेता त्रिवुधव्रजानां सयक्षसिद्धोरगकिन्नराणाम् ।९।

किं सैनिकाः सन्ति सुशिक्षितास्ते किं नायका युद्धकलाप्रवीणाः
भुजायुधाः किन्नु सहायुधानां समाः समीके प्रतिकर्तुमिष्टाः ।१०

न वारवाणो न च वाधिकाङ्गो न शीर्षकं वा न तनुत्रमेव
किं वाऽपिनद्धैरसुरै समं ते युद्धेऽपकर्तुं प्रभवः प्लवङ्गाः ।११।

केन्द्रीय भाग के दो निरीक्षक अङ्गद समेत लक्ष्मण को मध्यभाग में नियुक्त किया और कुक्षि भाग के भी जाम्बवान समेत सुषेण दो रक्षकों को राम ने नियुक्त किया ।।६।। शान्तमन, मनस्वी श्रीराम सेना के मध्य में अञ्जनानन्दन हनुमान को अपने समीप कर इस वनवासी सेना की रक्षा के लिये सुग्रीव समेत स्वयं चले ।।७।। एकान्त शौर्य के प्रतिरूप, शीघ्रगामी, वानरों की सेना को देखकर प्रसन्न राम ने अपनी सेना को जानने के लिये सेनापति से पूछा ।।८।। सेनापति ! जो यक्ष-राक्षस सर्प किन्नरों समेत देववृन्दों का भी विजेता है, उस रावण से युद्ध करने में मेरी सेना समर्थ है ।।९।। क्या तुम्हारे सैनिक सुशिक्षित हैं ? सेना नायक युद्ध कला प्रवीण है ? भुजायुध तुम्हारे सैनिक क्या युद्ध में सशस्त्र राक्षसों का प्रतीकार करने में समर्थ हैं ? ।।१०।। न कञ्चुक है, न न शीर्षत्राण है, न गात्ररक्षक कवच है तो फिर युद्ध में सन्न राक्षसों के साथ वानर प्रतीकार करने में समर्थ हैं क्या ? ।।११।।

तत्रासुरेन्द्रस्य चमूनियोगें धनुर्धराः सन्ति च कौन्तिकाश्च
नैस्त्रिशिकाः शक्तिविदो गदाज्ञा मायाविदोऽन्ये विविधायुधाश्च१२
किञ्चात्र सैन्ये मम वानरेश सन्ति क्वचिद् वाऽऽयुधधारिणोऽपि
गदैव हस्तेषु विराजमाना संदृश्यते साऽपि च नायकेषु ।१३।
भवन्तु वीराःकपयस्तवालं भवन्तु धीरास्तव यूथपाश्च
परं विहीना भृशमायुधैस्ते युद्धोपयुक्ताः सह राक्षसैः किम् ।१४
श्रुत्वा वचोऽदः खलु राघवीयं सेनापतिः सद्य उवाच रामम्
सेनापतिः सैन्यमथायुधश्च व्यर्थं नियोक्ता यदि हीनवृतः ।१५।
शस्त्राण्यपूर्वाणि भवन्तु कामं शिक्षाऽपि तेषां भवतुप्रकामम्
सैन्या भवेयूर्बहवोऽपि नूनंनोत्साहहीना विजयं लभन्ते ।१६।
उत्साह आयाति चरित्रयोगाच् चारित्र्ययुक्तः प्रकरोति धर्मम्
धर्मो निवासं कुरुते च यस्मिन् स एव नित्यं लभते जयञ्च ।१७

राक्षसेन्द्र की उस सेना में धनुर्धारी, कुन्तधारी, खड्गधारी, शक्तिज्ञाता गदायुद्ध विशेषज्ञ, मायावी तथा अन्य नानाशस्त्रधारी हैं ॥१२॥ और हे कपीन्द्र ! मेरी इस सेना में कहीं शस्त्रधारी भी हैं ? हाथों में केवल गदा ही शोभायमान दीख रही है, वह भी सेनानायकों के ही ॥१३॥ ठीक है वानर अतिवीर हैं, तुम्हारे यूथप भी वीर हों, किन्तु शस्त्रों से अतिशून्य वे राक्षसों के साथ क्या युद्ध के लिए उपयुक्त हैं ? ॥१४। राघव राम के इस कथन को सुनकर सेनापति शीघ्र राम स बोले, सेनापति, सेना, अथवा आयुध सभी व्यथ हो जाते हैं यदि प्रयोग करने वाला अयोग्य हो ॥१५॥ भले ही यथेष्ट अपूर्व शस्त्र हों, उनकी शिक्षा भी खूब हुई हो, सैनिक भी बहुसंख्य हों किन्तु उत्साहशून्य लोग विजय नहीं प्राप्त करते ॥१६॥ उत्साह चरित्रयोग से आता है, चरित्र सम्पन्न धर्म का आचरण करता है, और धर्म जिसमें निवास करता है, वही सदा विजय प्राप्त करता है ॥१७॥

न काण्डपृष्ठा न च धैर्यहीना मिथ्याभिशंसा न चरित्रहीनाः
युयुत्सवः स्वामिनि दत्तचित्ता उत्साहयुक्ता ननु सैनिका मे ।१८
शस्त्रप्रयोगाद् यदि पूर्वमेव शस्त्रप्रयोक्ता लभते स्वमृत्युम्
आवश्यकत्वं सुतरां न सिद्धं शस्त्रस्य सैन्यस्य सशस्त्रकस्य ।१९
प्रभो न दृष्टं भवता कदाचिद् युद्धं प्लवङ्गस्य च राक्षसेन
आसीन्निरुद्धः सच रावणोऽपि भ्रातुश्च मे वालिन एवकुक्षौ २०
ह्य एव शूरेण हनूमता सा लङ्का प्रदत्ताऽलमुषर्बुधाय
नासन् भटाः किं प्रगृहीतशस्त्रा आसीद्धनूमानथवा सशस्त्रः २१
सैन्या लभन्ते नु पराजयं त उत्साहहीनाः कृपणाः सशोकाः
शूरा इमे मे हरयो नितान्तं स्वाम्यर्थमायुः प्रतिदानयुक्ताः ।२२।
दग्धो रिपुः स स्वकृतेन साक्षात् पापाग्निना मृत्युमपेक्षमाणः
स्थास्यत्यलं किं समरे कदाचिद् भवत्समक्षं धृतकार्मुकोऽपि ।२३

मेरे सैनिक नमकहराम नहीं हैं, न धैर्यहीन हैं, न झूठी शेखी बघारने वाले हैं और न ही चरित्रहीन हैं, सभी योद्धुकाम, स्वामी के प्रति समर्पितमन तथा उत्साह युक्त हैं ॥१८॥ शस्त्र प्रयोग करने वाला यदि शस्त्र प्रयोग के पूर्व ही अपनी मृत्यु प्राप्त कर लेता है तो, शस्त्र, अथवा सशस्त्र सेना की आवश्यकता सुतरां व्यर्थ है ॥१९॥ प्रभु ! आप ने राक्षस के साथ वानर का युद्ध कभी नहीं देखा, वह रावण भी मेरे भाई वालि की काँख में बँधा था ॥२०॥ कल ही वीर हनुमान ने लङ्का को अग्निसात् किया है। क्या शस्त्रधारी सैनिक नहीं थे ? अथवा हनुमान सशस्त्र थे ? ॥२१॥ सैनिक वे ही पराजय प्राप्त करते हैं जो उत्साह रहित कायर और दुःखी होते हैं। मेरे ये वानर अत्यन्त शूर तथा स्वामी के लिए अपने प्राणार्पण के लिये भी तैयार रहते हैं ॥२२॥ मृत्यु की अपेक्षा करता हुआ वह शत्रु अपनी पापाग्नि से साक्षात् जल चुका है, धनुष धारण करके भी वह युद्ध में क्या आपके सामने कभी खड़ा रह सकेगा ? ॥२३॥

शिलाप्रहारैर्द्रुमसन्निपातैः प्रपीडिता राक्षसराजसेना
द्वित्रैःक्षणैरेव विनाशभावं प्राप्स्यत्यलं नात्र विचिन्तनीयम् ।२४

तस्मिन्क्षणे तत्र निशम्य शब्दान् शाखामृगाणां प्रमदोद्भवान् सः
रामो हसन्वानरराजभावं समर्थयामास मुखश्रियैव ।२५।

सैन्याः समस्ता मुदितास्तदानीं गर्जन्त एवाशु समुत्पतन्तः
अन्योन्यमेवं परितः क्षिपन्तः जग्मुर्भुजाभ्यां परिपीडयन्तः ।२६।

प्रजङ्घजम्भद्विविदाश्च मैन्दः सार्कोऽपि वल्यन्तशतः कुमुच्च
दरीमुखः केशरिणान्वितश्च समे समासन् युधिनायकाश्च ।२७।

ततोऽभिपश्यन्पनसान्वितां चमूं निरीक्ष्यमाणां रभसेन भीतिदाम्
अपास्य रामस्य तमो हृदिस्थं बभौ स सुग्रीव इनस्य पुत्रः ।२८।

हनूमतस्स्कन्धमधिष्ठितस्तदा यथेन्द्र ऐरावतपृष्ठमास्थितः
मुदाऽभिपश्यन्प्रकृतेश्छटां ततो जगाम रामो मिथिलात्मजां स्मरन्

शिला प्रहारों तथा वृक्षपातों से प्रपीडित रावण सेना दो-तीन क्षणों में ही विनष्ट हो जायेगी, इसमें कुछ अधिक चिन्ता नहीं करनी चाहिये ।।२४।। उस समय अतिशय आनन्द से पैदा हुए वानरों के शब्दों को सुनकर उस राम ने हंसते हुए मुखश्री से ही कपिराज के भवों का समर्थन किया ।।२५।। उस मय प्रसन्न सारे सैनिक गर्जते हुए, उछलते हुए, एक दूसरे को फेंकते हुए, भुजाओं से प्रपीडित करते हुए तेजी से चले ।।२६।। प्रजङ्घ, जम्भ, द्विविद, मैन्द अर्क शतवलि, कुमुद, दरीमुख और केशरी समेत सभी सेनानायक थे ।२७। इसके बाद पनस से युक्त रभस से निरीक्ष्यमाण भीषण सेना को देखते हुए राम के हृदयस्थ अन्धकार (शंका) को दूर कर सूर्यपुत्र सुग्रीव प्रसन्न हुए ।।२८।। ऐरावत की पीठ पर बैठे इन्द्र के समान हनुमान के कन्धे पर बैठे राम सर्वतः प्रकृति की छटा देखते हुए प्रसन्न, जनक नन्दिनी का स्मरण करते हुये गये ।।२९।।

दृष्ट्वा धरित्रीमिह रक्तवर्णां रामस्तदानीं सरसीरुहाक्षः
तप्ता धरेयं स्वसुताविपत्तेर्जातेत्थमित्याकलयन्शुशोच ।३०।
स नारिकेलस्य फलानि तत्र वृहन्ति साम्बूनि च कर्कशानि
दृष्ट्वानुमेनेऽसुरराजभीत्या द्रव्यं द्रुमः स्वञ्च तिरोदधाति ।३१।
विनाशितायामिह दैत्यसैनिकैर्नोन्मूलिता स्यात्कृषिरेव मत्वा
स एककाले लवनं सवापं विलोक्य धान्यस्य मुदं जगाम ।३२।
महीध्रखण्डैः परितो वृतां तां भूमिं सपद्मां सरसीं विलोक्य
शनैं शनैरुत्तरतः शरच्च पद दधातीह भियेति मेने ।३३।
दृष्ट्वा स आम्राः सफलास्तदानीं कृतज्ञतां ज्ञापितवान् द्रुमेभ्यः
विहाय चिन्तां निजसैनिकानां भोज्यादिसम्बद्धविशेषरूपाम् ३४
ततः प्रसन्नः समुवाच रामो विचारितं वानरराट् कदाचित्
अहं नु लङ्कां प्रविशामि नूनं हनूमतः स्कन्धमवाप्य पोतम् ।३५

इसके बाद कमल नयन राम वहाँ की धरती को रक्तवर्णा देखकर, यह धरा मानो अपनी पुत्री (जानकी) के दुःख से तप्त है ऐसा समझते हुए शोकाकुल हुए ॥३०॥ नारियल के भारी, जलभरे और कठोर फलों को वहाँ देखकर उन्होंने अनुमान किया कि मानों राक्षसराज के डर से वृक्ष अपने द्रव्य (रसादि) को छिपा देते हैं ।३१॥ राक्षस सैनिकों द्वारा विनिष्ट इस धरा में कृषि ही न उन्मूलित हो जाय मानो इस समझ से समकाल में धान्य की लवाई और बोवाई देखकर राम आनन्दप्राप्त हुए ॥३२॥ चारों ओर से पर्वत खण्डों से घिरी उस धरा को कमलवती सरसियों सरोवरों से युक्त देखकर उन्होंने माना कि शरत् मानो डर कर धीरे धीरे उत्तर से इधर अपना पाँव जमा रही है ॥३३॥ उस समय फलान्वित आमों को देखकर अपने सैनिकों की भोजन विशेष सम्बन्धी चिन्ताओं को छोड़कर वृक्षों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित की ॥३४॥ फिर कभी प्रसन्न राम कपिराज से अपने विचार प्रकट किये निश्चय ही मैं हनुमान के स्कन्धरूप जहाज को प्राप्तकर निश्चय ही लङ्का में प्रवेश कर लूँगा ॥३५॥

परं त्वदीयाः परितः प्रहृष्टाः प्रकूर्दमानाः कपयः कथञ्चित्
यास्यन्ति पारञ्च सरित्पतेः किं न लङ्घिता यैस्तटिनी कदाचित्

सेनापतिस्तत्र हसन्नुवाच न वर्णनीयोऽस्ति भवत्स्वभावः
अग्रेगसेनाधिपतां प्रदाय नलाय नीलाय विचिन्त्यते किम् ।३७।

ताभ्यां यदि स्वीकृतमत्र कार्यं करिष्यतस्तौ भवतः प्रसादात्
चम्वाऽनयाऽपेक्षितमत्र यद्यत् तत्तत्प्रकर्त्तव्यमवश्यमाभ्याम् ।३८

किमत्र वक्तव्यमपेक्षितानि भवत्प्रसादात् सकलानि यान्तु
जानीत एतावभियान्त्रिकौञ्च करिष्यतः सेतुविधिं तदब्धौ ३९

वितर्कयन्नेवमसौ तदानीं सह्याद्रिभागञ्च समाससाद
विलोकयन्काननकन्दराणां शोभां समेषामिह निर्झराणाम् ।४०

नीपान्करञ्जान्करवीरजम्बूश्चूतानशोकान् तिलकान् वटांश्च
स चम्पकानामलकान्रथद्रून्जगाम पश्यन्नथ सिन्दुवारान् ।४१।

किन्तु प्रसन्न चारों ओर कूद रहे तुम्हारे वानर समुद्र के पार किसी प्रकार जा सकेंगे ? जिन्होंने कभी छोटी नदी भी नहीं पार की है ।।३६। तब हसते हुए सेनापति सुग्रीव बोले, आपका स्वभाव अवर्णनीय है, नील और नल को अग्रगामी सेनाधिपतित्व प्रदान कर क्यों चिन्ता करते हैं ? ।।३७।। इस विषय में उन दोनों ने यदि कार्य अङ्गीकार कर लिया है तो आपकी कृपा से करेंगे ही, यहाँ सेना के लिए जो-जो अपेक्षित है वह वह इन्हें करना ही चाहिये ।।३८।। यहाँ और क्या कहना, समस्त अपेक्षित की बात जाने दें, आपकी कृपा से ये दोनों अभियान्त्रिकी जानते हैं, इसलिए समुद्र पर पुल बनायेंगे ।।३९।। इस प्रकार विचार करते, वन-गुफा-निर्झरों आदि सभी की शोभा देखते हुए वह उस समय सह्याद्रि के प्रदेशों में पहुँच गये ।।४०।। नीप, करंज (भेळ , करवीर, जामुन, आम, अशोक, तिलक, बरगद, चम्पक, ऑवला रथद्रु तथा सिन्दुवार आदि वृक्षों को देखते हुए राम आगे बढ़े ।।४१।।

अपास्य मालिन्यमलङ्कृतानि वपूंषि वस्त्राणि च शोभनानि
निवासिनीनां तमिलप्रदेशे जातानि रामस्य च दृष्टिप्रियाणि ४२

दृष्ट्वा प्रयोगान्बहुशः सुमानां जातीजयानामथ यूथिकानाम्
हृदा प्रशंसन् समवाप सौख्यं रामोऽभिपश्यन् तमिलप्रदेशम् ।४३।

शिलोच्चयः पुष्पलताभिरावृतैर्वस्त्रैरिवात्मानमलं प्रकुर्वती
रणोन्मुखं राममिहाभिलक्षितुं वसुन्धरैषा सुतरामुपस्थिता ।४४

शनैःशनैः सङ्कुचितां धरित्रीं याम्योन्मुखीं ताञ्च विलोक्य रामः
अपांपतिस्पर्शमवाप्य नूनं धरा सलज्जेति तदानुमेने ४५।

अनन्तरं पुष्पसुगन्धपूरितस् तुषारसिक्तो मलयोत्थमारुतः
निरन्तरं सञ्चलनेन खिद्यतो बभूव रामस्य तदा सुखावहः ४६

पश्यन्कपीनां कलहप्रवृत्तिं युद्धाय तेषां सहजानुरक्तिम्
कलिप्रियैः शक्रपरैः समीके वरं स मेने प्लवगप्रयोगम् ।४७।

तमिल प्रदेश निवासिनी स्त्रियों के मालिन्य रहित अलङ्कृत शरीर, सुन्दर वस्त्र आदि राम की आंखों को प्रिय लगे ।।४२।। तमिल प्रदेशमें चारोंओर चम्पा-चमेली आदि फूलोंका प्रभूत प्रयोग देखकर, मन से प्रशंसा करते हुए राम ने सुख का अनुभव किया ।।४३।। पुष्पलताओं से समावृत वस्त्रों से मानों अपने को अलङ्कृत करती हुई यह धरती रणोन्मुख राम को देखने के लिये उन्नत शिलाओं से साक्षात् उपस्थित हो गई हो ।।४४।। दक्षिणोन्मुख उस धरती को धीरे-धीरे संकुचित होती हुई देखकर राम ने संभावना की कि मानो जलपति समुद्र का स्पर्श पाकर धरती सलज्ज सकुचाई हुई है ।।४५।। तत्पश्चात् फूलों की सुगन्ध से भरा हुआ, वारिकणों से बोझिल सतत प्रवहमान मलय मरुत उस समय दुःखी राम के लिये सुखावह बना ।।४६।। वानरों की कलह प्रवृत्ति और युद्ध के लिये स्वाभावानुरक्ति देखते हुए राम ने युद्ध में इन्द्र शत्रु कलिप्रियों राक्षसों से वानरों के प्रयोग को उन्होंने श्रेष्ठ माना ।।४७।।

कुर्वन्तमभ्रं जयशब्दपूर्णं प्रकम्पकं शत्रुहृदां प्रकामम्
शृण्वन्कपीनां विकटं निनादं रामः प्रहर्षं नितरामवाप ।४८।
अल्पं धरित्र्यां बहु चान्तरिक्षे चमूश्चलन्ती च वलीमुखानाम्
शीघ्रं स्वशत्रोर्नगरीं यियासोः प्रसह्य रामस्य मुदे बभूव ।४९।
दिशं प्रतीचीं प्रति गन्तुमुत्कं विभावसुं वीक्ष्य भुवोऽवसाने
यात्राक्रमे प्राप्य महार्णवं स आज्ञापयामास तटे विरन्तुम् ।५०।
वेलावनं प्राप्य कपीशसेना पुरःस्थितं सिन्धुपतिं समीक्ष्य
निरुद्धयात्रा जयशब्दनादैः संक्षोभयामास दिगन्तराणि ।५१।
कल्लोलसंक्षुब्धसमुद्ररावः सोत्साहकीशोच्चरितध्वनिश्च
परस्परं सम्मिलितौ तदानीं प्रकम्पयामासतुराततायिनः ।५२।
अत्रस्थितो मन्त्रयितुं स रामः कृताह्निको वानरसैन्यमुख्यैः
स रावणो राक्षसमन्त्रिमुख्यैर्विचारणायामधिलङ्कमास्थितः ५३

आकाश को जय शब्द से परिपूर्ण करते हुये, शत्रुओं के मन में प्रभूत कम्पन पैदा करने वाले वानरों के विकट गर्जनों को सुनते हुए राम अतिशय प्रसन्नता को प्राप्त हुए ॥४८॥ अपने शत्रु की नगरी लङ्का में शीघ्र पहुँच जाने की इच्छा करने वाली, धरती पर कम आकाश में अधिक चलती हुई वानरों की सेना बलात् राम के आनन्द का कारण बनी ॥४९॥ यात्राक्रम में धरती के छोर पर समुद्र को प्राप्तकर, सायंकाल सूर्य को पश्चिम की ओर जाने को उत्सुक देखकर, राम ने तट पर विश्राम का आदेश दिया ॥५०॥ समुद्रतटीय वन को प्राप्तकर, सम्मुख नदीपति समुद्र को देखकर, अपनी यात्रा रोककर वानरों की सेना ने जयध्वनि से दिगन्तरों को संक्षुब्ध कर दिया ॥५१॥ लहरों से संक्षुब्ध समुद्र की हहकार तथा सोत्साह वानरों से उच्चरित ध्वनिनाद दोनों ने ही उस समय परस्पर मिलकर शत्रुओं को कँपा दिया ॥५२॥ इधर आह्निक कृत्य करके राम वानर सेना के प्रधानों से मन्त्रणा करने के लिये उपस्थित हुए उधर लंका में बैठा रावण राक्षस मन्त्रिप्रधानों से विचार में लगा हुआ था ॥५३॥

त्रैलोक्यजेता श्रुतिभाष्यकर्ता नेताऽसुराणाञ्च नयप्रणेता
अनिश्चिते संयति धैर्यधर्ता हठात्समुत्थापयिता शिवाद्रेः ।५४।

अनेकशास्त्रार्थविचारशीलो देवैः समाराधितपादपद्मः
सचन्दनः शुभ्रपटेनराजितो महार्हरत्नैः समलङ्कृतश्च ५५।

संतप्तजाम्बूनदनिर्मितेऽलं सिंहासने भ्राजति राजमानः
स्वय समासमादितदैत्यभावः सुरद्विषां संसदि शोभमानः ५६

सद्यः समुत्पन्नविवादकाले स रावणः संयुगलब्धकीर्तिः
पप्रच्छ सर्वान् निजमन्त्रिमुख्यान् विनिश्चयार्थं समुदायनीतेः ५७

तत्रप्रहस्तेन च दुर्मुखेण सवज्रदंष्ट्रेण निकुम्भकेन
स्वाराज्जिता वज्रहनुप्रवृत्ता नीतिर्विरोधस्य समर्थिताऽभूत् ५८

आसीन्मतं तत्र विभीषणस्य देयाऽत्र सीता रघुपुङ्गवाय
एकस्य दूतस्य विलोक्य कार्यं विरोधनीतिर्न कदापि युक्ता ५९

त्रैलोक्यजयी, श्रुतिभाष्यकर्ता, राक्षसों का नायक, नीतिनियामक, अनिश्चित युद्ध में भी धैर्यधारी, हिमालय को बलात् उठाने वाला ।५३। अनेक शास्त्रों के अर्थों का विचारक, देवों से अर्चित चरणकमल, चन्दन-युक्त, शुभ्रवस्त्र शोभित तथा बहुमूल्य रत्नों से अलङ्कृत ।५५। तपाये सोने से बने चमकते सिंहासन पर अत्यन्त सुशोभित, स्वयं दैत्यभाव को प्राप्त करने वाला, राक्षसों की सभा में विराजमान ।५६। युद्धों में कीर्तिप्राप्त वह रावण तुरन्त उपस्थित इस विवाद के समय में अपने सारे मुख्य मन्त्रियों से उसने समुदायनीति के निर्धारण हेतु पूछा ।।५७।। प्रहस्त, दुर्मुख, वज्रदंष्ट्र, निकुम्भ, इन्द्रजित तथा वज्रहनु से विरोधनीति का समर्थन किया गया ।।५८।। विभीषण का वहाँ मत था कि राम को सीता दे देनी चाहिये, एक दूत (हनुमान) के कार्यों को देखकर इसमें विरोध की नीति कदापि अच्छी नहीं है ।।५९।।

मतद्वयं तत्र निशम्य दैत्यो निर्द्धारणायैक्यधिया मतश्च
सीताहृतिः सुष्ठुतमेति वक्तुं पूर्वेतिवृत्तं सकलं जगाद ॥६०॥
यः कारणं वृद्धविराधमृत्यौ य एव हन्ताऽस्ति खरादिकानाम्
नासापहर्ता च ममानुजायाः सन्धिर्वरेण्यः कथमत्र तेन ।६१।
ज्ञातुं वलं सम्प्रति दानवारेर्भार्या मयैवापहृता प्रसह्य
निसगर्तो राक्षसनाशकार्ये सम्यक्प्रवृत्तस्य नराधमस्य ।६२।
पश्यन्तु सीताहरणादनन्तरं कृतश्च रामेण यदेव कृत्यम्
सर्वं विरोधाय सुरद्विषां तत् स्याद् वालिहत्योत कबन्धनाशः ६३
सन्ध्यर्थमेव प्रणिधिस्तु तेन सम्प्रेषितः शुद्धहृदाऽधिलङ्कम्
कश्चित्सदस्यो मनुते यदोत्थं विचारयेत्सुष्ठु स दूतकृत्यम् ।६४।
कृत्वा क्षतिं पूर्वमिहासुराणां प्रस्तौति पश्चाद् यदि सन्धिवार्ताम्
सुस्पष्ट एवास्ति हृदिस्थभाव इष्टो विरोधो नतु सन्धिभावः ।६५

दो मतों को सुनकर राक्षस रावण ऐक्यबुद्धि से मत निर्धारण के लिये, सीताहरण अत्युत्तम है यह बताने के लिये पहले के सारे वृत्तान्त कह गया ॥६०॥ जो वृद्धविराध की मृत्यु का कारण है, और जो खर आदि का भी व्यापादक है, और मेरी बहन के भी नाक का काटने वाला है भला उससे सन्धि क्योंकर वरणीय है ? ।६१॥ स्वभावतः राक्षसों के विनाश कार्य में संपृक्त, नराधम उस राक्षस शत्रु की पत्नी का बलात् अपहरण मैंने उसकी शक्ति जानने के लिये की है ॥६२॥ सीता हरण के बाद राम ने जो कृत्य किये हैं, उसे देखें, वे सभी राक्षसों के विरोध में ही है, बालि हत्या हो या कबन्धवध ।६३। शुद्ध हृदय उसने सन्धि के लिये ही यदि लङ्का में गुप्तचर भेजा था, ऐसी बात कोई सदस्य यदि मानता है तो वह दूत हनुमान) के कार्यों पर विचार करे ।६४ यदि पहले ही राक्षसों की क्षति करके बाद में कोई सन्धि वार्ता का प्रस्ताव करता है तो उसका हृदयस्थ भाव सुस्पष्ट है तथा विरोध ही उसका अभीष्ट है, सन्धिभाव नहीं ६५।

आसह्यमद्रिं दरदं च यावानस्ति प्रदेशस्तरसा गृहीतः
सर्वोप्यगस्त्येन विदूषितोऽस्ति न तत्र यानं समयोचितं नः ।६६।

हतेकपौ वालिनि संश्रयोऽपि द्वैधस्थितिर्वा न कदापि युक्ता
तस्मादिहैवासनपूर्वकं नो वरं विरोधो न पलायनं हि ।६७।

श्रुत्वा नयं रावणसम्प्रयुक्तं सुप्तोत्थितो दैववशादिहस्थः
वीराग्रगण्यः खलु कुम्भकर्णो विनिन्द्य दैत्याधिपतिं बभाषे ।६८

मन्दे यदुक्तं भवताऽत्र राजन् नयं विरोधस्य नरेण साकम्
परन्तु सीतापहृतिश्छलेन क्वचिन्न युक्ता यशसे श्रिये वा ।६९।

कृत्वा स्वयं विग्रहवीजवापं पुष्टिः पुनस्तस्य च संसदेत्थम्
प्रशंसनीया न तथापि वीर शृणोतु मे सम्मतिमत्र धीर ।७०।

लङ्कापुरीयं भवतो हि शौर्यात् बुद्धेर्बलाच्चापि गता प्रतिष्ठाम्
दैवादकस्मात् पतिता विपत्तावस्माभिरेषा परिरक्षणीया ।७१।

सह्य से लेकर दरद पर्वत तक जितना प्रदेश है तेज़ी से लेकर सारा प्रदेश अगस्त्य ने दूषित कर दिया है, वहाँ हमारा जाना समयोचित नहीं है ।६६। वानर वालि के मारे जाने पर सन्धि और द्वैधस्थिति कभी भी उपयुक्त नहीं है, इसलिये यहीं रह कर विरोध करना अच्छा है पलायन नहीं ।६७। रावण प्रोक्त इस नीति को सुनकर, सोकर उठा हुआ दैववश वहाँ विराजमान, वीराग्रेसर कुम्भकर्ण, निन्दा कर राक्षसराज से बोला ।६८। राजन् ! आपने जो यह मानव के साथ विरोध की नीति कही है उसे मैं मानता हूँ, पर छल पूर्वक सीता का अपहरण यश अथवा धन कहीं के लिये भी ठीक नहीं है ।६९। स्वयं विरोध का बीज बोकर फिर उसकी इस प्रकार संसद से पुष्टि करवाना प्रशंसनीय नहीं है, तो भी हे शूर, धीर, इस पर मेरे विचार सुनें ।७०। यह लङ्कापुरी तुम्हारे शौर्य और बुद्धिबल से प्रतिष्ठा को प्राप्त हुई, दैवयोग से अकस्मात् विपत्ति में पड़ गयी है, हमें ही इसकी रक्षा करनी चाहिए ।।७१।।

अहं करिष्ये भवतामभीष्टं कामं भवेच्चैतदनिष्टमिष्टम्
नूनं व्यवस्था प्रथमं विधेया पौरा यथा स्युः प्रणता विनेयाः ७२
वचोऽसुरेन्द्रानुजसम्प्रयुक्त निशम्य मत्वा च कलिं न वार्याम्
निवारणायैव कलेः समूलमूचे महापार्श्वं इदं तदानीम् ।७३।
अङ्कशया स्याद् भवतोऽत्र सीता हेतोरभावे भविता न युद्धम्
एकेषुणैत्रोभयलक्ष्यवेधो भवेद्यथाऽयं स तथा विधेयः ।७४।
निशम्य पार्श्वस्य निजानुकूलं मतं तदा राक्षसराज इत्थम्
सर्वानसामर्थ्यमदोविधाने व्यक्तुं हसन्नेवमुवाच तत्र ।७५।
बलात्प्रवृत्तौ मम शापभीतिः क्वचिच्च तस्या मयि नानुरक्तिः
रामस्य रूपं विधृतेऽपि हन्त प्रयाति दूरं मम कामभावः ।७६।
लङ्कामणीनामिव सांसदानां निरर्गलां सम्प्रति तथ्यशून्यां
निशम्य वाचश्च सदर्थहीनाम् विभीषणस्तत्क्षणमेव मूचे ।७७।

आप लोगों के अभीष्ट का मैं पालन करूँगा वह इष्ट हो या अनिष्ट किन्तु इसके पूर्व ऐसी व्यवस्था तो करनी चाहिये कि जिससे नगरवासी प्रणत और हमारे शासन में रहें ।।७२।। राक्षसेन्द्र के अनुज कुम्भकर्ण के द्वारा प्रयुक्त कथन का–यह युद्ध अनिवार्य है—समर्थन करता हुआ उस समय महापार्श्व विग्रह को समूल नष्ट करने के लिये यह वचन बोला ।।७३।। यदि सीता आपकी अङ्कशायिनी हो जाय तो कारण के अभाव में युद्ध ही नहीं होगा । एक ही इस बाण से जैसे भी हो यह दोनों लक्ष्य एक साथ सिद्ध हो जाय आपको वैसा ही करना चाहिए ।।७४।। उस समय पार्श्व के इस प्रकार अपने अनुकूल बचन को सुनकर राक्षसेन्द्र ने ऐसा करने में अपनी असमर्थता व्यक्त करने के लिये हसता हुआ सबों से तब यों बोला ।।७५। यदि कहीं मेरे प्रति उस (सीता) की अनुरक्ति नहीं है तो बलात् प्रवृत्त होने में मुझे शाप का डर है, और राम का रूप मैं धारण कर लूँ तो भी कष्ट है कि मेरा काम भाव शान्त हो जाता है ।।७६।। लङ्का के मणि सदृश सांसदों के इस समय निर्वाध तथ्यहीन तथा यथार्थ रहित बातों को सुनकर तत्काल विभीषण ने यों कहा ।।७७।।

भ्रातर्न कार्या सहसा प्रवृत्तिर्विवेकहानिर्न भवेद्धिताय
श्रुत्वा हितं यः कुरुतेऽवहेलां विमुच्य संयाति नरः स्वलीलाम् ७८
प्रतापदग्धारिचयस्य राज्ञो भार्या यदि स्यादपरेऽनुरक्ता
विश्वासयोग्या न भवेत्कदाचित् तस्यापि भार्या मनुते य इत्थम् ७९
स्थितस्तदा संसदि मेघनादः दैत्यारये योऽस्ति करालदण्डः
पितुस्त्रिलोकीजयकेतुदण्डः स्ववीर्यसंस्थापितमानदण्डः ।८०।
यूनां प्रियो दानववंशजानां ज्येष्ठः सुतो राक्षसरावणस्य
पश्यन् पितृव्यं ज्वलदग्निदृग्भ्यामूचे रुषा सन्धिनयं विनिन्दन् ८१
श्रमेण बद्धं प्लवगं विमोच्य प्रज्वालितेयं स्वपुरी च येन
समर्थयन् किं सन्धिनयं स एव सुरद्विषां नो निधने समुत्कः ।८२।
परैरपर्यासितवीर्यसम्पदः सुरद्विषश्चाप्यशुभं विचिन्तयन्
न केवलं जातिविनाशने रतो यशोऽप्यपकर्तुमनेन लक्षितः ।८३

हे भाई, सहसा प्रवृत्ति नहीं करनी चाहिए विवेकशून्यता हित के लिये नहीं होती, हितकर बात सुनकर जो उसका तिरस्कार करता है वह व्यक्ति अपनी लीला समाप्त कर इस लोक से प्रयाण कर जाता है ॥७८॥ प्रताप से शत्रु समूह को भस्म कर देने वाले राजा की पत्नी यदि दूसरे में अनुरक्त हो तो जो ऐसा मानता है, उसकी भी पत्नी कभी विश्वास योग्य नहीं होगी ॥७९॥ दैत्य शत्रुओं के लिये जो भयानक दण्ड है, पिता के त्रिलोक विजय की पताका का दण्ड, अपने पराक्रम के मानदण्ड को स्थापित करने वाला ॥८०॥ दानववंशीय युवकों का प्रिय, राक्षसराज रावण का ज्येष्ठ पुत्र उस समय सभा में बैठा हुआ था, चाचा विभीषण को जलती अग्निसदृश आँखों से देखता हुआ, उसके सन्धि प्रस्ताव की निन्दा करता हुआ यों बोला ॥८१॥ परिश्रम से बाँधे हुए बानर हनुमान् को छुड़ाकर जिसने इस अपनी नगरी को जलवा दिया वही सन्धिनीति का समर्थन कर क्या हम राक्षसों के विनाश के लिये उत्सुक नहीं है ।८२। शत्रुओं से अविनष्ट-वीर्यसम्पत्ति वाले भी हम राक्षसों का अमङ्गल सोचते हुए यह न केवल अपनी जाति के ही विनाश में लगे हैं बल्कि यश भी मिटा देना चाहते हैं, ऐसा लग रहा है ॥८३।

भवेत्प्रभुः कोऽपि किमन्तरं मे पादौ लिहन्नेव सदा वसेयम्
एवं सदा चिन्तयतां जनानां चाटौ प्रवृत्तिः समरे निवृत्तिः ।८४।
भूतं गतं भावि पुरःस्थितं नः सङ्ग्रामकाले किमु चिन्तनेन
निर्वीर्यपुंसाभिमता निवृत्तिः प्रसह्य कर्तुं बलवत्प्रवृत्तिः ।८५।
हठाद्विरुद्धां नियतिं स्वकीयां समागतामप्यनुकूलयन्तः
विभ्राजमाना जगति प्रकामं यशोलभन्ते न पलायनोत्काः ।८६।
तस्मादिहास्माभिरलं विवादे जयं स्वकीयं प्रति विश्वसद्भिः
योद्धव्यमेवाशु यतो जयश्रीराशान्विताभ्याशमुपैति नूनम् ।८७।
निशम्य तद् भ्रातृजवाक्यमाराद् बालस्त्वमद्यापि न तेऽस्ति दोषः
इत्येवमुक्त्वा त्वरितं तदानीं विभीषणो रावणमेवमूचे ।८८।
पुराप्रभृत्यद्य दिनं सदैव कृतं सयानं भवता हि युद्धम्
आसन् सदैव प्रतिपक्षिणोऽपि सिद्धा हि यक्षा असुराः सुरा वा ८९

कोई भी राजा हो, मेरे लिये क्या अन्तर पड़ता है, चरणों को चाटता हुआ मैं सदा अवस्थित रहूँगा, इस प्रकार सदा सोचने वाले लोगों की चाटुकारिता में ही प्रवृत्ति रहती है, युद्ध से पलायन रहता है ॥८४॥ भूत बीत चुका है, भावी हमारे सामने उपस्थित है, युद्ध के समय विचार चिन्ता करने से क्या लाभ ? नपुंसक के द्वारा कही गयी निवृत्ति युद्ध से पलायन है, बलवान् तो हठात् करने के लिये प्रवृत्ति करता है ॥८५। बलात् आयी हुई अपनी प्रतिकूल भी नियति को अनुकूल बनाते हुए, दीप्तिमान् होकर संसार में यथेष्ट यश प्राप्त करते हैं किन्तु पलायन के लिये उत्सुक नहीं रहते ॥८६॥ इसलिये इस विषय में हमें अब विवाद से कुछ लेना नहीं, अपने पक्ष की विजय के प्रति विश्वास रखते हुए हमें शीघ्र ही युद्ध करना ही चाहिये क्योंकि आशान्वित के पास विजयश्री शीघ्र ही आती है ॥८७॥ भतीजे के उस कथन को सुनकर, 'तुम आज भी बालक ही हो, तुम्हारा दोष नहीं है' ऐसा उससे कहकर विभीषण ने शीघ्र ही रावण से यूं कहा ॥८८॥ पहले से लेकर आज तक आपने सयान युद्ध ही किया है और प्रतिपक्षी भी सदैव सिद्ध, यक्ष, देव या असुर रहे हैं ॥८९॥

विचिन्तनीयं परमद्य राजन् प्लवङ्गमित्रं नरमेव युद्धे
समाह्वयन् किं स्वयमासनस्थं पुरेव साफल्यमपेक्षतेऽत्र ।९०।
जनौ स्थितौ वा विलये सदैव हेतुः समेषामिह कालचक्रम्
तस्यैव भूत्वा सहगेन भाव्यं न कालचक्रं परिवर्तनीयम् ।९१।
सीतां भवान्नैव बलेन लब्धा सा वा भवन्तं नहि काङ्क्षतीह
किमर्थमेनं कुरुते त्विवादं लाभश्च तस्या वदतान्निवासे ।९२।
ब्रवीमि नाहं भवतां पराजयं काङ्क्षामि नित्यं विजयं यशस्विन्
मन्ये निरुद्देश्यमिदं समीकं सुखं न दाता न यशः श्रियं वा ।९३।
पृच्छेद् भवान् प्रेष्य चरं तु रामं कथं कृता तेन खरादिहत्या
पुनः प्रतिश्राव्य निवर्तनीया सीता हृता या प्रतिदण्डनीत्या ।९४
अल्पीयसा क्षुद्रतमेन लङ्का दूतेन नष्टा भवतां समक्षम्
वृत्तं न राजन् किमिदं व्यनक्ति कालस्त्विदानीं परिवर्तितोऽस्ति ।९५

किन्तु राजन्, आज तो यह विचारणीय है कि, स्वयं आ डटे वानरमित्र मनुष्य को युद्ध में आहूत करते हुए क्या पहले जैसी सफलता की अपेक्षा की जाती है ? ।।९०।। इस संसार में सभी की उत्पत्ति, स्थिति और विनाश में कालचक्र ही कारण है । उसी का सहगामी बनकर रहना चाहिये, कालचक्र परिवर्तनीय नहीं है ।।९१।। सीता को आपने बल से नहीं प्राप्त किया अथवा वह भी तो आपको नहीं चाहती तो फिर क्यों इस प्रकार का विवाद पैदा कर रहे हैं, उसके यहाँ रहने का लाभ बताइये ? ।।९२। हे यशस्विन् ! मैं आपकी पराजय की बात नहीं करता और सदा आपकी विजय ही चाहता हूँ। मैं समझता हूँ यह युद्ध निरुद्देश्य है और यह न सुख-श्री या कीर्तिप्रदाता ही है ।।९३।। आपको दूत भेजकर राम से पूछना चाहिये था कि उसने खर आदि की हत्या क्यों की ? और फिर जो सीता प्रतिदण्डनीति से हरी गयी थी उसे प्रतिज्ञाबद्ध कर लौटा देना चाहिये था ।।९४।। अतिक्षुद्र, खर्व दूत ने आपके सामने ही लङ्का नष्ट कर दी, हे राजन् यह वृत्तान्त क्या यह नहीं व्यक्त करता कि अब समय बदल गया है ।।९५।।

काङ्क्षामि लङ्काहितमेव राजन् हितं समेषां भवतां ममापि
सन्धौ न दोषो लवमात्रमस्ति सीता प्रदेया खलु राघवाय ।९६।

विभीषणीयं वचनं निशम्य नियन्त्र्य सम्यङ् मनसि स्वकोपम्
स रावणो नीतिविदग्रगण्यो निजानुजं तं समुवाच तूर्णम्।।९७।।

यदात्थ विद्वन् शुकवन्निरर्थं सीता प्रदेया खलु राघवाय
किमत्र शङ्कास्ति पराजयस्य किंवाऽपरः कोऽपि तवैव लाभः ।९८

जयः समीकेऽस्तु पराजयो वा योद्धा वितर्कं कुरुते न कश्चित्
ध्रुवो हि मृत्युर्यदि जीवलोके बिभेति तस्मान्न कदापि वीरः ९९

कृतोऽपराधः प्रथमं विपश्चित् त्वया यदि स्वामिनि जातशङ्कः
न मेऽस्ति दुःखं स्वपराजयस्य तादृग् यथा तेऽनुचितप्रकृत्याः १००

लङ्कोपजाप्या न परैः कदाचिद् विखण्डितैषा ह्यवधारणा मे
कथं क्षतिर्नास्ति गृहे त्वदीये दग्धा समस्ता यदि पूरियं मे १०१

राजन्, मैं लङ्का की भलाई ही चाहता हूँ, इसी में मेरा, आपका सभी का हित है। सन्धि में लेशमात्र भी दोष नहीं है, सीता राम को लौटा देनी चाहिए।।९६।। विभीषण के कथन को सुनकर क्रोध को अपने मन में सम्यक् रोककर, नीतिविदग्रेसर वह रावण अपने उस भाई से तुरन्त बोला।।९७।। विद्वान्! शुक के समान जो तुमने व्यर्थ प्रलाप किया कि सीता राम को दे देनी चाहिये तो क्या इसमें पराजय का भय है? अथवा तुम्हारा ही कोई और लाभ है? ।९८। युद्ध में जय हो या पराजय, योद्धा ऐसा कोई वितर्क नहीं करता। मृत्युलोक में मृत्यु शाश्वत है, इसलिये वीर कभी नहीं डरता।।९९।। हे विद्वन्, स्वामी के प्रति शङ्का-युक्त होकर आपने पहले ही अपराध किया है। मुझे अपनी पराजय का उतना दुःख नहीं है जितना तुम्हारी इस अनुचित प्रकृति से।।१००।। मेरी यह अवधारणा खण्डित हो गयी कि लङ्का शत्रुओं से कभी उपजाप्य (भेद्य) नहीं है। यह सारी नगरी यदि जल गयी तो फिर तुम्हारे ही घर नुकसान क्यों नहीं हुआ? ।।१०१।।

छिद्रं विधायैव विशन्ति गेहं चौरा रजन्यां न दिवाप्रकाशे
किं चौरभीतेर्ददति स्ववित्तं गृहाधिपा जातु निमन्त्र्य चौरान् १०२
कृतोऽपराधोऽत्र तवाग्रजेन सीता हृता येन विधाय मायाम्
एवं विचिन्त्यैव मम प्रियार्थं वरं न युद्धं प्रतिभाति तुभ्यम् १०३
बद्धा सती शार्वधनुःप्रसङ्गान् मया न लब्धा मिथिलानगर्याम्
सीता ममासीद् भविता ममेयं धराधिपस्यैव खनिर्धरायाः १०४
विगृह्य यानं परिपन्थिभूत्यै न सावधाने सुकरं समीकम्
सन्धिः सदा तुल्यगुणेन कार्यो न क्वाप्यतो राज्यबहिष्कृतेन १०५
द्वैधीस्थितिः सार्थवती न तत्र रिपुर्यदैकश्च सहायहीनः
प्रसह्य सीताऽस्ति यतोगृहीता युक्ता कथञ्चिन्नहि संश्रयोऽपि १०६
तस्मान्मया नीतिविदाऽरिहन्त्रा बद्धासनेनैव विरोध इष्टः
सीता प्रदेया खलु राघवाय नेदं वचस्ते समयोपयुक्तम् ।१०७।

चोर सेंध करके रात में ही घर में घुसते हैं, दिन के प्रकाश में नहीं। क्या चोर के डर से घर का स्वामी कभी अपने धन को चोरों को बुलाकर दे देते हैं? ॥१०२॥ तुम्हारे बड़े भाई ने अपराध किया है जिसने माया का निर्माण कर सीता का अपहरण कर लिया ऐसा सोचकर मेरे हित के लिये तुम्हें युद्ध अच्छा नहीं लग रहा? ॥१०३॥ शिवधनु के प्रसङ्ग में बधी हुई सीता मिथिला नगरी में मुझे नहीं मिली, सीता मेरी थी और यह मेरी होगी, धरती की खान (धरती से पैदा हुई वस्तु-सीता) धरापति की ही होती है ॥१०४॥ विरोधकर यान शत्रुलाभकारी होता है, सावधान शत्रु से युद्ध आसान नहीं होता। सन्धि सदैव समानगुणवाले के साथ करनी चाहिये किन्तु इससे भिन्न राज्य बहिष्कृत राम के साथ कभी नहीं ॥१०५॥ द्वैधीभाव वहाँ सार्थक नहीं है क्योंकि शत्रु एकाकी और सहायशून्य है, क्योंकि सीता बलात् हर ली गयी है इसलिये यहाँ संश्रय नीति भी सार्थक नहीं है ॥१०६॥ इसलिये नीति विशारद, शत्रुहन्ता मेरे लिये यहीं लङ्का में बद्धासन होकर विरोध करना ही अच्छा है। सीता राम को दे देनी चाहिये तुम्हारा यह कथन समयोपयोगी नहीं है ॥१०७॥

बुध्येत रामो यदि नीतिलेशं प्रैषिष्यदाशु स्वविशेषदूतम्
परं व्यतीतः समयोऽधुनाऽसौ वाचंयमश्चास्तु विभीषणोऽपि १०८

निशाचरेन्द्रस्य वचो निशम्य दैवप्रकोपाद्धतबुद्धिकस्य
कूलङ्कषाक्रान्तकुलायवृक्षं रक्षन्निवोवाचविभीषणस्तम् ।१०९।

भ्रातर्भवान् मान्यतमोऽस्ति मह्यं श्रद्धा च मे वैश्रवणे कुलेऽपि
नैनं विनाशं समुपेक्षमाणो वदामि राजन् न भयान्न लोभात् ।११०।

त्रैलोक्यजेताऽस्तु गतः स कालो गतो गतो नैव निवर्तते सः
किन्नाभिजानाति च भाग्यचक्राण्युपर्यधो यान्ति विना विरामम् १११

हिरण्यपूर्वः कशिपुः पुरा किं किंवा हिरण्याक्ष इहाभिमानी
कालक्रमेणाऽथ न किं विनष्टो पिष्टो वलिर्वा न कुलाभिमानी ११२

अजातपूर्वो न भवान् जगत्यां जेता य इन्द्रस्य पुरन्दरस्य
नासीज्जगत्यां महिषासुरः किं हतः स्त्रियाऽशेषजगन्नियन्ता ११३

यदि राम नीति जानता तो शीघ्र ही अपने विशेष दूत को भेजता, किन्तु अब तो वह समय भी बीत गया है, इसलिये विभीषण भी चुप रहें १०८। दैव प्रकोप से हतबुद्धि राक्षसराज के ऐसे कथन सुनकर कूलङ्कषा से आक्रान्त कुलाय वृक्ष (तटभ्रंशी वृक्ष-वंशनाशी रावण) को बचाते हुए से विभीषण उससे पुनः बोले ।।१०९।। हे भाई आप मेरे सबसे अधिक माननीय हैं और मुझे वैश्रवण वंश पर प्रेम भी है, राजन् इसके विनाश की उपेक्षा न करता हुआ ही मैं कह रहा हूँ न भय से और न ही लोभ से ।।११०।। आप त्रैलोक्य विजेता रहे, वह समय चला गया, गया सो गया वह पुनः नहीं लौटता। क्या आप नहीं जानते कि भाग्यचक्र बिना रुके ऊपर नीचे जाते रहते हैं ।।१११।। पहले हिरण्यकशिपु अथवा अभिमानी हिरण्याक्ष कालक्रम से विनष्ट नहीं हुए ? अथवा कुलाभिमानी बलि नष्ट नहीं हुआ ? ।।११२।। जो पुरन्दर इन्द्र का भी विजेता है वह आप संसार में अजातपूर्व नहीं हैं। इसी संसार में समस्त जगत् का शासक महिषासुर नहीं था क्या? जो स्त्री (देवी) से मारा गया।११३।

श्रुता कथा किं भवता न राजन् सुरद्विषोः शुम्भनिशुम्भयोर्वा
वामाविलोभेन गतौ विनाशं सुन्दोपसुन्दौ च तिलोत्तमातः ११४
द्यूतं परस्त्री मृगयेति दोषा विनाशयन्तीह महीक्षितोऽपि
रामोऽस्ति कष्टैं मृगयाविलोभात् परस्त्रिया किन्न भवान् विनंक्ष्यति

न चास्ति पापं भुवि विद्यते यत् परस्त्रिया आहरणस्य तुल्यम्
निहन्ति कर्तारमवश्यमेतद् रामाय तस्मात्प्रददातु सीताम् ।११६।

यावन्न रामस्य पिपासुबाणाः पिबन्तु रक्तानि निशाचराणाम्
तावत्ससम्मानमवश्यमेव सीता प्रदेया खलु राघवाय ।११७।

एकाकिना वीरवरेण येन हताः ससैन्याः खरदूषणादयः
अलं स किन्नास्ति वपूषि कर्तुं विनासुभिः प्राप्तकपीशसेनः ।११८।

निरादृतैषा न भवेच्च लङ्का यावत्प्लवङ्गैरथवाऽच्छभल्लैः
तावत्स्वभूत्यै भवताऽसुरेन्द्र सीता प्रदेया खलु राघवाय ।११९।

राजन्! आपने देवशत्रु शुम्भ निशुम्भ की कथा नहीं सुनी है क्या? वे दोनों ही सुन्दरी (देवी) के लोभ से विनाश को प्राप्त हुए और सुन्दोपसुन्द भी तिलोत्तमा के लोभ से नष्ट हुए ।।११४।। जुआ, परस्त्री लोभ और मृगया दोष महान् राजाओं को भी नष्ट कर देते हैं। मृगया के लोभ से राम दुःख में है, परस्त्री लोभ से क्या आप नहीं नष्ट होंगे? ।११५। संसार में परस्त्री हरण के समान कोई पाप नहीं है, यह अपहर्ता को निश्चय ही नष्ट कर देता है, इसलिये सीता राम को दे दें ।।११६।। राम के पिपासु बाण जब तक राक्षसों के रक्त नहीं पीते तब तक निश्चय ही सम्मानपूर्वक सीता राम को लौटा दी जाय ।।११७।। जिस वीरवर ने अकेले ही सेना समेत खर-दूषण आदि को मार डाला क्या वह वानरेन्द्र की सेना प्राप्त कर हम सबके शरीरों को प्राणहीन नहीं कर सकता ।११८। हे दैत्यराज! जब तक यह लङ्का वानरों अथवा रीछों से अवमानित नहीं होती तबतक आप अपने कल्याण के लिये सीता राम को दे दें ।११९

नीतिं रिपोस्तस्य बलं च बुद्ध्वा परामृशेद् यः सचिवः स एव
सदा महीपाननुवर्तमानाः न दुर्लभाः संसदि चाटुकाराः ।१२०।

दृष्ट्वा निमित्तान्यशुभानि हन्त प्रगृह्य पादौ भवतो वदामि
लङ्कां परित्रातुमिमां विपत्तेः सीता प्रदेया खलु राघवाय ।१२१

निर्भर्त्सयामास नयं निशम्य विभीषणस्य स्वमतेर्विरुद्धम्
विख्यापयन् ज्ञातिरिपुं तमेव पुना रुषोवाच स राक्षसेन्द्रः ।१२२

लङ्काहिते नाचरणं त्वदीयं नीतिर्न ते वाऽस्ति ममानुकूला
तस्मात्परित्यज्य पुरीं मदीयां रामस्य पार्श्वं त्वमिहाशु गच्छ १२३

भ्रातः स्वदेशस्य वियोग उक्तः पूर्वर्षिभिः प्राणवियोगतुल्यः
दण्डचस्तथाऽहं न वचोऽर्द्धमेव श्रुत्वाऽनुजोक्तं समुवाच दैत्यः १२४

भाषाकलासंस्कृतिदेशसेवां करोति कश्चित्सततं तवेव
प्राप्स्यत्यवश्यं नियताऽसुदण्डं भ्रातुः सकाशादपि राज्यभक्तात् १२५

शत्रु की नीति और बल को जानकर जो सलाह दे वही वास्तव में सचिव है। सदा राजाओं की हाँ में हाँ मिलाने वाले चाटुकार संसद में दुर्लभ नहीं होते ॥१२०॥ अपशकुनों को देखकर आपके पाँव पकड़कर कहता हूँ कि लङ्का की इस विपत्ति से रक्षा करने के लिये सीता राम को दे देनी चाहिए ॥१२१। अपने विचार के विरुद्ध विभीषण की नीति सुनकर राक्षसराज ने उसकी खूब भर्त्सना की और उसी को वंश का शत्रु बताते हुए क्रोध से पुनः बोला ॥१२२॥ तुम्हारा आचरण लङ्का के हित में नहीं है अथवा तुम्हारी नीति भी मेरे अनुकूल नहीं है, इसलिए तुम मेरी नगरी को छोड़कर यहाँ से शीघ्र रामके पास चले जाओ ।१२३ हे भाई, प्राचीन ऋषियों ने स्वदेश वियोग को प्राण वियोग समान बताया है, मैं वैसा दण्डनीय नहीं इस प्रकार अनुज विभीषण से कहे गये अर्धवचन को ही सुनकर दैत्यराज बोला ।१२४। तुम्हारे जैसा कोई निरन्तर भाषा, कला, संस्कृति और देश की सेवा करेगा वह राजभक्त भाई से भी अवश्य शीघ्र ही दण्ड (प्राण दण्ड) निश्चित ही पायेगा१२५

तद्रावणात् कालवशंगतात्स विभीषणः प्राप्य निदेशमेनम्
समं चतुर्भिः सचिवैस्तदानीं गत्वा विहायः समुवाच धीरम् १२६
दोषो न देयो भवताऽत्र राजन् गच्छामि रामस्य समीपमेव
लङ्का सुरक्ष्या भवता मया न यतोऽस्ति लब्धा भवता मया न १२७
प्राप्स्यत्यवश्यं फलमेव राजन् प्रज्ञापराधस्य पुराकृतस्य
संत्यज्य नीतिं स्वयशोऽनुकूलां ध्रुवं शुचं केवलमेव लब्धा १२८
एतावदुक्त्वैवं गते च शत्रुं विभीषणे भ्रातरि राक्षसेन्द्रः
निवृत्ततर्षैरुपगीयमानं विहाय धर्मं न बभौ गतश्रीः ।१२६।
न विश्वसेद् वा मयि विश्वसेद् वा रामो निजारेरनुजं विलोक्य
वितर्कयन्नेवमुपस्थितः खे विभीषणः संददृशे प्लवङ्गैः ।१३०।
धर्मं पृथक्कृत्य जना जगत्यां नीतिं समाख्यान्ति तथाऽऽचरन्ति
भ्रात्रा परित्यक्त इहाभिगच्छन् रामश्च लप्स्ये शरणं कदाचित् १३१

इस प्रकार कालवशंगत रावण से इस आदेश को प्राप्तकर चार सचिवों के साथ उस समय विभीषण आकाशमें जाकर धीरतापूर्वक बोला ।१२६। हे राजन् ! राम के ही समीप जा रहा हूँ, इस विषय में आप मुझे दोष नहीं देंगे । लङ्का आप से सुरक्षित (असुरक्ष्य) है, मेरे से नहीं क्योंकि आप द्वारा प्राप्त है मेरे से नहीं ।१२७। हे राजन्, पूर्वकृत प्रज्ञापराधका फल अवश्य पाओगे ही, आप अपने यश के अनुकूल नीति का परित्याग मात्र शोक ही प्राप्त करोगे, सुनिश्चित है ॥१२८॥ इतना मात्र कह कर भाई विभीषण के शत्रु के पास चले जाने पर धर्मज्ञ लोगों से स्तूयमान धर्म को छोड़कर राक्षसपति श्रीहीन हो गया, प्रकाशित नहीं हुआ ।१२६ अपने शत्रु के अनुज को देखकर राम मुझपर विश्वास करेंगे या नहीं करेंगे ऐसा सोचता हुआ आकाश में उपस्थित विभीषण वानरों द्वारा देखा गया ॥१३०॥ संसार में लोग धर्म को अलग कर राजनीति (नीति) की व्याख्या करते हैं और वैसा ही आचरण करते हैं, भाई से त्यागा मैं यहाँ राम के पास जाता हुआ कदाचित् शरण पा जाऊँ ? ।१३१॥

कच्चित्परिज्ञाय सुरद्विषं मां कुर्दाद् बहिर्दाशरथिर्नयज्ञः
अङ्गीकरिष्यत्यथवा कृपालू रामः स्वपादप्रणतावरक्षकः ।१३२
सनीतिमान् धर्मयुतः समन्ताद् वीरो यशस्वी शरणप्रदश्च
जघान यो वालिनमप्युदारः सुग्रीवरक्षाव्रतदीक्षितः सन् ।१३३।
न मां परित्यक्ष्यति रामभद्रो राजान्वयेजाखिलवृत्तवित्सः
कथं स मामेव निराकरिष्णुर्गुहेन साकं समवर्तयद् यः ।१३४।
वितर्कयन्नित्थमलं विभीषणश्चिन्तातुरो भावविवशङ्गतश्च
वलीमुखाक्रान्तचमूसमक्षं ययावभिज्ञानपुरःसरं सः ।१३५।
सद्यस्तमादाय निजावरोधे पर्यन्तसैन्यश्च निवासयन्तः
शाखामृगारक्षिण आशु गत्वा सेनापतिं प्रोचुरशेषवृत्तम् ।१३६।
बहिष्कृतस्त्यक्तसमस्तसौख्यः कश्चित्प्रभामण्डलमण्डितश्रीः
समं चतुर्भिःसचिवैरिदानीं विभीषणो द्वारि दिदृक्षते त्वाम् १३७

नीतिज्ञ राम मुझे देवशत्रु समझकर कहीं बाहर कर दें ? अथवा अपने चरणावनत के रक्षक कृपालु राम मुझे स्वीकार करेंगे ? ।१३२। वह नीतिमान् हैं, सब प्रकार से धर्मरत हैं, वीर, यशस्वी और शरणदाता हैं, उदार जिन्होंने सुग्रीव रक्षा का व्रत लेकर बालि का भी वध किया है ॥१३३॥ सद्वंश प्रसूत, अखिल वृत्तकोविद वह राजा रामभद्र मुझे छोड़ेंगे नहीं जिन्होंने गुह के साथ भी समान वर्ताव किया वह मुझे ही क्यों निराकृत करेंगे ? ॥१३४॥ इस प्रकार वितर्क करता हुआ, चिन्ता-कुल, भावविवशवर्ती विभीषण अभिज्ञानपुरःसर वानरों से अधिष्ठित सेना के समक्ष उपस्थित हुआ ॥१३५॥ सैनिकों से घिरे उसे तुरन्त लेकर अपने शिविर में ठहराते हुए वानर आरक्षियों ने शीघ्र जाकर सेनापति से सारा वृत्तान्त सुनाया-कहा ॥१३६॥ (पुरी से) बहिष्कृत, समस्त सुखों को छोड़कर, प्रभामण्डल से दीप्तकान्तियुक्त विभीषण नाम का कोई व्यक्ति चार सचिवों के साथ, इस समय तुमसे मिलना चाहता है ॥१३७॥

कच्चिन्नु भेदं परितोऽवगन्तुं समागतश्छद्मकथाप्रसङ्गात्
विश्वासयोग्या न भवन्ति चैते मायाविदः सन्ति निशाचरा हि १३८

नानुग्रहं निग्रहमेव मन्ये कर्तुं समीचीनमिह प्रसङ्गे
निवेदितुं स्वीयमतं ययौ स सेनापतिः राममगाधवीर्यम् ।१३९।

आसीन्मतं तत्र च लक्ष्मणस्य वीराग्रगण्यस्य विचक्षणस्य
त्याज्यः सदाऽयं परपक्षतुष्टो नापेक्षितोऽस्माभिरतो नयोऽस्य १४०

श्रुत्वा समेषामिह यूथपानामेकं मतं निग्रहरूपमेव
पप्रच्छ रामः पवनात्मजं तं लङ्काभियानानुभवप्रपूर्णम् ।१४१।

ततो हनूमान् विनयावनम्रो बद्धाञ्जली रामपदानुरक्तः
प्रज्ञानुसारं समयोपयुक्तं व्यङ्क्तुं मतं स्वं व्यवृणोद् रहस्यम् १४२

कच्चिन्न पद्मानि भवन्ति पङ्के चन्द्रो न वक्रः किमु शम्भुशीर्षे
गुञ्जा न कट्वी किमु शोभनाऽपि तिक्तञ्च निम्बं किमु नोपकारि

कहीं झूठी कहानी के बहाने सारे भेद जानने को तो नहीं आया है ? ये निशाचर विश्वास योग्य नहीं है क्योंकि माया जानते हैं ।१३८। ऐसे अवसर पर अनुग्रह नहीं दण्ड देना ही समीचीन है ऐसा सोचकर अपने विचार बताने के लिए सेनापति अगाधवीर्य राम के पास गया ।।१३९।। वीराग्रेसरी, पण्डित, लक्ष्मण का मत था शत्रुपक्ष से प्रसन्न रहने वाला यह सदैव त्याज्य है इसलिये हमें इसके नीति की अपेक्षा नहीं है ।१४०। इस प्रकार सारे यूथपों का एक ही निग्रह रूप विचार सुनकर राम ने लङ्काभियान के अनुभव से प्रपूर्ण हनुमान से पूछा ।१४१। तब विनयावनत, रामपदानुरागी हनुमान ने हाथ जोड़कर बुद्धि के अनुसार समयोपयुक्त अपने मत को व्यक्त करने के लिये रहस्य का विवेचन किया ।।१४२।। क्या कीचड़ में कमल नहीं होते ? शिव सिर पर भी क्या टेढ़ा चन्द्रमा नहीं है ? सुन्दर भी गुञ्जा क्या कड़वी नहीं होती ? और तिक्त भी नीम क्या उपकारी नहीं होता ? ।।१४३।।

धैर्येण सर्वत्र नयो विचिन्त्यः पूर्वापरीभावविवेकयुक्तः
दोषायते चापि गुणः कदाचिद् दोषः कदाचिन्न गुणायते किम्

सीता स्थिता साम्प्रतमध्यशोकं सङ्केत एषोऽस्ति च केन दत्तः
अप्राप्य साहाय्यमपेक्ष्यते किं जयः क्वचित् केवलमेव शौर्यैः १४५

यत्नोऽत्र कार्यस्तु सहायशुद्धौ सदा परीक्ष्यः स्वजनः परश्च
कालानुसारं परिवर्तते‌ऽसौ बुद्धिर्यथा स्वस्य तथा परस्य ।१४६।

राज्यं परित्यज्य वने वसन्तं मित्राय राज्यं ददतं तदीयम्
एवम्प्रकारं पुरुषञ्च जानन् नोपैति रामं स विभीषणः किम् १४७

साकं कृतज्ञेन गुणान्वितेन चारित्र्ययुक्तेन च निश्छलेन
वाञ्छन्ति मैत्रीं निरुपद्रुताश्च ह्युपद्रुतः किन्न विभीषणः स. १४८

रिक्थागतं राज्यमपीह दातुं भ्रात्रे समुत्काः पुरुषाः कियन्तः
भूपा इदानीं न समुत्सुकाः किम् भ्रातुः सुखं हर्तुमृतं प्रवक्तुः १४९

इसलिये सर्वत्र नीति का विचार पूर्वापरी भाव के विवेक पूर्वक ही करना चाहिए। गुण भी कभी दोष बन जाता है और दोष भी कभी गुण नहीं बनता क्या ? ॥१४४॥ इस समय सीता अशोक (वाटिका) में है इसका संकेत मुझे किसने दिया था ? क्या सहायता पाये बिना केवल पराक्रम से ही कहीं विजय की अपेक्षा की जा सकती है ? ॥१४५॥ इसलिये सहाय शुद्धि में प्रयास करना चाहिए, स्वजन और परजन की सदा ही परीक्षा करनी चाहिए क्योंकि यह बुद्धि समयानुसार बदलती रहती है जैसे अपनी (स्वजन की) वैसे ही दूसरे (शत्रु) की भी ॥१४६॥ राज्य को छोड़कर वन में रहने वाले, मित्र का राज्य मित्र को ही देने वाले, इस प्रकार के पुरुष राम को जानता हुआ भी विभीषण क्या उनके पास नहीं आया है ॥१४७॥ निरुपद्रत (सुखी) लोग भी निश्छल, चरित्र सम्पन्न, गुणोपेत, कृतज्ञ के साथ मित्रता चाहते हैं, फिर तो विभीषण भागा हुआ नहीं है क्या ? ॥१४८॥ इस संसार में कितने लोग हैं जो धरोहर में प्राप्त राज्य भाई को देने के लिए उत्सुक हैं । इस समय सच बोलने वाले भी भाई का सुख छीनने को राजा लोग तत्पर नहीं हैं क्या ? १४९॥

सर्वत्र शङ्कालवदुर्विदग्धा भवन्तु मित्रेष्वनपेक्षमाणाः
वदान्यता यास्यति कं तदानीं किं वा स्थितिः स्यात्शरणागतस्य
पूर्वं न चाऽयं समुपागतो मे त्याज्यः सदेत्थं न विचिन्तनीयम्
प्रायः समापन्नविपत्तिकाले जनः शरण्याच्छरणं हि वाञ्छति १५१
निसर्गतः शत्रुरिपुः स्वकीयः कर्त्तव्य एषाऽस्ति नयज्ञनीतिः
कामं परीक्ष्यः स च बुद्धिपूर्वं विश्रम्भमुत्पाद्य नृपेण नूनम् १५२
वाग्मी पटुः स्वीयमहत्त्वमिच्छन् क्षुब्धः स्ववंश्येभ्य इहागतोऽयम्
लङ्कारहस्यानि च वेत्ति सम्यक् तस्मात् सयत्नं स्वजनो विधेयः
गरीयसीश्चार्थवतीं नयान्वितां निशम्य वाचं पवनात्मजस्य सः
नीतिज्ञसञ्चारपथाग्रगण्यः समर्थयामास नयं हनूमतः ।।१५४।।
निजान्समुद्दिश्य जगाद रामो भवेन्न वः खिन्नमनाश्च कश्चित्
परिस्थितिः सम्प्रति चिन्तनीया युष्माभिरेषा निपुणं निरीक्ष्य १५५

यदि मित्रों की उपेक्षा करने वाले सर्वत्र शङ्कालेशदुर्विदग्ध लोग ही होंगे तो फिर वदान्यता किसके पास जायेगी और शरणागत की दशा क्या होगी ? ।।१५०।। पहले यह मेरे पास नहीं आया अतः त्याज्य है, ऐसा सदा नहीं सोचना चाहिये । प्रायः विपत्ति आने पर व्यक्ति शरण्य की ही शरण चाहता है ।।१५१।। स्वभावतः शत्रु के शत्रु को अपना बना लेना चाहिये यही नीतिज्ञ की नीति है । राजा को चाहिये कि विश्वास पैदाकर बुद्धिपूर्वक उसकी परीक्षा की जाय ।।१५२।। वाग्मी, पटु, अपने महत्त्व का अभिलाषी, अपने वंशीयजनों से क्षुब्ध यह यहाँ आया है और लङ्का के रहस्यों को भलीभाँति जानता है, इसलिये यत्नपूर्वक इसे अपना बना लेना चाहिए ।।१५३।। पवनसुत हनुमान् की नय-समन्वित, अर्थवती, गरीयसी वाणी को सुनकर नीतिज्ञों के सञ्चार-पथाग्रगामी उन राम ने हनुमान की नीति का समर्थन किया ।।१५४।। अपने लोगों को लक्ष्य कर राम ने कहा आप में कोई खिन्न मन न हो, इस समय आप सभी को अच्छी तरह देखकर परिस्थिति पर विचार करना चाहिये ।।१५५।।

यस्तु प्रपन्नः शरणं सकृन्मे तवास्मि शब्दं समुदाहरंश्च
ददामि तस्मायभयं विपद्भ्यो व्रतं ममेदं विदितं भवेद् वः १५६

अस्त्येकतो नीतिविदां मतं यद् विश्वासयोग्यो न रिपुः कदाचित्
अन्यत्र निश्चप्रचमेतदोयं व्रतञ्च युष्माभिरतोऽत्र चिन्त्यम् ।१५७।

प्रकल्प्यतां स प्रणिधिः सुरारेर्ज्ञातुञ्च भेदं समुपागतोऽस्ति
तत्रान्तरं किं भविताऽस्मदीये सैन्येऽथवा वानरयूथपेषु ।१५८।

नास्मासु रन्ध्रं परवानहं न सैन्यं न मे वेतनभोगिमात्रम्
निपातनार्थन्तु निशाचराणां प्रभुर्न किं लक्ष्मण एक एव ।१५९।

स्यान्मित्रभावेन समागतोऽयं प्रपीडितः सन्नुत रावणेन
जिहासितव्यो नहि शङ्कयैव कामं रणे स्याच्च महत्त्वपूर्णः १६०

विज्ञाय रामस्यविनिश्चयं तैरुपस्थितैर्वानरयूथमुख्यैः
सहर्षमोमोमिति घोषयुक्तं समर्थिताऽत्राऽऽगतमानरक्षा ।१६१।

'तुम्हारा हूँ' इस शब्द का उच्चारण करता हुआ जो एक बार मेरी शरण में आ जाय मैं उसे विपत्तियों से अभयदान दे देता हूँ, यह मेरा व्रत आप सभी को ज्ञात होना चाहिए ।।१५६।। एक ओर नीतिज्ञों का मत है कि शत्रु कभी भी विश्वास योग्य नहीं होता, और दूसरी ओर मेरा यह दृढ़ व्रत है, इसलिये आप यहाँ सोचें ।।१५७।। मानलीजिये वह दानवेन्द्र का गुप्तचर है और भेद जानने के लिये आया है तो भी हमारी सेना अथवा सेनापतियों में क्या अन्तर पड़ता है ।।१५८।। हममें कोई छिद्र (त्रुटि) नहीं हैं, मैं पराधीन नहीं हूँ, मेरी सेना मात्र वेतनभोगी नहीं है, सारे राक्षसों को मारने के लिये क्या अकेले लक्ष्मण ही समर्थ नहीं हैं ? ।।१५९।। चाहे यह मित्रभाव से आया हो, या रावण से त्रस्त होकर, मात्र सन्देहवश त्याज्य नहीं है क्योंकि युद्ध में काफी महत्वपूर्ण हो सकता है ।।१६०।। राम के निश्चय को जानकर उपस्थित उन सभी वानर यूथपों ने, शरणागत की मान रक्षा का ओम् ओम् इस ध्वनि से समर्थन किया ।।१६१।

आज्ञां ततः प्राप्य चमूपतेस्ते प्रकूर्दमानाः प्रमुखाः प्लवङ्गाः
ययुस्तमानेतुमिहोपरामं विभीषणं रामपदानुरक्तम् ।१६२।

दृष्ट्वा समक्षं रघुवंशरत्नं मन्दस्मितं लक्ष्मणसेव्यमानम्
कारुण्यपूर्णं नयनामृतं स विभीषणस्तस्य पदोः पपात ।१६३।

मां त्राहि मां त्राहि वदन्तमेवं सद्यः समुत्थाप्य विभीषणं सः
रामो हृदाऽऽलिङ्ग्य जगाद तूर्णं लङ्कापते मा कुरु शोकमत्र १६४

गतानि पापान्यखिलानि तानि यानि त्वया भ्रातरुपार्जितानि
इतः प्रभृत्यासकलं स्वजीवं लङ्केश राज्यस्य सुखानि भुङ्क्ष्व

नावश्यकं मेऽत्र तव प्रमाणं भक्तिं त्वदीयां मयि दर्शनार्थम्
तवाकृतिस्ते वचसोऽभिभङ्गी भावं तव ख्यापयतश्च मे त्वाम्

एवं तमुक्त्वाऽखिललोकबन्धुस्तं द्रागुपावेश्य निजासनार्द्धे
सत्कारपूर्वं समपृच्छदेनं गन्तुं समुद्रस्य विधिश्च पारम् ।१६७।

फिर सेनापति की आज्ञा प्राप्तकर कूदते हुए वे प्रमुख बन्दर, रामपदानुरागी उस विभीषण को राम के समीप लाने के लिए चले गये ॥१६२॥ अपने सामने मन्द-मन्द मुसकराते, लक्ष्मण से सेवा किये जा रहे, रघुवंश शिरोमणि, कारुण्य पूर्ण, नेत्राभिराम रामको देखकर विभीषण उनके चरणों पर गिर पड़ा ॥१६३॥ मेरी रक्षा करो-मेरी रक्षा करो इस, प्रकार कहते हुए विभीषण को उठाकर तुरन्त राम छाती से लगाकर शीघ्र उससे बोले 'लङ्कापति ! शोक न करो' ॥ ६४॥ भाई तुमने जितने भी पाप उपार्जित किए थे वे सभी समाप्त हो गये। आज से लेकर अपने सारे जीवन भर हे लङ्केश! रावण के राज्य का सुख भोगो ।१६५। मुझे तुम्हारा प्रमाण नहीं चाहिए। मेरे प्रति तुम्हारी भक्ति के प्रदर्शन के लिए तुम्हारी आकृति और तुम्हारे कथन की भङ्गिमा ही मेरे प्रति तुम्हारे भाव को व्यक्त कर रहे हैं ॥१६६॥ इस प्रकार उससे कहकर समस्त लोक के बन्धु राम ने शीघ्र ही उसे अपने आधे आसन पर बिठाकर सत्कार पूर्वक उससे समुद्र पार जाने की विधि पूछा ।१६७

मह्यं महत्त्वं परितः प्रदातुं रामः समापृच्छति सिन्धुमार्गम्
अचिन्तयन्नित्थमसौ विभीषणो भूत्वा कृतार्थः समुवाच धीरम्
अजेयता तेन सुरद्विषाऽत्र लब्धा द्विधा पूर्णमनोरथेन
सुरक्षितः सोऽस्ति शिवप्रसादादुदन्वता चापि सुरक्षितोऽस्ति
दैव्या समं भौतिकशक्तिमस्य हन्तुं विधी द्वौ भवताऽपि कार्यौ
संस्थाप्य लिङ्गं गिरिशोऽत्र पूज्यः पूज्योऽर्णवो ज्ञातुमतश्च मार्गम्
जय्यो रिपुर्मे मनसा बलेन द्विधाऽप्यहं चास्मि रणे प्रवृत्तः
एवं सुसज्जोऽरिजयाभिलाषी साफल्यकाष्ठां परमां प्रयाति १७१
रहस्यपूर्णं समयोपयुक्तं वचो निशम्याखिललोकजिष्णुः
अपांपतिं मानयितुं तदानीं तस्योपकूलं स्थितवान् प्रपूज्य ।१७२।
दिनत्रयं यावदसौ प्रतीक्ष्य क्षुब्धः स्वबाणं धनुषा प्रयुञ्ज्यात्
सोपायनस्तावदसौ समुद्रः संयाचमानश्च कृपां बभाषे ।१७३।

हर प्रकार से मुझे महत्व देने के लिए राम समुद्र मार्ग पूछ रहें हैं, ऐसा सोचता हुआ वह विभीषण कृतार्थ होकर धीर राम से बोला ॥१६८॥ आप्त काम उस देवद्वेषी रावण ने दो प्रकार से अजेयता प्राप्त की है वह शिव की कृपा से सुरक्षित है, समुद्र से भी सुरक्षित है ॥१६९॥ दैवी शक्ति के साथ इसकी भौतिक शक्ति को नष्ट करने के लिये आपको भी दो विधियाँ करनी चाहिए, यहाँ शिव की स्थापना कर पूजा करनी चाहिये और समुद्र की भी पूजा, इससे मार्ग जानने के लिये करनी चाहिए ॥१७०॥ मेरा शत्रु मन और बल से जेय है मैं भी दो प्रकार से युद्ध में प्रवृत्त हुआ हूँ इस प्रकार से सुसज्जित विजयाभिलाषी सफलता को पराकाष्ठा को प्राप्त कर लेता है ॥१७१॥ समयानुकूल, रहस्यपूर्ण वाणी को सुनकर समस्त लोकजयी राम उस समय समुद्र को मनाने के लिये पूजाकर उसके तट पर खड़े रह गये ॥१७२॥ तीन दिनों तक प्रतीक्षा कर, क्षुब्ध होकर ज्यों ही वह अपने बाण को धनुष से युक्त करें तब तक सोपहार समुद्र याचना करता हुआ कृपा की याचना करने ॥१७३॥

ज्ञात्वा भवन्तं न मया जडेन नियन्त्रितेनासुरशासकेन
कृतामुपेक्षां क्षमतामिदानीं गन्तुञ्च पारं विदधातु सेतुम् ।१७४।
ततः प्रभाते क्षितिजादुदीतं संतप्तकार्तस्वरपिण्डरूपम्
स्नात्वा बहिर्यातमिवोदधेः स स्ववंशकर्तारमिनं ददर्श ।१७५।
निभाल्य यं याति लयं तमिस्रा दूरङ्गता रात्रिचरा उलूकाः
निशाचराहङ्कृतियामिनीं स व्यपोहितुं तं प्रणनाम रामः ।१७६।
मुनीन्समाहूय शुभे मुहूर्ते निजेष्टदेवस्य महेश्वरस्य
संस्थाप्य लिङ्गं विधिवत्प्रपूज्य प्राप्तुं जयं तं प्रणमन्नुवाच।१७७।
महेश शम्भो गिरिजापते हे भूतेश मृत्युञ्जय कृत्तिवासः
कृशानुरेतः भव वामदेव कपालभृत्ते चरणौ नमामि ॥१७८॥
त्वमादिदेवः पुरुषः पुराणस्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्
सर्वं त्वमेवं परिपासि हंसि जगत् समस्तञ्च यदृच्छयैव ।१७९।

आपको न जानकर असुराधिप से नियन्त्रित मुझ जड़ से की गयी उपेक्षा को आप अब क्षमा करें और पार जाने के लिये सेतु बनायें ॥१७४॥ फिर प्रभात में क्षितिज से निकले, तपाये गये स्वर्ण-पिण्ड रूप, स्नान कर समुद्र से बाहर निकले से, उन्होंने अपने वंशकर्ता सूर्य को देखा।१७५। जिसे देखकर तमिस्रा (अन्धकार) विलीन हो जाती है, रात्रिचारी उल्लू दूर चले जाते हैं, राक्षसाहंकार रूपी रात्रि को नष्ट करने के लिये उन्होंने उन श्री सूर्य भगवान् को प्रणाम किया ॥१७६॥ मुनियों को बुलाकर शुभ मुहुर्त में अपने इष्टदेव शिवलिङ्ग की स्थापना कर सविधि पूजा कर, जय प्राप्त करने के लिये, प्रणाम करते हुए उनसे बोले ॥१७७॥ हे महेश, शम्भु, गिरिजापति, भूतपति, मृत्युञ्जय, गजाजिन, कृशानुरेत, भव, वामदेव, कपालधारी तुम्हारे पैरों को प्रणाम करता हूँ ॥१७८॥ तुम आदि देव, तुम पुराण पुरुष हो, तुम्हीं इस संसार के परम निधान हो, तुम्हीं इस समस्त संसार को अपने स्वेच्छा से उत्पन्न करते हो, पालन करते हो तथा संहार करते हो ॥१७९॥

त्वमेव जातिश्च गुणस्त्वमेव द्रव्यं क्रिया चापि विभो त्वमेव
अर्थः समस्तः सकलश्च नाम त्वमेव नित्यं भगवन्नमस्ते ।१८०।

सुप्तिङ्प्रभेदेन विभज्य शब्दमर्थं पुनः स्त्रीपुरुषप्रभेदात्
ज्ञातुं तवैवं निभृतस्वरूपं जना यतन्ते व्यवहारभाजः ।१८१।

चौरस्य साधोरसतः सतो वा त्वमेव कर्ता स्थितिदश्च हर्ता
कदाकियत्कालमलम्भविष्णुः को वा त्वमेव प्रभुरेव वक्तुम् १८२

लब्ध्वा तवैवावनिरक्षकस्य काञ्चित्कृपां चाशुवरप्रदस्य
नैशाचरीवृत्तिविकासलग्नोऽधुनाऽस्ति शिष्यस्तव रावणोऽपि ।१८३

रणे पराजित्य तमेव सद्यः कर्तुं पुनर्मानवताविकासम्
आयोध्यको दाशरथिस्तवाऽहं रामेश्वर त्वां सततं नमामि ।१८४

विधाय पूजां मृदुहास्ययुक्तो निरीक्ष्य वक्त्रं पवनात्मजस्य
नीलं नलं सेतुविधानकार्ये योक्तुं स सेनापतिमादिदेश ।१८५।

तुम्हीं जाति, गुण, क्रिया, द्रव्य तथा हे समर्थ-व्यापक, तुम्हीं समस्त अर्थ और सारा नाम हो, भगवन् तुम्हीं नित्य हो, तुम्हें प्रणाम है ॥१८०॥ सुप्, तिङ्, शब्द, अर्थ तथा स्त्री-पुरुष भेद से विभक्त कर तुम्हारे इस प्रकार के गूढस्वरूप को जानने के लिये व्यवहारकर्ता जन प्रयास करते हैं ॥१८१। चोर, साधु, सज्जन सत् अथवा असज्जन (असत्) सभी के कर्ता, धर्ता संहर्ता तुम्हीं हो। कौन, कब, कितने समय तक समर्थ होता है, कहने में तुम्ही समर्थ हो ॥१८२॥ शीघ्र वरप्रदाता, भूरक्षक आपकी ही कुछ कृपा प्राप्तकर राक्षसवृत्ति के विकास में लगा हुआ इस समय रावण भी तुम्हारा ही शिष्य है ॥१८३॥ उसी रावण को शीघ्र ही युद्ध में पराजित कर मानवता का पुनः विकास करने के लिये अयोध्यावासी, दशरथ पुत्र मैं राम, हे रामेश्वर! तुम्हें निरन्तर प्रणाम करता हूँ ॥१८४॥ पूजा कर, कोमल हास्य युक्त, स्मित पूर्वक राम ने पवन पुत्र के मुख को देखकर, सेतु बनाने के कार्य में नील-नल को लगाने के लिए सेनापति को आदेश दिया ॥१८५॥

साश्चर्यमेतत् सकलैर्दिविस्थैः साकं समेऽद्राक्षुरधोत्रसन्तः
यद्वानरस्पर्शवशात्समस्ता अब्धौ शिलाः संहतितां प्रयाताः ।१८६

भीमाकारवलीमुखाध्यवसनेनानीयमानैर्द्रुमै-
रद्रीणामपि खण्डनेन बहुधा लब्धैः शिलासञ्चयैः
नेतृत्वे नलनीलयोरधिजलं सन्निर्मितं शोभनं
दृष्ट्वा सेतुमयादनीकसहितो लङ्कां मुदा राघवः ।१८७।

श्रीश्यामान्वितसुन्दरोऽस्ति जनको माता च यस्याम्बिका
यः श्रीराजकिशोर आप्तचरितः शाण्डिल्यवंशोद्भवः
सद्हृच्छान्तिकृति त्रयोदशतयोद्देश्यस्तदीये महा-
काव्येऽयं व्यरमच्च रामचरिते सर्गः प्रशंस्यो बुधैः ।१८८।

सभी आकाशस्थ देवों समेत सभी भूलोक वासियों ने साश्चर्य देखा कि वानर नल नील के स्पर्श से शिलायें समुद्र में जुड़ गयीं ॥१८६॥ भीम-स्वरुप वानरों के प्रयास से लाये जा रहे वृक्षों और पर्वतों को तोड़ने से प्राप्त शिलासमूहों से नल-नील के नेतृत्व में जल पर बने सुन्दर सेतु को देखकर प्रसन्न राम सेना सहित लङ्का में पहुँच गये ॥१८७॥ जिनके पिता श्री श्यामसुन्दर और माता अम्बिका हैं, शाण्डिल्यगोत्रोत्पन्न, आप्तचरित जो श्री राजकिशोर मणि हैं उनसे निर्मित सज्जनों के हृदय में शान्वि प्रदान करने वाले राघवेन्द्रचरित महाकाव्य का पण्डितों से प्रशंस्य त्रयोदश सर्ग पूण हुआ ॥१८८॥

चतुर्दशः सर्गः

राघवप्राप्तनिर्देशः सुग्रीवस्तदनन्तरम्
विभज्य पृतनां सम्यक् लङ्कां संरुध्य सर्वतः ।१।

स्वसंरम्भैरिवोच्छेत्तुं लङ्कापापनिशीथिनीम्
गत्वा राममुदेष्यन्तं विवस्वन्तमिव स्थितम् ।२।

रावणप्रेषिते चारे गृहीते वानरैः शुके
पप्रच्छ सादरं तत्र कर्त्तव्यं यदपेक्षितम् ।३।

वध्योऽयं वानरैर्बद्धो रहस्यं ज्ञातुमागतः
क्षमस्वैनं परं दीनमुक्त्वा रामो मुमोच तम् ।४।

शुकेन ज्ञातवृत्तान्तो रावणः सौधमन्वगात्
कपीनां दूरतो द्रष्टुं व्यूहं युद्धभिलाषिणाम् ।५।

इसके बाद राम से आज्ञा प्राप्त सुग्रीव ने सेना को भलीभांति विभक्तकर, लङ्का को चारों ओर से घेरकर, अपने प्रयत्नों से लङ्का की पाप निशा को काटने के लिये उदित होने वाले सूर्य के समान स्थित राम के पास जाकर रावण से भेजे गये गुप्तचर को वानरों द्वारा पकड़े जाने पर जो अपेक्षित करणीय था, राम से सादर पूँछा ॥१-३॥ यह भेद जानने आया था, वानरों ने बाँध लिया, वध्य है। किन्तु राम ने यह कहकर उसे छोड़ दिया कि इस गरीब को क्षमा कर दो ॥४॥ गुप्तचर से वृत्तान्त जानकर रावण युद्धाभिलाषी वानरों के व्यूह को दूर से देखने के लिए अपने प्रासाद पर गया ॥५॥

इतो निरीक्षितुं सम्यक् लङ्काभौगोलिकीं स्थितिम्
जागरूको गतो रामः सुवेलाद्रिं सयूथपः ।६।

सौधोपरि भ्रमत्कान्ति पिण्डमेकं भ्रमत्पुनः
दृष्ट्वा कुतूहलेनेव पप्रच्छासौ विभीषणम् ।७।

न विच्छेद्यं शिरो यस्य धारणात् शत्रुभिः क्वचित्
किरीटं रावणस्यैतद् यत्नतो मयनिर्मितम् ।८।

धृत्वैतद् रावणो नूनं सौधस्योपरिचागतः
सैन्यव्यूहं परिज्ञातुं स्कन्धावारं निरीक्षते ।९।

विभीषणवचः श्रुत्वा राघवः कर्मतत्परः
कर्तुं युद्धसमारम्भमिषुणा संजहार तत् ।१०।

भीषामेवं समुत्पाद्य रावणस्य हृदन्तरम्
कृत्वा शुभसमारम्भं राघवोऽचिन्तयत्पुनः ।११।

इधर लङ्का की भौगोलिक स्थिति को अच्छी तरह देखने के लिये यूथप समेत जागरूक राम सुवेल पर्वत पर गये ॥६॥ प्रासाद पर घूमते हुए प्रकाशमान्, एक पिण्ड को देखकर भ्रमण कर रहे उत्कण्ठायुक्त से राम ने विभीषण से पूछा ॥७॥ जिसके धारण करने से जिसका शिर शत्रुओं से कभी भी विच्छेद्य नहीं होता वही यह सप्रयास मयनिर्मित रावण का मुकुट है ॥८॥ इसे धारण कर हमारी सैन्य व्यूहरचना देखने के लिए निश्चय ही रावण प्रासाद पर आया है, सेना शिविर का निरीक्षण कर रहा है ॥९॥ विभीषण की इस बात को सुनकर कार्यतत्पर राम ने युद्ध का प्रारम्भ करने के लिये बाण से उसे गिरा दिया ॥१०॥ इस प्रकार रावण के हृदय में भय उत्पन्न कर शुभ समारम्भ करने के लिए राम ने पुनः सोचा ॥११॥

क्वचिद् युद्धं वरं नोक्तं साम्ना सिद्ध्येत् क्रिया यदि
तदर्थं सन्धिसन्देशः प्रेषणीयो मयाऽधुना ।१२।

मतमेनमुपस्थाप्य रामो नीतिविचक्षणः
पप्रच्छ यूथपान् सर्वान् लङ्कां गन्तुं क उत्सुकः ।१३।

दृष्ट्वा समुत्सुकान्सर्वान् गन्तुं लङ्काञ्च नायकान्
सादरं प्रणिपत्योचे वालिपुत्रो युवाऽङ्गदः ।१४।

इहानीकसमारम्भे चित्रं नैषन्मया कृतम्
नियोजयतु मां तात कर्मण्यस्मिन् रघूद्वह ।१५।

पुत्रोऽहं वानरेन्द्रस्य दैत्यमित्रस्य वालिनः
ब्रूयात्स मयि विश्वस्तः कच्चित् किञ्चिदभीप्सितम् ।१६।

यद्यप्यनुभवशून्योऽहं न शक्तो दूतकर्मणि
यतिष्ये राजपुत्रत्वात् प्रभावाद् भवतस्तथा ।१७।

यदि कहीं साम से कार्य सिद्ध हो जाय तो युद्ध अच्छा नहीं माना जाता उसके लिए मुझे इस समय सन्धि का सन्देश भेजना चाहिये ॥१२॥ नीति विचक्षण राम ने इस मत को उपस्थित कर सारे यूथपों से पूँछा कि लङ्का जाने को कौन उत्सुक है ? ॥१३॥ सारे नायकों को लङ्का जाने के लिए उत्सुक देखकर सादर प्रणाम कर बालिपुत्र, तरुण अंगद बोला ।१४। सेना के संवारने के कार्य में मैंने यहाँ कोई कुछ भी अद्भुत कार्य नहीं किया है, इसलिये हे राघव आप इस कार्य में मुझे लगायें ।१५। मैं रावण के मित्र वानरेन्द्र बालि का पुत्र हूँ, मेरे पर विश्वास कर शायद वह कुछ अपनी इच्छा बताये ॥१६॥ यद्यपि मैं अनुभव शून्य हूँ और दूतकर्म में समर्थ नहीं हूँ, फिर भी राजपुत्र होने के कारण तथा आपके प्रभाव सेप्रयास करूँगा ॥१७॥

दृष्ट्वाऽङ्गदसमुत्साहं रामो नीतिविदग्रणी:
अङ्गदं प्रेषयामास दौत्यार्थं रावणं प्रति ।१८।

नीत्वा राघवसन्देशं रामभार्याऽपहारिणे
बद्धो रामानुभावेन सोङ्गजवद् गतोङ्गदः ।१९।

हनूमद्भ्रान्तिभीतेन रक्षिवर्गेण सोऽञ्जसा
अनिरुद्धो ययौ काममङ्गदो रावणान्तिकम् ।२०।

प्रबलं निर्भयं शूरं दृष्ट्वा वानरपुङ्गवम्
सांसदा उत्थिता भूत्वा रावणे क्रोधमानयन् २१।

ततः कोपपरीतात्मा स्तनयित्नुरिवासुरः
उवाच वज्रनिर्घोषं कम्पयन्तानृतेऽङ्गदात् ।२२।

उल्लङ्घ्य राजमर्यादामजानन्राजपद्धतिम्
कस्त्वं वानरवेषेण किमर्थं कुत आगतः ।२३।

नीतिज्ञों में श्रेष्ठ राम ने अङ्गद के उत्साह को देखकर दूतकर्म के लिये अङ्गद को रावण के पास भेजा ॥ ८॥ राम का सदेन्श लेकर, राम के प्रभाव से बंधा हुआ पुत्र के समान वह अङ्गद रावण के पास गया ॥१९॥ हनुमान की आशंका से डरे हुए राक्षियों से अनवरूद्ध अङ्गद स्वतन्त्रता पूर्वक रावण के पास चला गया ॥२ ॥ शक्तिशाली, निर्भय, शूर, वानर श्रेष्ठ को देखकर, सभासदों ने उठकर रावण में क्रोध का सञ्चार कर दिया ।२१॥ तब क्रोधपूर्ण मन वाला रावण बादल के समान बज्रवत् गरजता हुआ, अङ्गद को छोड़कर उन सबको कंपाता हुआ बोला ॥२२॥ राजमर्यादा का उल्लङ्घन कर, राजनय को न जानता हुआ, वानरवेष में तुम कौन है ? यहाँ किसलिये कहाँ से आया है ?२३॥

ततस्तं प्रणमन् सद्यः सान्त्वयन्निव चाङ्गदः
कथमुच्चैरिमान् प्रश्नान् पृच्छतीत्थमुवाच तम् २४।
केनाप्यपृष्ट आयामि मार्गमन्वेषयन् स्वयम्
मां विलोक्योत्थिताः सभ्या अत्र किं करवाण्यहम् ।२५।
इदानीं किं भवान् भीतः किं वा चिन्तासमाकुलः
अजानन्निव मर्यादां कुरुते राज्यशासनम् ।२६।
यदस्तु साम्प्रतं राजन् शृणोतु कथयामियत्
आगतो युक्तिमासाद्य भवत्कल्याणचिन्तया ।२७।
पुत्रोऽहं वानरेन्द्रस्य वालिनोऽक्लिष्टकर्मणः
पितृव्येण समं लङ्कामिदानीं समुपागतः ।२८।
दूतो गन्तेति विज्ञाय प्राग्युद्धं भवदन्तिकम्
भूत्वा क्लेशेन विश्वस्तो दौत्ये स्वं समयोजयम् ।२९।

तब उसे प्रणाम करता हुआ, सान्त्वना सा देता हुआ, हँसता अङ्गद उससे बोला, इन प्रश्नों को इतना जोर से क्यों पूछ रहे हो? ॥२४॥ बिना किसी के टोके, स्वयं रास्ता खोजता हुआ चला आ रहा हूँ, मुझे देखकर सभासद उठ गये, इसमें मैं क्या करूँ? ।२५॥ इस समय आप क्यों (क्या) डर गये हैं अथवा चिन्तायुक्त हैं? राजमर्यादा को न जानते हुए से राज्यशासन कर रहे हैं? ॥२६॥ राजन् इस समय जो उपयुक्त हो (है) उसे कहता हूँ, तुम सुनो। आपके हित के विचार से सलाह लेकर आया हूँ ॥२७॥ शुभकारी, वानरेन्द्र बालि का मैं पुत्र हूँ, इस समय चाचा सुग्रीव के साथ लंका में आया हूँ ॥२८॥ युद्ध के पहले आपके पास दूत जायेगा यह जानकर, कठिनाई से विश्वस्त बनकर मैंने स्वयं अपने को दूतकार्य में लगाया ॥२९॥

हृतभार्यस्यसाहाय्यं कुर्वन्रामो महाबलः
हत्वा मे पितरं राजन् भवन्तं समुपागतः ।३०।
भवताऽपि हृता भार्या तस्यैवाक्लिष्टकर्मणः
भवन्तं सुहृदं मत्वा साम्प्रतं समुपागतः ।३१।
शृणोतु प्रथमं राजन् यदर्थमहमागतः
अनन्तरं वदिष्यामि प्राप्याज्ञां स्वमतं तथा ।३२।
लङ्कास्थौ रामसुग्रीवौ स्कन्धावाराद् विशेषतः
विज्ञापयत इन्द्रारिं रावणं हतचेतनम् ।३३।
अतः पूर्वं हृता सीता या लङ्कामभिवर्तते
रामाय प्रतिदेया सा कुशलं नान्यथा क्वचित् ।३४।
निशम्य रामसन्देशं जहास बहु रावणः
सन्निपातसमाक्रान्तमिवाद्राक्षीत्तमङ्गदः ।३५।

अपहृत पत्नीक सुग्रीव की सहायता करते हुए महाबली राम राजन् ! मेरे पिता को मारकर आपके पास आ गये हैं ।।३०।। उसी अक्लिष्टकर्मकारी की पत्नी को आपने भी चुराया है। आपको मित्र मानकर इस समय समीप में आया हूँ ।।३१।। हे राजन्, पहले यह सुनें जिसके लिए मैं यहाँ आया हूं। बाद में आपकी आज्ञा प्राप्तकर अपना मत भी कहूंगा ।।३२।। लङ्का में विद्यमान्, विशेषकर स्कन्धावार से, राम और सुग्रीव हतबुद्धि, इन्द्रशत्रु रावण को विज्ञापित करते हैं ।।३३।। इससे पूर्व हरी गई सीता लङ्का में विद्यमान् हैं, वह राम को लौटा देनी चाहिए, अन्यथा कहीं कोई कुशल नहीं है ।।३४।। राम का सन्देश सुनकर रावण खूब हंसा, अङ्गद ने उसे सन्निपातग्रस्त सा देखा ।।३५।।

गतशङ्कमिवात्मानं दर्शयन् राक्षसः पुनः
विनिन्दन्नङ्गदं प्रोचे जनकघ्नप्रिये रतम् ।३६।
हन्तुं स्वपितृहन्तारं प्राप्तुं रिक्थागतं पदम्
उपक्रमः कृतोऽयं चेत् स्वागतं ते करोम्यहम् ।३७।
स्थितःसन् शत्रुसैन्ये त्वमस्माकमुपकारकः
त्वत्साहाय्यञ्च सम्प्राप्य रामो नष्टेति निश्चितम् ।३८।
हते रामे क्व सुग्रीवः क्वाथवा स विभीषणः
किष्किन्धाञ्च पुनर्गत्वा भुङ्क्ष्व राज्यमकण्टकम् ।३९।
यथा मे मेघनादोऽस्ति तथैवासि त्वमङ्गद
मित्रपुत्रो भवेन्नूनं प्रेष्ठः स्वतनयादपि ।४०।
राक्षसेन्द्रवचः श्रुत्वा प्रहसन्निवचाङ्गदः
करौ कुड्मलवत्कृत्वा प्रोवाच तदनन्तरम् ।४१।

फिर वह राक्षस अपने को निःशंक सा प्रदर्शित करता हुआ, अपने पितृहन्ता के हित में लगे अङ्गद की निन्दा करता हुआ बोला ॥३६॥ अपने पितृघातक को मारने के लिये और क्रमागत धरोहर, राजपद पाने के लिए यदि तुमने यह प्रयास किया है तो मैं तुम्हारा स्वागत करता हूँ ॥३७॥ शत्रुसेना में रहकर तुम हमारे उपकारक हो, और तुम्हारी सहायता प्राप्तकर निश्चय ही मैं राम को नष्ट कर दूँगा ।३८। राम के मर जाने पर कहाँ सुग्रीव ? अथवा वह विभीषण कहाँ रहेगा ? और फिर तुम किष्किन्धा जाकर अकण्टक राज्य का भोग करो ॥३९॥ हे अङ्गद ! मेरे लिये जैसा मेघनाद है वैसा तुम भी है। निश्चय ही मित्र का पुत्र अपने पुत्र से भी अधिक प्रिय होता है ॥४०॥ राक्षसराज की बात सुनकर हँसता हुआ सा अङ्गद कलीसदृश हाथ जोड़कर बोला ॥४१॥

लङ्काकिष्किन्धयोर्मैत्री ध्रुवा स्यात् क्रियया यया
भावत्का मामकाश्चैव प्रसन्नाः स्युः करोतु ताम् ।४२।
अङ्गदोक्तं वचः श्रुत्वा मत्वा रामाहितं च तम्
पराजेयः कथं शत्रुरित्यपृच्छत् स चाङ्गदम् ।४३।
रावणं सर्वथा ज्ञात्वा कृतयुद्धविनिश्चियम्
रक्षन् दौत्यस्य मर्यादामङ्गदः पुनरब्रवीत् ।४४।
जेतारं देवसङ्घानां रक्षसां भीमकर्मणाम्
भवन्तं वच्मि सामर्थ्यं स्वस्मिन्नानुभवाम्यहम् ।४५।
शौर्यं धैर्यं बलञ्चापि वालिनो मे पितुर्यशः
भवान् सर्वं विजानाति तस्मात् किञ्चिद् ब्रवीम्यहम् ।४६।
तमेकेनेषुणा हत्वा सुग्रीवञ्च कपीश्वरम्
कृत्वा लङ्कामनुप्राप्तः परदारापहृद्रिपुः ।४७।

जिस कार्य से लङ्का और किष्किन्धा की मित्रता दृढ हो, अपने और आपके लोग प्रसन्न हों आप उसे ही करें ॥४२॥ अङ्गदप्रोक्त बात को सुनकर उसे राम के विरोध में निरत मानकर रावण ने अङ्गद से पूछा शत्रु कैसे पराजित किया जा सकता है ? ।४३। रावण को सर्वथा युद्धार्थ दृढ़ जानकर, दूतकर्मकी मर्यादा की रक्षा करते हुए अङ्गद पुनः बोला ।४४ भीमकर्मा राक्षसों और देववृन्द के विजेता आपसे मैं कुछ कहूँ इसकी शक्ति का मैं अनुभव नहीं करता, इसकी सामर्थ्य मुझमें कहाँ। ४५॥ आप मेरे पिता बालिकी वीरता, धीरता, बल और यश सब कुछ जानते हैं, इसलिये मैं कुछ कह रहा हूँ ।४६। उसको भी एक बाण से मारकर सुग्रीव को वानरराज बनाकर परदारापहारी का शत्रु वही राम लङ्का में आया है ।४७।

दुर्धर्षोऽयं प्रचण्डोऽयं रामः शत्रुनिबर्हणः
बिभ्यत्येनं निरीक्ष्यैव शत्रवः रणकर्कशम् ।४८।

भवतामनुजो हन्त तस्यैव शरणं गतः
नूनं स्थितिस्तथोत्पन्ना यथासीद् वालिनः पुरः ।४९।

भार्यावाक्यं निरादृत्य प्रवृत्तो युद्धकर्मणि
अनिच्छन्स्वानुजं नूनं वाली हन्त दिवंगतः ।५०।

दानदण्डविभेदैस्तु नायं ग्राह्यो भवद्रिपुः
साम्नैवाऽयं निगृह्यः स्यात्तस्मात्तदवलम्बताम् ।५१।

न जहाति क्वचिद् राम आगतं शरण निजम्
विषमेऽपि समुत्पन्ने नहि रामो द्विर्भाषते ।५२

तस्मात् सीतां पुरस्कृत्य तवास्मीति वदन् पुनः
गच्छताद् यदि तत्पार्श्वं भविता शोभनं समम् ।५३।

शत्रुविनाशक वह राम दुर्घर्ष और प्रचण्ड है, युद्धकर्कश इन्हें देखकर ही शत्रु डर जाते हैं ।४८। दुःख है कि आपका छोटा भाई उसी की शरण में गया है । वही स्थिति पैदा हो गई है जो वालि के सामने थी ।४९। पत्नी के कथन का तिरस्कार कर युद्धकर्म में लगा हुआ अपने छोटे भाई को न चाहने वाला वालि स्वर्ग चला गया ५०। आपका यह शत्रु दान, दण्ड और भेद के वश में होने वाला नहीं, यह साम से ही वश्य हो सकता है इसलिये उसी का सहारा लें ५१। अपने शरण में आये हुए को राम कभी नहीं त्यागते, विषम स्थिति उत्पन्न हो जाने पर भी राम दो तरह की बात नहीं करते ॥ ५२॥ इसलिये आप सीता को आगे कर मैं तुम्हारा हूँ, ऐसा कहते हुए यदि उनके पास आप चले जांय तो बहुत अच्छा होगा ॥५३॥

वालिपुत्रवचः श्रुत्वा किञ्चिदारक्तलोचनः
अङ्गदं समुवाचेत्थं रावणो लोकरावणः ।५४।

रामाद् भीतोऽसि रे बाल न जानासि बलं मम
कः स्थितः किमु कः स्थाता सम्मुखं मे रणाङ्गणे ।५५।

नराणां वानराणां का का स्थितिः मम सम्मुखे
जेतुः सर्वस्य लोकस्य विजेतुस्त्रिदिवौकसाम् ।५६।

अलं दौत्येन रे मूर्ख चाञ्चल्यं मा प्रदर्शय
मित्रपुत्रोऽसि दूतोऽसि तस्मान्मुञ्चामि त्वामहम् ।५७।

वावदूक वृथा जल्पिन्नन्यथा किं करिष्यसि
एवमुक्त्वाङ्गदस्तत्र भर्त्सयामास रावणम् ।५८।

ततः क्रोधपरीतात्मा संक्षुब्धाशीविषोपमः
राक्षसेन्द्रोऽङ्गदप्राणान् हतुं तत्रादिदेश सः ।५९।

बालितनय की बात को सुनकर, क्रोध से लालनेत्र, लोक को रुलानेवाला रावण अङ्गद से यों बोला ॥५४॥ अरे बालक-मूर्ख ! तुम राम से डर गये हो, मेरी शक्ति नहीं जानते। युद्धक्षेत्र में मेरे समक्ष कौन टिका है ? और कौन टिक पायेगा ? ॥५५॥ सारे लोक और सारे देवताओं के विजेता मेरे सम्मुख नरों-वानरों की बात ही क्या ? ॥५६॥ रे मूर्ख! दौत्यकर्म तुम्हारा व्यर्थ है, छोड़ो, चपलता न दिखाओ, मित्र बालि के पुत्र और दूत हो, इसलिये मैं तुम्हें छोड़ देता हूँ ॥५७॥ वाचाल, व्यर्थ जल्पना करते हो, तुम अन्यथा क्या कर लोगे ? तब ऐसा कहकर रावण की अङ्गद ने भर्त्सना की ॥५८॥ इस पर संक्षुब्धसर्प के समान क्रोधोपेत राक्षसराज ने अङ्गद के प्राणों का अपहरण करने के लिए आदेश दे दिया ॥५९॥

ततः शीघ्रं समुत्प्लुत्य गत्वा च रावणान्तिकम्
तत्किरीटं हठान्नीत्वा प्राक्षिपद् रामसन्निधौ ।६०।
अनन्तरञ्च सम्मृद्य रक्षकान् मरणोत्सुकान्
भीतिमुत्पादयन् शत्रावङ्गदः पुनरागमत् ।६१।
अन्येद्युरुदयं जाते सहस्रांशौ शुचिव्रतः ।
आदिदेश कपीन् रामो रोद्धुं लङ्कां समन्ततः ।६२।
ततः स दृष्ट्वा कपियूथपानामुपक्रमं ध्वंसयितुं पुरीं स्वाम्
आदिश्य रक्षः पृतनां निरोद्धुं सीतां ययौ रावण आत्तमायः ।६३
निर्माय रामस्य शिरो वितुण्डं रक्तं स्रवद्घूर्णिततारकञ्च
सीतासमक्षं तदुपाहरन्स उवाच वैदेहि शुभं भवेत्ते ।६४।
संदृश्य रामस्य पराक्रमं त्वं मत्वा च पन्थानमकण्टकं स्वम्
वृणीष्व भद्रे सुखमाप्तुमाराद् दिष्टयोपलब्धं निजकिङ्करं माम्।६५

फिर तो शीघ्र कूद कर, रावण के समीप जाकर, हंसते हुए उसके मुकुट को लेकर अंगद ने राम के पास फेंक दिया ।।६०।। इसके बाद मरणोत्सुक रक्षकों का सम्मर्दन कर, शत्रु में भय उत्पन्न करअङ्गद पुनः लौट आये ।।६१।। दूसरे दिन सूर्योदय होने पर शुचिव्रत राम ने लङ्का को चारों ओर से घेरने का वानरों को आदेश दिया ।।६२।। इसके बाद रावण अपनी पुरी लङ्का को विनष्ट करने की कपियूथपों के प्रयास को देखकर उन्हें रोकने के लिये राक्षस सेना को आदेश देकर मायावी सीता के पास गया ।।६३।। चूते हुए रक्त और चढ़ी हुई पुतलियों वाले मुख रहित राम के सिर का निर्माण कर, सीता के सामने उसे प्रस्तुत करते हुए बोला, विदेहपुत्रि तुम्हारा मंगल हो ।।६४।। राम के पराक्रम को देखकर भद्रे, शीघ्र सुख प्राप्ति के लिए, अपने मार्ग को निष्कण्टक मानकर सौभाग्य से उपस्थित मुझ सेवक का वरण करो ।।६५।।

विहाय सीतां रुदतीं तदानीं प्रहस्तसन्देशवशंगतेऽस्मिन्
गतेऽसुरेन्द्रे त्रिजटा कथञ्चित् प्रसान्त्वयामास नरेन्द्रपुत्रीम् ।६६।
विवर्णतां याति मृताकृतिर्मुहुस्तथा न रामस्य शिरो निभालय
विचार्य मायां लभतां धृतिं सुते न शोककालस्त्रिजटा जगाद ताम्
अत्रान्तरे सा पृतना कपीनां युद्धोत्सुका रामजयाभिलाषा
उद्घोष्य रामो जयतात्तदानीं होतुं रणाग्नावसुरान्प्रवृत्ता ।६८
गदासिखेटेषुधनूंषि बिभ्रती व्यूहोपबद्धा च चमूः प्रकृष्टा
सा राक्षसेन्द्रस्य शशाक सोढुं शिलाप्रहारं नहि वानराणाम् ।६९
पतत्सु वाणेषु विधाय मार्गं प्रक्षेपसंयोजनयोश्च मध्ये
उत्प्लुत्य सम्यग् विनिपातितास्तैः द्रुमाःशिलास्तेषु वलीमुखैश्च ७०
क्षणंप्रणष्टाश्वगजादिसेनां विलोक्य शक्रारिसुतस्तदानीम्
प्रख्यातवीर्यस्तरसाऽभियोद्धुं स मेघनादः सहसाऽभ्यगच्छत् ।७१

उस समय सीता को रोती हुई छोड़कर, प्रहस्त सन्देश के वशवर्ती उस राक्षसराज के चले जाने पर त्रिजटा ने किसी प्रकार सीता को सान्त्वना प्रदान की ।।६६।। मृत आकृति विवर्ण हो जाती हैं, देखो राम का सिर वैसा नहीं है, पुत्रि इसे माया जानकर धैर्य धारण करो, यह शोक का समय नहीं है ऐसा सीता से त्रिजटा ने कहा ।।६७।। इसी बीच जयाभिलाषी युद्धोत्सुक वानरों की वह सेना राम की जय हो ऐसी घोषणाकर रणाग्नि में राक्षसों का होम करने में प्रवृत्त हो गयी ।।६८।। गदा, तलवार खेट, बाण धनुष को धारण किये हुई व्यूह बद्ध राक्षसराज की वह उत्कृष्ट सेना वानरों के शिलाप्रहार को सहने में समर्थ नहीं हुई ।।६९।। गिरते हुए वाणों में, उनके संयोग और विक्षेप के बीच, मार्ग बनाकर वानरों ने कूद-कूद कर उन राक्षसों पर वृक्ष-पर्वत फेंके ।।७०।। क्षण में ही अश्व गज आदि सेना को नष्ट हुई देखकर, प्रथित पराक्रम, शक्रशत्रु, रावणपुत्र, मेघनाद सहसा युद्ध के लिए तेजी से आ गया ।।७१।।

वीरः पदातिं रथिनं गजस्थं स्वीयं स रक्षन्कृतवाणवर्षः
न विद्रुतानेव हरींश्चकार संत्याजयामास च तैर्जयाशाम् ।७२।

तद्वाणवर्षाऽर्णवसम्प्लवे सा वरूथिनी वानरभल्लुकानाम्
भृशं ब्रुडन्ती विवशं निरैक्षत सहानुजं राममसौ तदानीम् ।७३।

निरीक्ष्य रामं सहलक्ष्मणं च क्रुद्धः स वृद्धश्रवसो विजेता
आयोधनानन्तरमेव तूर्णं तौ नागपाशेन दृढं बबन्ध ।७४।

अस्तं प्रयाते दिवसाधिनाथे शोकं गते वानरसैन्यपद्मे
स्वपक्षहृत्कैरवमुत्प्रदाता लङ्काशशाङ्कः सहसा विरेजे ।७५।

तौ भ्रातरौ वीक्ष्य तदा मुमूर्षू चमूः कपीनाञ्च शुगब्धिमग्ना
अन्वेष्टुमारब्धवती तदानीं दुःखाब्धिपोतं पवनात्मजं सा ।७६।

अपास्तधैर्या निरुपायदीनाः विस्मारितस्वीयजयाभिलाषाः
यावद् बभूवुर्ददृशुः प्लवङ्गास्तदाञ्जनेयं गरुडेन साकम् ।७७।

वाणवर्षा कर अपनी पैदल, रथ और गज सेना की रक्षा करते हुए उस वीर ने न केवल उन वानरों को भगा ही दिया प्रत्युत उनमें जय की आशा को भी भगा दिया ।।७२।। उसकी वाणवर्षा रूपी जल की बाढ़ में अत्यन्त डूबती हुई वह वानर भालुओं की सेना ने उस समय अनुज समेत विवश राम की ओर देखा ।।७३।। लक्ष्मण समेत राम को देखकर क्रुद्ध वह इन्द्रजयी युद्ध के अनन्तर शीघ्र ही दोनों को नागपाँश से बाँध लिया ।।७४।। दिननाथ के अस्त हो जाने पर वानरसेना रूपी कमल के शोकप्राप्त हो जाने पर अपने पक्ष के हृदयरूपी कुमुद के आनन्द प्रदाता लङ्का मृगाङ्क (लङ्काकलङ्क विभीषण) सहसा सुशोभित हुए ।।७५।। उस समय उन दोनों भाइयों को मुमूर्षु देखकर शोक समुद्र में डूबी हुई वानरसेना दुःख समुद्र की जहाज पवनपुत्र को खोजने में लग गई ।७६। धैर्यशून्य, निरुपाय-दीन तथा अपने जय की आशा को वानर भुला ही गये थे कि तब तक उन्होंने ने गरुड के साथ हनुमान् को देखा ।।७७।

आनीय सद्यः किमु वैनतेयं न त्रीणि कर्माणि ससाध कीशः
तौ पाशमुक्तौ कपयः प्रहृष्टा लङ्का प्रमोदोपलसन्निपातः ।७८।

तस्मिन् समीके पवनात्मजेन हतश्च धूम्राक्षपदाभिधेयः
प्रकम्पकोऽह्नाय मनोऽमराणामकम्पनश्चापि हतोमुनैव ।७९।

तत्राङ्गदेनाशु च वज्रदंष्ट्रं नीलेन दृष्ट्वा च हतं प्रहस्तम्
प्रबोधयामास दशाननोऽपि निजानुजं संयति लब्धकीर्तिम् ।८०।

उत्थापितस्तत्र स कुम्भकर्णो ज्ञात्वा समस्तं रणवृत्तमारात्
तं रावणं स्वीयहृदा विनिन्दन् जेतुं प्रसह्यानुजगाम रामम् ।८१

संवीक्ष्य तत्रापि विभीषणं स निजानुजं रामपदानुरक्तम्
ययौ न कोपं परिणामबुद्ध्या परं हरीणां कदने प्रवृत्तः ।८२।

एकान्तशूरं सकलैरधृष्यं निवारयन् वानरसैन्यनाशात्
असत्पथाऽऽसक्तिविनष्टवीर्यं रामो जगामाशु चरित्रपूतः ।८३।

गरुड़ को तुरन्त लाकर हनुमान् ने तीन कार्य सिद्ध नहीं किया क्या ? वे दोनों भाई पाशमुक्त हुए, वानर प्रसन्न हुए और लंका के हर्ष पर बज्रसन्निपात हुआ ।।७८।। उस युद्ध में हनुमान् ने धूम्राक्षनामक राक्षस को मारा, देवताओं के मन को शीघ्रकम्पित करने वाला अकम्पन भी इन्हीं से मारा गया ।। ७९।। उस युद्ध में अङ्गद द्वारा बज्रदंष्ट्र तथा नील द्वारा प्रहस्त को निहत देखकर, दशमुख ने भी युद्ध में ख्यातिप्राप्त अपने छोटे भाई कुम्भकर्ण को जगाया ।।८०।। जगाया गया कुम्भकर्ण सारे युद्ध वृत्तान्त को सुनकर रावण की अपने हृदय से निन्दा करता हुआ शीघ्र ही राम को जीतने के लिए हठात् चला ।।८१।। वहीं उसने राम-पादानुरक्त अपने छोटे भाई विभीषण को देखकर, परिणाम सोचकर कोपाकुल नहीं हुआ किन्तु वानरों के नाश में लग गया ।।८२।। एकान्त शूर, सबों से अप्रधृष्य, कुमार्गासक्ति से निर्वीर्य उसे वानरों की सेना के नाश से रोकते हुए चरित पवित्र राम, उसके पास पहुँचे ।।८३।।

उच्छ्रायविस्तारवशान्महाद्रोः शोभां दधानोऽसुरविष्किरी सः
रामाशुगावर्तविभीषणायां युद्धस्रवन्त्यां सहसा ममज्ज ।८४।

तत्राङ्गदेनाशु नरान्तको हतो नीलेन नष्टश्च महोदरोऽपि
हनूमता रामकृपाबलेन देवान्तकश्च त्रिशिरा विनष्टौ ।८५।

हतो महापार्श्व इहाभिमानी तत्रर्षभेणाऽऽशुगयुद्धविज्ञः
तथातिकायोऽपि गतो विनाशं दग्धो रणे लक्ष्मणकोपवह्नौ ८६

समं प्रजङ्घेन हतोऽङ्गदेन स कम्पनः कम्पितदेवसङ्घः
पुरीञ्च याम्यां द्विविदोऽपि तूर्णं सम्प्रेषयामास च शोणिताक्षम् ८७

मैन्दस्तु यूपाक्षमनुक्रमेण सुग्रीव एवं हतवांश्च कुम्भम्
पुनर्हनूमान् हतवान्निकुम्भं हन्तिस्म रामो मकराक्षमाशु ।८८।

दृष्ट्वा निपातं निजनायकानां हन्तुं समुत्साहममित्रकाणाम्
मायाविदग्रेसरतां प्रयातो मान्दोदरेयः सहसाऽऽजगाम ।८९।

ऊँचाई और फैलाव के कारण महावृक्ष की शोभा धारण करने वाला वह असुरद्रुम राम के बाणों की भीषण आवर्तवाली युद्ध नदी में सहसा डूब गया ।।८४।। उसमें अंगद ने शीघ्र ही नरान्तक को मार डाला, नील ने महोदर को मारा, रामकृपा के बल से युक्त हनुमान् ने देवान्तक और त्रिशिरा का वध किया ।।८५।। बाणयुद्धविद् अभिमानी महापार्श्व ऋषभ से मारा गया और अतिकाय भी युद्ध में लक्ष्मण की क्रोधाग्नि में जल कर विनाश को प्राप्त हुआ ।८६।। अङ्गद ने प्रजङ्घ के साथ ही देवसमूह को कंपाने वाले कम्पन को मार डाला। द्विविद ने भी शीघ्र ही शोणिताक्ष को यमनगरी भेज दिया ।।८७।। मैन्द ने यूपाक्ष को और इसी प्रकार अनुक्रम से सुग्रीव ने कुम्भ को मार डाला। फिर हनुमान् ने निकुम्भ को और राम ने शीघ्र ही मकराक्ष को मारा ।।८८।। अपने नायकों का विनाश देखकर, शत्रुओं का उत्साह भङ्ग करने के लिए मायाविदों में अग्रणी मन्दोदरी पुत्र मेघनाद सहसा आ गया ।।८९।।

स्वमाययोद्भाव्य विदेहपुत्रीमादाय केशेषु च ताडयन्ताम्
मृगीमिवाश्रूणि निपातयन्तीमानीय रामस्य पुरो जघान ।९०।
अकालझञ्झाकरकावपाताद् भग्नानि सस्यानि यथा भवन्ति
फुल्लानि रामीयमनांसि तद्वत् खिन्नानि मायावशतो बभूवुः ९१
विनष्टवीर्यान् सकलान् विलोक्य विभीषणस्तत्क्षणमेवमूचे
यदर्थमेतत्प्रधनं प्रवृत्तं स्प्रष्टा कदाचिन्नहि रावणिस्ताम् ।९२।
एषाऽस्ति मायेन्द्रजिता प्रयुक्ता व्यनक्ति शत्रोश्च मनःस्थितिं या।
जाज्वल्यमानाश्च यथा भवन्ति शिखाः प्रदीपस्य विनाशकाले ९३
विहाय चिन्तामवलम्ब्य धैर्यं युद्धाय तूर्णञ्च भवन्तु सज्जाः
नोपेक्षणीयं क्षणमात्रमस्मिन् युद्धे जयाकांक्षिजनैः कदाचित् ९४
यथोष्णरश्मेः समवाप्य तापं पुनः प्ररोहन्त्युपलेन छिन्नाः
अवाप्य वैभीषणवाक्यतापं तद्वत्प्ररूढाश्च मुदः कपीनाम् ।९५।

अपनी माया से जानकी को उत्पन्न कर, बालों को पकड़कर उसे पीटता हुआ, हरिणी जैसी आँसू बहाती हुई उसे लाकर राम के सामने मार डाला ॥९०॥ अकाल तूफान से करकापात (बनौलियों के गिरने) से जैसे फसलें तहस-नहस हो जाती है उसी प्रकार प्रफुल्ल राम के सैनिकों के मन मायावश खिन्न हो गये ॥९१॥ सभी को हतपराक्रम देखकर उस समय विभीषण यों बोला कि जिस सीता के लिए यह युद्ध हो रहा है, उसे मेघनाद कदाचित् छू भी नहीं सकता ॥९२॥ यह मेघनाद प्रयुक्त माया है जो शत्रु की मनःस्थिति को व्यक्त करती है जैसे बुझने के समय दीप की लौ अधिक भभक उठती है (वैसे ही इसे भी समझो) ॥९३॥ चिन्ता को छोड़कर, धैर्य धारण कर आप सभी युद्ध के लिये तत्पर हो जाँय, युद्ध में विजयाभिलाषी लोगों को इस समय क्षण मात्र भी उपेक्षणीय नहीं है ॥९४॥ पत्थर या पाले से छिन्न पौधे आदि जैसे सूर्य की गर्मी पाकर पुनः उग या बढ़ जाते हैं उसी प्रकार विभीषण प्रोक्त वाक्यरूपी गर्मी से कपियों के उत्साह पुनः बढ़ गये ॥९५॥

तदा प्रवृत्ते तुमुलं नियुद्धे प्रद्रावमुत्सृज्य परस्परं ते
सेने कपीनामपि राक्षसानां स्वविक्रमं दर्शयितुं प्रवृत्ते ।९६।
ज्याघोषनिस्त्रिंशशरवानुयुक्ते युद्धे रजोभिर्गगनेऽवरुद्धे
द्वावेव दृष्टिश्रुतितां प्रयातौ क्ष्वेडा क्वचित् कुत्रचिदत्ययश्च ।९७
परस्परं लक्ष्मणमेघनादौ द्वावेव तत्राऽकुरुतां मृधं यत्
आसीन्न तन्निश्चयकारि नूनं स्वयं जयश्रीः कतरं वरीता ।९८।
तत्रेन्द्रजित् मायिजनाग्रगण्यो व्योम्निस्थितो नेत्रपथादतीतः
सहस्रतिग्मांशुमयूखकान्त्या शक्त्या जघानोरसि लक्ष्मणस्य ।९९
जाते सुमित्रातनये विसंज्ञे लङ्कां गते राक्षसराजसूनौ
तूर्णं तमः स्वीयपदं न्यधत्त तारापथे राममनोऽम्बरे च ।१००।
भ्रातुर्दशां वीक्ष्य रुदन् स रामश्चिन्ताद्वयासक्तमना: शुशोच
वक्ष्यामि किं तां विसुतां सुमित्रां का वा गतिः स्याच्च विभीषणस्य

तब घोर युद्ध शुरु हो जाने पर भगदड़ को छोड़कर वे दोनों वानरों और राक्षसों को सेनायें अपने पराक्रम को परस्पर दिखाने में लग गई ।।९६।। धनुष की प्रत्यञ्चा की टङ्कार तथा तलवार और बाणों की ध्वनि से युक्त उस युद्ध में आकाश के धूल से ढक जाने पर दो ही दिखाई सुनाई पड़ते थे कहीं सिंहगर्जना तो कहीं विनाश ।।९७।। वहाँ लक्ष्मण और मेघनाद ने परस्पर जो युद्ध किया निश्चय ही वह निर्णयकारी नहीं हो पा रहा था कि जयश्री किसे वरेगी ।।९८।। मायावियों में अग्रगण्य मेघनाद ने आँखों से ओझल होकर आकाश में अवस्थित होकर, हजारों सूर्यों की किरणों सी चमचमाती शक्ति से लक्ष्मण की छाती पर प्रहार कर दिया ९९। सुमित्रानन्दन के मूर्छित हो जाने पर, मेघनाद के लङ्का में चले जाने पर, शीघ्र ही अन्धकार ने तारपथ आकाश और राम के मन में अपना स्थान जमा लिया ।।१००।। भाई की दशा को देखकर, रोते हुए राम ने दो चिन्ताओं से सभाकुल मन सोचा – सुतविहीन उस सुमित्रा से क्या कहूँगा और विभीषण की क्या दशा होगी ? ।।१०१।।

न जीवितास्म्यत्र विनानुजं तं त्यक्तं मदर्थं स्वसुखञ्च येन
एवं वदन्तं परिवीक्ष्य रामं सेना कपीनां व्यथिता बभूव ।१०२।
ऊचे तदा वानरसैन्यवैद्यो वृद्धः सुषेणो निपुणं परीक्ष्य
सञ्जीवनीयोगमयं निशायां लभेत चेदस्य न मृत्युकालः ।१०३।
कालः पुनः स्वल्प इहास्ति नूनं दिव्यौषधिः सा च पुनः सुदूरे
को वाऽभिगन्ता विधिना परीक्ष्य नेता हिमाद्रेरथवा पुनस्ताम् १०४
यावत्तदा जाम्बवता हनूमान् निरीक्षितः स्यात्स गतो विहायः
द्रोणाद्रिकूटेन समं पुनः स ब्रध्नोदयात्प्राक् समुपाजगाम ।१०५
अन्विष्य तस्मिन् समयोपयुक्तां सञ्जीवनीं वैद्यवरः प्रयुङ्क्ते
मूर्च्छां जहात्यातुर एव यावद्धनूमता प्रापितमद्रिकूटम् ।१०६
शाखामृगाणाञ्च ततश्चमूः सा सोल्लासमुक्त्वा जयशब्दमारात्
विभीषणोक्तीरनुसृत्य सद्यो जगाम यत्रेन्द्रजितो निवासः ।१०७।

जिसने मेरे लिए प्राण तक त्याग दिये उस प्रिय भाई के बिना मैं जी नहीं सकता, ऐसा कहते हुए राम को देखकर वानर सेना व्यथित हो गई ॥१०२॥ वानर सेना के चिकित्सक वृद्ध सुषेण ने उस समय लखन की सम्यक् जाँचकर कहा कि रात्रि में यह यदि संजीवनी ओषधि का योग प्राप्त कर लें तो मृत्यु का अवसर नहीं मिलेगा ॥१०३॥ निश्चय ही समय बहुत कम है और वह दिव्यौषधि भी बहुत दूर है, कौन जायेगा? अथवा भलिभाँति पहचान कर उसे हिमालय से कौन लायेगा ॥१०४॥ जब तक हनुमान् जाम्बवान् से देखे जाँय तबतक तो वह आकाश मार्ग से जा चुके थे और फिर द्रोणपर्वत शिखर के साथ वह सूर्योदय से पहले ही आ गये ॥१०५॥ उसमें से खोजकर समयोपयुक्त सञ्जीवनी को जब तक भिषक्वर सुषेण प्रयोग करें और पीड़ित लक्ष्मण मूर्छा त्यागें तब तक हनुमान् उस पर्वत को पुनः वहाँ छोड़ आये ॥१०६॥ इसके बाद वानरों की वह सेना सोल्लास जयशब्द करती हुई, विभीषण की बातों का अनुसरण कर शीघ्र ही वहाँ गयी जहाँ इन्द्रजित् का निवास था १०७

सन्नक्षतः शत्रुविनाशनार्थं निकुम्भिलां पूजयितुं प्रवृत्तम्
विलोक्य तत्रेन्द्रजितं हनूमान् कपीन् मखं ध्वंसयितुं दिदेश ।१०८
क्रुद्धो मखध्वंसनतः स वीरो दृष्ट्वाऽरिवृन्दे च निजं पितृव्यम्
जघान शक्त्या च जवेन येन तां लक्ष्मणस्तेन तथा चखण्डे १०६
अप्राप्तशक्तेर्भविता जयो न तथापि युद्धे तरसा प्रवृत्तः
निरुद्धवीर्यः सहसा रणेऽस्मिन् स इन्द्रजित् प्राप पदं यमस्य ११०
निशम्य पुत्रस्य वधं तदार्ता मन्दोदरी राक्षसराजपत्नी
गत्वा पतिं सा रुदती बभाषे हतः सुतो माञ्च हतात्त्वमेव १११
दिवंगतायां मयि सन् स्वतन्त्रो भुङ्क्ष्वेह राज्यं स्वजनैर्विहीनम्
सीता कथञ्चिद् भविता न लभ्या लङ्का विनष्टा स्वहठात्त्वयैव
श्रुत्वा प्रियावाक्यमरुन्तुदंतत् स रावणस्तां समुवाच धीरः
लङ्कापतिर्लब्धपराजयोऽपि वरं न सङ्ग्रामपराङ्मुखीनः ११३

वहाँ अक्षत होकर मेघनाद को शत्रु विनाशार्थ निकुम्भिला की पूजा कर लगाने में हुआ देखकर हनुमान् ने यज्ञविध्वंस करने के लिये वानरों को आदेश दिया ॥१०८॥ यज्ञविध्वंस से क्रुद्ध वह वीर अपने चाचा विभीषण को शत्रुवर्ग में देखकर जिस शक्ति से वेगपूर्वक मारा लक्ष्मण ने उसे उसी प्रकार तेजी से खण्डित कर दिया ॥१०६॥ शक्ति प्राप्ति के बिना जय नहीं होगी यह जानकर भी वह वेग से युद्ध में लग गया और इस युद्ध में अवरुद्धपराक्रम वह इन्द्रजयी मेघनाद यमस्थान प्राप्त कर गया ॥११०॥ तब पुत्रवध सुनकर राक्षसेश की पत्नी दुःखी मन्दोदरी पति के पास जाकर रोती हुई बोली मेरा पुत्र मारा, मुझे भी तुम मार डालो ॥१११॥ मेरे मर जाने पर तुम स्वतन्त्र होकर अपनों से विहीन यहाँ राज्य का भोग करो। सीता तो किसी भी प्रकार मिलेगी नहीं किन्तु तुमने अपने हठ से यह लङ्का तो नष्ट ही कर दी ॥११२॥ पत्नी के उस मर्मवेधी वचन को सुनकर वह धीर रावण उससे बोला लङ्कापति पराजय प्राप्त भी कर लें पर सङ्ग्राम से विमुख होना उत्तम नहीं ॥११३॥

दैत्या मनुष्या अथवा दिविस्थाः हन्तुं समर्थामिलिताः समे न
बिभेमि नित्यं स्वकृतापराधाज् जातादुपेक्षावशतो ह्यतीते ११४
प्रतोषितौ सृष्टिविनाशकारकौ न तोषितः संस्थितिकारकः प्रभुः
विनाशकर्तृ ष्वपि नाभिपूजितः शिरोऽर्पणेनान्तिम एव शङ्करः ११५
तत्पङ्क्तिभेदाख्यविशेषपापं व्याजं विधायैव निरस्तवीर्याः
त्रिदेवसाहाय्यमपेक्ष्य देवा मां हन्तुमुत्का मयि दुष्टभावाः ११६
नूनं न नाशो भविता ममाऽयं पराजिताद् दण्डधरात् कदाचित्
तदर्थमायास्यति विष्णुरेव तदा कथं स्यात् परिदेवना मे ११७
मृत्युर्ध्रुवं जन्मगतस्य जन्तोर्न तत्र चिन्ता बुधसंस्तुताऽस्ति
वरेण्यमृत्युश्च यतः समीहे योत्स्ये सदैकाकिकतां गतोऽपि ११८
असंशयं मे भविता विनाशो रामो यदि स्यात् स्वयमेव विष्णुः
विपर्यये राममहं निहन्मि सीता ममेयं भविता च भूयः ।११९।

राक्षस, मनुष्य या देवता सभी मिलकर भी मुझे मारने में समर्थ नहीं हैं किन्तु भूतकाल में उपेक्षावश हुए स्वकृत अपराध से नित्य डरता रहता हूं ।।११४।। मैंने सृष्टिकर्ता ब्रह्मा और विनाशकर्ता शिव को तो सन्तुष्ट किया किन्तु स्थितिकर्ता प्रभु विष्णु को सन्तुष्ट नहीं किया और विनाशकारियों में भी अन्तिम शंकर की, शिरप्रदान से भी, संतुष्टि पूजन नहीं किया ।।११५।। इसलिये पंक्तिभेदरूप विशेष पाप को बहाना बनाकर, निर्वीय मेरे ऊपर दुष्टभाव रखने वाले, देवगण त्रिदेवों की सहायता की अपेक्षा से मुझे मारने को उत्सुक हैं ।।११६।। दण्डधारी राम से कदाचित् पराजित होने पर भी निश्चय है मेरा नाश नहीं होगा क्योंकि उसके लिये विष्णु ही आयेंगे फिर तो मुझे क्यों कष्ट होगा ? ।।११७।। जन्म प्राप्त प्राणी की मृत्यु सुनिश्चित है इसलिये उसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये, ऐसा विद्वान भी कहते हैं, क्योंकि मैं वरणीय मृत्यु चाहता हूँ इसलिये एकाकी होने पर भी मैं सदा लड़ता ही रहूँगा ।।११८।। राम यदि स्वयं विष्णु हैं तब तो मेरी मृत्यु सुनिश्चित है । इसके विपरित, मैं राम को मार डालूँगा और यह सीता फिर मेरी होगी ।।११९।।

ज्ञात्वा विरूपाक्षमपि प्रणष्टं स्वपौरुषाश्वस्तमतिः स शूरः
ययौ समीके प्रतिकर्तुमिष्टं रथं समारुह्य निरस्तचिन्तः ।१२०।
ततः प्रवृत्तं रणरङ्गकर्म कृता च नान्दीपटहस्वरेण
बलीयसा कालमहाशयेन व्यधायि सत्सूत्रधृतश्च कृत्यम् ।१२१
इतस्ततस्तत्र लुठत्कबन्धैर्लुठत्शिरोभिः कपिराक्षसानाम्
रणक्षितिर्दारुणतां प्रयाता शस्त्रैः शिलाभिर्बहुभिर्द्रुखण्डैः ।१२२।
शिरांसि यस्मिन् चषका बभूवुः सुरा च सैन्यक्षतजं समीके
आपानगोष्ठी रणभूमिरेव पाता बभूव स्वयमेव कालः ।१२३।
कृतेऽपि यत्ने बहुशस्तदानीं गण्या क्षतिस्तत्र मृधे न जाता
दातुं विरामं यत एव भास्वानस्ताचलं गन्तुमना बभूव ।१२४।
दैवात्तदानीमसुरेण दृष्टं विभीषणं तत्पुरतोऽपकृष्य
क्षिप्तां तदानेन विहन्तुमेनं शक्तिं स रामोऽप्युरसा विषेहे १२५

विरूपाक्ष को भी निहत जानकर अपने पौरूष पर आश्वस्तबुद्धि, निश्चिन्त वह बहादुर रथारूढ़ होकर प्रतीकार के लिये युद्ध में गया ॥१२०॥ इसके बाद रणरङ्ग कर्म प्रारम्भ हुआ, नगाड़े की ध्वनि ने नान्दी की, और बलवान् कालमहाशय ने अच्छे सूत्रधार की भूमिका निभायी ॥१२१॥ युद्ध में वानरों और राक्षसों के इधर-उधर गिर रहे कबन्धों और लुण्ठित हो रहे शिरों से रणभूमि भीषण हो उठी जिसमें शस्त्र, पत्थर और वृक्षखण्डों की भरमार थी ॥ २२॥ रणभूमि पान गोष्ठी बन गयी जिसमें शिर चषक (प्याले) बन गये, युद्ध में सैनिकों के रक्त आसव बने और पानकर्ता स्वयं काल बना ॥१२३॥ उस समय युद्ध में ढेर प्रयासों के बावजूद भी क्षति का अन्दाजा लग पाना संभव नहीं रहा मानो इसलिये विराम देने के लिये भगवान् सूर्य ने अस्ताचल की ओर जाने का मन कर लिया ॥१२४॥ दैववश उसी समय रावण ने विभीषण को देख लिया और उसे मारने के लिये शक्ति फेंकी किन्तु राम ने उसे आगे से खींचकर उस शक्तिको अपनी छाती पर झेल लिया १२५

अनन्तरं दाशरथिः क्षणेन धारानिपातैरिह सायकानाम्
तं रावणं स्यन्दनमध्य एव संपात्य संज्ञारहितं चकार ।१२६।
ततो रजन्यां कपियूथपानां प्रवर्तितायां रणनीतिगोष्ठ्याम्
कथं हतः स्यादिह रावणोऽयं निरूपयामास विधिं विभीषणः
विनिश्चितं तत्र पुनः प्रभाते संजायमाने च रणे प्लवङ्गाः
रक्षन्त आरात् परितश्च रामं तं रावणं व्यग्रतमं च कुर्युः १२८
विधाय रात्रौ निजकर्मयावद् रघूद्वहः स्वस्थमना बभूव
तावद् विवस्वानिव सुप्रभाते महानगस्त्यः समुपाजगाम ।१२९।
यथातुरः पश्यति वैद्यवर्यं सांयात्रिकः कांक्षति नाविकञ्च
युद्धाब्धिमध्ये श्लथनावि तिष्ठन् रामो ददर्शात्महितं मुनीशम्
विधाय तस्यापचितिं महर्षेर्वीरोत्तमे तिष्ठति रामभद्रे
स आर्यनीतेः परिपोषकस्तं रामं जगादाशु महानगस्त्यः ।१३१

इसके बाद राम ने बाणों की सततवर्षा से उस रावण को रथ में ही गिराकर चेतनाशून्य कर दिया ॥१२६॥ फिर रात में कपियूथपों की हो रही रणनीति विषयक गोष्ठी में विभीषण ने बताया कि युद्ध में यह रावण कैसे मारा जाय ? ॥१२७॥ निश्चय हुआ कि प्रातः काल युद्ध के पुनः प्रारम्भ हो जाने पर चारों ओर से राम की समीप से रक्षा करते हुए वानर उस रावण को अत्यन्त व्यग्र कर दें ॥१२८॥ रात्रि में अपनी सायंकालीन विधि को समाप्त कर राम ज्यों ही स्वस्थमन हुए कि प्रभात काल में सूर्य के समान तभी महान् अगस्त्य ऋषि उनके पास आये ॥१२९॥ जैसे रोगी योग्य चिकित्सक को देखता है और नावारूढ नाविक को देखते हैं उसी प्रकार युद्ध समुद्र में जर्जरनाव पर बैठे राम ने आत्महितैषी उन मुनिवर को देखा ॥१३०॥ उन महर्षि की पूजा कर वीरोत्तम रामभद्र के बैठ जाने पर, आर्यनीति के परिपोषक उन महान् अगस्त्य ने शीघ्र ही राम से कहा ॥१३१॥

स्वस्मिन् बलं धार्यमलं नियुद्धे दैवं तथा भौतिकमेव राम
अतो जयार्थं प्रददामि गुह्यामादित्यविद्यामविलम्बमेव ।१३२।
अर्द्धोदितेऽर्के तदनन्तरं स रामोऽरुणं जेतुमनाः प्रपूज्य
सव्येतराक्षणः स्फुरणेन सत्रा जगाम योद्धुं त्रिदशांश्च नत्वा
लब्ध्वा निशान्ते त्रिदशेशजेता संज्ञां विनिन्दन्निजसारथिं सः
जगाम योद्धुं तरसा मनस्वी धारासहिष्णुश्च यथाद्रिकूटः १३४
तदा पदाक्रान्तभुजङ्गचेष्टं तं रावणं वीक्ष्य रथस्थमाशु
इन्द्रः समीकर्तुमनीकशक्तिं सम्प्रेषयामास रथं स्वकीयम् ।१३५।
चतुर्दशाब्दान्तमनेहसं स विचिन्त्य रामस्त्रिदशांश्च नत्वा
आरुह्य तं मातलिसम्प्रयुक्तं रथं गतो योद्धुमना मनस्वी १३६
दिव्यास्त्रयोगैकभुवि प्रकामं रणस्थलेऽन्योन्यजयेच्छया तौ
रात्रिन्दिवं विस्मृतदेहभावौ युद्धं तदा चक्रतुरप्रसह्यम् ।१३७।

हे राम युद्ध में भौतिक तथा दैवी बल अपने में धारण करना चाहिये इसलिये मैं तुम्हें विजय के लिये तुरन्त गुह्य, आदित्य विद्या, प्रदान करता हूँ ।.१३२ । इसके बाद अर्धोदित सूर्य के समय शत्रु को जीतने की इच्छा से उन राम ने अरुण सूर्य की विधिवत् पूजाकर, देवताओं को नमस्कार कर दाहिनी आँख की फड़कने के साथ युद्ध के लिये चले १३३ और इधर रात्रि के अवसान में चेतना प्राप्तकर रावण अपने सारथि की निन्दा करता हुआ, धारासहिष्णु पर्वतशिखर के समान वह मनस्वी युद्ध करने के लिये तेजी से गया ॥१३४॥ तब पैर से कुचले गये सर्प के समान चेष्टा युक्त उस रावण को रथारूढ़ देखकर इन्द्र ने रामसेना की शक्ति समान करने के लिये अपना रथ भेजा ॥१३५॥ वह राम चौदह वर्ष के अन्तदिवस का स्मरण कर, देवों को प्रणाम कर मातलि द्वारा हाँके जा रहे उस रथ पर चढ़कर, मनस्वी वह युद्ध के लिये गये ॥१३६। दिव्यास्त्र प्रयोग के एक मात्र स्थान युद्ध में वह दोनों देहभाव को भुलाकर एक दूसरे पर विजय की अभिलाषा से रात-दिन भयानक युद्ध करने लगे ॥१३७॥

मेघास्त्रमाजौ पवनास्त्रतश्च वायव्यमेवं पवनाश नेन
तार्क्ष्यास्त्रतस्तद् भुजगं निरस्य द्वन्द्वे प्रवृत्ताविह तौ प्रवीरौ १३८

एकाकितां यात इहाभियुद्धं शूरस्तदा विंशतिबाहुधारी
सर्वासु दिक्ष्वेवमुपस्थितः सन् दशाननत्वं समपादयत्सः ।१३९।

युद्धं तदा राघवरावणीयं प्रवर्तितं यत् परिवर्तितं तत्
अनन्वये तत्तदिवेति रूपं विज्ञेषु काव्यज्ञजनेषु नूनम् ।१४०।

मरुत्वतः सारथिरत्र मातलिः विचक्षणस्तं रथिनश्च रामम्
अगस्त्यसम्प्राप्तभिषुं प्रयोक्तुं प्रबोधयामास समीक्ष्य कालम् १४१

ततो वमद्वह्निकणेन शीघ्रं प्रदीप्तदिङ्मण्डलसायकेन
नत्वा स्मरारिं द्रुहिणञ्च रामः पैतामहेनाशु जघान शत्रुम् ।१४२

एकं ततो ज्योतिरमुष्य दीप्तं निस्सृत्य रक्षोधिपतेः शरीरात्
यावद् विलीनं रघुनाथकाये तावद् वपुस्तस्य पपात भूमौ १४३

युद्ध में मेघास्त्र, पवनास्त्र, वायव्यास्त्र, भुजगास्त्र और फिर गरुडास्त्र से सापों का संहार कर इस प्रकार वे दोनों वीर द्वन्द्व युद्ध में प्रवृत्त हो गये ॥१३८॥ इस प्रकार जब एकाकी युद्ध होने लगा तो पराक्रमी बीस भुजाधारी रावण सभी दिशाओं में उपस्थित होकर उसने दशाननत्व का प्रतिपादन किया ॥१३९॥ राम और रावण का उस समय जो युद्ध हुआ वही परिवर्तित होकर अनन्वय के रूप में, वह उसी के समान है' विज्ञों और काव्यज्ञों में प्रार्थित हुआ ॥१४०॥ इन्द्र सारथी चतुर मातलि ने उन रथी राम को उपयुक्त समय देखकर अगस्त्य से प्राप्त बाण का प्रयोग करने के लिये, प्रबोधित किया ॥१४१॥ तब राम ने शीघ्र ही शिव और ब्रह्मा को प्रणाम कर निकलते अग्निस्फुलिङ्गोंवाले, दहकातेदिङ्मण्डल वाले बाण ब्रह्मास्त्र से शत्रु पर प्रहार किया ॥१४२॥ तब उस राक्षसराज के शरीर से निकल कर एक प्रकाशित ज्योति ज्यों ही श्रीराम के शरीर में प्रविष्ट हुई त्यों ही उसका शरीर धरती पर गिर गया ॥१४३॥

भ्रातुः स्वभावेन समं स्वकृत्यं तथा दशग्रीववधं निदाने
विलोक्य नेत्रे च विभीषणस्य बभूवतुः प्रावृषि मेघमाले ।१४४।

मन्दोदरी चापि वधं निशम्य राज्ञस्त्रिलोकीजयिनः स्वभर्तुः
सम्प्राप्य संग्रामभुवं गतासुं विलोक्य चुक्रोश मृगीव विद्धा १४५

तौ सान्त्वयित्वा प्रसभं स राम: संश्राव्य नीतिं करणीयमन्ते
विभीषणं दैत्यपतिं विधातुं निजानुजं तत्र समादिदेश १४६।

अनन्तरं प्राप्य च राघवाज्ञां मन्दोदरीसंस्कृतरूपराशिम्
आस्थाप्य सीतां शिविकान्तराले विभीषणः प्रापयदत्र रामम्

शस्तं न चात्मीयजनेषु कुड्यं सीता स्वपद्भ्यां नियतं प्रयातु
इत्येवमुक्त्वा कठिनो मृदुश्च सीतां स सर्वाक्षिगतांचकार १४८

अनन्तरं तां मिथिलेशपुत्रीं पत्युः पदं स्प्रष्टुमथोत्सुकां सः
निरुध्य वह्नौ च परीक्षितुं तामादिश्य सर्वान् विकलांश्चकार १४९

उस समय भाई के स्वभाव के साथ अपने कृत्य और निदान में रावण वध को देखकर विभीषण को आँखें वर्षात की मेघमालायें बन गयी झर-झर बहने लगी ॥१४४॥ मन्दोदरी भी त्रिलोकजयी, राजा अपने पति रावण का वध सुनकर रणभूमि में पहुँचकर निष्प्राण उसे देखकर मारी गई मृगी के समान चीत्कार कर उठी ॥१४५॥ राम ने उन दोनों को भलिभाँति सान्त्वना देकर अन्त में करणीय नीति को सुनाकर विभीषण को राक्षसराज बनाने के लिये अपने अनुज लक्ष्मण को आदेश दिया ॥१४६॥ इसके बाद राम की आज्ञा प्राप्तकर, मन्दोदरी से अलङ्कृत रूपराशि सीता को शिविका में बिठाकर विभीषण ने राम के पास पहुँचाया ॥ ४७॥ आत्मीय लोगों से अवरोध पर्दा ठीक नहीं है, सीता अपने पैरों से चले, इस प्रकार कहकर कठोर-मृदु राम ने सीता को सभी के नेत्रपथ में ले आये ।।१४८॥ फिर पति के पाँव को स्पर्श करने के लिये उत्सुक जानकी को रोककर उन्हें वह्निपरीक्षा का आदेश देकर राम ने सभी को विकल कर दिया ॥ ४९॥

ततोऽग्निपुञ्जात्तरसाग्निदेवः सीतां समादाय बहिर्गतः सन्
उद्घोष्य पावित्र्यमलं तदानीं रामाय सीताञ्च समर्पयत् सः
देवानामयशस्करान् यमगृहं सम्प्रेष्य सर्वासुरान्
रक्षोनाथविभीषणस्य वचसा भङ्क्त्वा च सेतुं नवम्
आदेशात्स्वपितुश्चतुर्दशसमाः कृत्वा निवासं वने
सीता लक्ष्मणवानरादिसहितोऽयोध्यां प्रतस्थे प्रभुः ।१५१।
श्रीश्यामान्वितसुन्दरोऽस्ति जनको माता च यस्याम्बिका
यः श्रीराजकिशोर आप्तचरितः शाण्डिल्यवंशोद्भवः
यातस्तस्य चतुर्दशः रघुवरानुक्रोशतोऽस्मिन् महा-
काव्ये चारुणि राघवेन्द्रचरिते सर्गः बुधप्रीतिदः

इसके बाद सीता को लेकर अग्निपुञ्ज से बाहर आये हुए अग्निदेव ने सीता को पूर्ण पवित्र घोषित कर स्वयं सीता को समर्पित किया ॥१५०॥ देवताओं के अयशकारी सारे राक्षसों को यमभवन भेजकर, राक्षसराज विभीषण के कथन पर नये सेतु को तोड़कर, अपने पिता के आदेश से चौदह वर्ष वन में निवास कर भगवान् राम ने सीता लक्ष्मण वानरों आदि के साथ अयोध्या की ओर प्रस्थान किया ॥१५१॥ जिनके पिता श्रीश्यामसुन्दर और माता अम्बिका है, शाण्डिल्य गोत्रोत्पन्न आप्तचरित जो श्रीराजकिशोर हैं, राघव राम की कृपा से उनके द्वारा रचित सुन्दर इस राघवेन्द्रचरित महाकाव्य में विद्वानों को सुख प्रदान करने वाला चौदहवाँ सर्ग पूर्ण हुआ ॥१५२॥

पञ्चदशः सर्गः

आरुह्य पुष्पकविमानमनन्तकक्षां
यातः समाप्तवनवासजदुःखराशिः
सीतावियोगविकलाक्षिनिरीक्षितानि
स्थानानि तान्युपरितश्च ददर्श रामः ।१।

मध्येक्षिति प्रविलसन्तमनन्तभङ्गं
वारांनिधिं शकलिसंकुलमभ्रनीलम्
दृष्ट्वा स्वकोपसमयेऽब्धिकृतं स कम्पं
स्मृत्वा बभूव मृदुहासमनोरमास्यः ।२।

शब्देन्धनेन परिचालितयानरूढो
मेघाध्वना द्रुततरं स्वगृहं यियासुः
नीचैः स्वकीयकरपूजितलिङ्गरूपं
स व्यस्मरत् पशुपतिं न तदा प्रणन्तुम् ।३।

वनवासजनित दुःख समूह जिनके समाप्त हो गये हैं ऐसे राम पुष्पक विमान पर चढ़कर, आकाश में पहुँचकर सीता विरह में व्यथित आँखों से देखे गये उन स्थानों को ऊपर से देखा ॥१॥ धरती के मध्य शोभायमान, अनन्त तरङ्गों वाले, मछलियों से भरे, मेघश्याम समुद्र को देखकर, अपने क्रोध के समय समुद्रकृत उस कम्पन का स्मरण कर राम मधुर मुस्कान से मनोरम मुखवाले हो गये ॥२॥ शब्द स्वरूप ईंधन से परिचालित पुष्पक यान पर आरूढ़ मेघपथ से अतिशीघ्र अपने घर गमनेच्छु राम नीचे अपने ही हाथ से पूजित लिङ्गरूप श्रीरामेश्वर को प्रणाम करना नहीं भूले ॥३॥

आराधनाय ननु भारतमूर्तिशम्भो-
र्देव्या समस्तजगतः स्थितिकृत्प्रकृत्या
पादार्पितां स्रजमिवेह विलोक्य कृष्णां
दिव्यां पवित्रसरितं प्रणनाम रामः ।४।

दृष्ट्वा ततोऽन्यसरितं शरदभ्रलेखां
पूज्यं हि सर्वमितिबुद्धिवशात् स ऊचे
रामो हि लब्धविजयः कृपया भवत्याः
कावेरि हस्तयुगलं मुकुलीकरोति ।५।

गोदावरीसलिलसम्भृतमण्डनश्रीः
दृष्टैव रामहृदि पञ्चवटी तदानीम्
पूर्वं प्रमुत्तदनु भाग्यविडम्बनेत्थं
भावद्वयञ्च सहसा जनयाञ्चकार ।६।

विन्ध्याङ्क एव शिशुवत्सततं लुठन्तीं
श्वेतोपलेषुनियतं परितो भ्रमन्तीम्
दृष्ट्वा स मेकलसुतां परिपूतकायां
रामः प्रसन्नसलिलां मनसा ननाम ।७।

समस्त संसार की स्थितिकारिणी प्रकृति देवी द्वारा पूजा के लिये भारत मूर्ति स्वरूप शङ्कर के पैरों पर अर्पित माला जैसी दिव्य पवित्र नदी कृष्णा को राम ने प्रणाम किया ॥४॥ इसके अनन्तर शरत्कालीन मेघच्छटा सी दूसरी नदी को देखकर, सभी पूज्य हैं, इस विचार से वह बोले—हे कावेरि ! आपकी कृपा से प्राप्त विजय राम अपने दोनों हाथ जोड़कर आपको प्रणाम करता है ॥५॥ गोदावरी के जल से समुत्पन्न अलङ्कार सुषमा मण्डित दिखी पञ्चवटी उस समय राम के हृदय में सहसा दो भावों को जगायी—पहले प्रकृष्ट आनन्द और फिर (सीता हरणादिरूप) ऐसी विडम्बना ॥६॥ विन्ध्य की ही गोंद में शिशु जैसी इठलाती हुई, चारों ओर सफेद पत्थरों-पहाड़ों पर घूमती हुई, पवित्र-स्वरूप स्वच्छसलिला मेकलपुत्री, ~~गोदावरी~~, को राम ने मन से प्रणाम किया ॥७॥
नर्मदा

विन्ध्यादिकूटनिकरेषु विचित्रकूटं
शक्तिप्रदं वपुषि चेतसि चित्रकूटम्
दृष्ट्वा प्रणम्य मनसाऽत्रिमुनिं स रामो
यानान्नमन्नवततार मुदा प्रयागम् ।८।

स्वत्वं विलाप्य यमुनार्कसुता यदीये
क्षेत्रे हठान्मिलति जह्नुसुतां सगर्वाम्
तस्मिन्समस्तदुरितौघविनाशनार्थं
स्नात्वा प्रदाय सलिलं स पितॄनतार्प्सीत् ।९।

दीर्घावधिं स्वविरहेण निरस्तसौख्यं
स्वभ्रातरं प्रियतमं भरतं समन्तात्
वक्तुं प्रियं स्वकुशलं सुहृदं गुहञ्च
सः प्रैषिषद् रघुवरो द्रुतमाञ्जनेयम् ।१०।

आदेशतः पुनरसौ हनुमानयोध्य –
मायान्ददर्श भरतं नगरोपकण्ठम्
किं राम एव सकलेन्दुमुखः पुरस्ता–
दित्थं विचिन्त्य सहसाऽऽप नवं प्रमोदम् ।११।

विन्ध्य पर्वत के शिखरों में विचित्र सुन्दर शिखरों वाले, मन व शरीर में शक्ति भर देने वाले चित्रकूट को देखकर अत्रि मुनि को मन से प्रणाम कर प्रसन्न वह राम यान से ही नमस्कार करते हुए प्रयाग में उतरे ॥८॥ जिस क्षेत्र में सूर्यपुत्री यमुना अपना अस्तित्व विलीन कर, अहङ्कारवती जन्हुसुता गङ्गा से बलात् मिल जाती है, समस्त पापपुञ्जों के विनाश के लिये उस त्रिवेणी में -सङ्गम में--स्नान कर, जल देकर पितरों को तृप्त किया ॥९॥ लम्बी अवधि से अपने वियोग में सारे सुखों का परित्याग किये हुए, अपने प्रियतम भाई भरत और प्रिय मित्र गुह को अपना समस्त कुशल वृत्त निवेदन करने के लिये रघुनाथ ने शीघ्र ही हनुमान् को भेजा ॥१०॥ राम के आदेश से अयोध्या आकर नगर के समीप (नन्दिग्राम में) हनुमान् ने भरत को देखा, सामने पूर्णचन्द्रमुख राम ही हैं क्या ? ऐसा सोचकर सहसा उन्होंने अभिनव आनन्द प्राप्त किया ।११

रूपं तदेव वपुषो घटनं तदेव
सैषा गतिर्व्यवहृतिश्च पुनस्तदीया
अस्मादिहस्थभरतेन कृतं कृतं यद्
रामेण काननगतेन विहाय राज्यम् ।१२।

श्रुत्वाग्रजागमनवृत्तमनेहसेत्थं
रामानुचिन्तनविधौ गतमानसोऽसौ
उत्थाय यावदनुपश्यति दक्षिणाशां
तावत्स आप पुरतःस्थितमग्रजं स्वम् ।१३।

शून्यश्च शून्यमिलितं भवतीह शून्यं
तद्वद् बभूवतुरुभौ वपुषा हृदापि
दृष्ट्वा दशां पुनरिमां जहृषुस्तदानीं
तत्रस्थिताविगतमानसकल्मषाश्च ।१४।

वाचंयमौ प्रपतदश्रुजलाभिषिक्तौ
विश्रान्तमानसगती स्फुरिताधरोष्ठौ
अन्योन्यपीडनपरावशं भुजाभ्यां
जातावुभौ जगति मानवताप्रतीकौ ।१५।

रूप वही है, शरीर का घटन भी वही है, और राम की ही यह गति चाल और व्यवहार है। यही कारण है कि राज्य छोड़कर वन जाकर राम ने जो किया भरत ने यहीं रहकर भी वही किया ॥१२॥ इस प्रकार समय से बड़े भाई का आगमन का समाचार सुनकर भरत राम के अनुचिन्तन विधि में दत्तचित्त हो गये, उठकर जब तक वह दक्षिण दिशा की ओर देखते हैं तब तक उन्होंने अपने सामने खड़े हुए अपने अग्रज राम को, पाया ॥१३॥ शून्य से मिला हुआ शून्य ही होता है, वैसे ही दोनों भाई शरीर और मन से एक दूसरे में समा से गये। उस समय उनकी इस अवस्था को देखकर अवस्थित लोग आत्मविभोर और निष्कलुष होकर परम प्रसन्न हुए ॥१४॥ अवरुद्धवाक्, गिरते आँसू से नहाये, शान्तमनोगति, फड़कते होठों वाले, भुजाओं में एक दूसरे से, आलिङ्गनवद्ध, अवश दोनों भाई संसार में मानवता के प्रतीक बन गये ॥१५॥

श्रुत्वा ततस्तपनवंशनयानुकूलं
राजानमागतमरण्यनिवासनान्तम्
भर्तारमाप्य विरहज्वलिता सतीव
सा सज्जिताऽभवदलं खलु पूरयोध्या ।१६।

वाद्यप्रपूरितगृहा विलसत्पताका
नृत्यप्रवृत्तचरणाऽखिलरङ्गशाला
सुस्वादुपक्वसहजातसुगन्धयोगा
भाग्यं व्यनक्ति पुनरागतमाश्वयोध्या ।१७।

रामः प्रियस्य भरतस्य वचोऽनुसारं
हित्वर्षिवेशमधिरुह्य रथं ससीतः
लङ्कोपकारिकपिभिः स्वपुरीमयोध्यां
स्वभ्रातृतातसचिवैश्च समं जगाम ।१८।

शृण्वन्स गीतिवचनानि सुमङ्गलाना–
माशंसनञ्च शुभदं श्रुतिपाठकानाम्
लाजारुहाक्षतसुमैरभिपूजितः सन्
स्वभ्रातृभिः सह विवेश पुरीं ससीतः ।१९।

इसके बाद सूर्यवंश की नीति के अनुरूप, वनवास के बाद आये हुए पति, राजा को प्राप्तकर विरहदग्ध सती के समान अयोध्या नगरी अत्यन्त अलङ्कृत हो गयी ॥१६॥ घरों में बाजे बजने लगे, पताकायें शोभायमान हो गयीं, सभी रङ्गशालाओं में नृत्य होने लगे, सुस्वादु सुपक्व स्वाभाविक सुगन्धयोग वाली अयोध्या पुनः लौट आये भाग्य को व्यक्त कर रही थी ॥१७॥ प्रिय भाई भरत के कथनानुसार राम मुनिवेष त्यागकर, सीता समेत रथारूढ़ होकर लङ्का में उपकार करने वाले वानरों तथा अपने पिता के मन्त्रियों समेत अयोध्या में गये ॥१८॥ मङ्गलवाचकों के सुन्दर गीतों को, वेदपाठियों के मङ्गलप्रद आशंसनों को सुनते तथा लावा, दूब, अक्षत और फूलों से सर्वत्र पूजित राम ने अपने भाइयों और सीता समेत अयोध्या में प्रवेश किया ॥१९॥

संतर्प्य नर्मवचसा सुहृदः प्रियांश्च
दृष्टचा प्रजाः सरलया परितो विलोक्य
मातॄः गुरुन् सविनयं प्रणमन्स रामो
न व्यस्मरच्च कुटिलामपि मन्थराख्याम् ।२०।

अन्येद्युरेव नियमेन गुरुं वशिष्ठं
वृत्वा पुरोहितपदे त्रिदशांश्च नत्वा
आनीततीर्थसलिलैश्च कृताभिषेको
रामो बभूव नृपतिः सकलैरभीष्टः ।२१।

सुग्रीवमर्यमसुतं सुहृदं प्लवङ्गं
दैत्येश्वरं प्रियतमं च विभीषणं सः
सत्कृत्य मर्कटकुलान्यथ राक्षसांश्च
रामस्तदाशु विससर्ज हनूमदन्यान् ।२२।

अन्यान्प्रणम्यचरणांश्च महर्षिसङ्घान्
तत्रागतान् स्वसुहृदोऽपि विसृज्य रामः
स्वभ्रातृभिः सह शशास पुरीमयोध्यां
धर्मार्थकाममिलितो ननु मोक्षरूपः ।२३।

मधुरस्मित वाणी से मित्रों और प्रियजनों को तृप्तकर, सरल दृष्टि से चारों ओर प्रजाजनों को देखकर, सविनय, माताओं और गुरुओं को प्रणाम करते हुए उन राम ने कुटिल मन्थरा को नहीं भुलाया ॥२०॥ दूसरे ही दिन नियमानुसार गुरु वशिष्ठ का पुरोहित पद पर वरण कर, देवताओं को प्रणाम कर लाये गये तीर्थजलों से अभिषेक प्राप्तकर, सभी की इच्छानुसार राम राजा बन गये ॥२१॥ हनुमान् को छोड़कर सूर्यपुत्र वानर मित्र सुग्रीव, अतिप्रिय दैत्यराज विभीषण तथा अन्य सभी वानरों और राक्षसों का सत्कार कर राम ने उन्हें विदा किया ॥२२॥ महर्षिवृन्दों के चरणों को प्रणाम कर वहाँ आये हुए अन्य मित्रों को विसर्जित कर धर्म-अर्थ-काम सहित मोक्षरूप राम ने भाइयों समेत अयोध्या का शासन किया ॥२३॥

रामेऽधिरोहति नृपासनमक्षिरम्ये
नेमुः प्रजाः प्रतिपदिन्दुनिभं यदैव
अन्वास्य दीर्घविरहव्रतमाप्तराज्य
उक्तस्तदैव कविभिः स च रामचन्द्रः ।२४।

चन्द्रो यथा प्रकृतिरञ्जनतोऽस्ति राजा
रामस्तथाऽऽप पदवीमिह नाभिषेकात्
यः केवलं प्रियतमो न बभूव नृणा-
मासीत्प्रियश्च सततं स चराचराणाम् ।२५।

कर्तुं स्वजन्म सफलन्नु तपांसि तप्त्वा
राज्ञो यदा वनमिताः सकला जनन्यः
रामस्य सर्वसमयः प्रकृतिप्रियार्थं
जातस्तदाप्रभृति सर्वहितैषिणोऽस्य ।२६।

शास्त्रैकमात्रविषयानितरान्प्रकुर्वन्
साम्नैव शासितजनाननुकूलयन्सः
ख्यातिं परामिह निनाय च रामराज्यं
जाता हि सा तदनु केवलमर्थवादः ।२७।

लम्बी विरह की तपस्या से राज्य प्राप्तकर, उसकी उपासना-सेवाकर, नेत्राभिराम राम के राजासन पर विराजमान होने पर, प्रतिपद् के चन्द्रसरीखे उन्हें जभी से प्रजाओं ने प्रणाम करना आरम्भ किया तभी से कवियों ने उन रामचन्द्र को यह कहना प्रारम्भ कर दिया- ।।२४।। जैसे चन्द्रमा प्रकृतिरञ्जन से राजा कहा जाता है वैसे ही राम ने भी यह 'राजा' की पदवी (राजा प्रकृतिरञ्जनात्) पायी है न कि अभिषेक मात्र से, जो न केवल मनुष्यों के ही प्रियतम हुए बल्कि समस्त चराचर जगत् के निरन्तर प्रिय बने ।।२५।। तपस्या कर अपने जन्म को सफल करने के लिये जब राजा राम की सभी मातायें वन चली गयीं तब सर्वहितैषी राम के सभी समय प्रजानुरञ्जन में ही लग गये ।।२६।। राम ने दूसरे प्रदेशों या राज्यों को एकमात्र शास्त्र विषयक बनाते हुए, केवल साम से ही प्रजाजनों को अनुकूल बनाते हुए, इस लोक में 'रामराज्य' की परम ख्याति लायी जो बाद में केवल अर्थवाद ही रह गयी ।।२७।।

ततो विनिर्द्धारितराज्यपद्धतिः
शशास राज्यं प्रकृतिप्रियङ्करः
विसस्मरुर्येन जनाः पुरानृपं
पटं नवं प्राप्य पुरातनं यथा ।२८।

विभज्य कालं प्रकृतीच्छया पुनः
प्रशासतो नास्य मनोऽप्यखिद्यत
सहानुजैः स्निग्धसुमानुषप्रियां
चकार तृप्तां मिथिलात्मजामपि ।२६।

न चास्य राज्ये प्रभवन्ति रोगाः
भयं न दुर्भिक्षकृतं कदाचित्
न वह्निजं वारिकृतं न वातजं
न क्षुत्कृतं चौरकृतं न वासीत् ।३०।

विप्राः सदा वेदमधीयते स्म
राजन्यवर्गोऽपि ररक्ष राज्यम्
राज्योन्नतिं वैश्यजनाश्च चक्रुः
शूद्रा न सेवाविरता बभूवुः ।३१।

इसके बाद प्रजाप्रियकारी राम ने राज्य पद्धति का निर्धारण कर ऐसा राज्य का शासन किया जिससे लोगों ने नये वस्त्र को प्राप्त कर पुराने वस्त्रों के समान पुरातन राजाओं को भुला दिया ॥२८॥ फिर प्रजा की इच्छा से समयविभाग कर शासन करते हुए इनका मन रञ्चमात्र भी खिन्न नहीं होता था। स्निग्ध सुमानुषप्रिया मिथिलेश्वरी को भी, भाइयों के साथ, तृप्त किया ॥२६॥ इनके राज्य में न रोग पैदा होते थे, न कभी दुर्भिक्ष अकाल जनित कोई भय होता था। अग्नि, जल, वायु भूख और चोरजनित भय उपद्रव भी नहीं थे ॥३०॥ ब्राह्मण सदा वेदों का अध्ययन करते थे, क्षत्रियजन भी राज्य की रक्षा करते रहे, वैश्य वर्ग राज्य की प्रगति करता रहा और शूद्रजन सेवापरायण बने ॥३१॥

साहित्यसङ्गीतकलादिकानामभूतपूर्वोन्नतिरेव जाता
राज्यं तदासीद् विभवेन पूर्णं स्वास्थ्येन सौख्येन युताः प्रजाश्च

कामस्य पूर्तिर्न बभूव कस्य बिभेति को वा न नृपं निरीक्ष्य
यत्रार्थलाभः सुलभो न केषां नासीत् प्रियः कस्य कृते न रामः

अथैकदा गुप्तचरं स भद्रं ज्ञातुं प्रजानाञ्च रहस्यवृत्तम्
सम्प्रेष्य विश्रामधिया तदानीमन्तःपुरं श्रान्तवपुर्जगाम ।३४।

अभ्यर्थनां स्वप्रियया प्रयुक्तामवाप्य सौहार्द्ररसाभिषिक्ताम्
गतक्लमस्तां गृहिणीं निरीक्ष्य सापन्नसत्वेति स निश्चिचाय।३५

अनन्तरं जातकुतूहलोऽसौ स्पृष्ट्वा च तस्याश्चिबुकं करेण
ह्रिया कृताधःस्वमुखीं प्रगृह्य प्रेम्णा पुनर्दोहदमन्वपृच्छत् ।३६।

द्रष्टुं मुनीनां पुनराश्रमं सा विज्ञाप्य भावञ्च बभूव तूष्णीम्
प्रजेप्सितापूरणयज्ञदीक्षितो मुदा पुनः पूरयितुं समुद्यतः ।३७।

साहित्य-सङ्गीत-कला आदि की अभूतपूर्व उन्नति हुई। उस समय राज्य विभवपूर्ण था, सारी प्रजायें स्वस्थ और सुख से युक्त थीं ।।३२।। किसकी इच्छा की पूर्ति नहीं हुई ? या राजा को देखकर कौन नहीं डरता था ? किसे अर्थलाभ नहीं था ? और किसके लिये राम प्रिय नहीं थे ? ।।३३।। एक बार प्रजाजनों के आचरणों की जानकारी के लिये भद्र नामक गुप्तचर को भेजकर विश्राम के विचार से उस समय थके हुए राम अन्तःपुर में प्रविष्ट हुए ।।३४।। अपनी प्रियतमा सीता से प्रेमरसाभिषिक्त सेवा की-अभ्यर्थना को प्राप्तकर थकानशून्य राम अपनी पत्नी को देखकर जाना कि यह आपन्नसत्वा, गर्भिणी है ।।३५।। फिर उत्पन्न कुतूहल उन्होंने हाथ से उसके कपोल का स्पर्श कर मुख को ऊपर उठाकर, लज्जावनमुखी सीता से प्रेमपूर्वक दोहद इच्छा को पूँछा ।। मुनियों के आश्रमों को फिर से देखने के भाव को बताकर वह चुप हो गयीं, प्रजा की इच्छापूर्तियज्ञ में दीक्षित राम प्रसन्नतापूर्वक सीता की उस अभिलाषा को पुनः पूर्ण करने को तैयार हो गये ।।३७।

अन्येद्युरागत्य चरः स भद्रो विविक्तमासाद्य पुनः प्रणम्य
शुक्लातपत्रं यशसातिशुक्लं गतव्यथः शुद्धमनास्तमूचे ।३८।

सर्वत्र नो वार्तमवेहि राजन् कुतोऽशुभःस्याद् भवतः प्रजासु
तथापि लोको ननु लोक एव चित्रं न यो मृष्यति कश्चिदेव ।३९

नाशङ्कते कोऽपि नरश्च पापं देवप्रिये ते चरिते वदान्य
नीचादृते को रजकात्परः स्याद् यो वक्ति पापं जनकात्मजायाम्

व्यतीत्य रात्रिं परकीयवासे समागता यश्च जगाद भार्याम्
रामोऽस्मि नाहं प्रददाति मानं यः स्वप्रियायै परदूषितायै ।४१।

अनभ्रवज्राहतमानवृक्षं पुनर्विधातुं समयेन हृष्टम्
मालीव दग्धांशमपास्य सद्यो राजा स्वयं सेवितुमन्वयुङ्क्त ।४२।

व्याजादृषीणामवलोकनस्य हातुं बने दोहदपूर्तिकामाम्
आदिश्य रामः स्वयमेव चक्रे तं लक्ष्मणं स्वञ्च विना सहायम् ४३

दूसरे दिन फिर आकर वह भद्र नामक गुप्तचर, एकान्त पाकर, प्रणाम कर, यशः शुक्ल, शुभ्रक्षत्रधारी राम से व्यथारहित होकर शुद्ध मन से बोला– हे राजन् सर्वत्र कुशल ही समझें, आपके रहते प्रजाओं में अशुभ कहाँ ? फिर लोग तो लोग ही हैं, आश्चर्य है यह लोक किसी को क्षमा नहीं करता ॥३९॥ हे वदान्य! देवप्रिय आपके चरित में कोई भी व्यक्ति आशङ्का नहीं करता । उस नीच धोबी को छोड़कर ऐसा कोई और नहीं है जो जनकसुता के विषय में पाप की बात करता है ॥४०॥ जिसने दूसरे के घर में रात बिताकर आयी अपनी पत्नी से कहा मैं राम नहीं हूँ जो पर दूषित अपनी प्रिया सीता को मान देते हैं ॥४१॥ बिना बादल के गिरी बिजली से आहत मानवृक्ष को उसके दग्धांश को छोड़कर समय पर अवशिष्ट को पुनः प्रसन्न करने के लिये माली के समान राजा ने सेवा के लिए स्वयं को समुद्यत किया ॥४२॥ दोहदपूर्ति की इच्छा रखने वाली सीता को ऋषियों के दर्शन के बहाने जंगल में छोड़ने के लिये उन लक्ष्मण को आदेशकर राम ने स्वयं अपने को असहाय कर लिया ४३

स्वभ्रातुराज्ञापरिपालनाय विविच्य कर्तुं प्रति नष्टभावः
सीतामुपाविश्य रथं तदानीं गतः स सौमित्रिरनल्पदुःखः ।४४।
श्रमेणसंरुद्धनिजाश्रुवेगः सीतां यदोवाच समस्तवृत्तम्
रुदन्स शुश्राव वचस्तदानीं गाढं रुदत्याश्च पतिव्रतायाः ।४५।
नरेन्द्रबन्धोऽग्रजपादसेवाव्रतैकधीर्यास्यसि राजधानीम्
हित्वा वने मामपि धारयन्तीं भ्रूणप्रजां कोशलराजलक्ष्म्याः ।४६
कथं स मां ज्ञास्यति यो न धत्ते ज्ञानं क्वचिद् वा मम नूपुरान्यत्
कथं पुराभूर्न दृढव्रतस्त्वं श्रुत्वा वचो मेऽग्रजवाग्विरुद्धम् ।४७।
स त्वं गुरुस्तेऽपि स एवराजा साहं स्वभाग्येन निगूढसत्वा
भ्रात्रे परं भ्रातृवचोऽनुसारिन् क्रुधा ह्रिया वा नय तद्वचो मे ४८
कालप्रभावदुत भाग्यदोषाद् विडम्बितायां सदयस्तपस्वी
उद्धृत्य पङ्कात्पुनरेव पङ्के क्षिपन्नृपश्रीवशमागतः किम् ।४६।

भाई की आज्ञा का परिपालन करने के लिये, विवेचन करके, काम करने के प्रति भावशून्य लक्ष्मण तब भारी दुःख समन्वित होकर सीता को रथ पर बिठाकर वन ले गये ॥४४॥ कठिनाई से अपने आँसुओं के वेग रोककर लक्ष्मण ने जब सारा वृत्तान्त सीता को सुनाया तब उस समय उन्होंने घोर रुदन करती उस प्रतिव्रता के कथनों को स्वयं रोते हुए सुना ॥४५॥ अग्रजपादसेवाव्रत मात्र के धनी, धीर हे राजबन्धु! कोशलराजलक्ष्मी की भ्रूण (सन्तान) को धारण किये हुई मुझे भी वन में छोड़कर राजधानी जाओगे ? ॥४६॥ अथवा वह मुझे कैसे जान सकेगा जो मेरे नूपुर के अतिरिक्त कुछ भी ज्ञान मेरे विषय में नहीं रखता ? तो फिर पहले वन में अपने बड़े भाई के विरुद्ध मेरी बातों को सुनकर क्यों नहीं ऐसे ही दृढ़व्रत बने रहे ? ॥४७॥ तुम वही (गुरु) हो, तुम्हारे (गुरु) ज्येष्ठ भाई राजा राम भी वही हैं, अपने भाग्य से निगूढसत्त्व (प्रच्छन्नाव लेपसगर्भा) मैं भी वही हूँ। हे भ्रातृवचोनुगामी लज्जा या क्रोध से (जैसे भी कह रही हूँ), फिर भी, मेरी बात अपने भाई के पास ले जाओ ॥४८॥ काल प्रभाव अथवा भाग्य दोष से विडम्बना प्राप्त मुझे दयावान् तपस्वी तुम कीचड़ से उखाड़कर-उबारकर पुनः कीचड़ में ही फेंकते हुए राजश्री के वशवर्ती हो गये हो क्या ? ॥४६॥

श्रुतं परैर्या बहुशोऽपि भुक्ता सा पूरयोध्या तपसा पतिं त्वाम्
पुराऽवृतातः सहते न सा मामन्यां त्वदङ्काधिगतां कदाचित् ५०
पत्युःप्रियासूनपि हापयित्वा या त्वां वनं प्रेषिषतैव हन्त
त्यक्तुं गृहं मां पुनरेव सैव मम प्रियं त्वामकरोन्निमितम् ।५१।
कायेन वाचा मनसा विशुद्धां प्रमाणिताश्चापि धनञ्जयेन
त्यजन् विसस्मर्थ चिरन्तनोक्तिं नाङ्गीकृतं सत्कृतिनस्त्यजन्ति ५२
प्राणा व्रजेयुर्न वचो विरुन्ध्यादेषा प्रतिज्ञा रघुवंशजानाम्
वारद्वयं वह्निपुरः कृतस्य प्रशस्यते किं वचसो विघातः ।५३।
मन्ये त्वयाप्तं विमलं यशोऽतः सा पूरपि प्राप्तवती सुशान्तिम्
ममापि भाग्यं खलु धर्षितायां मह्यं वनेऽस्मिन्किमपि प्रदास्यति
कृतापराधो भवतीह दण्डभागन्यः परस्मै नहि दण्डनीयः
त्यक्त्वा मनूक्तं नयमत्र राजन् नीतिर्नवास्यात् किमु रामराज्ये ५५

सुना है दूसरों से अनेकशः भुक्त उस अयोध्या नगरी ने तपस्या से तुम्हें पहले (वनवास से पूर्व) पति चुना था इसीलिये मुझ पराई को तुम्हारे अङ्क में देखकर कदाचित् सह नहीं पाती ॥५०॥ पति (राजा दशरथ) के प्रिय प्राणों को भी गवाँकर जिसने तुम्हें वन भेज ही दिया था फिर से वही (उसी अयोध्या ने) मेरे प्रिय तुम्हें मेरे घर छोड़ने का निमित्त बनाया है ॥५१॥ शरीर, मन, वाणी से शुद्ध और अग्नि से भी प्रमाणित मुझे छोड़ते हुए तुमने यह चिरन्तन उक्ति भी भुला दी कि सुकृती लोग अङ्गीकार का परित्याग नहीं करते ॥५ ॥ प्राण चले जाँय किन्तु वचन को न तोड़ा जाय यह रघुवंशियों की प्रतिज्ञा है। दो-दो बार अग्नि से पुरस्कृत अग्नि साक्षी कृत (विवाह समय-अग्नि परीक्षा पर) व्यक्ति का वचन का तोड़ना प्रशंसनीय है क्या ? ॥५३॥ माना कि इससे तुमने विमल यश पाया और वह नगरी अयोध्या भी सुशान्ति पाई, मेरा भी भाग्य इस प्रकार प्रताड़ित मुझे इस वन में कुछ (अनिर्वनीय) शान्ति देगा ही ॥५४॥ इस संसार में अपराधी व्यक्ति दण्डनीय होता है, किसी अन्य को दण्ड नहीं देना चाहिये, हे राजन् मेरे विषय में इस मनुप्रोक्त विधान को छोड़कर रामराज्य में कोई नई नीति बनाई गई है क्या? ५५

परम्परायामपि नूतनायां व्यवस्थितायामयि मे प्रजेन्द्र
कुरुष्व यत्नं मयि पूर्वसौहृदाद् यथा न दण्डयाऽस्तु मम प्रसूतिः ५६
भाग्याम्बरे मे समुदैदिदानीं हृद्याननान्वेक्षणरोधि पापम्
त्वया तथापि प्रतिरक्षबुद्धया तपस्विसामान्यमवेक्षणीयम् ।५७।
अहं यतिष्ये तप आत्मशुद्धयै त्वाञ्चैव भर्तारमवाप्तुमग्रे
परं विहीनं खलुराज्ययोगाद् भवेद् यथाऽयं नहिविप्रयोगः ।५८।
अरुन्तुदं वृत्तमदो निशम्य रुरोद सा कोशलराजमाता
ज्ञात्वा सुतं त्यक्तसमस्तसौख्यं सहायहीनाञ्च वधूमिदानीम् ५६।
अहह किमिदं हृद्वेधार्हं शृणोमि वचोऽप्रियं
ज़हति न कथं प्राणा जीर्णमदीयकलेवरम्
विगतकरुणो भर्तुर्मृत्युं प्रदर्श्य न शान्तता-
मुपगत इदं धाताऽवाङ्क्षच्च दर्शयितुं दिनम् ।६०।

हे मेरी प्रजा (गर्भस्थ सन्तान प्रजाजन) के मालिक, इस नयी परम्परा के व्यवस्थित हो जाने पर भी मेरे प्रति अपने पूर्व प्रेम के कारण ऐसा प्रयास करें कि जिससे मेरी सन्तान तो दण्डनीय न हो ॥५६॥ मेरे भाग्याकाश में इस समय (प्रिय के) हृद्य मुख दर्शन का अवरोधक पापग्रह उदित हो गया है तथापि तुम मुझे प्रतिरक्षक (राजा) के विचार से ही तपस्वि सामान्य के रूप में ही देखना ॥५७॥ और मैं आत्मशुद्धि के लिये तपस्या करूंगी कि जिससे अगले जन्म में भी तुम्हें ही पतिरूप में पाऊँ किन्तु वह राज्य योग से रहित हो जिससे यह बार-बार का वियोग तो नहीं होगा ॥५८॥ मर्मवेधी इस वृत्तान्त को सुनकर वह कोशल राजमाता (कौसल्या) खूब रोई। पुत्र को समस्त सुखों से विहीन तथा असहाय बधू को जानकर वह रोई ॥५६॥ आह! यह कैसी हृदय वेध्य अप्रिय बात सुन रही हूँ, मेरे प्राण इस बूढ़े जीर्ण शरीर को क्यों नहीं छोड़ देते ? निष्करुण विधाता पतिमरण को दिखाकर शान्त नहीं हुआ और यह दिन दिखाने की भी चाह रखे रहा ॥६०॥

प्रथममहिषी भूत्वा राज्ञो लभे किमिदं सुखं
कुलिशकठिनं दुःखं वोढुञ्च मे विवशा स्नुषा
लघुतममहं तस्यै दातुं सुखं यदि न क्षमा
जगति हि मया नूनं श्वश्रूपदं कलुषीकृतम् ।६१।

अविदितसुखा निष्ठामूर्तिः स्वभर्तृपरायणा
यदसहत साऽरण्ये दुःखं निरीक्ष्य धवाननम्
दयितरहिता भूत्वा लोके पुनः कुयशोऽङ्किता
विषमसमये नूनं जीवं न धारयितुं क्षमा ।६२।

श्रुतमिह मया वैदेही साऽस्त्यनूनकगर्भिणी
पललमिव या क्षिप्ताऽटव्यां शरारुमुदेऽधुना
नियतमिह मे पापं पुराकृतमस्ति यत्
प्रकृतिमृदुलो रामः क्रूरोऽभवन्मम गर्भजः ।६३।

राजा की प्रथम पट्टमहिषी होकर मैंने क्या यही सुख पाया है कि मेरी पुत्रवधू वज्रकठिन दुःख सहने के लिये विवश है, यदि मैं उसे कुछ भी सुख देने में समर्थ नहीं रही तो निश्चय ही संसार में मैंने सास पद को ही मलिन किया है ॥६१॥ निष्ठामूर्ति, अपने पति की परायण जिसने सुख कभी जाना ही नहीं, वन में उसने पति का मुँख देखकर जो दुःख सहन कर लिया, और अब प्रियविहीन तथा संसार में अपयश भागिनी होकर इस विषम समय में निश्चय ही वह प्राण धारण नहीं कर पायेगी ॥६२॥ सुना है जानकी पूर्णगर्भा थी जो मांस की भाँति जंगल में हिंसकों के हर्ष के लिए फेंक दी गई है। निश्चय ही यहाँ मेरा पूर्व जन्म में किया गया पाप ही है जो मेरे गर्भ से पैदा हुआ स्वभावमृदु भी मेरा राम क्रूर हो गया है ॥६३॥

प्रकृतिकुटिलश्छिद्रान्वेषी जनो वदति क्वचित्
कमपि पुरुषं किं निर्दुष्टं विपश्चिदपश्चिमम्
व्रजति करटो नीत्वा श्रोत्रं निशम्य वचस्त्विदं
स्पृशति प्रथमं श्रोत्रं मूर्खोऽपि ना किमु पण्डितः ।६४।

विकिरतु विधू रश्मिस्तोमान् विभावसुसन्निभान्
त्यजतु सहजं शैत्यं तोयं विधेः प्रथमा कृतिः
अपि भगवती पृथ्वी जहातु च धीरतां
यदि मम सुतो रामो जातो विसंष्ठुल ईदृशः ।६५।

सुकृततविटपी यामप्राप्य क्षणं वियुतः पुरा
दयितविचयव्यग्रो भूत्वाऽत्यजन्निजचेतनाम्
किसलयनिभां हृद्यां मुञ्चन्सतां सहधर्मिणीं
रघुकुलवृढो हृष्टः केन प्रदर्शयति स्वयम् ।६६।

स्वभाव कुटिल, छिद्रान्वेषी व्यक्ति अतिनिर्दोषजन को कहीं बुद्धिमान् कहता है? कौआ कान लिये जारहा है, इस बात को सुनकर मूर्ख व्यक्ति भी पहले कान छूता है, विद्वान की तो बात ही क्या ? ।।६४।। मेरा पुत्र राम यदि ऐसा अकरुण हो गया है तो चन्द्रमा सूर्य समान किरणों की वर्षा करे, विधाता की प्रथम कृति जल अपनी स्वाभाविक शीतलता छोड़ दे, भगवती पृथ्वी भी अपनी धीरता त्याग दें ।।६५।। पहले क्षण भर के लिए विमुक्त, सुकृतवृक्ष राम, जिसको न प्राप्तकर प्रियतमा की खोज में व्यग्र होकर अपनी चेतना ही छोड़ दी थी, मूर्छित हो गये थे किसलय सरीखी, हृदय हारिणी उसी सहधर्मचारिणी को छोड़ते हुए प्रसन्न रघुकुल श्रेष्ठ राम स्वयं को कैसे प्रदर्शित कर रहे हैं ? ।।६६।।

अधिवनमपि प्राज्यं सौख्यं सदालभतां स्नुषा
किमपि यदि मे पुण्यं शिष्टं कुदैवहतात्मनः
ददतु तरवश्छायां भोज्यं सुखञ्च वनानिलो
वहतु सुलभं स्निग्धं श्वश्रूपदं वनदेवता ।६७।

गते सुमित्रातनये रुदत्यां प्रगाढमस्यां मिथिलात्मजायाम्
मध्याह्नसन्ध्यासमुपासनार्थं महर्षिवाल्मीकिरिहाजगाम ।६८।

तां सान्त्वयित्वा पितृवद्वचोभिः कुटीं समानीय पुपोष सोऽपि
सा छद्मनाम्ना विपिने वसन्ती पत्युः समानावजनिष्ट बालौ ।६९।

तौ बालकौ प्राप्य महर्षिशिक्षां निष्णाततां कर्मसु लब्धवन्तौ
आद्यः कुशस्तत्र लवो द्वितीयो जातावुभावेव मनोहराद्यौ ।७०।

प्रदाय सीतापललं शरारवे स्वमात्महन्तारमिवानुमाय
रामो निरुध्यात्मनि शोकवह्निं दग्धुं स्वयञ्चापि मनश्चकार ७१

दुर्भाग्य की मारी मेरा यदि कोई भी पुण्य शेष हो तो मेरी पुत्रवधू सीता वन में भी सदा प्रभूत सुख पाये, वृक्ष फल और छाया प्रदान करें, वन पवन सुखार्थ वहे और वनदेवता स्वाभाविक स्निग्ध सास पद को धारण करें निभायें ॥६७॥ लक्ष्मण के चले जाने पर, सीता के घोर विलाप करते रहते मध्याह्न सन्ध्योपासना के लिये वहाँ महर्षि वाल्मीकि आये ॥६८॥ पिता समान वाल्मीकि ने सीता को अपनी बातों से सान्त्वना देकर, अपनी कुटिया में लाकर सम्यक् पालन किया। छद्म नाम से वन में रहती हुई उन्होंने पति समान दो बालकों को जन्म दिया ॥६९। महर्षि वाल्मीकि की शिक्षा प्राप्तकर उन दोनों ही बालकों ने शस्त्रादि कर्मों में दक्षता प्राप्त कर ली मनोहर तथा अन्य गुणोपेत उनमें प्रथम का नाम कुश और दूसरे का लव था ॥७०॥ मांस के समान सीता को हिंसक पशुओं को अर्पित कर, अपने को आत्महन्ता सा मानकर, शोकाग्नि को अपने अन्दर ही रोककर राम ने स्वयं को जला देने का निश्चय कर लिया ॥ १॥

विश्वाससोपानमधिश्रयन्तीं भार्यां स्फुटद्गर्भभरालसान्ताम्
क्षिपन्प्रवादादयशःक्षितौ स स्वोपायदारिद्रयमदीदृशच्च ।७२।
तदाप्रभृत्येव निरीक्ष्य घातं कृतं स्वपत्न्याः स्वयमेव भर्त्रा
नार्यो न सीतामनुकुर्युरित्थं सा स्वोपमानं स्वयमेव जाता ७३
अन्तर्ज्वलन्नेष प्रजाः प्रशासच् शुश्राव कञ्चिच्च मृतं युवानम्
पितुः समक्षं मरणं सुतस्य नृपस्य दोषादिति सोऽप्यबोधि ।७४।
निदानमन्वेषयतोऽस्य हेतुस्तपस्तु शूद्रस्य बभूव सिद्धः
अथाशु तं दण्डयितुं स राजा गतश्च शम्बूकपदाभिधेयम् ।७५।
तरावधःकृत्य मुखं तपोरतं निरीक्ष्य तं शूद्रमुनिं स रामः
विज्ञाप्य तं दण्डयितुं समागतं पप्रच्छ हेतुं द्विजवत्प्रवृत्तौ ।७६।
गृहीतशस्त्रं प्रसमीक्ष्य रामं स्वं प्रार्थयामास मुनिः स हन्तुम्
भूत्वाऽपि शूद्रो द्विजवत्प्रवृत्तौ निरूपयन्नेव पुनर्बभाषे ।७७।

विश्वास की चरम सीमा को प्राप्त, पूर्ण गर्भ भार से अलस अपनी पत्नी सीता को निन्दा, अपकीर्ति के कारण त्यागते हुए राम ने पृथ्वी में अपने उपाय की दरिद्रता, अवशत्व को देखा ॥७२॥ तब से लेकर, पति द्वारा स्वयं अपनी पत्नी के किये गये हिंसन को देखकर, स्त्रियां सीता का अनुगमन न करें मानो इस प्रकार सीता स्वयं ही अपना उपमान बन गई ।७३॥ अन्दर ही अन्दर जलते हुए राम ने, प्रजापालन करते हुए सुना कि कोई नवयुवक मृत्युप्राप्त कर गया। पिता के सामने ही पुत्र की मृत्यु हो, इसमें भी उन्होंने राजा का ही दोष देखा ॥७४॥ इसका कारण खोजते हुए उन्होंने पाया कि शूद्र की तपस्या ही इसका कारण है फिर तो उस शूद्र को दण्डित करने के लिए राजाराम शीघ्र ही उस शम्बूक नामक तपस्वी शूद्र के पास पहुँच गये ॥७५॥ वृक्ष की नीचे, अधोमुख तपस्यारत उस शूद्रमुनि को देखकर उन राम ने उसे दण्डित करने के लिये स्वयं को आया हुआ बताकर ब्राह्मण (द्विज) के समान उसकी प्रवृत्ति का कारण पूँछा ॥७६॥ शस्त्र लिये हुए राम को देखकर उस मुनि ने अपने वध की प्रार्थना की। शूद्र होकर भी द्विजवत् प्रवृत्ति में हेतु का निरुपण करते हुए उसने पुनः कहा ॥७७॥

विधौ निषेधेऽपि दृढं निबद्धं विज्ञाय धर्मं भवदाप्तिकामः
त्यक्त्वा निजाचारपरम्परां स दशाननो मोक्षमवाप सद्यः ।७८।
हत्वाऽऽशु शीघ्रं प्रददासि मोक्षं ज्ञात्वा च मर्तुं तव शस्त्रघातैः
वामेन मार्गेण विहाय धर्मं त्वां प्राप्तुकामो व्रतमाचरामि ७९
अभीष्टदानप्रतिबद्धनीतिः सीताविवासाऽऽहतचित्तवृत्तिः
न्यक्कृत्य भावं सहजोत्थितं स प्राणान्मुनेस्तस्य जहार रामः ८०
आसीत्तदानीं लवणासुरोऽन्यो ऽवशिष्ट एकस्त्रिदशापकर्ता
तं नामशेषं स विधातुमारादप्रेरयत्तुर्यमथानुरोधात् ।८१।
हत्वाऽसुरं तत्र निवर्तमाने तुर्येऽनुजे संयति लब्धकीर्तौ
इयेष कर्तुं विहितं नृपेभ्यः सन्स्वर्णभार्यः स नृपोऽश्वमेधम् ।८२।
स सारवार्याधिपतिस्तदानीं स्वजन्मनालंकृतसौरवंशः
कर्तुंश्च पारेसरयु स्वयज्ञं भुवो विशुद्धयर्थमथादिदेश ।८३।

धर्म को विधि और निषेध में दृढ़ निबद्ध जानकर, आपको प्राप्त करने की इच्छा वाला वह दशमुख भी अपनी आचरण परम्परा को त्यागकर तुरन्त मोक्ष पाया ॥७८॥ मारकर तुम तुरन्त मोक्ष दे देते हो, यह जानकर और तुम्हारे शस्त्रप्रहार से मरने के लिये, धर्म को छोड़कर वाम मार्ग से तुम्हें प्राप्त करने की इच्छा वाला मैं तप कर रहा हूं ॥७९॥ अभीष्ट दान के लिए प्रतिबद्ध नीतिवाले, सीता के निर्वासन से आहत मनोवृत्ति वाले उन राम ने सहज उत्पन्न भाव का तिरस्कार कर तुरन्त उसके प्राणों का हरण कर लिया ॥८०॥ उस समय एक और देवशत्रु लवणासुर बचा हुआ था। राम ने ऋषियों के अनुरोध पर उसे नामशेष करने के लिए शीघ्र ही शत्रुघ्न को भेजा ॥८१॥ राक्षस को मारकर, युद्ध में कीर्ति प्राप्तकर, छोटे भाई चौथे शत्रुघ्न के लौटने पर राजाओं के लिये विहित अश्वमेध यज्ञ करने के लिए उन राजा राम ने सोने की सीतायुक्त होकर यज्ञ करने का प्रयास किया ॥८२॥ अपने जन्म से सूर्यवंश को अलंकृत करने वाले, सार्वभौम नरेश उन राम ने उस समय सरयू के पार अपना यज्ञ करने के लिये, पृथ्वी शोधन का आदेश दिया ॥८३॥

ततःसजूः क्षत्रियवैश्यशूद्रैर्निमन्त्र्य विप्रानखिलान्प्रजासु
आमन्त्रयामास महर्षिसङ्घान् समं सुरैश्चासुरवानरैश्च ।८४।
श्वेतं हयं यज्ञियमेकमेवं विसृज्य रामस्तदनन्तरं चमूम्
प्रस्थापयामास जयं विधाय हयेन साकं पुनरागमाय ।८५।
अथापराह्णे कृतयज्ञकर्मा स एकदासीन इह प्रजाभिः
ददर्श बालावुपवीणयन्तौ शनैः शनैर्गायनकर्मलग्नौ ।८६।
आहूय तौ कर्तुमिहापि गानं स प्रत्यहं तौ निविवेद रामः
तदाप्रभृत्येव सदाऽपराह्णे द्वौ चक्रतू रामकथां समाजे ।८७।
सीतापरित्यागकथां निशम्य कवौ पिपृच्छामकरोद् यदैव
तदाऽन्वभूत्स उभयत्र रोधं तद्बालगाने च हयाभियाने ।८८।
श्रुत्वा चरेभ्यश्च हयं निरुद्धं सेनां विपर्यस्ततां प्रयाताम्
गतस्तदानीमभियोद्धुकामो रामस्तमाप्तुं स्वयमेवमश्वम् ।८९।

इसके बाद प्रजाओं में क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र समेत सारे ब्राह्मणों को निमन्त्रितकर देव-दानव-बानरों समेत महर्षिवृन्दों को भी आमन्त्रित किया ।।८४।। इस प्रकार एक श्वेत यज्ञीय अश्व को छोड़कर उसके पश्चात् विजय करके अश्व के साथ पुनः लौट आने के लिये उन्होंने सेना को भेजा ।।८५।। एक वार यज्ञकर्म करके अपराह्न में प्रजाओं समेत वह आसीन थे, देखा कि वीणा बजाते हुए, धीरे-धीरे गीतकर्म में दो बालक प्रवृत्त हैं ।'८६।। उन दोनों को बुलाकर यहाँ राजसभा में आकर प्रतिदिन गान करने के लिये, राम ने उन दोनों से निवेदन किया । तभी से प्रतिदिन अपराह्न में उन दोनों ने समाज, सभा में रामकथा कहना प्रारम्भ किया । ८७।। सीता के परित्याग की कथा को सुनकर जभी राम ने कवि के विषय में पूछने की इच्छा की उसी समय उन्होंने दोनों स्थानों पर अवरोध का अनुभव किया - उस बालगान में और अश्व के अभियान में ।।८८।। चरों से अश्व का निरोध तथा सेना की अस्तव्यस्तता सुनकर उस समय राम ने उस अश्व को स्वयं प्राप्त करने के लिये युद्ध की इच्छा से वहाँ गमन किया ।।८९।।

तौ गायकावेव निरीक्ष्य तत्र रणं स्थितौ वीररसाविव द्वौ
कारुण्यपूर्णः स उवाच रामो मत्वाऽश्वरोधश्च कृतं शिशुत्वात् ९०
नागत्य मे संसदमद्य वत्सौ कृतौ युवाभ्यां कथमश्वरोधः
अदो न कर्मास्त्युचितं कथञ्चिन् मोच्यो हयोह्यध्वरसम्प्रयुक्तः
शिष्टं बलं केवलमस्तिमान्यं क्व शिष्टता यत्र भवन्ति कीशाः
बालैर्निरुद्धो भवतोऽयमश्वः दत्त्वा रणं मोचयतु प्रकामम् ।९२।
श्रुत्वा वचो दर्परसावसिक्तं दृष्ट्वापि सैन्यस्य पराजयञ्च
अकारणाविष्कृतहार्दहेतोर्युद्धं न रामो वरमत्र मेने ।९३।
सहाश्वलाभेन न बालहानिर्भवेद् यथेत्थं च विचार्य रामः
स जृम्भकास्त्रं शिशुजृम्भणाय प्रायूयुजत्कौशिकसम्प्रदत्तम् ९४
तदेव शस्त्रञ्च शिशुप्रयुक्तं दृष्ट्वा परां विस्मयतां गतस्य
तदागमे चिन्तयतस्तदानीं प्राचेतसस्तं सहसाऽभिपेदे ।९५।

साक्षात् वीररस जैसे गायक उन्हीं दोनों बालकों को वहाँ युद्ध में खड़े देखकर, यह जानकर कि बालपन से अश्व को रोक रखा है, कारुण्यपूर्ण राम उनसे बोले ।।९०।। बच्चों, आज मेरी सभा में न आकर तुम दोनों ने घोड़े को क्यों रोक रखा है, यह कार्य किसी भी प्रकार से उचित नहीं है, यह अश्व, यज्ञीय है, छोड़ देना चाहिए ।।९१।। केवल शिष्ट बल ही मान्य होता है, जहाँ वानर हैं वहाँ शिष्टता कहाँ ? यह आपका अश्व बच्चों से रोका गया है, युद्ध देकर इच्छानुसार छुड़ा लें ऐसा उन बच्चों ने कहा ।९२। दर्परस वीररस पूर्ण वाणी को सुनकर, सेना की पराजय को भी देखकर अनायास ही उत्पन्न हार्दिक प्रेम के कारण रामने यहाँ युद्ध को अच्छा नहीं माना ।९३। अश्व प्राप्ति के साथ ही बालकों का विनाश भी जिस प्रकार से न हो, ऐसा विचारकर उन राम ने बालकों की जंभाई मूर्छा के लिए विश्वामित्र प्रदत्त जृम्भकास्त्र का प्रयोग कर दिया ।।९४।। बालकों द्वारा प्रयुक्त उसी शस्त्र को देखकर अत्यन्त आश्चर्य प्राप्त, उन शस्त्रों की प्राप्ति उन्हें कैसे हुई ? यह सोच ही रहे थे राम, कि वहाँ अकस्मात् वाल्मीकि आ गये ।।९५।।

अलं शिशू युद्धमिदं कदाचित् वरं न राज्ञा प्रकृतिप्रियेण
न बन्धनञ्चापि हयस्य युक्तं दिगन्तकीर्तिप्रतिपादकस्य ।९६।

एतावदुक्त्वा स मुनिर्नमन्तं रामं बभाषे यशसा लसन्तम्
स्वजृम्भकास्त्रप्रतिरोधजन्माश्चर्यार्णवावर्तनिरस्तवीर्यम् ।९७।

पराजयस्त्वात्मन एव संयुगे बुधैः क्वचिन्नो गणितः पराजयः
त्वया प्रयुक्तेन च जृम्भकेण न प्रदर्शितं किम्वनयोर्निजत्वम् ।९८

निशम्य गूढार्थगिरस्तदानीं श्रितोधिलोकोक्ति कुलाभिमानी
रामो लुलोके वदनं महर्षेर्यदा तदोचे यमजान्त्य एवम् ।९९।

कुर्वो न युद्धं भवतो नियोगात् शङ्का पुनर्नौ मुखरीकरोति
अग्नौ विशुद्धां जहति स्वभार्यां युक्तं नृपे किं प्रकृतिप्रियत्वम् ।।

अश्र।वयावैवममुष्य वृत्तं त्यागः कृतो यावदनेन पत्न्याः
ततो ह्यविज्ञाय निगूढवृत्तं नावां गतौ संसदमस्य राज्ञः ।१०१।

बच्चों, प्रकृतिप्रिय राजा से युद्ध करना कभी भी अच्छा नहीं होता, दिगन्त तक कीर्ति फैलाने वाले के अश्व का अवरोध भी ठीक नहीं ।९६। ऐसा कहकर वह मुनि, कीर्ति से शोभायमान, प्रणाम करते हुए, तथा अपने जृम्भकास्त्र के प्रतिरोध से उत्पन्न आश्चर्यसमुद्र के आवर्त में अस्त पराक्रम राम से बोले ।।९७।। युद्ध में अपनों से ही पराजय को विद्वानों ने कहीं भी पराजय नहीं माना है, तुम्हारे द्वारा प्रयुक्त जृम्भकस्त्र ने क्या इन दोनों का भवदीयत्व नहीं बता दिया है ।।९८।। लोकोक्तिसमाश्रित मुनि की गूढ़ार्थ वाणी को उस समय सुनकर, कुलाभिमानी राम ने जब महर्षि की ओर देखा तो यमजों में अन्तिम लव बोला ।।९९।। आपके आदेश से हम दोनों युद्ध नहीं करेंगे किन्तु यह शङ्का हमें मुखर बना रही है कि जो व्यक्ति अग्नि में भी शुद्ध अपनी पत्नी का परित्याग करता हो उस राजा में प्रकृतिप्रियत्व सटीक है? ।१०० इनके द्वारा किये गये पत्नी के परित्याग तक का वृत्तान्त हम दोनों ने इन्हें सुनाया था । इसके बाद के गुप्त वृत्तान्त को न जानकर ही हम दोनों इन राजा की सभा में नहीं गये ।।१०१।।

इहाभिपश्याव हयाभिदर्शकान् शिशून्कटूक्ति वदतश्च सैनिकान्
पलायिते रक्षिगणे समागतो भवत्प्रियोऽयं प्रकृतिप्रियो नृपः ।१०२
तदेङ्गितेनैव निवर्त्य बालौ तूष्णीं गतं ध्यानपरायणं तम्
रामं बभाषे प्रथमः कविः स श्लोकत्वमापद्यत यस्य शोकः ।१०३
भवन्ति लोके बहुधा मनुष्या आचारभिन्नाश्च विचारभिन्नाः
कुर्यात्कथं शासक ऐकमत्यं तस्मात् हृदा शुद्धतमेन भाव्यम् ।१०४
निष्कास्य सीतां स्वगृहात्त्वयैवं संतोषिते किं पुनरेकपक्षे
पक्षोऽपरो मृष्यति यः प्रवक्ति प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः ।१०५
स्पष्टं वचस्तस्य मुनेर्निशम्य मृदुः प्रकृत्याऽऽचरणेन शुद्धः
आपन्नसत्त्वाश्रयदानदक्षं रामो मुनिं तत्र जगाद कृच्छ्रम् ।१०६
प्रतीयते स्पष्टमदो महर्षे काव्यं तु नूनं भवता कृतं स्यात्
श्रुतं मया यद् भवतः शिशुभ्यां त्रिकालवृत्तान्तविदोऽनुभावात् ।।

अश्व को दिखाने वाले बालकों प्रति कटूक्ति करते सैनिकों को हम दोनों ने यहाँ देखा और अश्वरक्षकों के भाग जाने पर आपका प्रिय यह प्रजाप्रिय राजा आया है ।।१०२।। तब सङ्केत मात्र से उन बच्चों को रोककर, चुप तथा ध्यानपरायण राम से वह आदिकवि बोले जिनका शोक ही श्लोक बन गया था ।।१०३।। संसार में, आचार भिन्न, विचार भिन्न, अनेक प्रकार के मनुष्य होते हैं तो फिर वे शासक के प्रति ऐकमत्य कैसे रख सकते हैं, इसलिये राजा को अति शुद्ध हृदय का होना चाहिए ।।१०४।। इस प्रकार से सीता को घर से निकाल तुम्हारे द्वारा एक पक्ष के सन्तुष्ट कर दिये जाने पर दूसरा पक्ष जो सहन (क्षमा) करता है, वह क्या कहता है, इसमें तो वस्तुतः अन्तःकरण की प्रवृत्तियाँ ही प्रमाण हैं ।।१०५।। उन महर्षि के स्पष्ट कथन को सुनकर स्वभाव मृदु तथा आचारशुद्ध राम ने, शरण में आये हुए प्राणियों (आपन्नसत्त्व-गर्भवती सीता) को आश्रय देने में दक्ष मुनि से, दुख पूर्वक कहा ।।१०६।। महर्षि, लगता है, कि त्रिकालदर्शी आपके इन बालकों द्वारा जो काव्य मैंने सुना है, वह आप से ही रचा गया, यह सुस्पष्ट है ।।१०७।।

अदृष्टवृत्तज्ञ मुने भवान् किं जानाति रामानुशयं कदाचित्
आहोस्विदुद्धर्तुमिदं च शल्यं काञ्चिच्चिकित्सामुररीकरोति ।।
एतावदुक्त्वा प्रतिरुद्धकण्ठे तूष्णींगते राजनि रामचन्द्रे
दत्वाऽऽशिषं तं विससर्ज सद्यो मुनिर्पुनर्वक्तुमथासमर्थः ।१०९।
ततोऽश्वमेधावभृथे मनीषिणां पुरोऽपनेतुं रघुवंशकश्मलम्
उपासदसादोपसवस्थलं मुनिः प्रजाजनप्रत्ययदाननिश्चयः ।११०
नृपाग्रतः स्वाङ्गुलितो विनर्दिशन् सहात्मजाभ्यां जनकात्मजां मुनिः
उवाच सीताकलुषाभिदर्शिनः समानयोध्यानगरीनिवासिनः ।।
पौरास्तथा जानपदा इदानीं संपश्यत ब्रूत मतं स्वकीयम्
सहात्मजैषा मिथिलात्मजा वः स्थिता पुरस्तादिह दूषिता किमु ।।
तपःप्रभावाधिगता मनीषा जानाति गङ्गाजलतोऽपि शुद्धाम्
वह्नौ विशुद्धामधिलङ्कमेनां कः शङ्कते रामपरीक्षिताञ्च ।११३

अदृष्टवृत्त को भी जानने वाले सर्वज्ञ हे मुनि! क्या आप राम के दुःख को कदाचित् जानते हैं? अथवा इस शल्य को निकालने की कोई चिकित्सा आपके पास है ?।१०८।। मात्र इतना कहकर, कण्ठावरोध हो जाने से, राजा रामचन्द्र के चुप हो जाने पर, फिर कुछ कहने में असमर्थ मुनि ने आशीर्वाद देकर राम को विदा कर दिया ।।१०९।। इसके बाद अश्वमेध यज्ञ के अवभृथ स्नान पर विद्वानों के समक्ष रघुवंश की किंवदन्ती, जनापवाद, को दूर करने के लिए, प्रजाजनों में सीता के प्रति विश्वास प्रदान करने का निश्चय कर यज्ञस्थल पर मुनि वाल्मीकि उपस्थित हुए ।।११०।। राजा के समक्ष महर्षि ने दोनों पुत्रों समेत जनक सुता को अपनी अंगुली से दिखाते हुए, सीता में दोषदर्शी अयोध्या निवासी लोगों से कहा ।।१११।। हे नगरवासियों तथा जनपद निवासियों, देखो और अपना मत बताओ, पुत्रों समेत यह जानकी आपके समक्ष खड़ी है, क्या यह दोषयुक्त है ? ।।११२।। तप प्रभाव से प्राप्त बुद्धि इसे गङ्गाजल से भी अधिक पवित्र जानती हैं, लङ्का में अग्नि शुद्ध और राम द्वारा परीक्षित इसे कौन शङ्का की दृष्टि से देखता है ११३

यदस्तु सीता मम धर्मकन्या दातुं स्वयं प्रत्ययमागतेह
आत्मेतराणां शुभसौमनस्यं हन्तुं समुत्काः सुखिनो भवन्तु।११३
सद्भिस्ततः साश्रुदृशाऽभिदृष्टा परैश्च विस्फारितनेत्रपङ्क्त्या
सीता पुरस्तात् समुपस्थितानामुवाच कृच्छ्रेण निरस्तचेष्टा ॥
धरे सुतेयं यदि ते पतिव्रता विहाय रामं न परं मतिर्गता
तदाश्वयोध्यानगरीनिवासिनां पुरः समागत्य निजाङ्कगां कुरु॥
तदा स्थलीं तड्ध्वनिना द्विधा स्फुटां ततश्च सिंहासनमाश्रितां धराम्
पुनर्धरण्यङ्कगतां च जानकीं समीकृतां क्ष्मां ददृशुः पुनर्जनाः ॥
हाहेति शब्देन दिगन्तरेषु पूर्णं गतेष्वस्तसमस्तचेष्टः
ददर्श रामोऽपि कुशं लवञ्च विजज्ञतुस्तौ पितरं निजञ्च।११८
अथैकदा दाशरथौ प्रशासति प्रजाः समस्ताः सुतवद् विशेषतः
नयानुसारं प्रकृतेः समागतः स्वयं कृतान्तो द्विजरूपधृक्ततः।११९

सीता मेरी धर्मपुत्री है, और विश्वास देने को स्वयं यहाँ आई है। अपने से इतर लोगों के सुख संमनस्थ को नष्ट करने के लिए उद्यत लोग सुखी हों॥११४॥ तब सज्जनों से अश्रुपूरित नेत्रों से और इतरजनों द्वारा विस्फारित नेत्रों से देखी गई सीता उपस्थित जनों के समक्ष, चेष्टारहित हो, कष्ट से बोली ॥११५। हे पृथ्वी माता! यदि तुम्हारी यह पुत्री पतिव्रता है और राम को छोड़कर बुद्धि कभी अन्य के प्रति नहीं गई हो तो अयोध्या नगर वासियों के सामने ही आकर मुझे अपनी गोद में ले लो॥११६॥ फिर धरती को तड़ाक की ध्वनि से दो फांकों में विभक्त और फिर सिंहासनारूढ धरती माता को, और अनन्तर धरती माता की गोद में बैठी जानकी को और फिर (जानकी को लेकर धरती में समा गयी इसके बाद) सम हुई धरती को लोगों ने देखा ॥११७॥ हा हा इस शब्द से दिगन्तरों के भर जाने पर, समस्त चेष्टाशून्य राम ने भी कुश-लव को देखा और उन दोनों ने अपने पिताको जाना पहचाना ११८ सारी प्रजाओं का सुतनिर्विशेष राम के शासन करते रहने पर एक बार प्रकृति के नियमानुसार ब्राह्मणरूप धारणकर कृतान्त स्वयं उपस्थित हुआ ॥११९॥

विविक्तवार्तार्थमनेन याचितो नृपोऽददात्काल इहाभिवाञ्छितः
विशिष्टसंविच्च पुनः प्रयाचिता तिजासुभिर्दण्डय इहागतोऽपरः।

सद्यस्ततो भूपतिदर्शनार्थं दुर्वाससा तत्र तपोधनेन
विज्ञापितो लक्ष्मण आशुकोपं प्रतीक्षितुं किञ्चिदुवाच तूर्णम् ।१२१

क्रुते विलम्बं प्रकृतेर्विनाशं शापोद्यतं वह्निमिव प्रदीप्तम्
समीक्ष्य रामानुज एव देवं नत्वा गतस्तं रहसिस्थरामम् ।१२२

त्याज्या धरेयं भवतेति तस्मै निवेद्य काले गमनार्थमुत्के
दुर्वाससं ज्ञापयितुं पुरःस्थं निरीक्ष्य रामो विकलीबभूव ।१२३

किं प्राणदण्डेन स दण्डनीयः प्राणैः प्रियो यश्च सदा मतो मे
निजासवः पूर्वममुष्यदण्डात् त्याज्या मयैवं स विनिश्चिचाय ।१२४

कृतान्त द्वारा एकान्त वार्ता के लिये याचना करने पर राजा ने अभिवाञ्छित समय दे दिया। फिर विशेष बात की यह भी याचना हुई कि इस बीच अगर और कोई आ गया तो वह अपने प्राणों से दण्डनीय होगा ॥१२०॥ तुरन्त उसी समय राजा के दर्शन के लिये तपस्वी दुर्वासा ने लक्ष्मण से निवेदन किया, तुरन्त लक्ष्मण ने उन आशुकोप को कुछ प्रतीक्षा करने के लिये कहा ॥१२१॥ विलम्ब होने पर प्रजानाश हो जायेगा इस प्रकार शापोद्यत, अग्नि के समान जलते हुए उन्हें देखकर, लक्ष्मण भाग्य को प्रणाम कर, एकान्तस्थित उन राम के पास गये ॥१२२॥ यह धरती तुम्हें छोड़ देनी है ऐसा लक्ष्मण से कहकर, समय पर उनके जाने के लिये उत्सुक होने पर, कहने के लिये दुर्वासा को सामने देखकर राम विकल हो गये ॥१२३॥ जो सदा ही मेरे लिये प्राणप्रिय रहा क्या वह प्राणदण्ड से दण्डनीय है? इन लक्ष्मण के दण्डभोग से पहले ही मुझे ही अपने प्राण त्यागने हैं ऐसा उन्होंने निश्चय किया ॥१२४॥

त्यागो देशस्य नूनं कथित इह बुधैः प्राणदण्डेन तुल्य-
स्तस्मात्तत्याज नत्वा रघुवरचरणौ लक्ष्मणो जन्मभूमिम्
एवं कृत्वा वियुक्तं दशरथतनयं भार्यया भ्रातृतश्च
सिद्धं चक्रे प्रभुत्वं नियतिरपि पुनः स्वीयमस्मद्विधेषु ।१२५।

श्रीश्यामान्वितसुन्दरोऽस्ति जनको माता च यस्याम्बिका
यः श्रीराजकिशोर आप्तचरितः शाण्डिल्यवंशोद्भवः
यातः पञ्चदशः सदा स्मरति यः सीतां तदीये महा-
काव्ये चारुणि राघवेन्द्रचरिते सर्गः निसर्गोज्ज्वलः ।१२६।

विद्वानों ने देशत्याग को प्राणदण्ड ही माना है, इसलिये लक्ष्मण ने राम के चरणों को प्रणाम कर धरा का (जन्मभूमि का) त्याग कर दिया इस दशरथपुत्र राम को भार्या सीता और भाई से विमुक्त कर नियति ने, मुझ जैसे लोगों (काव्यकर्ता सदृशजनों) के प्रति अपने प्रभुत्व को, पुनः सिद्ध कर दिया ॥१२५॥ श्रीश्यामसुन्दर जिनके पिता और माता अम्बिका हैं, शाण्डिल्य गोत्रोत्पन्न आप्तचरित जो श्रीराजकिशोरमणि हैं, जो सदा सीता का स्मरण करते हैं, उनके सुन्दर राघवेन्द्र चरित महाकाव्य में स्वभाव स्वच्छ यह पन्द्रहवाँ सर्ग पूर्ण हुआ ॥१२६॥

षोडशः सर्गः

निष्पाद्यैवं स्वमतिमनुसरन्राजकृत्यं स रामो
स्वीयं सौख्यं प्रकृतिसुखतो नाधिकं मन्यमानः
प्रापं किं वा किमहमजहां चिन्तयन्नित्थमारात्
आबाल्यात्तदवधि पुनर्जीवनं स्वं व्यचेतीत् ।१।

आसीद् बाल्यं परमसुखदं यत्र शोको न कश्चिन्
नासीच्चिन्ता क्वचिदपि भयं यत्र नासीन्न दुःखम्
मातापित्रोर्ललितललितं क्रोडमेव स्वलक्ष्यं
मत्वा यस्मिन्व्यपगतमिदं जीवनं क्रीडतो मे ।२।

इस प्रकार अपनी बुद्धि का अनुसरण करते हुये राजकार्य को सम्पन्न कर, अपने सुख को प्रकृति (प्रजा) सुख से अधिक न मानते हुए राम ने (कदाचित्) मैंने जीवन में क्या पाया और क्या खोया ? ऐसा सोचते हुए बचपन से लेकर उस दिन तक के अपने जीवन का स्वयं पुनः निरीक्षण किया ॥१॥ बचपन बड़ा ही सुखद था, जहाँ न कोई शोक था, न कोई चिन्ता थी, कहीं से कोई भय नहीं था और न कोई दुःख था। माता - पिता का अतिरमणीय क्रोड ही अपना लक्ष्य मानकर जिस बचपन में खेलते हुए मेरा यह बाल्यजीवन बीत गया ॥२॥

दृष्ट्वा स्पष्टं स्खलितमपि या प्रायशो रोषपूर्णां
नादाद् दृष्टिं क्वचिदपि च मे कातरास्यं विलोक्य
कुर्वत्यासीत् समुदनुनयं वीक्ष्य माता हठं मे
यस्मिन्काले समधिकतरं तच्च बाल्यं पुनर्न ।३।

रात्रिं रात्रिं दिनमपि दिनं बन्धुभिः सार्द्धमस्मिन्
काले लिप्तोऽभिलषिततरे कार्यजाते निशान्तम्
आगत्याङ्कं शिथिल इव तं मातुरारुह्य किञ्चित्
प्रापं स्निग्धं यदपि सुखदं प्रेम तद् विस्मृतं न ।४।

नित्यं नूत्नं यदनुभवजं शेमुषीवर्द्धकं मे
प्राप्य ज्ञानं स्वगुरुवचसः साकमस्मत्सतीर्थ्यैः
काले यस्मिन्पठितविषयोऽभूवमारात्स कालः
दैवाद् यातः क्षणमिव पुरो हन्त संपश्यतो मे ।५।

मेरे स्पष्ट भी दोषों को देखकर जो मेरे भयभीत मुख को निहारकर कभी भी क्रोधपूर्ण आँखों से मुझे नहीं देखती थी (प्रत्युत्) प्रायः मेरे हठों को देखकर, मेरी माँ जिस बचपन में, आनन्दपूर्वक मेरा अधिकाधिक अनुनय ही करती रहती थी अब वह मेरा बचपन बाल्यकाल मेरे, लिये अब फिर कहाँ ? ॥३॥ इस बाल्यकाल में अपने भाइयों के साथ रात-रात दिन-दिन भर अतिअभीष्ट कार्यों में लगा रहकर निशान्त में आकर माँ की उस गोद में बैठकर कुछ ढीला पड़ जाता और माँ से जो स्निग्ध सुखद प्रेम पाया करता था, वह सब भूला नहीं है ॥४॥ अपने गुरुजनों के उपदेशों से, उनके अनुभव से उत्पन्न, हमारी बुद्धि को बढ़ाने वाले नित्य नूतन जो ज्ञान थे, उन्हें अपने सहपाठियों के साथ प्राप्तकर जिस समय हमने अपने विषयों को पढ़ा और अनुभव किया, वह काल भी शीघ्र ही हमारे देखते ही देखते भाग्यवश एक क्षण के समान ही बीत गया ॥५॥

कृत्वोद्वाहं गृहमुपगतं सौख्ययुक्तं सदारं
वीक्ष्याम्बा मां यदलभत् तत्सौख्यमद्य स्मरामि
एतच्चापि स्मरणविषयं मेऽद्य यत्पूर्वकालः
सानन्दं निर्व्यथमिह गतो मातृसंरक्षणेन ।६।

आसीत्तातः परमकुशलो धर्मवित् सत्यसन्धो
ज्ञाता नीतेः समरविजयी वासवस्यापि मित्रम्
मध्येभार्यं पुनरसुलभं स्थापयन्सौमनस्यं
प्राश्नाद् दिव्यं सुखमनुभवन् राज्यमिच्छानुकूलम् ।७।

दौहित्रो मे भवतु नृपतिः संश्रवं कारयित्वा
प्रादात् पित्रे निजदुहितरं स्वार्थवित् केकयेशः
मात्रे तस्यै पुनरपि पिता द्वौ वरौ सम्प्रदाय
पूर्णं तस्या वशमुपगतो यौवराज्यं प्रदातुम् ।८।

विवाह करके सौख्ययुक्त सपत्नीक घर आये थे, मुझे देखकर माँ ने जो सुख पाया था, उस सुख को मैं आज भी स्मरण करता हूँ। आज वह भी मेरी स्मृति का विषय है कि मेरा जो पूर्वकाल था, माँ के संरक्षण में व्यथारहित, सानन्द बीत गया ॥६॥ मेरे पिता दशरथ जी अत्यन्त कुशल, धर्मज्ञ, दृढ़प्रतिज्ञ नीतिज्ञ, समरजयी, और इन्द्र के भी मित्र थे। पत्नियों में असुलभ भी सौमनस्य भाव स्थापित करते हुए, दिव्य सुख का अनुभव करते हुए इच्छानुकूल राज्य का भोग किया ॥७॥ स्वार्थी केकय नरेश ने, मेरा नाती राजा हो ऐसी शर्त कराकर अपनी पुत्री कैकेयी को, पिता के लिये प्रदान किया था और उस मध्यमाम्बा को पिता भी दो वरदान देकर, उसके वश में पूर्णतया होकर यौवराज्य पद (भरत) को देने के लिए विवश हो गये ॥८॥

दिष्टेर्दृष्टौ न भवति नरः कोऽपि मूर्द्धाभिषिक्तो
नालं तातोऽभवदपि पुनः सौरवंशीयनीतौ
निर्वाग्जातो भरतजननी वाक्यजातं निशम्य
कस्यात्यन्तं सुखमुपनतौ दुःखमेकान्ततो वा ।९।

रामो ज्येष्ठः सुत इति धियाऽसौ नृपत्वे नियोक्तुं
मामाकाङ्क्षन् युगपदभवत् सत्यभङ्गेन भीरुः
सत्यप्रेम्णोः कतरदिह मे श्रेयसे स्यादितीत्थं
चिन्ताग्रस्तं ग्लपितपितरं वीक्ष्य त्यक्तं नृपत्वम् ।१०।

नारीसक्तो नृपदशरथः किं वचोऽस्य प्रमाणं
रामेणैतन्नरपतिपदं ग्राह्यमासीत् प्रसह्य
नाहं जाने कथमिह जनाश्चिन्तयन्ति प्रतीपं
राज्येच्छा किं जनकयशसोऽप्युन्नताऽस्ति प्रशस्ता ।११।

भाग्य की दृष्टि में कोई भी व्यक्ति मूर्धाभिषिक्त नहीं होता, और फिर पिता जी भी सूर्यवंश की नीति के पालन में समर्थ नहीं हो पाये। भरत की माता के वचनों (राम वनवास-भरत को राज्य) को सुनकर वह अवाक् रह गये। किसे आत्यन्तिक सुख अथवा एकान्त दुःख मिला है? ॥९॥ राम बड़ा बेटा है इस विचार से उन्होंने मुझे राज्यपद पर नियुक्त करना चाहा, साथ ही सत्य के टूटने के डर से कातर भी हो रहे थे। सत्य और प्रेम इन दोनों में मेरे लिये कौन अधिक श्रेयस्कर होगा? इस प्रकार चिन्ताग्रस्त, मुर्झाये पिता को देखकर मैंने राज्यपद राजात्व छोड़ दिया ॥१०॥ (लोग उस समय कह रहे थे कि, राजा दशरथ स्त्री आसक्त हैं, इनके कथन की क्या प्रमाणिकता? राम को चाहिए था कि वह इस राजपद को जबरदस्ती ले लेते। मैं नहीं जानता लोग ऐसा उलटा क्यों सोचते हैं? पिता की कीर्ति से राज्य की इच्छा भला क्या अधिक प्रशस्त है? ॥११॥

अत्राचष्टे गहननयवित् पण्डितम्मन्यवाचं
रामोऽकार्षीद् भरतनृपतां खण्डितुं नाट्यमेतत्
सत्योपास्तिर्विपिनवसनं चीवरेणैव तुष्टिः
राज्येच्छां किं मम हृदिगतां चिह्नमेतद् व्यनक्ति ।१२।

राज्यं राज्याधिगमसुलभं सौख्यमाराच्नृपत्वं
कल्याणाशां बहुपरिणयात् व्यर्थतां राजनीतेः
पुत्रस्नेहं कृतपरिणतिं शीलयन्यौवनेऽहं
प्रापं तुर्याश्रमविषयिणीं योग्यतां कालपूर्वाम् ।१३।

प्रायो लोकः स्वमतिमुचितां स्वीकरोतीह नित्यं
बाढं भूत्वा समयविवशो मौनमालम्बते सः
प्राप्ते काले स्वमतिपटुतां दर्शयन्हृष्यतीत्थं
दृष्ट्वा लोकेऽत्यजमहमलं स्वं विचारं प्रवक्तुम् ।१४।

इस विषय में (कोई-कोई) गहन नीति विशारद पण्डितम्मन्य यह बात भी कहा करते हैं कि राम ने यह सारा नाटक भरत के राजात्व को समाप्त करने के लिये ही किया था, (पर) सत्य का पालन, वन निवास चीवरमात्र से सन्तोष करना ये सारे चिह्न क्या मेरी हृद्‌गत राज्य की इच्छा को व्यक्त करते हैं ? ॥१२ राज्य लाभ जनित सौख्य, नृपता, अनेक विवाहों से कल्याण की आशा, राजनीति की व्यर्थता, (पिता के) पुत्र स्नेह आदि सुकृत परिणाम का पालन करता हुआ मैं युवा अवस्था में ही, समय से पहिले ही चौथे आश्रम की योग्यता प्राप्त कर गया ॥१३॥ लोग सदैव प्रायः अपनी बुद्धि को ही उचित मानते हैं और वही व्यक्ति काल विवश होकर प्रायः मौन भी धारण कर लेते हैं और फिर समय प्राप्त होने पर अपनी बुद्धि का कौशल दिखाते हुए प्रसन्न होते हैं, इस प्रकार यह सब समझकर ही मैंने अपने विचार का प्रयोग करना ही (उस समय) छोड़ दिया था ॥१४॥

तस्मात्पत्नीं जनकतनयां भ्रातरं लक्ष्मणं वा-
ऽरण्ये स्थातुं सहजिगमिषू नावरुन्धे प्रसह्य
कृत्यस्यैवं कुफलसुफले स्वस्य तावन्वभूतां
दिष्टिर्नित्या भवति सुतरां वारणे चाप्यशक्या ।१५।

एणं हैमं क्व भवति वने किन्तु सीता विलुब्धा
मां सापि प्रार्थयति समयं पालयन्नेष रामः
पश्चाद् यातो मृगमनुसरन् लक्ष्मणं संनियुज्य
सीता हन्ताऽभवदपहृता वारिता सा हठान्न ।१६।

कामं कश्चित्कथयतु कृतं रामचन्द्रेण नेष्टं
सिद्धान्तो यो भवति नितरामात्मघाती स कोऽस्ति
किं ब्रूयां तान् विगतधिषणान् नित्यचारित्र्यशून्यान्
किं वा कश्चित्प्रभुरिह भवेल्लोकवाचं निरोद्धुम् ।१७।

इसलिये वन में साथ जाने की इच्छा करने वाले, अपनी पत्नी सीता और भाई लक्ष्मण को, मैंने जबरन नहीं रोका और इस प्रकार अपने कर्म के कुफल और सुफल को उन दोनों ने भोगा, यह नित्य नियति रोके जाने पर रूकनी संभव नहीं है ॥१५॥ सुवर्ण मृग होता कहाँ है ? किन्तु सीता उस पर मुग्ध हो गई और उसने मुझसे प्रार्थना भी की और उसकी प्रार्थना को मानता हुआ यह राम, लक्ष्मण को (रक्षा में) लगाकर मृग का अनुसरण करते हुए पीछे-पीछे गया, दुःख यह कि सीता हरी गई और अपने हठ के कारण ही वह रोकी नहीं जा सकी (हठ से उसे रोका नहीं गया)॥१६॥ लोक (लोग) भले ही कहें कि रामचन्द्र ने अच्छा नहीं किया किन्तु जो अति आत्मघाती सिद्धान्त होता है वह कुछ अनिर्वचनीय ही है। सतत चारित्र्य शून्य. बुद्धिरहित उन लोगों से मैं क्या कहूँ और फिर संसार (लोगों) की बात को रोकने में यहाँ क्या कोई समर्थ हो पाया है ? ॥१७॥

मन्येऽत्राहं त्रिभुवनपतेर्भास्करस्याऽन्ववाये
भूपा येऽपि प्रथितचरिताः कीर्तिमन्तो बभूवुः
ऊहुर्भारं विजितकरणा निष्ठया प्रेरितास्ते
मत्वोद्देश्यं किमपि जनुषो दुर्लभं देवताभ्यः ।१८।

दैवात्तेषां विमलयशसामन्वये जन्म धृत्वा
कुर्यां तं किं कलुषितमहं कर्मभिः शास्त्रदुष्टैः
जाता यन्मे खलु सहृदया भ्रातरः सर्व एव
तस्मान्मन्ये सपदि सुकृतं रक्षितं रक्षतीह ।१९।

गन्तव्यं ते वनमिह मया साकमस्यां विपत्तौ
नाऽदोऽवोचं क्वचिदपि वचो लक्ष्मणं दैन्ययुक्तम्
नो वाऽवोचं सुकृतिभरतं प्रोज्झितुं तस्य राज्यं
तत्र द्वौ यत् परमकुरुतां तत्तु लोकेन दृष्टम् ।२०।

यहाँ मैं यह मानता हूं कि त्रिभुवनपति सूर्य के वंश में जो भी कीर्तिशाली, प्रख्यात चरित राजा हुए हैं, मुझे लगता है देवताओं से भी दुर्लभ मनुष्य जन्म के लोकोत्तर किसी अनिर्वचनीय उद्देश्य को मानकर उससे प्रेरित होकर जितेन्द्रिय उन्होंने निष्ठा पूर्वक राज्यभार का वहन किया था ॥१८॥ भाग्य से शुभ्रकीर्ति वाले उन लोगों के कुल में जन्म लेकर मैंने शास्त्रनिषिद्ध कार्यों से वह कौन सा पाप किया जो मेरे सारे भाई ही सहृदय हो गये, इसलिये मानता हूँ कि रक्षित सुकृत ही यहाँ सद्यः रक्षा करता है ॥१९॥ इस विपत्ति में तुम्हें मेरे साथ वन में चलना है इस प्रकार की कोई भी बात दैन्ययुक्त लक्ष्मण से मैंने कभी नहीं कही अथवा सुकृति भरत (पुण्यरूप भरत-सुकृति भरने वाले भरत) से उसका राज्य छोड़ने के लिये भी मैंने नहीं कहा किन्तु फिर भी उन दोनों ने जो महत् किया उसे लोगों ने देखा ही है, लोक ही उसका साक्षी है ॥२०॥

यस्माद्दु:खाद् वनमिहगता जानकी मे द्वितीया
तत्राऽत्याक्षीदिह न भवनं चोर्मिला भ्रातृजाया
मत्वा नूनं निजहृदि तयाऽत्याजि सौभाग्यमेतद्
वाधायुक्ता न भवतु यथा ज्येष्ठपादोपचर्या ।२१।

ब्रूयात् किं वा भरतविषये क्षीणवागेष रामो
वक्तुं कश्चित् प्रभुरिह कथं मानुषं तस्य लोके
यद्व्याहारे भवति शिथिला भारती वक्तुकामा
नानन्तो वा कथयितुमलं यत् सहस्रै: स्ववक्त्रैः ।२२।

पुण्यानां यः समुदय इवाऽऽलभ्यसौजन्यमूर्तिः
सीमा प्रेम्णो निरवधिसुखं शान्तिरूपो विपश्चित्
चारित्र्यैश्च स्वनिहितगुणैरेक एवोपमायां
तत्तुल्यो नो जगति भविता नैव भूतो न चास्ति ।२३।

जिस दुःख के कारण जानकी मेरे साथ वन गई उसी दुःख को लेकर मेरी दूसरी भ्रातृ पत्नी उर्मिला ने घर नहीं छोड़ा, निश्चय ही उसने अपने हृदय में यह मानकर ही (पति सहगमनरूप) इस सुख का परित्याग किया कि कहीं लक्ष्मण द्वारा बड़े भाई की चरण सेवा में बाधा न पैदा हो ॥२१। निर्वाक् (मूक) यह राम भरत के विषय में क्या कहे ? इस संसार में भला कोई उसकी मनुष्यता को कह पाने में कैसे समर्थ हो सकता है ? जिसे कहने के लिये वक्तुकाम भारती (सरस्वती) भी शिथिल हो जाती हैं अथवा जिसे अपने हजार मुखों से भगवान शेष भी कहने में असमर्थ हैं ॥२२॥ जो भरत अलभ्य सुजनता की मूर्ति है, पुण्यों का समवाय सा है, प्रेम की सीमा है, अनन्त सुख स्वरूप है, शान्ति की मूर्ति और बुद्धिमान है, चारित्र्य और अपने में अवस्थित गुणों के कारण जो उपमा में एक ही अनन्वय है, इस संसार में उसके समान न कोई हुआ है, न है और न होगा ॥२३॥

पत्नीमम्बां जनकमनुजं जन्मभूमिं स्वसौख्यं
हित्वा सर्वं मदुपकृतयेऽरण्यभूमिं प्रयान्तम्
सौमित्रिं तं निखिलभुवने दुर्लभं किं ब्रवीमि
पुञ्जीभूतं फलमिव च मे प्राक्कृतानां कृतीनाम् ।२४।

मत्वाकञ्चिल्लघुरयमिति स्वाभिजात्यप्रभावाद्
भाषन्ते ये लघुमिह न ते सन्ति के तान् न जाने
सौजन्यं यल्लघुरपि गुहोऽदीदृशत्स्नेहमूर्ति-
श्छायाऽप्यस्य क्व महति जने दृश्यते निष्प्रयासम् ।२५।

संस्कारैः स्वैर्विविधवपुषस्तत्त्वमात्राविभेदं
निर्मीयन्ते जगति सकलाः प्राणवन्तः प्रकृत्या
तस्मान्मैत्री भवति समताबुद्धितस्तेषु नित्यं
साहाय्यं मे तरुपशुखगाः प्राज्यमस्मादकार्षुः ।२६।

पत्नी माता, पिता, छोटे भाई, जन्मभूमि, अपने सारे सुख इस सबको मेरे हित के लिये छोड़कर मेरे साथ वन की (विषम भूमि में निरन्तर चलते रहने वाले, सारे भुवन में दुर्लभ उस सुमित्रातनय लक्ष्मण के विषय में मैं क्या कहूँ ? जो मेरे पूर्व जन्म में किये गये सुकृतों की पुञ्जीभूत फल (ही रहा) सा ही था ।।२४।। अपने आभिजात्य के प्रभाव से जो लोग यहाँ किसी को यह हीन (नीच-अधम है ऐसा मानकर हीन (नीच जन) कहते हैं, वे कौन हैं मैं जानता हूँ (वे हीन नहीं हैं वे कौन हैं? नहीं जानता ऐसी बात नहीं है ?) अनायास ही स्नेह की मूर्ति, हीन (छोटे) भी गुह ने जो सुजनता दिखाई है उसकी छाया भी बड़े लोगों में कहाँ देखी जाती है ? ।।२५।। संसार में नानारूपधारी सभी प्राणी, अपने संस्कारों से तत्त्वमात्रा के (न्यूनाधिक) भेद से, प्रकृति द्वारा बनाये जाते हैं इसलिये समता बुद्धि से ही उनमें सदा मित्रता होती है, इसीलिये तो वृक्ष, पशु, पक्षी सभी ने मेरी भरपूर सहायता की है ।२६।

वृक्षा गुल्मा व्रततिनिचया गृध्रराजो जटायुः
सुग्रीवो वा कपिकुलपतिर्जाम्बवानङ्गदो वा
सर्वे दृष्ट्वा मम समधियं मन्यमानाः स्वमित्रं
प्रादुर्मह्यं स्वहृदिनिहितं सौमनस्यं प्रसन्नाः ।२७।

त्यक्त्वा राज्यं वनमुपगतो लोकदृष्ट्या विपन्नः
प्रापं सौख्यं परमिह वसन् सङ्गतौ तापसानाम्
कैवल्यैकप्रणयिमुनयो यत्प्रयच्छन्ति नृभ्यः
प्राप्यं किं तत् क्वचिदपि नरैर्भूपतिभ्यो गृहिभ्यः ।२८।

क्वासीदेतत्स्वगृहसुलभं दर्शनं तापसानां
कृच्छ्रोपास्त्या विमलमनसां दक्षिणारण्यभाजाम्
नत्वाऽधावं सकलदुरितं सानुसूयं तमत्रिं
यस्य क्रोडे विधिहरिहराः शैशवं स्वं व्यतीयुः ।२९।

वृक्ष, गुल्म, लतायें, गृध्रराज जटायु, वानरों के राजा सुग्रीव, जाम्बवान् या अङ्गद सभी ने मेरी समबुद्धि को देखकर अपना मित्र मानते हुए, प्रसन्न होकर अपने हार्दिक सौमनस्य को मुझे प्रदान किया ।।२७।। राज्य त्यागकर वन गया, लोक दृष्टि से विपन्न था किन्तु वहाँ तपस्वियों के साथ रहते हुये अतिसुख प्राप्त किया। मात्र कैवल्य के प्रणयी मुनिजन लोगों को जो प्रदान करते हैं वह क्या कहीं गृही राजाओं से लोगों को (गृही राजाओं को) प्राप्त हो सकता है ? २८।। दक्षिण के वनों में रहने वाले, कठिनता से संसेव्य, विमलचित्त तपस्वियों का वह दर्शन अपने घर अयोध्या में कहाँ सुलभ था ? (कहाँ अपने वनवासी घर में ही सुलभ था), अनुसूया सहित उन अत्रिमुनि को प्रणाम कर मैंने अपने सारे दुरित धो डाले थे जिनकी गोद में ब्रह्मा-विष्णु-महेश नेअपने शैशव व्यतीत किये थे ।।२९।।

यस्यादेशात् प्रणतशिखरी सेवतेऽद्यापि लोकान्
येनाम्भोधिः शशधरसुतः क्षारतां सम्प्रणीतः
दैतेयान् यो विनयविधिनाऽयोजयद्दक्षिणस्थान्
सैत्रागस्त्योऽभवदपि च मे सौख्यहेतुर्महर्षिः ।३०।

वीक्ष्याऽवाचोविपिनसुषमामेकदा तां प्रणंष्टुं
दिष्टया वात्या मनुजयुवतीरूपमाश्रित्य काचित्
तत्राऽवासीन्मम सुखहरी राक्षसानां निहन्त्री
कालोऽयं प्रेरयति नितरां चक्रवद् भाग्यपंक्तिम् ।३१।

मन्दं मन्दं सरति पवने पुष्पितेऽरण्यभागे
रावव्याजाद् किरति मधुनः कोकिले स्निग्धबिन्दून्
विद्युज्जिह्वं दशमुखहतं पुंश्चली न स्मरन्ती
कामार्ता मामुपगतवती सोदरा रावणस्य ।३२।

जिसके आदेश से विनत विन्ध्य आज भी लोगों की सेवा कर रहा है, जिन चन्द्रपुत्र ने समुद्र को क्षार मात्र बना दिया, विनय प्रक्रिया से जिन्होंने दक्षिण के राक्षसों को (उत्तर से) जोड़ा, वही महर्षि अगस्त्य मेरे सुख के कारण बने ॥३०॥ एक बार उत्तर के बनों की सुषमा को देखकर, मानो दुर्भाग्य से उसे नष्ट करने के लिए, मेरे सुख का अपहरण करने वाली, राक्षसों का नाश करने वाली, कोई झंझा मानवी सुन्दरी का रूप धारण कर वहाँ रहने लगी (आयी) यह जो काल है, चक्र की भाँति भाग्यपंक्ति को सुतरां घुमाता रहता है, प्रेरित करता है ॥३१॥ धीरे-धीरे वायु चल रही थी, वनप्रान्त कुसुमित हो उठा था, कोयल की कुहू-कुहू ध्वनि के बहाने मधुमास स्निग्ध मधुकण बिखेर रहा था, ऐसे में रावण की बहन, रावण निहत विद्युज्जिह्व सवण को भूलकर, पुंश्चली शूर्पणखा कामार्त होकर मेरे पास आयी ॥३२॥

दर्शं दर्शं प्रयतविपिने कीकसानां समूहान्
श्रावं श्रावं दितिसुतकृतान् ब्रह्महत्यापराधान्
आमूलं तान्निखननधिया वीक्ष्य भूमिं प्रकृष्टां
तत्राकार्षं विकृतिविधिना द्वेषबीजस्य वापम् ।३३।

नासादण्डश्रवणविगमात्कोपिता पापमूर्ति-
र्जाता भस्त्रा दनुजदहनोद्दीपनाय प्रवृत्ता
इन्द्रारीणां मम खरशरैर्दक्षिणारण्यभाजां
निर्वाप्यासून् दशमुखमिता रावणी कामुकी सा ।३४।

विद्वान् नीतावतिशयपटुर्लब्धशैवीकृपाकः
शूरो दान्तोऽमरपतिजयी कालविद् राक्षसेशः
हन्तारं मामसुरनिचयान् रावणोऽलं विजानन्
सीतां हृत्वा ननु ममशरैरात्मघातं किमैषीत् ।३५।

विशाल जंगल में बिखरे हुए अस्थि समूहों को देख-देखकर, दानवों द्वारा किये गये ब्रह्महत्या के अपराधों को सुन-सुनकर उसे आमूल खोद डालने की दृष्टि से उत्कृष्ट उर्वरा भूमि को देखकर अभागे मैंने वहाँ (इस शूर्पणखा में) द्वेषबीज बोया ।।३३।। नाक और कान के काटे जाने से क्रोधित, पापमूर्ति वह, दैत्याग्नि के उद्दीपन के लिए प्रवृत्त, भाथी बन गयी और फिर दक्षिणारण्य वासी खरादि राक्षसों के प्राणों का हवन कर रोने और रुलाने वाली वह शूर्पणखा रावण के पास जा पहुँची ।।३४।। विद्वान्, नीतिशास्त्र में अत्यन्त निष्णात, शिव की कृपा का भाजन, प्रतापी, दान्त, इन्द्रजयी, कालविद्, राक्षसराज रावण ने राक्षसों के निहन्ता मुझे भली-भाँति जानते हुए भी सीता का अपहरण कर मेरे बाणों से ही आत्मघात चाहता था क्या ? ।।३५।।

रक्षोघाताऽध्वरधृतमतिर्दैवयोगात्कपीन्द्रं
शाक्रिं शौर्यप्रचयमपि यत् कालवह्नावहौषम्
आसीत्तन्मे नहि सुखकरं किन्तु कुर्यामहं किं
प्रज्ञापापे ननु दशमुखं रावणं सोऽन्वसार्षीत् ।३६।

नाहं जाने मयि भगवतः कोऽनुकम्पाविशेषः
सर्वत्रासीत् सततमवितुं तत्परो मां विपन्नम्
येनोत्तीर्णः समरजलधिर्देववृन्दैरधृष्यो
लब्धा काचिद् वपुषि च मया नापि रेखा व्रणस्य।३७।

राज्यत्यागे नहि मम मनो दुःखलेशेन तप्तं
नो वा जायाविरहजनितं दुःखमेवातपन् माम्
तादृग्यादृक् समरसमये वीक्ष्य सौमित्रिमारात्
निश्चैतन्यं कलुषरहितं स्नेहसौजन्यमूर्तिम् ।३८।

राक्षसों के विनाश यज्ञ का विचार रखते हुए दैवयोग से, अतिशय प्रतापी भी इन्द्रपुत्र, वानरराज बालि को मैंने कालाग्नि में होम दिया। वह मेरे लिये सुखकर तो नहीं था किन्तु मैं करता क्या, प्रज्ञापाप में वह भी तो रावण का ही अनुसरण कर रहा था ॥३६॥ जानता नहीं कि मेरे प्रति भगवान् की कौन सी विशेष अनुकम्पा है जो विपद्ग्रस्त मेरी सर्वत्र निरन्तर रक्षा करने के लिये तैयार रहती थी, और जिससे मैंने देवों से भी अधृष्य समर समुद्र को पार किया फिर भी शरीर में खरोंच तक नहीं पायी ॥३ ॥ राज्य छोड़ देने पर मेरा मन लेश मात्र भी दुःख से संतप्त नहीं हुआ और न ही सीता वियोग जनित दुःख ही मुझे उस प्रकार संतप्त किया जिस प्रकार कि, युद्ध के समय निष्कलुष, स्नेह सौजन्य की मूर्ति समीप ही मूर्छित पड़े लक्ष्मण को देखकर संतप्त हुआ था ॥३८॥

व्यासङ्गेऽस्मिन् किमपि सुखदं प्रीतिदं वा न चासी
देकं हित्वा यदहमलभं वायुपुत्रं स्वनिष्ठम्
निष्ठां सेवां विषमसमये तत्कृतञ्चोपकारं
स्मारं स्मारं शिरसि तदृणं वोढुमिच्छाम्यदेयम् ।३६।

दैत्यान्हत्वा समरजलधिं चाशु तीर्त्वा ससीतो
जन्मस्थानं पुनरपि मुदाऽपश्यमेकान्तमित्रम्
दायित्वं स्वं भरतविहितश्चाग्रहं सन्निभाल्या-
ऽऽसीनोऽभूवं नरपतिपदे नानुरागान्नृपत्वे ।४०।

विश्वामित्रो मम गुरुरसौ सार्वभौमाधिपत्यं
त्यक्त्वाऽगृह्णाद् यदिह नियमं विप्रयोग्यं किमेतत्
नासीत् किं स प्रबलरिपुगणोन्मूलने दुष्प्रधर्षस्-
तस्यांघ्रिर्वा समिति महतां भूभुजां मूर्ध्नि नासीत् ।४१।

इस प्रकरण में कुछ भी सुखप्रद या दुःखप्रद नहीं था, मात्र एक को छोड़ कर जो मैंने मत्परायण वायुपुत्र को पाया। मेरी विपत्ति के समय जो निष्ठा, जो सेवा, और जो उपकार उन्होंने किया, बार-बार स्मरण करके उस अदेयऋण को मैं शिर से वहन करना चाहता हूँ, उस ऋण के बदले कुछ भी देय नहीं है वह अदेय है ।।३६।। दैत्यों को मारकर, समर समुद्र को शीघ्र ही पारकर, सीता समेत आनन्द से हमने फिर एकान्त मित्र अपने जन्मस्थान को देखा। अपने दायित्व और भरत के आग्रह को देखकर राजपद पर आसीन हुआ न कि राजापद में किसी अनुराग के कारण ।४०। वह मेरे गुरु विश्वामित्र, सारी पृथ्वी का आधिपत्य छोड़कर जो उन्होंनेब्राह्मणोपयुक्त नियम ग्रहण कर लिया, ब्राह्मण बन गये, तो यह क्या है ? क्या वह प्रबल शत्रु के विनाश में दुष्प्रधर्ष नहीं थे ? अथवा युद्ध में उनके पाँव क्या बड़े-बड़े राजाओं के सिर पर नहीं थे ? ।।४१।।

एतद्राज्यं मद इव जनान्प्रापयन्मौग्ध्यभावं
निश्चैतन्य नयति सकलेष्विन्द्रियेषु प्रसह्य
नो चेत्तातः कथमिह वदेद् याचकं कर्तुमाढ्यं
राजानं वा नगरपरिखाक्षेत्रतश्चापि दूरम् ।४२।

भारद्वाजप्रभृतिमुनयो भूभुजो नैव सन्ति
द्राक्किन्तूत्पादयितुमपि ते राजभोगान् समर्थाः
आश्चर्यं यन्नृप इह नरान् शास्ति मूर्धाभिषिक्तः
संख्यावन्तो निखिलभुवने तन्वते नैजराज्यम् ।४३।

पौलस्त्यो यदि दशमुखो नाङ्गयकार्षीन्नृपत्वं
न स्युस्तस्मिन् स्मयमदहठाः राजदोषाः कथञ्चित्
धेता जेताऽमरवरपुरीं शास्त्रवृन्दप्रणेता
केता नीतेर्जगति सकलैः किं प्रणम्यः स नासीत् ।४४।

मद के समान यह राज्य लोगों में मुग्धता-जडता लाता हुआ जबरन सारी इन्द्रियों में जडता ला देता है, अन्यथा क्योंकर पिता जी याचक (कैकेयी) को (राज) धनी बनाने के लिए कहते अथवा राजा को नगर परिखा से भी दूर करने के लिये कहते ।४२। भारतद्वाज आदि मुनिजन राजा नहीं हैं किन्तु फिर भी वे राजभोगों को तत्काल उत्पन्न करने में समर्थ हैं, आश्चर्य है कि मूर्धाभिषिक्त राजा यहाँ लोगों पर शासन करता है किन्तु योगीजन (संख्यावान्) तो सारे भुवनों में स्वाराज्य फैला देते है ।।४३।। पौलस्त्य रावण यदि राजपद स्वीकार नहीं करता अथवा यदि उसमें अहंकार, मद, हठ आदि राजदोष कथाञ्चित् नहीं होते तो (आधार-आधाता) धीमान्, इन्द्रपुरी का विजेता, शास्त्रों का प्रणेता, नीतिविशारद वह संसार में क्या सभी से प्रणम्य नहीं था ? ।।४४।।

मात्स्यन्यायो मनुजविषये मा भवेत्सुप्रतिष्ठो
हेतोरस्मान्नृपतिसरणिं निर्ममे नाभिजन्मा
पूर्वं यावत्सुललितमहो दृश्यते भूपतित्वं
पश्चादेतन्न भवति तथा व्यक्तिसौख्यप्रदायि ।४५।

राजा बद्धो भवति नियमे रञ्जनेन प्रकृत्या-
स्तत्स्वातन्त्र्यं भवति पिहितं कर्मदृष्टया नितान्तम्
मिथ्याचारी यदि न स पुनर्जीवने तस्य सौख्यं
क्वास्ते नित्यं बहुविधजनान् सेवितुं तत्परस्य ।४६।

कामं लोको भवतु कुशली भावतोऽस्माद्धृदिस्थात्,
शिष्टः शास्ता स्मृतिनियमतः पालयन्लोकजातान्
निन्दापात्रं भवति नितरां सेवमानोऽपि नित्यं
सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः ।४७।

मनुष्यों में मात्स्यन्याय सुप्रतिष्ठित न हो जाय इसी कारण से ब्रह्मा ने राजपद्धति का निर्माण किया किन्तु यह राजपद जितना सुललित अच्छा पहले लगता है, (राजपद पा जाने के) बाद में यह उतना सुखप्रद नहीं होता ।।४५। राजा प्रजारञ्जन के नियम से बँधा होता है, कार्य की दृष्टि से उसकी स्वतन्त्रता नितान्त गूढ (आभिजात्यादि से) होती है, फिर यदि वह जीवन में मिथ्याचारी न हो तो, सदैव नाना प्रकार के लोगों की सेवा करने के लिये तत्पर उसे सुख कहाँ है ? ।।४६।। राजा के हार्दिक भाव से भले ही लोग सुखी हों किन्तु स्मृतियों के नियम के अनुसार प्राणियों का पालन करता हुआ भी शिष्ट शासक, राजा, अतिशय निन्दाभाजन होता है। सेवाधर्म, योगियों से भी अगम्य अति गहन है ।।४७।।

निन्दन्निन्द्यानुचितमपि तत् किन्तु लोको विचित्रः
सत्त्वाविष्टं नरपतिमपि प्रायशो गर्हतेऽयम्
कुत्सापङ्कं क्षिपति मलिनं कल्पनाजं चरित्रे
स्वव्यापारात्सपदि पटुतां नाशयन्शासकस्य ।४८।

एष्टा को वा जगति मनुजः शासकत्वं सुविज्ञो
बद्धो न स्याद् यदि पुनरसौ धर्मतो मोहतो वा
चित्रं यत्राकलयति जनः शास्तृतां व्यक्तिनिष्ठां
वृत्तेनार्वाक् मुहुरपि समं तस्य वैयक्तिकेन ।४९।

लोकस्यर्द्ध्यै जनकतनयां पावनां पावनानां
क्रव्याद्भ्यस्तां वलिमिव वने प्रैषिषं धर्मभार्याम्
हृद्विश्रामं परिणतिसुखं दुर्लभं सौमनस्यं
हित्वा प्रापं किमिह कुशलं राजधर्मेऽनुरक्तः ।५०।

निन्दनीय शासकों की निन्दा कोई करे तो वह तो उचित ही है किन्तु यह संसार बड़ा विचित्र है क्योंकि यह लोक सत्त्व समन्वित राजा की प्रायः निन्दा किया करता है, उसके चरित्र पर कल्पना प्रसूत, दूषित निन्दापङ्क को, उछालता है और इस प्रकार अपने क्रियाकलापों से शासक की पटुता को भी क्षीण कर देता है ॥४८॥ इस संसार में ऐसा कौन बुद्धिमान् आदमी शासक पद चाहेगा ? यदि वह धर्म और मोह से बँधा न हो। आश्चर्य है कि लोक शासक की व्यक्तिनिष्ठ शास्तृता का आकलन तो करता है किन्तु उसके वैयक्तिक चरित्र के साथ वह एक क्षण के लिये भी समीप नहीं होता। ४९॥ लोक की ऋद्धि-सुख के लिये पावनों की भी पावन, धर्मपत्नी उस प्रियतमा जानकी को हिंसकों के लिए बलि समान, जंगल में भेज दिया। राजधर्म में अनुरक्त मैंने हृदय का विश्राम, परिणाम में सुखद, दुर्लभ, सौमनस्य को छोड़कर यहाँ क्या पाया ? ॥५०॥

ब्रूयादेवं पटुरिव जनो गर्हितं रामकृत्यं
केनोक्तोऽसौ जनकतनयां प्रोज्झितुं श्वापदेभ्यः
हा हा पश्येदवहितमतिः कोऽपि राज्ञश्चरित्रं
युक्ता तस्मिन् किमिह जनतादोषिणी किंवदन्ती ।५१।

मन्येऽकार्षं त्रुटिमपि वनं प्रेष्य सीतां पवित्रां
लोकः कश्चित् किमपि विषयेऽस्मिन्कदा मामवोचत्
संभाव्यौ द्वौ किमिह युगपत् स्वीकृतिर्वा विरोधो
श्रव्यं चेदं भवतु समये राजहीने प्रजानाम् ।५२।

शम्बूकं चाप्यवरजमुनिं श्रेयसे नित्यलग्नं
स्विद्यद्धस्तोऽयमहमहनं जीवनायार्भकस्य
राजा राजा भवति नितरां नीतिहस्तावलम्बः
किञ्चिद् वक्तुं प्रभुरिह जनो यः स्वतन्त्रस्तटस्थः ।५३।

विज्ञ (चालाक) की तरह लोग राम के ऐसे कृत्य को गर्हित कर सकते हैं कि किसके कहने पर उन्होंने जानकी को हिंस्र पशुओं को प्रदान कर दिया (गर्हित राम के दारपरित्याग रूप कृत्य को चालाक की तरह लोग ऐसा भी कह सकते हैं कि किसके कहने से उन्होंने सीता को जंगली पशुओं के लिए फेंक दिया)' आह ! कोई भी सावधान बुद्धिवाला व्यक्ति राजा (राम) के चरित्र को तो देखे, इस विषय में उनके लिये क्या जनता द्वारा दोष देने वाली किवंदन्ती ठीक है ? जिसमें जनता का दोष है वह किंवदन्ती राम के लिये क्यों ? ॥५१॥ माना कि पवित्र सीता को वन भेजकर मैंने गलती की किन्तु इस विषय में कोई भी व्यक्ति, कुछ भी, कभी मुझसे कहा ? क्या एक साथ यहाँ दोनों स्वीकार या विरोध संभाव्य है। राजविहीन समय में प्रजाओं में यह बात कही जानी चाहिये ।५२ बच्चे के जीवन के लिये, नित्य तपस्यारत शूद्रमुनि शम्बूक को सस्वेद हाथ-कांपते हाथ से हमी ने मारा। नीति का सहारा लिये हुए राजा नितरां राजा ही होता है, इस विषय में जो व्यक्ति स्वतन्त्र या तटस्थ है कुछ भी कहने में समर्थ है ॥५३॥

व्यक्तौ मे यद् भवति भवतात् तत्प्रकुर्वन् हृदिस्थं
धर्मं मत्वाऽनुमति महतां प्राशिषं राज्यमेतत्
उत्कर्षं चेद् यदि न कृतवान् नापकर्षोऽपि जातो
मन्ये मेऽस्मिन् व्यसनसमये मित्रमासीत्कृतान्तः ।५४।

यस्माज्जातु प्रभवतु न मे राज्यकालेऽपमृत्यु-
र्नो वा बाधा ग्लपयतु तपस्तापसानां विशुद्धम्
सौरे राज्ये प्रसरतु न मे कश्मला किंवदन्ती
ध्यायन्नित्थं प्रतिपलमदोऽन्वीचलं राज्यतन्त्रम् ।५५।

उत्कर्षं वाधत इह यथा लोककृत्येऽपवादो
नाभूद् राज्ये मम खलु तथा लौकिकन्यायबाधः
शेषं दैत्यं लवणपदवीवाच्यमाराद् रिपुघ्न-
स्तुर्यो भ्राता मम समिति तं नामशेषश्चकार ।५६।

मुझ व्यक्ति का जो होता हो सो हो किन्तु हृदयस्थ सत्कर्मों को करता हुआ, धर्म मानकर, मति के अनुरूप अपने बड़ों के इस राज्य का मैंने शासन किया। यदि मैंने राज्य का उत्कर्ष नहीं किया है तो अपकर्ष भी नहीं हुआ है, लगता है इस मेरे विपत्ति के समय में कृतान्त ही मित्र रहा ॥५४॥ मेरे राज्य काल में जिससे अपमृत्यु न हो, अथवा तपस्वियों के विशुद्ध तप को कोई बाधा नष्ट न करे, इस सूर्य वंशीय) राज्य में मेरे लिये कोई किंवदन्ती न फैले, प्रतिपल इस सबका ध्यान रखते हुए ही मैंने इस राजतन्त्र का संचालन किया है ॥५५ यहाँ लोककर्म में जैसे उत्कर्ष को अपवाद बाध लेता है मेरे राज्य में उस प्रकार का कोई लौकिक न्याय बाधित नहीं हुआ। लवण नाम का एक दैत्य शेष था, उसे भी शीघ्र ही मेरे चौथे भाई शत्रुघ्न ने युद्ध में नामशेष कर दिया ॥५६॥

पृथ्वीपाला विगतकलहाः सन्ति सर्वासु दिक्षु
ख्यान्तीदानीमधिगतयशः कोशलस्योत्तरस्य
प्राप्ते साम्नाभिलषिततमे वस्तुजाते नितान्तं
शिष्टोपाया नृपहितकृतः सन्ति शास्त्रेषु दृष्टाः ।५७।

राजा रामः प्रकृतिविषये यत्करोति प्रजा तत्
प्रत्येतु स्वानुभववशतस्तत्र सा स्वप्रमाणम्
दूरे कृत्वा स्वकरविधृतां तां सुतोत्पत्तिहेतुं
मत्वा चेमां सुतमिव निजं स्वप्रजांजीवितोऽहम् ।५८।

स्रष्टुर्विश्वं गहनचरितं दुर्निवारेन्द्रजालं
पारे गन्तुं वितथयसनो जायते प्राणिवर्गः
ये चोपाया अपि सुमतिभिर्बोद्धुमेतत्प्रदिष्टा–
स्तेऽपि प्रायश्चलितधिषणं पातयन्ति प्रहेल्याम् ।५९।

इस समय कीर्ति प्राप्त, उत्तर कोसल के सारे राजा कलहरहित होकर दिशाओं में विराजमान हैं। अत्यभीष्ट वस्तु के साम से प्राप्त हो जाने के कारण राजा के हितकारी अन्य अवशिष्ट तीन उपाय अब शास्त्रों में ही देखे जाते हैं ।।५७।। राजा राम प्रजा के विषय में जो कुछ भी करते हैं, उसे प्रजा अपने अनुभव से समझे, वह स्वयं स्व प्रमाण है। पुत्रों की उत्पत्ति का कारण उस अपनी पाणिगृहीती को दूरकर मैं अब अपनी इस प्रजा को ही पुत्र मानकर जीवित हूँ ।।५८।। विधाता का संसार गहन चरित वाला है, यह दुर्निवार इन्द्रजाल (माया) है, इसके पार जाने के लिये प्राणि वर्ग व्यर्थ प्रयास करता है, इसे जानने के लिये विद्वानों ने जो उपाय बताये हैं प्रायः वे भी अस्थिर बुद्धि वाले व्यक्ति को पहेली बना देते हैं ।।५९।।

गीर्वाणार्थं बुधमथभटं रावणं जातिविप्रं
हत्वा किञ्चिद् वृजिनमथवा पुण्यमापं न जाने
लोकेच्छातः सुकृतदुरितस्यापि शान्त्यायकार्षं
क्षमाभृत्कृत्यं जलनिधिशयप्रीणनायाऽश्वमेधम् ।६०।

कुर्वन्यज्ञं दयितरहितः पार्थिवश्चक्रवर्ती
विश्रम्भं स्वप्रकृतिमनसि प्रापयद् यत्क्षणं सः
तस्मिन् कीदृग् विलसितमिदं ब्रह्मणा हासरूपं
सीता दृष्टा परमिहगता कौ न लब्धा पुनः सा ।६१।

किं वा ब्रूयां सततनिरतस्तुष्टये मानवानां
नाहं प्रापं क्वचिदपि सुखं लौकिकं सुप्रसिद्धम्
सर्वस्वं मेऽवसितमधुना हन्त निर्लक्ष्मणस्य
देवा यूयं वसत कुशलं निर्व्यथं निर्विकारम् ।६२।

निदर्शनं मानवमध्य एवं संस्थाप्य कृत्वा त्रिदशानुकूल्यम्
प्रदाय राज्यञ्च समं सुतेभ्यो न साम्प्रतं साम्प्रतमत्र वासः ।६३

देवों के लिये मैंने जाति से ब्राह्मण, विद्वान् पापवीर रावण को मारकर कोई पाप या पुण्य पाया, नहीं जानता। लोक की इच्छा से, सुकृत-दुरित के भी (सुकृत के दुरित के भी) शान्ति के लिये राजकार्य किया और भगवान विष्णु की प्रीति के लिये अश्वमेध यज्ञ भी किया ॥६०॥ प्रिया विहीन, चक्रवर्ती राजा यज्ञ करता हुआ जिस क्षण (अपनी प्रकृति और मन में) अपनी प्रजाओं के मन में विश्वास प्राप्त करा रहा था उसी क्षण विधाता द्वारा परिहासरूप यह कैसा विलास दिखाया गया कि सीता दिखी, पर वह धरती में समा गई और पुनः नहीं मिली ॥६१॥ अथवा क्या कहूं? सदा ही मनुष्यों की सन्तुष्टि में ही लगा रहा, मैंने कहीं भी सुप्रसिद्ध सांसारिक सुख नहीं पाया और अब लक्ष्मण विहीन मेरा सब कुछ समाप्त हो गया, हे देवगण, आप सभी व्यथारहित, निर्विकार सकुशल रहें ॥६२॥ इस प्रकार मनुष्यों के बीच देवानुकूल निदर्शन स्थापित कर, राज्य को समानरूप से पुत्रों को देकर, अब धरती पर मेरा रहना उचित नहीं है ॥६३॥

लीलाविग्रहवान् समस्तजगतो धर्ता स्वराडव्ययः
कृच्छ्रे कृत्यमसौ प्रदर्श्य बहुशो धृत्वा वपुर्मानवम्
लोके स्थापयितुं स्वकीर्तिमतुलां भक्तार्तिनाशाय च
श्रीमन्तं पवनात्मजं समयुनक् रामः प्रभुः शाश्वतः ।६४।

श्रीश्यामान्वितसुन्दरोऽस्ति जनको माता च यस्याम्बिका
यः श्रीराजकिशोर आप्तचरितः शाण्डिल्यवंशोद्भवः
तस्य श्रीहनुमत्कृपावशमितस्यैकान्ततोऽस्मिन्महा-
काव्ये चारुणि राघवेन्द्रचरिते सर्गो गतः षोडशः ।६५।

ज्योतिस्तत्परमं सदा
ध्यायामः सवितुर्वयम्
प्रेरयितृ धियोऽस्ति यत्

जमुईपण्डितग्रामे गोरखपुरमण्डले
वसतः काव्यकारस्य काव्यं स्याद् बुधहर्षदम् ।
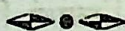
समस्त संसार को धारण करने वाले, स्वराज, अव्यय अविनाशी, लीला विग्रहधारी भगवान् ने राम रूप में मानव शरीर धारण कर दुःखों में भी नाना कार्यों को करके, संसार में अपनी अतुल कीर्ति की स्थापना करने के लिये तथा भक्तों की पीडा का नाश करने के लिये शाश्वत, प्रभु राम ने, श्रीमान् पवनसुत हनुमान् (को यहाँ नियुक्त कर दिया) में ही अपने को जोड़ दिया ।६४। श्री श्यामसुन्दर जिनके पिता हैं तथा जिनकी माता अम्बिका है, शाण्डिल्य गोत्रोत्पन्न आप्त चरित जो श्री राजकिशोरमणि हैं उनके द्वारा रचित सुन्दर श्रीराघवेन्द्र चरित महाकाव्य में, एकान्ततः हनुमान की कृपा से ही सम्पन्न, यह सोलहवाँ सर्ग पूर्ण हुआ ॥६५॥ हम सूर्य की उस परम ज्योति का सदा ध्यान करते हैं जो बुद्धियों का प्रेरक है ॥६६॥ गोरखपुर जनपद में जमुई पण्डित ग्राम में रहते हुए काव्यकार का यह काव्य विद्वानों को हर्ष प्रदान करने वाला हो ।

श्रीराघवेन्द्रचरणाम्बुजचञ्चरीको
गर्गान्वयो दशरथो रघुनाथसूनुः ।
श्रीराघवेन्द्रचरितं समनूद्य चक्रे
सम्पादनं वसुसवेदखनेत्रवर्षे ॥
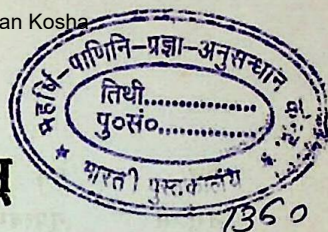
राघवेन्द्र चरितम्

शुद्धिपत्रम्

अशुद्ध	शुद्ध	श्लोक सं०	अशुद्ध	शुद्ध	श्लोक सं०
त	तं	१।५	जाप्य।	जाप्यः	२।३७
गुणाम्वितन्	गुणान्वितान्	१।१४	बिवण	विवर्णं	१।४७
निरर्थंक	निरर्थंकं	१।१६	राजन्या	राजन्यो	२।५०
अस्त्त	अस्त्यु	१।१९	वेश्य	वैश्य	१।५०
सध्याक	संध्यार्क	१।२२	क	का।	२।५१
तदोय	तदीय	१।२६	अवोचिपाडा	अवीचिपीडा	२।५६
सलिल	सलील	१।३१	स्त्रवन्तीं	स्त्रवन्ती	२।५८
नियातयन्ती	निपातयन्ती	१।३१	बस्कन्दित	वस्कन्दित	२।६२
समात्तबाल्या	समाप्तबाल्या	१।३३	तत्कृत	तत्कृतं	२।७४
यौबन	यौवन	१।३३	पश्चिग	पश्चिमा	२।८१
ऽब्रसरं	ऽवसरं	१।३४	तासी	प्रासी	२।८२
परिषवजे	परिषस्वजे	१।३७	मन्ड	मण्ड	२।९१
वैशिष्टय	वैशिष्ट्य	१।४७	वेतृ	वेतृ	२।९६
तपरे	तत्परे	१।५३	व्यवहारं	व्यवहार	२।१०६
प्रतिधा	प्रतिघा	१।७४	प्रयजै	प्रयाजै	३।३
वेदत्	वदेत्	१।७७	निश	निशं	३।५
शास्त्रमु	शास्त्रम्	१।७७	ज्ञानापचर्या	ज्ञानोपचर्या	३।१०
नलु	खलु	१।७८	माल्प्ते	माल्यते	३।१३
काशयतृणि	काशयतृणि	१।९०	डुनस्था	डुपस्था	३।१७
बिमीह	विमोहि	१।९७	बहूंनि	बहूनि	३।२२
नसि	मनसि	१।११३	वृत, सन	वृत्तं, सन्	३।२३
श्यागा	श्यामा	१।११४	ऽय	ऽयं	३।३२
अभितप्ता	अभितप्ता	२।७	बाप्तये	वाप्तये	३।३६
गायो	गावो	२।९	प्रक्च	प्राक्च	३।३७
आगनिष्या	आगमिष्या	२।२३	स्चक्षू	श्चक्षू	३।३७
हृष्टि	हृंष्टि	२।३६	पूर्योमाणम्	पूर्यमाणम्	३।४५
नाता	जाता	२।३६	विबुद्धा	विबुद्धा	३।४५

मेनं	मेनं	३।५४	मिथिना	मिथिला	६।१०
नृग्त्वम्	नृपत्वम्	३ ५५	व्यक्म्पत	व्यकम्पत	६।१०
हन्सि	हंसि	३।६०	धिधा	धिधा	६।४०
रतुल:	रतुल:	३।६६	पाल्तिाभि:	पालिताभि:	६ ४३
तनिन्द्यं	तन्निन्द्यं	३।७६	कपोनो	कपोलो	६।५७
मस्यान	मस्मान्	३.७६	मुवो	मुखो	६।५७
वृत्त	वृत्तं	४।३	हारत्स:	हरित्स:	६।६५
सुशामितं	सुशोमितं	४.५	पति	पंक्ति	६।७७
हर्षत्	हर्षात्	४।१०	छेता	छेत्ता	६।१०१
मुमित्रा	सुमित्रा	४.१४	युवति	युवति	६।११७
भ्राजमानं	भ्राजमानं	४।१८	सारिणा	सारिणी	७.९
रूप	रूपं	४।१८	नोको	नीको	७ १९
प्रकृष्ट	प्रकृष्ट	४।१८	ऽघम्	ऽद्यम्	७।४१
ऽकरा	ऽकरो	४।३१	होन	होम	७.५१
पयोद।	पयोदै।	४।३४	नीय।	नीया:	७।६०
बुद्धय	बुद्धया	४।३७	पूर्वं	पूर्वं	७.६६
भंक	भंका	४.३७	नोके	लोके	७।६८
दघाता।	दघाना:	४।६१	भ्रातृन्	भ्रातृन्	७।१०३
कर्याच	कर्वाच	४।६६	नीत	तीत	७।१०३
कपिरतेन	कपिस्तेन	४।६६	सम्द:	सम्पद	८।११
चन्द्र	चन्द्रं	४।७६	आजि	वाजि	८।१२
काम	कामं	४।८२	वृत्त	वृत्तं	८।३७
कमा	कम्प	५।१७	प्रसन्न	प्रसन्नै:	८।४५
अल	अलं	५।२४	वाच	वाचं	८।५५
द्रुत	द्रुतं	५।३९	किशुकादि	किंशुकादि	८।७९
गैविदिशो	गैर्विदिशो	५।४१	मातृ।	मातृ।	८।११५
नुयागेन	नुयोगेन	५।६१	मरत	भरत	८।१३९
हृदऽऽ	हृदाऽऽ	५।६५	सविदा	संविदा	८।१५३
नुरायो	नुशयो	५।१०६	ऽह	ऽहं	८।१५३
मावद	मावाद	५।१११	लङ्कताम्	लङ्कृताम्	९।११
दम्पति	दम्पती	५।११४	अत्तस्त्वं	अतस्त्वं	९।२०
मावा।	मावा।	६।३	कारण्य	कारण्य	९।२४

नोवहं	नोकहं	९।६४	कुतूहल	कुतूहलं	१०।२३५
महोध्रो	महीध्रो	९।७५	क्वापनया	क्वाप्यनया	१०।२३८
आसोत्स	आसीत्स	९।९८	प्रतिप	प्रतीप	१०।२७३
लोलुषाः	लोलुपा	९।१५०	स्वमार्गेण	खमार्गेण	१०।२८०
स्ताकं	स्तोकं	१०।४	तदानी	तदानीं	१०।२७८
युपं	युपं	१०।१६	सिद्धा	सिद्धो	१०।२८५
ममलं	समलं	१०।१६	कदादिदेषा	कदाचिदेषा	१०।२८६
जनदे	जलदे	१०।४१	वागत	वागतं	१०।२८८
सुरभि	सुरभि	१०।४२	एकाकिनो	एकाकिनीं	१०।३०१
सम्राज्य	साम्राज्य	१०।६८	दुख	दुःखं	१०।३४९
पर	परं	१०।७०	एनं	एवं	११।१
शनैगन्ध	शनैर्गन्ध	१०।८०	गरुन्तुदमामनस्य	मरुन्तुदमामनस्यं	११।१
प्रकाम	प्रकामं	१०।८०	वृत्तिपरत्र	वृत्तिरपरत्र	११।१
कामरूप	कामरूपं	१०।८२	ज्वतन	ज्वलन	११।३
यकेन	यैकेन	१०।८२	कानमनु	कालमनु	११।६
लम्यो	लभ्यो	१०।८४	गेहात	गेहात्	११।२२
वोक्ष्य	वीक्ष्य	१०।९०	तत्रैको	तत्रैको	११।२४
कि	किं	१०।९२	तदानीं	तदानीम्	११।२९
कम	कर्म	१०।९३	युक्त	युक्तं	११।३२
आसोत्	आसीत्	१०।१०२	शाभं	शोभं	११।६८
प्रतोकार	प्रतीकार	१०।१०६	प्रसार	प्रसारै	११।६८
षरमेतेन	परमेतेन	१०।१४८	न्यवेदात्स	न्यवेदीत्स	११।९६
पूर्ण	पूर्णं	१०।१४४	मर्मादतां	मर्यादतां	११।९८
नानुषो	मानुषो	१०।१५५	साचवैः	सचिवैः	११।१००
कारष्यन्ति	करिष्यन्ति	१०।१५७	मज्जा	मज्जा	११।११२
प्रकाम	प्रकामं	१०।१६१	कथ	कथं	११।१२०
आयस्मति	आयास्यति	१०।१६४	सुख	सुखं	११।१४१
प्राणिनमिह	प्राणिनामिह	१०।१६४	पर	परं	११।१४१
कलासो	कैलासो	१०।२२०	रामभद्र	रामभद्रं	११।१४६
तस्या	तस्मा	१०।२२४	दक्षिणा	दक्षिण	११।१४९
पक्ष	पक्षे	१० २२४	मागयत्	माग्यात्	११।१५१
पद	पदं	१०।२२७	प्राणिना	प्राणिनां	११।१८८

ऽव्ययत	ऽव्यथयत	११।२०६	प्रयुक्त	प्रयुक्तं	१३।७२
मवत,	मवत	११।२२५	समून	समूल	१३।७३
साहाय्य	साहाय्यं	११।२१७	नादा	नादो	१३।८०
खामि	खामि	११।२२६	ऽव्यपक्तुं	ऽव्यपाक्तुं	१३।८३
दृष्टवा	दृष्ट्वा	११।२३६	निवास	निवास	१३।१३६
वैष्यव	वैष्णव	११ २४१	इन।	इत।	१३।१६५
पुरुषोऽय	पुरुषोऽयं	११।२४५	न्तयन	विचिन्तयन्	१३।१६८
हीनधर्यि:	हीनचारित्र्य:	११।२६५	काल	काल	१३।१८२
ऽवधि	ऽवधि	११।२६६	युद्धभि	युद्धाभि	१४।५
वर्षतु:	वर्षतुं:	११।२९२	हन्तार	हन्तारं	१४।३७
तू	तु	११।२९९	का का	वा का	१४।५६
तत्क्षण	तत्क्षणं	११ ३२१	मेन	मेनां	१४।१२५
यत्नता	यत्नतो	११।३२४	मिपु	मिषुं	१४।१४१
स्वामिन	स्वामिनं	११।३२९	मातृ	मातृः	१ ।२०
विघिर्न	बिधिर्न	११।३४१	पितृन	पितृन	१५।९
नव	नवं	११।३८०	गुहृञ्च	गुहृञ्च	१५।१०
किशार	किशोर	११।३९२	योध्य	योध्या	१५।११
लोक	लोक	१२।७	घिरोति	घिरोहति	१५।२४
गोतम	गौतम	१२।१७	नृणा	नृणा	१५।२५
कोर्तनोया	कीर्तनीया	१२।२०	रक्षबुद्धया	रक्षिबुद्धया	१५।५७
न	'न'	१२ ३१	ज्ञावा	ज्ञात्वा	१५।५९
पन	पल	१२।४५	बह्तु	वहतु	१५।६७
कपयतवालं	कपयस्तवालं	१३।१४	स्फुटद्	स्फुरद्	१५।७२
सुरै	सुरै:	१३।११	निशम्य	निशम्य	१५।८८
युद्धञ्च	युधञ्च	१३।१५	केबल	केवल	१५।९२
पद, दधातो	पदं, दधाती	१३।३३	विनदिशन्	विनिर्दिशन्	१५।१११
शिलोच्चय:	शिलोच्चयै:	१३।४४	तिजासु	निजासु	१५।१२०
रिवामान	रिवात्मान	१३।४४	मत्वा	मत्वा	१६।२
रिक्ष	रिक्षे	१३।४९	चैतन्य	चैतन्यं	१६।४२
शोला	शोलो	१३।५५	समभिनषिते	समभिलषिते	१६।५७
स्वय	स्वयं	१३।५६	किंस्चिद्	किंस्विद्	१६।६०
मम्दे	मन्ये	१३।६९			

संस्कृत सेवा संस्था[illegible]
के
प्रकाशन

- महाभाष्यम् (प्रथमाह्निक)
- वैयाकरण सिद्धान्तकौमुदी (कारक प्रकरण)
- अभिनवा स्तुतिः
- मूषक वैदुष्यम्
- भारतीय दर्शनपरम्परा और साहित्य दर्शन
- संस्कृत साहित्य में स्तोत्रकाव्य
- राघवेन्द्रचरितं महाकाव्यम्

मुद्रक—संस्थान प्रेस, गीतावाटिका, गोरखपुर, फोन-३३८२३८